# गीता गङ्गा

## स्रग्धरा

### (स्वोपज्ञव्याख्याभाषाभावार्थतरङ्गसङ्गता)

## अथ प्रथमोऽध्यायः

**वन्दे देवं दयाब्धिं श्रितदुरितहरं यस्य कल्लोलमाला,**
**विश्वोत्पत्त्यादिलीला वितरति सुधियां निर्गमं कर्मजालात्।**
**यन्निःश्वासप्रकारेष्वतुलितधिषणाधन्यजन्मान उच्चै–**
**स्तिष्ठन्तस्तत्त्वविद्याव्यसनशतसमाधानमिच्छन्त्यजस्रम्।।१।।**

व्याख्या– वाचा सृष्टमिदं विश्वं दुर्ज्ञेयम्ब्रह्म वागतः।
व्याख्यातम्बहुभिः स्वोक्तं शिष्यधीवृद्धिवाञ्छया।।
न स्वोक्तमपि विज्ञेयं समये सुविचारितम्।
विदापि किन्नु सामान्यैर्व्याख्या तस्मादपेक्ष्यते।।
इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यातुमिष्यते।
दृश्यतामत्र पद्यार्थो नेष्यताम्पृथगन्वयः।।

भगवदनुग्रहशिष्यशिक्षाप्रचयगमनादिफलं नमस्कारात्मकम्मङ्गलमिह ग्रन्थादौ निबध्यते–वन्दे देवमित्यादि। श्रितानां शरणागतानां दुरितं संसारबन्धहेत्वपराध–जातं हरतीति तथोक्तस्तं, दयायाः करुणाया, अब्धिं समुद्रं, देवं सेवा प्रयोजकदिवुधात्वर्थपूर्त्या नित्यसेव्यम्परमात्मानं, वन्दे यथावत् प्रणमामि। कथम्भूतं दयाब्धिम्? विश्वस्य जगत, उत्पत्त्यादयोः जन्मरक्षासंहारा, लीला इव लीला यस्याः सा तथोक्ता, यस्य कल्लोलानां तरङ्गाणाम्, माला, पङ्क्तिः, सुधियां तत्वहितपुरुषार्थज्ञानानुष्ठानसम्पन्नानां सतां, कर्मजालात् कर्मरूपाद्विष्वग्बन्धन–हेतोर्जालात् घनावरणात्, निर्गमम् मोक्षं, वितरति सम्पादयति। पुनरपि प्रस्तुतं देवं विशिनष्टि–यन्निःश्वासेत्यादि। यस्य निःश्वासप्रकारेषु निःश्वासवदक्लेश–व्यापारविशेषेषु मन्त्रब्राह्मणारण्यकोपनिषद्रूपेषु ऋगादिभेदभिन्नेषु वेदेषु "तस्यैतस्य



महतो भूतस्य निःश्वसितमिदं यदृग्वेद"[१] इत्यादिश्रुतिभिर्भगवन्निः श्वासत्वेन तत्समकालिकत्वेन नित्यत्वेन प्रथितेषु निरतिशयगम्भीरार्थेषु, अतुलितधिष–णयाऽसाधारणप्रज्ञया हेतुभूतया, धन्यम् प्रशस्यं, जन्म येषान्ते तथोक्ता देवाचार्यप्रभृतय, उच्चैर्देवलोकोत्कृष्टपदेषु, तिष्ठन्त आसीना अपि तत्त्वविद्या जगदुत्पत्त्यादिसकलपरिणतिहेतुसमस्तचिदचिदीश्वरविषयकयथार्थबोधजनिका आरण्यकेषूपनिषत्सु गूढ़ा दुर्लभा नाना विद्याः, तासु व्यसनशतानां अप्रतिभा–संशयविपर्ययरूपासङ्ख्यक्लेशानां समाधानं निवारणम् अजस्रं नित्यमेव इच्छन्ति लब्धुं यतन्ते, तं देवं वन्द इति पूर्वेणान्वयः, रुपकालङ्कारोऽनुप्रासश्च।

**भावार्थ – शरणागतों के मोक्षविरोधी अज्ञानमय पापों का हरण करने वाले जिस दयासमुद्र की तरंगें तत्त्वहितपुरूषार्थबोधयुक्त सत्कर्मरत विद्वानों के लिये, उनके तत्त्वबोध के विस्तार के लिये सृष्टि स्थिति संहाररूपी, नानाविध लीलायें प्रस्तुत करती हैं, एवम् उपयुक्त ज्ञानावस्था होने पर प्राचीन सारे कर्मों के जाल से निकलने का मार्ग भी देती हैं, परम मुक्ति प्रदान करती हैं एवं सर्वोत्तम प्रज्ञा से उत्तम जन्म वाले देवाचार्य प्रभृति तत्त्वदर्शी लोकों के उच्च पदों पर स्थित होते हुए भी जिसके निःश्वास की विधारूपी ऋग्वेदादिशास्त्रों के तत्त्वविद्यासंदर्भों में आने वाले अप्रतिभा संशय विपर्यय प्रमादादि क्लेशों का वारण निरन्तर ढूंढ़ते रहते हैं ऐसे पूजा प्रयोजक गुणपूर्ति के फलस्वरूप सर्वाराध्य देव परमात्मा को हम सविधि प्रणाम करते हैं।**

**एकम्ब्रह्मैव सत्यन्तदितरदखिलम्भ्रान्तिभूस्तद्विदित्वा,**
**दुःखाज्ञानान्धकारम्प्रतरति सुकृती नित्यशान्तो निराशीः।**
**हेतोस्तस्यैव नित्याञ्जलिललितगतिर्निश्चलस्तत्प्रियाणाम्,**
**प्रेयानित्याह देवः स जयति विबुधाधीशधीव्योमभानुः।।२।।**

वक्तारमस्य शास्त्रस्य सारभूतं विवक्षितम्। प्रस्तुवन् वस्तुयुगलम् मंगलन्तनुते पुनः एकम्ब्रह्मैवेति।

(यः प्रस्तूयमानः) आह इति दूरेणाऽन्वयः। एकम् प्रधानभूतं, सर्वशेषीत्यर्थः, ब्रह्म परमात्मतत्त्वम्, एव सत्यम् परमार्थभूतम्, तदितरत् तद्भिन्नम्, अखिलम्, प्रमेयजातम्, भ्रान्तिभूः क्षणभङ्गितया दुर्वेद्यकारणकार्यतया च जड़द्रव्यगुणादि, अज्ञेयसंस्काराधीनप्रवृत्तिकतया चेतनाश्च, भ्रान्तेरयथार्थबोधस्य भूर्बिषयः, इदमेव ब्रह्मभिन्नानाम्मिथ्यात्वम्, तद् ब्रह्मतत्त्वं, विदित्वा श्रुत्यादिभिः सविधि सम्प्रधार्य, सुकृती पुण्यशीलो मुमुक्षुः, नित्यशान्तः सततानुत्पन्नविषयाभिलाषः, अतएव निराशीः

कर्मफलानपेक्षः सन्, दुःखाज्ञानान्धकारम् दुःखमयं स्वरूपानवबोधरूपं तमः, प्रतरति अतिक्रम्य नावर्तते, (अथच) तस्योक्तस्य ब्रह्मण एव हेतोः सन्तोषाय, नित्यः सन्ततः, अञ्जलिः रक्षापेक्षासूचिका मुद्रा, तेन ललिता स्पृहाणीया हरिसन्तोषावहा, गतिः कर्मयोगो यस्यासौ तथोक्तो, निश्चलः स्थितप्रज्ञः, तस्य ब्रह्मणः, प्रियाणाम्, प्रीतिपात्राणाम्, प्रेयान् निरतिशयप्रियः (स्यात्) इत्याह कथयति, विबुधाधीशानां देवराजप्रभृतिसत्त्वप्रचुरचेतसां, धीव्योम्नः प्रज्ञारुपाकाशस्य, भानुः प्रचुरप्रकाशमूर्तिः, स देवः, सर्वाराध्यः श्रीकृष्णो, जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः।

**भावार्थ** – गीतागंगा के आरम्भ में गीताचार्य की स्तुति करते हुए गीता के मुख्य प्रतिपाद्य अर्थ का निर्देश करते हैं। प्रतिपाद्य और प्रतिपादक दोनों अर्थों का निर्देश होने से यह वस्तुद्वयनिर्देशात्मक मंगल है। गीताग्रन्थ के निष्कर्ष के रूप में यह अर्थ निकलता है कि एकमात्र ब्रह्मतत्त्व ही सत्य है, बाकी अन्य जो भी अर्थ हैं उनके बारे भ्रान्ति ही रहती है। भ्रान्ति के बहुत से कारण होते हैं। भ्रान्ति ब्रह्म तत्त्व पर भी बहुत है किन्तु उपायों से उस पर की सारी भ्रान्तियाँ दूर की जा सकती हैं किन्तु अन्य अर्थों से भ्रान्ति का वारण असम्भव है। अन्य अर्थ स्वयम् बदलते रहते हैं, उनपर का निर्णय आगे चलकर गलत हो जाता हैं, जीवात्मा तत्त्व भी प्रकृतिसंसर्गजनित अज्ञानसंस्कारों के परिणाम वश बदलते ही रहते हैं इसीसे वे मिथ्या माने जाते हैं, किन्तु ब्रह्मतत्व ऐसा नहीं हैं। उस ब्रह्मतत्त्व को जानने से ही किसी पुण्यशील का, संसार बन्धन के हेतुभूत दुःखमय अज्ञान के अन्धकार से उबार हो जाता है और वह स्थितप्रज्ञता यानी स्वस्वरूप निष्ठा पा लेता है और कभी भी कामादि विकारों के न होने से स्थायीरूप से शान्त हो जाता है। कामनाओं के अभाव में वह निर्विघ्न भक्तिपूर्वक भगवदर्थ कर्म करने लगता है जो प्रभु को अतिशय प्रिय हो जाता है जिससे वह भक्तों में अग्रगण्य एवं शीघ्र मुक्ति का भागी हो जाता है। यही भगवान् श्रीकृष्ण की गीता का निष्कर्ष है। गीता का उपदेश विश्वकल्याण के लिये भगवान् समय समय पर करते ही रहतें हैं जिससे स्वर्गादि लोकों में भी तत्त्वज्ञान का विपुल प्रकाश रहता है। देखिये ''इमं विवस्वते योगम्'' गीता'' अ० ४।

**ब्रह्माद्या नारदाद्याः शिवसनकमुखा गोपिकाः सूरिवृन्दा,**
**विस्मृत्यानर्थजालम्पदमभयमगुश्चेतसा यत्र लग्नाः।**
**तस्मिन् श्रुत्यन्तसेव्ये दृढभजनवतां रागयोगात्सुदीप्तः,**
**पादद्वन्द्वे मुरारेर्जनयतु सुधियां रक्तिमा रागभङ्गम्।।३।।**



भगवच्चरणयुगलतलरक्तिमा निध्यातः सुधियां विषयरागं शमयत्वित्या–शीर्मगंलन्तनोति–ब्रह्माद्या इति। ब्रह्माद्याः स्वर्गादिभोगोत्तीर्णसत्त्वप्रचुरज्ञान–प्रधानलोकाधिपतयः, नारदाद्या ध्यानयोगनिष्ठाः, शिवसनकमुखा भक्तिप्रचुर–जीवनाः, गोपिका भक्तिकाष्ठां गताः, सूरिवृन्दा असंसारिणश्च, अनर्थजालम् अपुरुषार्थभूतम् प्रकृतिविकारजातम्, विस्मृत्य नितरामुपेक्ष्य, चेतसा ध्यानयोगेन, यत्र लग्ना यत्सम्बद्धा, अभयं संसारदुःखशोकभयरहितम्, पदं चित्तावस्थां स्थानविशेषञ्च अगुर्गतवन्तः, श्रुत्यन्तैवेदान्तविद्याभिः करणभूताभिः, सेव्ये सेवितुं शक्ये, मुरारेः श्रीविष्णोः, तस्मिन् प्रस्तुते, पादद्वन्द्वे चरणयुगले, दृढ़भजनवतां सुचिरगाढ़ध्यानप्रगल्भानां, रागयोगात् सुदृढ़ानुरागसम्बन्धादिव, सुदीप्तः सम्प्रकाशमानः, रक्तिमा रक्तवर्णः, सुधियां तत्त्वनिष्ठानां, रागभङ्गम् विषयवासनाक्षयं, जनयतु करोतु। विरोधालंकार उत्प्रेक्षा च।

**भावार्थ** – भगवान् के चरणतल की लाली से तत्त्वचिन्तननिरत महापुरुषों का वासनाक्षय हो ऐसी शुभकामनारूपी आशीर्वादात्मक मंगल प्रस्तुत करते हैं। भगवान् के जिस चरणयुगल का चिन्तन केवल उपनिषदों के परिशीलन से सम्भव है, एवम् प्राकृत विषयों को सदा के लिये भूलकर अन्तःकरण से जिससे जुटने से ब्रह्मा आदि ज्ञानप्रधान, नारद आदि ध्यानप्रधान, शिवसनकादि भक्तिप्रधान और गोपिकायें भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त अधिकारी एवं बैकुण्ठस्थित असंसारी सूरिवृन्द निर्भय मोक्षप्रद को प्राप्त हो गये उस चरणयुगलतल की लाली जो कि परमभक्तिनिष्ठ महात्माओं के ध्यान के प्रभाव से मानो बढ़ती जा रही है, तत्त्वनिष्ठ अधिकारियों की संसारवासना का विनाश करे।

**श्रौतस्मार्तागमोत्था गुरुपदभजनैः सत्तपोभिः सहायैः,**
**सुप्रज्ञैः पुण्यशीलैर्भवजलधितटावाप्तये ये निबद्धाः।**
**ग्रन्थास्तद्ग्रन्थिमध्यश्लथनपरमनोमन्दिरोद्दीप्तरत्नम्,**
**प्रत्नन्तत्त्वं स्तुवन्नो जयति भगवतो भव्यगीताऽवतारः।।४।।**

भगवदसामान्यविग्रहत्वेन भगवद्गीतां स्तुवन् ग्रन्थविशेषरूपवस्तु–निर्देशम्मङ्गलन्तनोति–श्रौतस्मार्तागमेति। गुरुपदभजनैः सदाचार्यचरणश्रद्धया कृत्स्नतदाज्ञानुवर्तनैः, सद्भिर्लौकिकविषयस्पृहां विना तत्त्वनिष्ठयाऽऽचरितैः, तपोभिः मनोवाक्कायगतैः सत्कर्मानुष्ठानविरोधिक्लेशसहनैः सहायैरुपकरणभूतैः, पुण्यशीलैः सदाचारचारुचेतस्कैः, सुप्रज्ञैः विवेकप्रवणसदर्थधारणोन्मुखमनीषाबद्धिः,

भवजलधेः संसारसागरस्य, तटावाप्तये परपारगमनाय, श्रौताः श्रुत्यधीनाः, स्मार्ताः स्मृतिग्रन्थाधीना, आगमोत्था भगवत्तत्त्वप्रधानेभ्यो वेदेतरानादिशास्त्रेभ्यो नारदपाञ्चरात्रवैखानसागमप्रभृतिप्रमाणभूतवाङ्मयेभ्यो, निर्गता, ये ग्रन्था निबन्धा, निबद्धाः कलिपूर्वयुगेषु विरचिता आसन्, तेषां ग्रन्थीनां दुर्बोधसन्दर्भविशेषाणां यन्मध्यं दुरुद्धरनानासन्देहालम्बनभूतोऽर्थविशेषस्तस्य श्लथनं सविशेष–तात्पर्यावधारणं, तत्परेषु तदेकतानेषु, मनोमन्दिरेषु हर्म्यमध्यतुल्येषु मनीषिजन–मानसेषु, उत्कर्षेण असाधारणज्ञानानन्दमयगुणविशेषसमूहेन, दीप्तं श्रद्धाऽनुराग–विशेषविषयतया द्योतमानम्, प्रत्नम् अनादि, रत्नं सौभाग्यसन्ततिवर्धकं, तत्त्वम् परमार्थभूतं, सर्वकारणकारणम् भगवदाख्यं द्रव्यविशेषं, नः अस्मभ्यं, स्तुवन् संस्तुवन् नानागुणविशेषोपस्थापनैरस्माकन्तदौन्मुख्यमापादयन् "संस्तवः स्यात् परिचयः" (अमरकोषे) भगवतः परमात्मनः श्रीशस्य, भव्यो मंगलमयो, गीतावतारो रससम्या वाङ्मयी अभिव्यक्तिः, जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

**भावार्थ – भगवद्गीता की भाषाशैली सन्दर्भों और ब्रह्मसूत्र सन्दर्भों से पता चलता है कि बादरायण से पूर्व अध्यात्मचिन्तनधारा और ग्रन्थ लेखन की प्रथा विश्वव्यापी थी, लेखक सेवाव्रती तपोनिष्ठ सदाचारी और प्रज्ञामेधा के धनी होते थे। उनके ग्रन्थ उच्चस्तरीय और अधिकांश श्रुतिस्मृति आगमों के सर्वथा अनुकूल होते थे, उनमें आत्माभिव्यक्ति कम और प्रतिपाद्य विषय मोक्षसाधन का उपपादन विद्वत्तापूर्ण उत्कृष्ट भाषा में अधिक होता था। अध्यात्मविषय स्वयं जटिल है इससे ग्रन्थ के कई सन्दर्भ जटिल हो जाते है। ग्रन्थग्रन्थि कहलाने वाले उन संदर्भों को खोलने पर महान् प्रभावी अर्थों की उपस्थिति से मनीषी का हृदय चमत्कृत हो जाता है। उस हृदयप्रागंण में वे अर्थ एक महान् रत्न के समान प्रकाशित होते हैं। भगवद्गीता ऐसे ही महान् रत्न अनादि ब्रह्मतत्त्व को हमारे समक्ष हमारे हित के लिये अनन्त कल्याणमय गुणों के साथ प्रस्तुत करती है। यदि श्रीकृष्ण भगवान् के अवतार हैं तो उनकी कल्याणी वाणी कुछ अधिक ही मंगलमय अवतार है। कल्याणकामी सत्पुरुष इस ग्रन्थ को प्रभु की मूर्ति मानकर ही इसका अध्ययन करते हैं।**

**अध्यात्मविद्या का प्रधान लक्ष्य है मोक्ष। यहाँ अनात्मवाद से लेकर सगुण साकार सर्वशेषिभूत भगवदात्मवाद तक बहुत से वाद हैं। यद्यपि मोक्षका उपपादन सारे वादी अपने अपने मतों से करते रहते हैं पर पूरी सन्तुष्टि उपर्युक्त भगवदात्मवाद में ही मिलती है। भगवान् को ठीक से समझे बिना मोक्ष की इच्छा भी दृढ़ नहीं हो पाती। भगवान् से चेतनों के सारे सम्बन्धों को**



**एवं चेतनों से भगवान् के सम्बन्धों को समझना मुमुक्षता का मूल है। मुमुक्षुता से पहले मोक्ष के उपाय नहीं होते तब मोक्ष की कथा भी दूर रह जाती है। इसीसे कह रहे हैं कि मोक्षविद्या की ग्रन्थियों को सुलझाने वाले चित्तरूपी प्रकोष्ठ के लिये भगवान् महान् दीप्त रत्न हैं। उनकी दीप्ति में ही मोक्ष सम्बन्धी सारे सन्देह दूर होते हैं तब मोक्षोपायों का उपयोग होता है। ऐसे महान् रत्न को दिखलाने वाला गीताशास्त्र जो कि भगवान् की मंगलमयी रमणीय मूर्ति है उससे उत्तम इस विश्व में और कुछ नहीं है।**

**विश्वाचार्येण वेदा अकृतकवपुषः श्वासरूपेण दत्ता–**
**स्तेष्वध्यात्मप्रबन्धा उपनिषदमिधा विश्वकल्याणहेतोः।**
**वेदव्यासेन सूत्रैः शमदमसुतपःशुद्धचेतोबुधेभ्यो,**
**व्याख्यातास्तास्तु गीता अमृतरसमयं वासुदेवेन सद्भ्यः।।५।।**

भगवद्गीतायाः प्रमाणभूतश्रुत्यर्थव्याख्यानुगततयोपादेयताऽतिशयमाह– विश्वाचार्येणेति। विश्वस्य सर्वजगत, आचार्येण परमकल्याणहेतुज्ञानानुष्ठान–सम्पादकेन, परमात्मना, अकृतकस्यानादेर्वपुषो दिव्यमंगलविग्रहस्य, श्वासरूपेण अनायासं, वेदा अनादिः सर्वार्थमयो वाङ्मयराशिः, सृष्टिप्रभृतिव्यापारकौशलार्थम् परमेष्ठिप्रभृतिभ्यो, दत्ताः समर्पिताः, तेषु वेदेषु, उपनिषत्संज्ञा अध्यात्मप्रबन्धाः प्रकृतिप्राकृतार्थजातधारणभोगप्रवणात्मपरमात्मविषयाः सन्दर्भा, वेदव्यासेन बादरायणेन, विश्वस्य जगतः कल्याणहेतोर्निःश्रेयसलाभाय, सूत्रैविषयसंशय–पक्षद्वयनिर्णयरूपपञ्चाधिकरणनियतैर्ब्रह्मसूत्रैः, शमादिगुणयोगादपगतकामादि–कालुष्येभ्यः प्राज्ञेभ्यो बोधाय प्राग् द्वापरान्त एव व्याख्याता विशदीकृताः, ता एवोपनिषदः सदाचारशीलेभ्यः सद्भ्यः, वासुदेवेन श्रीकृष्णेन, अमृतरसमयम् मोक्षानन्दप्रचुरं यथा स्यात्तथा, गीता गानभिवानायासार्थवाचोपहृताः।

**भावार्थ – भगवान् सारे विश्व के आचार्य है। वचनों और आचरणों से शिष्यों को कल्याणमय मार्ग पकड़ाना आचार्य का काम होता है। उन्होंने सृष्टि आदि कार्यों के लिये ब्रह्मा आदि देवों प्रजापतियों को वेदों के उपदेश निःश्वासतुल्य अनायासरूप से दे दिये। वेदों में सारे पुरूषार्थ भरे हैं।**

**मोक्षनामक चतुर्थ परमपुरूषार्थ के लिये उनमें आत्म परमात्म तत्त्वों का भी उल्लेख है। वेदों की भाषा बहुत अंशों में संक्षिप्त और गम्भीर है। वेदव्यास ने उनका मनन चिन्तन करके सारे विश्व के कल्याण के लिये ब्रह्मसूत्रों के द्वारा विषय संशय पूर्व उत्तर पक्ष और सिद्धान्त वाली अधिकरण शैली से**

उनकी व्याख्या की, जो शम दम तप त्याग आदि गुणों से विभूषित मनीषियों की ही समझ में आने योग्य है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कलि के जीवों की असमर्थता को ध्यान में रखकर गीत के समान प्रिय और सुबोध भाषा में उन उपनिषदों को सत्पुरूषों के कल्याण के लिये अर्जुन के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

**तत्पीयूषप्रवाहप्लुतहृदयसदाचार्यभाषाप्रकाश–**
**ध्वस्तध्वान्तेन शान्ताखिलदुरितधिया साधुविज्ञाश्रितेन।**
**विष्वक्सेनेन दीप्यत्कतिपयविषयाः स्वीयचेतोविशुद्ध्यै,**
**गीयन्ते तान् यथावत् सितचरितधियः स्वीकरिष्यन्त्यवश्यम्।।६।।**

अनुबन्धचतुष्टयं निर्दिशति–तत्पीयूषेति। अमृतरसमयमिति पूर्वोक्तस्य पीयूषस्यामृततुल्यानुभवानन्दस्य यः प्रवाहः सातत्यं तेन प्लुतं व्याप्तं हृदयं येषान्तेषां तथोक्तानां, सदाचार्याणाम् भाषा एव प्रकाशो व्याख्यानोपदेशरूपस्तेन ध्वस्तं विनाशितं ध्वान्तमज्ञानं यस्य तेन तथोक्तेन, शान्ता अवरुद्धा, अखिलेषु दुरितेषु अपराधेषु धीर्बुद्धिर्यस्य तेन तथोक्तेन, साधु यथा स्यात्तथा विज्ञान् दार्शनिकान् विदुष, आश्रितेन तल्लब्धबोधेन, विष्वक्सेनेन कर्त्रा, दीप्यन्तो विशेषानुभवारूढ़ा, ये कतिपये विषया भगवद्गीतार्थाः, स्वीयस्यात्मनः चेतसो विशुद्ध्यै सद्बोधस्थिरत्वाय, गीयन्ते सुसरलम्प्रतिपाद्यन्ते, सितानि सात्विकानि, चरितानि कृत्यानि, धियः प्रज्ञाश्च येषान्ते तथोक्ताः, सन्तः तान् विषयान्, अवश्यं यथावत् मनीषितानुरूपं, स्वीकरिष्यन्त्यङ्गीकरिष्यन्तीति विश्वासः। अत्र विषयाधिकारिसम्बन्धप्रयोजनानि चत्वारोऽनुबन्धाः प्रदर्शिताः।

भावार्थ – भगवद्गीता के उक्त अमृतप्रवाह से व्याप्त हृदयवाले सदाचार्यों के व्याख्यानों और उपदेशों के प्रकाश से अज्ञान अन्धकार के दूर हो चुकने से अपराधों की प्रवृत्तियाँ न रह जाने पर तत्त्वदर्शी विद्वानों का अनुसरण करता हुआ विष्वक्सेन नामक मैं अपने हृदय की शुद्धि के लिये विशेष अनुभव योग्य कुछ विषय प्रस्तुत कर रहा हूँ। अवश्य ही उन्हें उज्ज्वल आचरण और बुद्धि वाले सज्जन मेरे तात्पर्य के अनुरूप स्वीकार करेंगे। यहाँ ग्रन्थ के चार अनुबन्ध बतलाये गये हैं। गीता के प्रमुख अर्थ विषय हैं, सत्पुरूष अधिकारी हैं, सदाचार्यों के सदुपदेशों से अर्थों की प्राप्ति सम्बन्ध है और बुद्धि शुद्धि प्रयोजन है।

**आसृष्टेस्तत्त्वविद्या प्रवहति सहिता शोधयन्ती पुमर्थं,**
**गीता श्रुत्यैक्यशुभ्रा त्रिभुवनघटनक्रीडनाद्विश्वभर्तुः।**



**त्रैगुण्यश्रौतविद्याविवृतिकुशलतामानदण्डायमाना,**
**नाना सत्तर्कहेम्नां निकषदृषदियं श्रद्धया साधु सेव्या।।७।।**

एतच्छास्त्रस्य देशकालव्याप्तिमुपयोगातिशयञ्चाह–आसृष्टेरिति। त्रिभुवनस्य त्रिलोकस्य घटनं रचनं क्रीडनं यस्य स तथोक्तस्तस्माद् विश्वभर्तुः रक्षामयसत्यसंकल्पाद् ईश्वराद् "आख्यातोपयोगे" इत्यपादानत्वम्, आसृष्टेः सृष्ट्यारम्भकालादेव, सहिता पुरूषहितमयी, पुमर्थम् पुरुषप्राप्त्यर्हं चरमपुरुषार्थं सायुज्यमोक्षं, शोधयन्ती स्वरूपोपायाभ्यां स्पष्टीकुर्वन्ती, श्रुत्या स्वतो निःशंकप्रमाणभूतेन वेदेन, ऐक्येन समानार्थतया, शुभ्रा अनाशङ्कनीयाप्रामाण्यगन्धा, प्रवहति अविच्छेदेनोत्तमाधिकारिणो गच्छति, त्रैगुण्यस्य गुणत्रयमय सकलजीवजातस्य कृते प्रकाशमाना, या श्रौती श्रुत्यैव केवलमवधेया नानार्था विद्या सानुष्ठानज्ञानप्रवाहः, तस्या या विवृतिः अनुष्ठानहेतुसत्प्रज्ञाविशेषपरत्वापादनं, तत्र या कुशलता नैपुण्यं, तस्या मानदण्डायमाना सकलशास्त्रसामञ्ज–स्यकेन्द्रभूततया स्वव्याख्यानकौशलाधीनशास्त्रान्तरव्याख्याना, नानाविधानां सतां शास्त्रानुकूलानां, तर्करूपाणां हेम्नां सुवर्णानां, निकषदृषत् परीक्षाशिला, सेयम् प्रस्तुता, गीता श्रद्धया परमपुमर्थे प्रीतिविशेषरूपया साधु पदवाक्यप्रमाण–विद्यानैपुण्येन, साधुभिः सच्चरितप्रथितैः, सेव्या सन्ततानुभवविषयीकरणीयेत्यर्थः। तन्त्रेण साधुपदं द्विधाऽन्वेति।

भावार्थ – ईश्वर दयापूर्वक लीलामय विश्वसृष्टि करके जीवों को अनादि मायाबन्धन से छूटने की सुविधायें प्रदान करते हैं। इसलिये तत्त्व–हित पुरूषार्थ बोध के लिये सृष्टि के आरम्भ से ही सत्पात्रों के माध्यम से गीता जैसी ज्ञानगंगा प्रवाहित करते रहते हैं। यह प्रवाह परम प्रमाण श्रुति प्रवाह से नित्य समरस होता है। गीता के व्याख्यान की कुशलता ही समग्र वेदराशि की व्याख्या में क्षमता का प्रमाण हो सकती है। प्रमाणों को सहायता पहुँचाने वाली युक्तियों को सत्तर्क कहते हैं। गीता से विरोध न होना भी तर्कों की शुद्धि है। सत्पुरुषों को इस महान् गीता ग्रन्थ का परिशीलन श्रद्धा के साथ पद वाक्य प्रमाण विद्याओं के माध्यम से करना चाहिये।

**गीतागङ्गावगाहे प्रभवति कृतधीस्तत्त्वनिष्ठो जितात्मा,**
**सामान्याः पानमात्रेऽनवरतरुचयस्तत्त्ववाग्भिस्तु धन्याः।**
**केचित्किञ्चिद्विदित्वा दुरितहृतिलसन्मानसाः स्युः कृतार्था,**
**अन्ये धर्मानपेक्षा धृतविषयसमीक्षादिभिः संस्कृताः स्युः।।८।।**

भगवद्गीताऽधीतिनाम्प्रज्ञाभेदाच्चातुर्विध्यमाह—गीता गङ्गेति। गीता एव गङ्गा स्वर्गावतीर्णा सरित्, तस्याम् अवगाहे तापत्रयप्रशमहेतुतात्पर्यनिर्धारणे, कृता पदवाक्यप्रमाणविद्यासंस्कारशुभ्रा, धीः प्रज्ञा यस्य स, तत्त्वे यथार्थभूते ब्रह्मणि परमात्मनि, निष्ठा विश्रम्भो यस्य स, जितो वशीकृत आत्मा चित्तं यस्य स तथोक्तः (पुरुषः) प्रभवति क्षमते, (अथ) सामान्याः प्रतिपदतात्पर्याव— धारणयोग्यतारहिता अधीतिनः, पानमात्रे अल्पसेवने, अनवरता अविरामा रुचिर्येषान्ते तथोक्ताः, तत्त्ववाग्भिर्मुख्यार्थमात्रवचनैः, परिशीलितैर्धन्याः कृतार्थाः स्युः, के चिदपरे किञ्चित् परिचितानि पदानि, विदित्वा कल्याणहेतुतयाऽवधार्य, दुरितानाम्पापवासनानां, ह्रत्या अपनयनेन, लसन्ति ससुखानि मानसानि येषान्ते तथोक्ताः, कृतार्थाः पाठसाफल्यम्मन्वानाः, स्युर्भवेयुः, अन्ये इतरे, धर्मानपेक्षा आत्मकल्याणसाधनापेक्षाविरहिता अपि, धृतानां गीतार्थतयाऽवगतानां, विषयाणाम् अर्थानां, समीक्षादिभिः, ग्राह्याग्राह्यविवेचनादितटस्थमनोव्यापारैः, संस्कृता ग्रन्थतात्पर्यविषयकशुभवासनामयाः कल्याणोन्मुखा भवेयुः।

**भावार्थ — भगवद्गीता के अध्ययन में बौद्धिक क्षमता के भेदसे पूर्ण अर्ध अल्प और लेश ये चार भेद बतला रहे हैं। इस महान् ग्रन्थ के अध्ययन का प्रथम फल त्रितापशमन और अन्तिम फल मोक्ष है। अंतिम फल के लिये प्रथम फल अपेक्षित है। इसे ही पूर्ण माना जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिये पदविद्या व्याकरण, वाक्यविद्या मीमांसा और प्रमाणविद्या न्याय शास्त्र का अच्छा अभ्यास होना चाहिये। वास्तव में किसी भी प्रौढ़ ग्रन्थ को ठीक से समझने के लिये उक्त तीन शास्त्रों का बोध अपेक्षित होता है। गीताशास्त्र के यथार्थ बोध के लिये तत्त्वनिष्ठा यानी तत्त्वनिर्णय की दृढ़ इच्छा और इन्द्रियजय ये दो और भी साधन अपेक्षित होते हैं। इनके अभाव में किसी भी पाखण्ड मत में प्रवेश और यथार्थ से दूरी सम्भव होती है। सर्वसाधारण में इतनी योग्यता न होने से सामान्य भाषा ज्ञान के जरिये गीता का तत्त्व तो धुन्धला सा समझ में आ जाता है किन्तु हित और पुरुषार्थ का विवेक बाकी रह जाता है। ऐसा अध्ययन और फल आधा माना जा सकता है। भाषाज्ञान और मनोयोग की कमी से तीसरे दर्जे के पाठक कुछ कुछ महत्त्वपूर्ण अंश पकड़ लेते हैं, तब उनकी पापवासना कम होती है इससे वे प्रसन्न मिलते हैं और चौथे वे हैं, जो आत्मा एवम् आत्मकल्याण तक न सोच पाने से धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी संसर्गवश गीता के कुछ अंश समझकर उसकी समीक्षा में जुटे होते हैं। अच्छी बातों में जुड़ने से वे भी कल्याण की ओर अग्रसर होते हैं। वस्तुतः गीतागंगा**



**सबके लिये सदा से समान बह रही है। लोग अपनी अपनी योग्यता के अनुरूप लाभ उठा रहे हैं।**

**आत्मा नास्तीति केचिज्जगदुरमतयः प्रौढनास्तिक्यकाष्ठा,**
**नित्याहंधीव्यपेक्षा विषयचयमयाजस्रबोधेऽप्यनीक्षाः।**
**प्रज्ञा संस्कारयोगाद् भवतु सविषया संस्कृतिर्योगसाध्या,**
**बाह्यार्थक्षेपसिद्धिर्न भवति सुधियां सर्वकार्यप्रकोपात्।।६।।**

परमसात्त्विकस्य नाम्नाऽप्यर्जुनस्य धवलात्मनस्तत्त्वबोधाधिकारिणः पार्थस्य देहात्मैक्यभ्रमजनितबन्धुस्नेहप्रतिबध्यमानात्यन्तिककल्याणहेतुक्षत्रियकृत्य— धर्मयुद्धसम्पादनाय तद्विरोधिमोहप्रशमनं ''न त्वेवाहं जातु'' त्यादिना भगवान् देहातिरिक्तन्तद्धेतुभूतं स्वयम्प्रकाशम्पृथगात्मतत्त्वमुपदिदेश। तदेवेह तटस्थधिया पूर्वपक्षप्रतिक्षेपमुखेनानूद्यत—आत्मा नास्तीत्यादिना। आत्मा अतति सततं गच्छति देहतदारम्भकतत्त्वजाततच्चेष्टादिसर्वकार्यकारणतयाऽनुभूयत इति व्युत्पत्त्या नित्याहम्बुद्धिविषयतया स्वयम्प्रकाशभूतम्प्रत्यक्तत्त्वम् (अपि) केचित् प्रौढं नाना जटिलकुतर्कजालावनद्धं, यन्नास्तिक्यम् ''अस्ति नास्ति दिष्टम् मति'' रिति पाणिन्युक्तदिष्टमात्रास्वीकारविलक्षणं यत् सर्वास्तित्वप्रत्यनीकं शून्यताऽपरपर्यायं सा काष्ठा चिन्तनदिक् येषान्ते तथोक्ता अमतयो मतिमपि स्वयं शश्वत् स्फुरन्तीं वैयात्यादिवास्वीकुर्वाणा (बौद्धा) नास्तीति जगदुः अति चिरेण जल्पन्तः सन्ति। ते नित्यामप्यहंधियम्प्रति व्यपेक्षा अवाञ्छिताङ्गीकारा, अथ च विषयाणां शब्दादीनां, चयः समुदायः, तन्मयस्तत्प्रचुरो, योऽजस्रः सततो, बोधो ज्ञानं, तत्राप्यनीक्षाः तददर्शिनः, सन्ति। तान् प्रति न किमपि वक्तव्यमिति सूचितम् अमतय इत्युक्त्या। युगपत् सकलप्रमाणप्रमेयप्रमितिप्रत्याख्यानपरा हि ते निरालम्बाः क्वापि वादे स्वयमेव नावतरेयुः। वैतण्डिकः परपक्षपरिग्रहमात्रम्प्रतिक्षिपन् किमपि मानमेयाद्यङ्गीकरोति। एते तु न तदपि, तेन तैः सह वादप्रसङ्गो न भवति। क्षणिकविज्ञानधारामात्रालम्बा अन्ये तु बक्तव्याः। तान् प्रत्युच्यते—प्रज्ञेति। विज्ञानवादे बाह्यार्थाभावेऽपि सत्संस्कारबलात् स्वप्नकल्पनाद्यवस्थास्विव जाग्रतोऽपि बाह्यार्थप्रत्ययोऽङ्गी क्रियते। तत्रोच्यते, भवतु नाम संस्कारयोगाद् बाह्यर्थप्रत्ययः किन्तु भिन्नमातृकयो रामश्यामयोः स्वस्वमातृसंस्कारनियमो विभिन्न— मातृसन्निकर्षेणैवोपपद्यते नान्यथा। बाह्यार्थाभावेऽपि संस्कारस्वीकारे तत्तत्कार्यहेतुसमाहारप्रवृत्तिर्न स्यात् पटहेतुसमाहाराद् घटोत्पत्तिश्च प्रसज्येत, तदेवोक्तं—सर्वकार्यप्रकोपादिति। तस्मात् क्षणिकविज्ञानधारारूपाणामपि मिथो

भिन्नरूपाणां सर्वात्मनाम्प्रसिद्धीः साधयन्त्यः सर्वबाह्यार्थसत्ता नापलापार्हाः। सत्त्वप्रचुरमर्जुनम्बुबोधयिषुर्भगवान् मिथ्यावादमिमं न पस्पर्श।

**भावार्थ–विज्ञान का भी अस्तित्व न मानने वाले शून्यवादियों ने आत्मा भी नहीं माना है। कोई भी स्थायी स्वरूप न मानने की गहरी रुझानवाले अवैदिक मनीषी मूलप्रकृति का भी मूल आत्मा क्यों मानें। प्रमाणप्रमेयप्रमितियों का कुतर्कमात्र से प्रत्याख्यान करनेवाले इन शून्यात्माओं से वादविवादसंवाद सम्भव नहीं है। वे किसी वाद में उतरते ही नहीं हैं। विज्ञानवादी बौद्ध क्षणिक विज्ञानधारा मानते हैं। उन्हें भी व्यवहार निर्वाह के लिये बाह्य अर्थों की भाँति नित्य आत्मा भी मानना पड़ता है। समान विज्ञानधारा की भी प्रत्यभिज्ञा होती है। व्यक्ति जानता है कि यह बात मैं वर्षों से जानता हूँ। उसका वह अनुभव उसे ज्ञानसन्तान के स्थायी साक्षी के रूप में सिद्ध करता है। साक्षी को भी वे क्षणिक विज्ञान सन्तान ही मानते हैं किन्तु उनकी वह मान्यता केवल अन्ध श्रद्धा पर टिकी है। उस में न कोई अनुभव है न तर्क है न प्रमाण है। श्रुति प्रमाणों के अतिरिक्त केवल अनुभव के आधार पर भी नित्य अविकारी आत्मा सिद्ध होता है।**

**दुःखज्ञानप्रहाणं दिशति न भविनां दुःस्थनास्तिक्यचिन्ता,**
**नानाजन्माप्तनानाविधविषयमिलद्वासनावृत्तियोगात्।**
**तस्मात् सद्बोधदग्धाखिलविषयधियामीशसेवाव्रतानां,**
**कर्माणि ज्ञानवन्ति प्रचितजडरतिध्वंसहेतोर्जयन्ति।।१०।।**

मुक्त्यै तत्त्ववादप्रतिष्ठार्थम्मिथ्यावादं खण्डयति–दुःखज्ञानेति। दुःस्था सत्तर्कप्रमाणविधुरा, नास्तिक्यचिन्ता बौद्धानां सर्वनिषेधधीः, भविनां संसारिणां, नाना जन्मसु आप्ताः सन्निकृष्टा ये नानाविधा विषयाश्चेतोबन्धहेतवः शब्दादयः, तैर्मिलन्त्यो या वासनास्तत्र प्रियत्वादिसंस्कारास्तत्प्रयुक्तानां चित्तवृत्तीनां दुःखमयज्ञानात्मिकानां योगात् सम्भवात् हेतोर्दुःखमयानां ज्ञानानाम् प्रहाणम् उच्छेदं न दिशति न जनयति, निरालम्बध्याने चिरानुवृत्तेऽपि चेतसि सुचिरविश्वसंस्कारवशात् कदाऽपि प्रियाप्रियविषयसंसर्गेण रागद्वेषधारानुवृत्ति–सम्भवात्। तस्मान्निरालम्बध्यानासाफल्येन, सत आत्मतत्त्वस्य बोधेन प्रकृतितद्विकारवैलक्षण्यानुभवेन, दग्धाः स्ववासनारूपबीजनाशेन विफलीकृता, अखिलविषयधियो भोग्यताप्रत्यया येषान्ते तथोक्तास्तेषाम्, ईशसेवाव्रतानाम् "मत्कृतं सकलं कर्म श्रीशतोषाय जायताम्। कर्मप्रयोजिका मा भूत् कदाऽपि विषयस्पृहा"



इति संकल्पम्पालयताम्, ज्ञानवन्ति स्वस्वरूपस्वभावकर्तव्यबोधप्रयुक्तानि, कर्माणि नित्यनैमित्तिकानि, प्रचिता बृद्धिंगता या जडेषु आत्मतत्त्वविलक्षणेषु तदुपयोगानर्हेषु, रतिश्चिरानुरागस्तस्य ध्वंसो विनाशस्तस्माद् हेतो र्जयन्ति संसारोत्तारहेतुतया चिन्त्यमानेषु सर्वोपायेषु मध्ये सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्मर्थः। न हि स्वरूपशून्यता प्रमितिविषयो नापि जीवतो योगिनोऽपि व्युत्थाने कर्मविरामः सम्भवी, नाप्यनवधारितात्मस्वरूपस्य धर्मधीर्न च धर्मधियं विना निःश्रेयसलाभो निश्चेयः।

**भावार्थ – शून्यवादियों के निरालम्ब ध्यान से शान्ति प्राप्त होने की बात बहुतों को मान्य है। वे उसकी उपयोगिता श्रुति उपायों से बढ़ चढ़ कर मानते हुए कहेंगे कि "शून्यता दुःखशमनी सा किमर्थ न सेव्यते" इस सूक्ति के अनुसार चित्त के सारे आलम्बन केवल क्लेश के हेतु हैं। शून्यता से दुःखनाश स्वाभाविक हैं। इस के उत्तर में कहा जाता है कि नास्ति नास्ति कह देने मात्र से नास्ति नहीं हो जाता, वस्तु का अस्तित्व अबाधित होता है। अस्तित्व को अज्ञान की कल्पना कह कर हम न नदी पार कर सकते हैं न पर्वत लांघ सकते हैं न पीड़ाओं से छूट सकते हैं। निरालम्बध्यानी भी व्युत्थान दशा में कर्म करता है। अज्ञान होने से उसका भी कर्म दुःखदायक हो जायेगा। अज्ञान के बिना कोई क्रिया नहीं होती । अज्ञानी अज्ञान के बिना जीता भी नहीं। श्वास लेना भी एक अज्ञान का ही कार्य है। अज्ञान की अवस्था में ही शास्त्रीय स्वरूप स्वभाव स्वधर्मज्ञान के सहारे निष्काम भाव से कर्म किये जा सकते हैं। जीविका के कर्मों को हम जगत् के स्वामी की सेवा के रूप में कर सकते हैं। अज्ञानमय दुःखों से छूटने का यही एकमात्र उपाय है जो भगवान् के द्वारा अर्जुन को आदरपूर्वक बतलाया गया हैं। त्रेतायुग में भी रहा नास्तिकवाद भगवान् श्रीकृष्ण से छिपा नहीं था।**

**पित्रोर्भिन्नात्स्वभावादनितरमिलिताज्जानुषात्प्राग्भवत्वं,**
**जन्तोर्जातिस्मरत्वादपि बहुजननेष्वेकलस्यानुवृत्तिः।**
**सिद्ध्यत्युत्क्रान्तिगत्यागतिभिरणुमितिः स्वप्रकाशोऽनुभूते–**
**र्भूयः स्वेच्छाविघातादकलितघटनात्कर्मणेशाश्रितत्वम्।।११।।**

भगवदभिमतं श्रौतमात्मतत्त्वविशेषजातमनुमानविधयाऽऽह–पित्रोर्भिन्नादिति। जन्तोर्जननशीलस्यात्मनः पित्रोर्जनकदम्पत्योर्भिन्नाद् विषमात्, अनितरमिलिताद् इतरेभ्यो मातुलपितृव्यादिभ्योऽमिलितात्क्वचिद्दृष्टादपि भिन्नात्, जानुषाज्जन्मप्रभृति दृश्यमानात्, स्वभावात् मतिरुचिचेष्टादिरूपात् प्राग्भवत्वं गर्भप्रवेशादपि पूर्वसत्त्वम्,

अपि (च) जातिस्मरत्वात् पूर्वजन्मवृत्ताभिज्ञानाद्, बहुषु जननेषु देहसम्बन्धेषु एकलस्य असंसृष्टपूर्वबन्धुजातस्य, अनुवृत्तिर्नवनवशरीरप्रवेशः उत्क्रान्तिगत्या गतिभिः शास्त्रतो लोकतश्च विदिताभिः परममहत्परिमाणविरुद्धाभिर्मध्यमपरिमाणस्य क्षयिष्णुत्वान्नित्यत्वानुपपत्त्याऽनेकदोषापाताद् अणुमितिः अणुपरिमाणम्, अनुभूतेः नित्यम् अहमिति प्रत्ययस्य जागरूकतया स्वप्रकाशः स्वस्य स्वस्मै स्वेनैव भासमानत्वम्, भूयः प्राचुर्येण, स्वेच्छानामपेक्षाणां विघाताद् बाधात्, अकलितानामचिन्तितानामर्थानां, घटनादुत्पत्तेरुपपत्तेश्च, (सिद्ध्यता) कर्मणा पूर्वजन्मार्जितकर्मभिः ईशे तन्नियामके परमचेतने परमेश्वरे आश्रितत्वं नित्यतदधीनसकलप्रवृत्तिनिवृत्तिगतिभोगभागित्वञ्च, सिद्ध्यति प्रमीयते।

**भावार्थ – श्रुतियों से जैसा आत्मा जाना गया है वही भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में माना है। वही विशेषतायें यहाँ युक्तियों से भी बतला रहे हैं। जन्म लेने वाला व्यक्ति माता पिता और चाचा मामा आदि की आकृतियाँ और स्वभाव पाता है किन्तु यह नियम प्रायिक है। ऐसा देखा जाता है कि जातक वैसा भी स्वभाव पाता है जैसा उस के कुल और सम्बन्धियों में नहीं होता। वह स्वभाव जन्मजात होने से सांसर्गिक नहीं माना जा सकता। ऐसी स्थिति में उसका वह स्वभाव व्यक्तिगत होता है जो गर्भ में भी प्रभावी होता हुआ शरीर को असामान्य बनाता है। इससे यह मानना पड़ता है कि ऐसा स्वभाव लिये कोई आत्मा दूर से आकर गर्भ में प्रवेश पाता है। शरीर की भाँति गर्भ में आत्मा का निर्माण नहीं होता। बहुत से जातिस्मर शिशु होते हैं जो पिछले जन्मों के मकान सम्पत्ति और सन्तान की पहचान कर लेते हैं। इससे यह मानना पड़ता है कि एक आत्मा अनेक शरीर धारण करता रहता है। उसका परिमाण यदि आकाश की तरह विभु होता तो शरीर त्याग दूर देश गमन और गर्भ में प्रवेश सम्भव नहीं होता। मध्यम होने से नाशवान् होता तब दृश्यमान विचित्र कर्म और भोग नहीं हो पाते। इससे उसका परिमाण अणु मानना पड़ता है। अणु परिमाण नित्य माना गया है। सुख दुःखों के अनुभव में मन सहायक होता है किन्तु अपने आपको जानने के लिये किसी भी इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं होती। इसीसे आत्मा को स्वयम्प्रकाश कहते हैं। बहुत प्रयत्नों के बावजूद भी चेतन अपनी सारी इच्छायें पूरी नहीं कर पाता और बहुत सी शुभ अशुभ घटनायें अनजाने अनचाहे हो जाती हैं, इससे उनके कारणों के रूप में पिछले जन्मों के कर्म स्वीकार करते हैं। कर्मफलों के नियामक परमात्मा को और फल भोग के लिये उनके अधीन अपने आप को**



**भी अलग मानना पड़ता है। इस तरह यहाँ आत्मा नित्य, नाना शरीरधारी, अणुपरिमाण, स्वयम्प्रकाश, पूर्वकर्मों के अधीन एवं कर्मफलप्रद परमात्मा के अधीन, उनका नियाम्य और उनसे भिन्न स्वरूप वाला सिद्ध हुआ।**

**ज्ञानानन्दैकवेषो भगवदुपनताम् मोहिनीमेत्य मायां,**
**हेयोपादेयभेदं दृढयति मनसा निर्विशेषेऽपि लोके।**
**कुर्वन्नज्ञानमुग्धः किमपि किमपि यल्लब्धये लुप्तसद्धी–**
**रात्मा भ्राम्यंस्त्रिलोक्यां समनुमृगयतेतत्प्रनष्टं स्वमेव।।१२।।**

मोक्षोपायप्रवृत्तये चेतनस्य संसारगर्तप्रपतनं तेन नानाऽनर्थपरम्परां तत्राप्यानन्दस्वरूपस्वोपलब्ध्युद्देश्यकत्वञ्चाह–ज्ञानानन्देति। ज्ञानम् एव आनन्दः एकः प्रधानभूतो वेषः स्वरूपं यस्यासौ तथोक्त आत्मा चेतनो भगवता परमात्मना अनादिसंकल्पेन, उपनतां स्वाननुरूपामपि मिलिताम्, मोहिनीं, स्वरूपस्वभावहिताहितविषयाज्ञानजननीम्, मायां विचित्रनानाऽऽश्चर्यकरीम्प्रकृतिं तद्विकारांश्च, एत्य स्वतया स्वीयतया चाङ्गीकृत्य, निर्विशेषे हानोपादान–हेतुगुणधर्मरहितेऽपि, लोके जगति, मनसा अज्ञानमयभेदसंस्कारजुषा चित्तेन, हेयोपादेयभेदम् अनादेयादेयकल्पनां दृढयति पोषयति, लुप्ता मायायोगेन रुद्धा सती धीः सत्स्वरूपात्मविषया मतिर्यस्य स तथोक्तः, अज्ञानेन विषयोपयोगफलाफलानवबोधेन मुग्धः अनुपायेषूपायमतिः, यल्लब्धये यस्यार्थस्य लाभाय, किमपि किमपि संकल्पफलपरिणामैर्दुर्निरूपं यथास्यात्तथा, कुर्वन् चेष्टमान, आत्मा चेतन, स्त्रिलोक्यां चतुर्दशभुवनवर्तिनानाविधजन्तुजातेषु, भ्राम्यन् जननमरणरूपं चङ्क्रमणं कुर्वन्, उच्चैः अपराध्यन्नपि, तत्लिप्साविषयः स्वं नित्यम्भासमानम्, आत्मानमेव, सुचिराद् अनादेः कालात्, प्रकर्षेणो–पलब्धिसाधनराहित्येन, नष्टं नोपलभ्यमानमिव, समिति प्रकृतौलीनमिव, अनु निरन्तरम्, मृगयते गवेषयत इति महदाश्चर्यम्। स्वयम्प्रकाशोऽप्यात्मा सुदूरगगनस्थतारकवद् अज्ञानहेतुकापराधशतान्धकारनिलीनप्रकाशो मन्दतरम् प्रकाशते। प्रकाशोत्कर्षार्थो मोक्षप्रयत्नो मुमुक्षोरिति ध्येयम्।

**भावार्थ – यद्यपि आत्मा का स्वरूप ज्ञानानन्दमय है फिर भी परमात्मा के अनादि संकल्प से माया से जुड़ा होने से अपने आपको और फलस्वरूप उपाय उपेय आदि को भी न समझ पाने से, अपना वास्तव आनन्दमय स्वरूप माया में ढका होने के कारण उसे पाने के लिये नाना अटपट अपराधमय भी उपाय करता आ रहा है। अपने आप को शीघ्र पाने की ललक में वे ही कर्म**

करता है जिनसे अपने को कुछ और ही भूलता हुआ असंख्य ऊँची नीची योनियों में भटकता रहे। अपने आप को केवल न जान पाने से अनादि कालसे प्रकृति के अन्दर ही अपने को सदा ढूंढ़ते रहने में चेतन को अनन्त क्लेश मिल रहे हैं यह महान् आश्चर्य हैं।

**एकः पार्थः प्रपेदे स्वजनमरणधीसम्भवम्भूरिशोकम्,**
**एकः कृष्णापटानामपहरणविधौ दुःस्थदुःशासनोऽभूत्।**
**एको भीष्मो मनीषी निजवचनपरित्राणदत्तात्मजीवः,**
**एकः कश्चित्तथाऽऽत्मा भवति भवभयाश्लिष्टलक्ष्मीशपादः।।१३।।**

भवभयशमनाय भगवच्छरणवरणमावश्यकं, तच्च विरला एव कुर्युरिति दृष्टान्तत्रयेणाह– एकः पार्थ इति। एको युधिष्ठरादिपञ्चसु तृतीयोऽर्जुनः, पार्थः पृथायाः कुन्त्यास्तनयः, स्वजनमरणधीसम्भवम् बन्धवो मच्छरैर्मृयेरन्निति कल्पनया, भूरि दुर्वारं शोकं खेदम्, प्रपेदे लब्धवान्, अगणितकोटिमितेषु वीरेषु एक एव स्वकृत्यपरिणामान् सुदूराद् विचिन्तयामास नान्यः कश्चिदपि सहृदयः। एवम् एक एव दुःस्थो दुरास्थावान् हतमतिर्दुर्योधनानुजो दुःशासनो दुर्वारदुष्प्रवृत्तिरेतन्नामा, कृष्णाया द्रौपद्याः पटानां लज्जावारकाणां धृतवस्त्राणाम्, अपहरणविधौ सभामध्ये नृशंसतया चिराकर्षणे, अभूत् प्रववृते। एकः प्रख्यातो भीष्म एतन्नामा, मनीषी दृढ़संकल्पो, निजस्य वचनस्याजीवनं नृपसिंहासनगतजनरक्षणव्रतस्य, परित्राणाय सत्यापनाय, दत्तः समर्पितः (कृतान्ताय) आत्मनः स्वस्य, जीवः प्राणा येनासौ तथोक्त आसीन्नान्यः। तथैव कश्चिदेको भगवदनुग्रहगृहीतमतिः दुर्ज्ञेय आत्मा चेतनो, भवभयेन संसारसम्बन्धिक्लेशराशिसम्भावनया, (ततो रक्षार्थम्) आश्लिष्टौ आलिङ्गितौ, लक्ष्मीशस्य श्रीमन्नारायणस्य, पादौ चरणौ येन स तथोक्तो, भवति उपलभ्यते, न सर्व इत्यर्थः।

**भावार्थ – आत्मकल्याण के लिये भगवान् की शरणागति ही एकमात्र उपाय है किन्तु इसका वरण विरला ही कोई एक करता है यह बात तीन दृष्टान्तों से बतला रहे हैं। असंख्य वीरों वाले महाभारत युद्ध में एक अर्जुन को ही बन्धुओं के मरने से होने वाले अनर्थों की कल्पना से महान् शोक हुआ। ऐसे ही एक दुःशासन ही ऐसा पापात्मा वीर निकला जो द्रौपदी के कपड़े सभा में उतारने का दुःसाहस कर सका। एक भीष्म पितामह ही ऐसे दृढ़ संकल्प वाले वीर हुए जिन्होंने शन्तनु की सन्तान नरपतियों की रक्षा आजीवन करते रहने की प्रतिज्ञा निभाते हुए अपने प्राण दे दिये। ऐसे विरला ही कोई**



**सात्त्विक पुरुष होता है जो संसार से डरकर आत्मरक्षा के सही उपाय श्रीमन्नारायण के चरणों का दृढ़ता से वरण करता है। महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति–निवृत्तियाँ भगवान् के दृढ़ संकल्प से ही सम्भव होती हैं।**

**एकः पन्था विमुक्त्यै जयति तदितरो नैव सत्यव्रतानाम्,**
**एकोऽर्को विश्वरक्षाप्रथनपरिचितो नो शतं तारकाणाम्।**
**यज्जन्मस्थेमरोधं जगदिदमखिलं यन्मयी नित्यमाया,**
**यन्निघ्नाः सर्वयत्नास्तदनुगतिरपध्वस्तशब्दादिसक्तिः।।१४।।**

भगवन्तम्प्रति परिपूर्णमानुकूल्यम् प्रपत्तिः, सैकैव मोक्षपद्धतिरिति सदृष्टान्तमाह–एकः पन्था इति। सत्यव्रतानाम् अव्याहतसंकल्पानाम्महात्मनाम्, विमुक्त्यै कर्मबन्धजालनिर्गमाय एक एव पन्था जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। तस्मादुच्यमानाद् इतरः नैवास्ति। तत्र दृष्टान्तः, एकः अर्कः सूर्यो विश्वस्य रक्षाप्रथनाभ्याम् पोषकतत्त्वयोजनरश्मिविक्षेपाभ्याम्, परिचितो विश्वविदितो ऽस्ति तारकाणां शतं समूहो नो। कः स पन्था इत्यत्राह–इदमखिलं जगद् विश्वं यज्जन्मस्थेमरोधमिति गमकत्वाद् व्यधिकरणबहुब्रीहिः, यस्माद् उत्पद्यते यस्मिन् येन च रक्ष्यते, येन यत्र च रुध्यते लीयते, (अथच) नित्या माया यन्मयी यत्प्रचुरा, यत्प्रधाना, किञ्च सर्वेषां देवासुरनरतिरश्चां यत्नाश्चेष्टा यन्निध्ना यत्सङ्कल्पाधीना, अपध्वस्ता विवेकविनाशिता शब्दादिषु विषयेषु सक्तिरनुरागो यस्यां सा तथोक्ता तदनुगतिः तस्योक्तस्य परमात्मानोऽनुगतिः सेवा भजनम्, आत्मनिवेदनान्ता नवधा भक्तिरेव स पन्था इत्यर्थः।

**भावार्थ – जो लोग सत्य उपाय का निर्णय लेकर चलते हैं उनके लिये मुक्ति का एक ही मार्ग है, दूसरा कोई नहीं है। जैसे संसार को बनाये रखने और प्रदर्शित करने वाला एकमात्र सूर्य है, सैकड़ों तारे नहीं। वह एकमात्र सीधा मार्ग यह है कि जिसके अन्दर से जगत् निकलता है, जिसमें सुरक्षित रहता है और जिसके अन्दर लीन होता है, नित्य माया जिसके सर्वथा अधीन है एवं सारे चेतनों की चेष्टायें जिसके अधीन हैं उस परमात्मा की नित्य सेवा सारे विषयों के प्रति तत्त्वबोध द्वारा अनुराग समाप्त करके करते रहना। इससे मायापति परमात्मा को सन्तुष्टि होती है और वे अनादि काल से चेतनों को अपने फन्दे में रखने वाली माया से अपने संकल्प से अलग कर देते हैं तब जीव का स्वधर्मभूत ज्ञान का पूरा विकास होता है जिससे अज्ञान का लेश भी नहीं बचता और दुबारा बन्धन नहीं होता, यही मुक्ति है।**

यन्न प्रत्यक्षसिद्धं न च यदनुमितं किन्तु जिज्ञास्यमानं,
तस्मिन्नर्थे मुरारेर्जयति घनदयाश्वासवद्वेदराशिः।
कोऽहं किं वाञ्छनीयं सरणिरथ च का वाञ्छितार्थस्य सिद्धेः,
कस्मादद्याप्यसिद्धिः किमथ बलमिदं वेदतो वेद विज्ञः।।१५।।

उक्ताः श्रौतार्थाः श्रुत्यैवावसेया न तर्कमात्रेणेत्याह यन्नेति। यद् आत्मतदभ्युदयादितत्त्वजातम्, प्रत्यक्षेण न सिद्धं यच्च नानुमितम् परामर्शविषयोऽपि न, किन्तु तथाऽपि, चिरात् सवैरपि जिज्ञास्यमानं वेदितुम् इष्यमाणम्भवति, तस्मिन्नात्माद्यर्थे विषये, मुरारेः सर्वपापहरस्य परमात्मनः, घनदयाया अदृश्याया अपि कार्यैः प्रबलायाः करुणायाः, श्वासवन्निःश्वासवातवद्, वेदराशिः श्रुति वचनसमूहो, जयति संशयविपर्ययविरहितबोधजननेन प्रमाणान्तराण्यतिशेते, अहं क इति स्वस्वरूपं, किं वाञ्छनीयमिति पुरूषार्थः, अथ च वाञ्छितार्थस्य सिद्धेर्निष्पत्तेः सरणिरुपायः क इत्युपायः, अद्याप्यनादेः कालादद्यावधि कस्मात् प्रतिबन्धादसिद्धिः असाफल्यम् इति विरोधिस्वरूपम्, अथ किम्बलं येन प्रतिबन्धापनय इति परतत्त्वोपसदनरूपं कर्तव्यम् इति इदम् पञ्चकं विज्ञः शास्त्रार्थनिष्कर्षण निपुणो मनीषी, वेदत एव नान्यतः कुतश्चिद् वेद जानातीति वेदार्थेषु वेदा एव शरणम्।

**भावार्थ – आत्मपरमात्म तत्त्व उनके सम्बन्ध और कल्याण के उपायों का ज्ञान वेदों से ही सम्भव है, दूसरा कोई आगम नहीं है। पाञ्चरात्र आदि आगम वेदार्थ का ही विस्तार करते हैं। वेदानुकूल अर्वाचीन सारे वचन वेदवचन की व्याख्या के रूप में मान्य हैं। यद्यपि स्वयम्प्रकाश आत्मा स्वतः सिद्ध है फिर भी उसका माया सम्बन्ध मोक्ष और उसके उपाय वेदों से ही जाने जा सकते हैं। आत्मा का नास्तित्व सिद्ध करने के लिये प्रतियोगी आत्मा का ज्ञान बौद्धों को सम्भव नहीं हैं। आत्मा की संतत स्फूर्ति को वे क्षणिक ही मानेंगे। नित्य कोई पदार्थ उनके यहाँ प्रसिद्ध नहीं हैं वे यह तो कह सकते हैं कि हम नित्य आत्मा नहीं जानते, किन्तु प्रतियोगिप्रसिद्धि के बिना अभाव नहीं सिद्ध कर सकते। नित्य आत्मा न जानने की बात भी सामने की दीवार न जानने जैसी ही है। अपना अस्तित्व प्राणीमात्र को विदित होता है। प्रत्यक्ष अर्थ के विरुद्ध तर्क खड़ा करने की कुशलता बौद्धों में ही होती है और बौद्ध ही उसका सम्मान करते हैं। वास्तव में सबकुछ को मिथ्या कहने का उनका एक व्यसन है। इस व्यसन से ही उन्हें दुःखों का अन्त दीखता है।**

**वे सोचते हैं कि ममता के नाश से अहंकार का भी नाश होता है किन्तु**



**नित्य आत्मा का यदि कोई नित्य सम्बन्ध सिद्ध होता हो तो ममता रह ही जायेगी। बौद्ध दर्शन और साधना में सब से बड़ा बाधक है स्वयम्प्रकाश आत्मतत्त्व का नित्य स्फुरण। वह अन्य प्राणियों की भांति बौद्धों को भी होता है। उस स्फुरण को भी वे तर्क विरुद्ध कहते हैं। उनका ऐसा कोई तर्क नहीं है जो उक्त स्फुरण को निर्विवाद रूप से झुठला सके। इससे विवेकशील सात्त्विक जन आत्यन्तिक दुःखनाश के लिये श्रुति पथ का ही अवलम्बन करते हैं। श्रुतियों से ही आत्मकल्याण का प्रथम सोपान अर्थ पञ्चक का ज्ञान प्राप्त होता है। आत्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप, पुरुषार्थस्वरूप, उपायस्वरूप और विरोधीस्वरूप ये पाँच अर्थ हैं। इनका ज्ञान श्रुतियों के बिना ऐसा नहीं हो पाता जिससे कल्याण की दिशा में वास्तव प्रगति हो सके। इस ज्ञान के बाद ही भजन ध्यान आदि क्रम चलते हैं।**

आत्मा देहम्प्रविष्टः पिहितनिजगुणो देहधर्मान्स्वकीयान्,
देहात्मैक्यावभासाद् हितमहितमलं देहयोगेन जानन्।
मिथ्याबुद्धिर्मृषेच्छो यदपि वितनुते कर्मजालं सुपर्ण–
स्तत्पाकैरञ्जसाऽसौ भवति हतमतिर्वायसः कृष्णवर्णः।।१६।।

श्रुत्या गम्यमानामात्महितहेतुधियम्प्रस्तौति–आत्मा देहमिति। आत्मा संसारी चेतनः, देहम् पूर्वकर्मसहकारेण तत्फलभोगाय स्वयं निर्मितं शरीरम् प्रविष्टः आधानक्षणादेवान्तः स्थितः, पिहितस्तिरोहितो निजोऽसाधारणो धर्मभूतज्ञानाख्यो गुणो यस्यासौ तथोक्तः, देहयोगेन कर्मजनितशरीरसम्बन्ध विशेषेण, देहात्मनोर्नितान्तभिन्नयोरपि ऐक्यस्याभेदस्यावभासात्, भेदकधर्मानवगाहिधर्मिद्वय बोधात्, देहधर्मान् स्थौल्यकार्श्यजरामरणादीन्, स्वकीयान् आत्मगतान्, पश्यन् आरोपयन्, अलम् बाहुल्येन, हितं देहानुकूल्येन, अहितन्तद्विरोधेन च, जानन् स्वीयतयाऽवधारयन्, (एवम्) मिथ्या भ्रान्तिरूपा, बुद्धिर्यस्य स तथोक्तोऽत एव मृषेच्छः पुरुषार्थधियाऽपुरुषार्थान् वाञ्छन्, सुपर्णः स्वच्छपक्षो हंस इव शुभ्रमतिगतिः प्रस्तुत आत्मा, यत् किमपि कर्मणाम् प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपाणां जालं समूहम्, पुरुषार्थलाभप्रत्याशया वितनुते स्वीयाभिनवबन्धाय स्वयमेव विस्तारयति, तस्य कर्मजालस्य, पाकैः परिणामैः, अञ्जसा झटित्येव, हतमतिर्नवसंकुचितप्रज्ञः, असौ सुपर्ण इत्युक्तश्चेतनः, कृष्णवर्णो मनसाऽपि कालो वायसः सर्वभोजी काकइव भवति, सकलपुरुषार्थविवेकविधुरो विचरति। देहसम्बन्ध एव सकलपुरुषार्थहेतुरपि दोषाधिक्यात् नानाऽनर्थधारोद्गमभूमिर्भवतीति तात्पर्यम्।

भावार्थ – आत्मा दुःखों से छूटकर सुख में रहना चाहता है। श्रुतियाँ उसे उपाय बतलाती है। पहले उसे अपनी भ्रान्तियों और उनके कारणों को समझना पड़ता है। बाद में जो कल्याणकारी कर्तव्य समझकर कर पाता है वह करता हुआ हितपथ पर बढ़ता है ! गर्भावस्था से ही देहसम्बन्ध रहता है और तर्कों से भेद लक्षित रहते हुए भी कर्मजनित अज्ञान के फलस्वरूप वह देह को ही अपना रूप मानता रहता है। इससे देह के जरा मृत्यु आदि दोषों को भी अपने में आरोपित करता है। उनसे बचने के बहुत से गलत उपाय अपनाता रहता है। उनके बुरे फल उसे मिलते रहते हैं। अज्ञान बढ़ता रहता है और हंस काला कौआ बन जाता है। वास्तव में देहकी प्राप्ति आत्मकल्याण के लिये है किन्तु अज्ञानवश जीव उसी देह से अधिकाधिक संकटमय निम्न दशायें पाता जाता है।

**जात्यायुर्भोगलब्धिर्भवति तनुभृताम्पूर्वकर्मानुबन्धात्,**
**तद्धीच्छायत्नधारा प्रवहति सततं केवलम्भोगगर्ते।**
**तन्मानं रोचते नो भवति विघटितं येन दिष्टं द्रढिष्ठ–**
**न्तस्मान्मानावमानो न भवति कुधियाम्मोहनं सात्त्विकानाम्।।१७।।**

सत्त्वप्रकृतय एव शास्त्रवश्याः स्युस्त एव कल्याणपथगाश्चेत्याह– जात्यायुर्भोगेति। जनिमतां देहिनां, जातयो मानवीया विप्राद्याश्चण्डालान्ता, एवं देवेषु तिर्यक्षु च, आयुर्भोगनिमित्तं जीवनावधिः, भोगा नाना सुखदुःखप्रसंगा, एषां लब्धिः प्राप्तिः पूर्वकर्मणाम् प्रारब्धाख्यानाम्, अनुबन्धाद् आत्मानुषंगाद् भवति। तत् तस्माद् हेतोः धीर्बुद्धिः इच्छा वाञ्छा, यत्ना देहेन्द्रियमनसाम् प्रवृत्तिनिवृत्तिहेतव आत्मगुणाः तेषां धारा विषयसम्बन्धक्रमः, केवलम् भोगगर्ते जलस्य निम्नभूभाग इव प्रारब्धकर्मबद्धभोगविषयेषु, सततम् अव्यवधानम्, प्रवहति जलधारेव तीव्रं सम्बध्यते, (अत एव चेतनस्य) तत् मानम्प्रमाणं नो रोचते येनोपनीतविषयान्तरद्वारा, द्रढिष्ठम् प्रबलफलोपनिपाति, दिष्टम् भाग्यं, विघटितम् प्रतिबद्धफलम्, भवति सम्भाव्यते। दुष्प्रारब्धादेव सत्प्रमाणास्वीकारो न विवेकादिति भावः। तस्माद् हेतोः कुधियां स्वस्वकर्मदूषितमनीषाणां नृणाम्, उपेक्षाऽसामर्थ्याऽप्रसंगादिकृतम्, मानानां वेदादिप्रमाणानाम्, अवमानः, (मा + ल्युट्) अवहेलनं, सात्त्विकानां विशुद्धप्रज्ञानां सताम्, मोहनं विषयाभिलाषजननं न भवति। नहि काकवकचेष्टां हंसोऽप्याददीत। स्वभावभेदादसाधव इव साधवोऽपि लक्ष्यं न मुञ्चन्तीति भावः।

भावार्थ – सात्विक प्रकृति के लोग ही प्रमाण समझते मानते और



कल्याण प्राप्त करते हैं, दूसरे नहीं, यह बतलाते हैं। चेतन को प्रत्येक जन्म में प्रारब्ध के अनुसार अलग, अलग जाति आयु और भोग प्राप्त होते हैं। उसकी बुद्धि आगे मिलने वाले भोगों की ही ओर दौड़ती हैं। वह वही पाने और छोड़ने की चेष्टायें मोह में करता रहता है जिससे उसका पूर्व निर्धारित भोग मिल सके। यद्यपि वह अपने कल्पित हित अहित और लाभ हानियों में अपने को और अपने परिवेश को कारण माना करता है किन्तु वह और उसका परिवेश होता है सदा ही उसके अपने कर्मों के अधीन। वे कर्म उन प्रमाणों की ओर उसका ध्यान नहीं जाने देते जो उसके भोगों के विरोधी होते हैं। यह उसकी विवशता होती है। सात्त्विक विवेकशील महापुरुष उसकी विवशता को समझते हुए न तो उसका अनुगमन करते है न उसके समान विषयों की ओर लालसा बढ़ाते हैं। खलों के समान सज्जनों की भी प्रकृति नहीं बदलती।

**भ्राम्यन् कालादनादेः परिणमति सनाद् दुस्तरे कर्मचक्रे,**
**विष्णोरप्याभिमुख्यं क्षणमुपलभते पार्थवद् धर्मभूमौ।**
**तस्मिन् भानोः प्रभेव प्रपतति करुणा काऽपि जीवेन्दुबिम्बे,**
**पात्रं सर्वार्थसिद्धेर्भवति स न चिरान्निर्भ्रमोऽप्येति भद्रम्।।१८।।**

कर्मप्रवाहचक्रे भ्राम्यतो जीवस्य कदाचिन्मोक्षहेतुतत्त्वबोधोचिताऽवस्था भवति, तदा लब्धतत्त्वबोधोऽसौ भगवत्कृपया मुच्यत इत्याह–भ्राम्यन्निति। सनात् नित्यम्, परिणमत्यवस्थान्तरं लभमाने, कर्मप्रवाहरूपे दुस्तरे चक्रे अनादेःकालाद् भ्राम्यन् संसरन्, जीवस्तत्तत्सुरनरतिर्यग्योनिभवानामिव क्वचिद् विष्णोः परमात्मनोऽपि आभिमुख्यन्तदानुकूल्यविशेषं, धर्मभूमौ धर्मबोधौपयिकेजन्मनि, कुरुक्षेत्रे पार्थवत् कृष्णकृपाश्रयोऽर्जुन इव, क्षणम् अल्पकालमेव, उपलभते। तदा तस्मिन् जीवरूपे इन्दोश्चन्द्रमसो, बिम्बे पिण्डे, जीवेन देवगुरुणा सम्बद्धे होराविदां सर्वसौभाग्यहेतुकेन्द्रस्थे इन्दुबिम्बे चन्द्रमसीव जीवे, भानोः सूर्यस्य, प्रभेव, काऽपि असाधारणी संसारवैराग्यकरी, करुणा भगवत्कृपा, मुक्तिपथप्रस्थानहेतुत्वेन प्रकर्षेण पतति सम्बध्यते, तदा स जीवस्य गुरोरानुकूल्ये केन्द्रस्थत्वे सति लौकिकानां सर्वार्थानामिव जीवश्चेतनः, परमपुरूषार्थौपयिकानां सकलार्थानां, सिद्धेरुपलब्धेः पात्रमधिकारी भवति, तेन स न चिरात् शीघ्रमेव, निर्भ्रमः सुविदिततत्त्वहितपुरूषार्थः, भद्रं कल्याणमयम्ब्रह्म, अप्येतिप्रविशति,

भावार्थ – अज्ञानमय संसार चक्र में भ्रमण करता हुआ जीव औरों की तरह कभी भगवान् की भी सम्मुखता पा जाता है भगवान् की उसपर विशेष

दृष्टि पड़ती है, तब उसका चित्त अपनी और संसार की समीक्षा में लग जाता है और भगवान् को पाने के उपाय करने लगता है। उपाय के लिये जो जो भावना अपेक्षित होती है वह उसकी बन जाती है। तब वह मोक्ष पथ पर आगे बढ़ता हुआ क्रम से परम सिद्धि मोक्ष भी पा जाता है। तब वह अनन्त आनन्दमय ब्रह्म में लीन होकर आनन्दमयरूप हो जाता है।

**सम्प्रश्नाँल्लीयमानान् स्मितमधुमुखदृग्योगतोऽनादिबन्धो–**
**श्चित्ते पार्थस्य तत्त्वस्फुरणमपि महान् विष्णुमूर्तिर्बबन्ध।**
**व्यासो वाक्यैरनाद्यैर्जगदुपकृतये पूर्वतो हीयमासीद्,**
**गीता संसाररोगप्रशमननियता विष्णुवक्त्राब्जनीता।।१६।।**

भगवद्गीतावतरणक्रममाह–सम्प्रश्नानिति। अनादेर्बन्धोर्भगवतः, स्मितेन मन्दहासेन, मधुनः स्पृहातिशयविषयस्य, मुखदृशोर्मुखारविन्दविकस–न्नयनारविन्दयोर्योगतो दर्शनजनितहर्षविशेषेण, पार्थस्यार्जुनस्य, चित्तेऽन्तःकरणे, स्थितान् तदात्वे लीयमानान्, सम्प्रश्नान् तर्कप्रमाणपुरस्सरान् पूर्वपक्षान्, तत्त्वस्य समाधानहेतोर्यथार्थस्य, स्फुरणमनुभवविशेषमपि, महान् सकलोपायधनी, विष्णोर्भगवत एवासाधारणी, तपोमयी मूतिरवतारविशेषो, व्यासः सर्वशास्त्ररहस्यव्याख्याता बादरायणो, जगताम् भविष्यताम् उपकृतये परमपुरुषार्थसाधनाय, अनाद्यैश्चिरेण स्मर्यमाणैर्वाक्यैर्बबन्ध जग्रन्थ। तान्येव गीतावाक्यान्युपन्यस्तवान् यानि पूर्वमप्यासन् राजर्षिपरम्पराऽऽसेवितानि। तदेवोच्यते, पूर्वतोहीयं संसाररोगप्रशमनं गीताज्ञानं संसाररोगहरं, संसारनाशे, तज्ज्ञानमेव हेतुरिति तन्त्रेण समव्याप्तिर्ज्ञेया नियता यत्र यत्र चित्ते गीता तत्र तत्र संसार रोग प्रशमः, यत्र यत्र च प्रशमः तत्र तत्र गीता इति समव्याप्तिः, विष्णुवक्त्राब्जतो नीता ''इमं विवस्वते' गी० ४/१ ''इत्यादि प्रमाणैः पूर्वमपि भगवता विवस्वते प्रोक्ता आसीदेव। तेन व्यासः पूर्वत एव शास्त्रमिमं स्म जानाति, नातस्तदुपबन्धे योगसाक्षात्कृतसकलार्थस्य तस्य क्लेशलेशोऽप्यासीदिति भावः।

**भावार्थ – भगवद्गीता के वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण और श्रोता अर्जुन थे। ग्रन्थ को वर्तमान आकार देने वाले समसामयिक तपोनिधि सिद्धयोगी बादरायण व्यास थे। व्यास को अतीत अनागत सबकुछ प्रत्यक्ष रहता है। यह गीताशास्त्र पहले भी था। इसे भगवान् ने विवस्वान् को इस मन्वन्तर के शुरु में ही कहा था जो सिद्धयोगी व्यास को विदित था। वेदव्यास ने वही वाक्य जोड़े जो**



**पहले भी थे, प्रश्नोत्तर वाक्य और उपक्रम वाक्य नये थे। इससे वेदव्यास को इस ग्रन्थ को पहले वाले रूप में ही या तात्कालिक प्रश्नोत्तरों से जोड़कर लिखने में कोई कठिनाई नहीं हुई। चूंकि यह संसाररूपी महान् रोग की शान्ति का अमोघ उपाय है इस से इसका सम्मान पहले से ही रहा है। वेदव्यास को इसका ज्ञान पहले भी था।**

**१–वंशध्वंसो गुरुद्रोहो धर्मश्चेत्किन्नु पातकम्।**
**सख्युर्जिज्ञासतेऽत्रार्थे हरेः पार्थो रणाजिरे।।२०।।**

शास्त्रमवतारयति–वंशध्वंसेति। युद्धे वंशनाशो गुरुद्रोहश्च फलिष्यतः, एतद्द्वयम् महत्पातकम्मन्यते, तथाऽपि केशवो युद्धे प्रवर्तयति। तेन तद्दृष्ट्या पातकं किन्नुस्यादिति जिज्ञासोदेति। तत्समाधानन्तु स एव वेत्तीत्यतोऽत्रार्थे पार्थः सख्युर्नित्यसुहृदः श्रीहरेः कृष्णाज्जिज्ञासते। पापपुण्यजननानि कृत्यानि वेदितुमिच्छतीति भावः। तस्योत्तरमिदं गीताशास्त्रम्। अत्रोच्यते – स्वरूपाज्ञानं सकलापराधमूलं, सदनुष्ठानफलः स्वरूपबोधः संसारक्लेशनिबर्हणः सर्वातिशायि पुण्यं, तदेवार्जनीयमिति।

*इति प्रथमोध्यायः*

**भावार्थ – जब अर्जुन युद्ध शुरु करने लगे तब उन्हें विपक्ष दल में अपने महान् पूज्य प्रमुख रूप में दीख पड़े। तब वे सोचने लगे कि इनका तो सदा आशीर्वाद लेता रहा हूँ और अब भी ये पूज्य हैं। इन पर मारक अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग और इनका वध तो महान् पातक होगा। इसके अतिरिक्त दुर्योधन आदि भाई भतीजे मरेंगे तो इनका वंश नष्ट हो जायेगा, यह भी एक बड़ा पाप होगा। अपने ही परिवार की विधवायें असंख्य मिलेंगी, इससे भी भारी क्लेश होगा। मैं तो धर्मयुद्ध के धोखे में महान् पाप करने जा रहा हूँ। और ये सखा कृष्ण क्या समझ रहे हैं। इनसे भी पूछ लूं, सोच समझ कर ही कार्य करना चाहिये, ऐसा सोचकर अर्जुन ने युद्ध न करने का अपना निर्णय सुनाते हुए सखा केशव से युद्ध का औचित्य पूछा। उत्तर में यह गीताशास्त्र प्रस्तुत हुआ। अपना स्वरूप और कर्तव्य समझकर कर्म करने से सभी पाप मिटते हैं, अन्यथा पाप बढ़ते हैं। पाप मिटाना मनीषी का प्रमुख कर्तव्य है, यही इस शास्त्र का सारांश है।**

*प्रथम अध्याय समाप्त*

# अथ द्वितीयोऽध्यायः

**रक्षापेक्षोत्तमानाम्भवमरुसलिलास्वादवैमुख्यभाजाम्,**
**पञ्चार्थालोचनार्थप्रतिनियतलसत्पञ्चबोधेन्द्रियाणाम्।**
**स्वोपायत्वानुचिन्तारसमयमनसाम्प्रीतिमुग्धाननानां,**
**सर्वं कर्माश्वमेधाधिकमभिमनुते माधवः सात्त्वतानाम्।।२१।।**

सुविदिततत्त्वेषु मुमुक्षुषु मध्ये तत्त्वनिष्ठानाम्महिमानमाह–रक्षापेक्षेति। रक्षा संसारसागरादुद्धारः, तदपेक्षा गोप्तृत्ववरणं नाम प्रपत्तिः, तया उत्तमानां श्रेष्ठानां, दृढतमषडङ्गशरणागतिभाजाम्, (अतएव) भवः संसार एव मरुर्निर्जलभूमिः, तत्रासतोऽपि प्रतीयमानस्य सलिलस्येव वितथविषयव्रातस्य आस्वादवैमुख्यं वैराग्यन्तद्भाजां, सुदृढवैराग्यवतामित्यर्थः। (अपिच) पञ्चानामर्थानां स्वस्वरूपपरस्वरूपपुरुषार्थस्वरूपोपायस्वरूपविरोधिस्वरूपाणां यद् आलोचनं सततम्परितः प्रेक्षणं स एवार्थः प्रयोजनन्तत्र प्रतिनियतानि प्रतिबद्धानि, लसन्ति तत्त्वविद्यासंस्कारशुभ्राणि पञ्चसंख्याकानि पञ्च बोधेन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रत्वग्रसनघ्राणाानि येषान्ते तथोक्तास्तेषाम् (अपिच) भगवतः स्वस्य यदुपायत्वम्मोक्षहेतुत्वन्तस्य या अनुगता चिन्ता ध्यानन्तदेव रसस्तन्मयन्तत्प्रचुरम् मनो येषान्ते तथोक्तास्तेषां, सात्त्वतानां सत्सम्प्रदायनिष्ठानां श्रीवैष्णवानां, सर्वं "कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वे" त्युक्तप्रकारेण ज्ञाताज्ञातविहितनिषिद्धकृत्यजातं निष्कलुषभक्तिप्रचुरचेतस्कतया, माधवः श्रियः पतिः अश्वमेधाधिकम्" ब्रह्महत्याऽश्वमेधाभ्यां न परम्पुण्यपापयोरित्युक्तप्रकारेण सर्वोत्कृष्टपुण्यतोऽपि श्रेष्ठम् अभिमनुते चेतसा दृढमवधारयतीत्यर्थः।

**भावार्थ – सात्त्विकों में भी स्वरूपनिष्ठ महापुरूषों पर भगवान् की कृपा अधिक होती है यह बतलाते हैं। जो लोग अज्ञानमय संसार को सारे क्लेशों का स्थान मान कर तत्त्वबोध में लग जाते हैं और फलस्वरूप आत्मरक्षा केवल प्रभु के संकल्प से होगी ऐसा दृढ़ विश्वास रखते हुए अपनी रक्षा के लिये प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पित रहते हैं जिससे अन्य पुरुषों के प्रति और सांसारिक विषयों के प्रति आस्था छोड़ चुके होते हैं वे जानते हैं कि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,**



**स्वस्वरूप आदि अर्थपञ्चक के सतत निरूपण करते रहने के लिये हैं, इससे उनकी इन्द्रियाँ गृहीत विषयों के द्वारा अर्थपञ्चक का निरूपण करने में लगी होती हैं। भगवान् उनके बारे में जानते हैं कि यह मुझ पर अपनी रक्षा के लिए पूर्ण समर्पित है, तत्त्वज्ञ होने से इसे अब अपनी रक्षा की चिन्ता नहीं है। मुझपर पूर्ण समर्पित होने से इसका मुखमण्डल प्रसन्नता से खिला रहता है, इससे इसके सारे कर्म अश्वमेध से भी बढ़कर हैं। अश्वमेध से स्वर्ग होता है, इसके कर्म तो मुझ वैकुण्ठनाथ को कर्ता कर्म फल भोग और भोक्ता रूप से सीधे छू रहे हैं। इससे अब यह यहाँ के योग्य न होकर मेरे निकट ही रहने योग्य है ऐसा मानते हैं।**

**ज्ञानाद् भिन्नाशयानां न भवति बहुभिर्व्याहृतैर्वेदवाक्यै–**
**र्मुक्तिः संस्कारनाशोऽप्रणिहितमनसामीश्वरे नैव योगैः।**
**तस्मात्कर्मैव सेवामयमखिलतनोः प्रीणनं स्यान्मुरारे–**
**रात्मज्ञानानुविद्धम्प्रभवति महितात्मावलोकाय नित्यम्।।२२।।**

प्रपत्तिविरोधिभेददर्शनं विनिन्दन् स्वस्वरूपदर्शनप्रयुक्तस्य तदनुरूप–कर्मयोगस्य उपायान्तरेभ्यो गौरवमाह–ज्ञानादिति। भिन्नाशयानाम् भगवद्व्यतिरिक्त– स्वतन्त्रतत्त्वदर्शनव्यसनिनां, व्याहृतैः स्पष्टघुष्टैर्बहुभिरपि वेदवाक्यैर्जायमानाज्ज्ञानात्, मुक्तिर्न भवति, ईश्वरेऽप्रणिहितमनसाम् पूर्णसमर्पणभावविधुराणाम् मुमुक्षूणामपि योगैर्ध्यानोपायैः संस्काराणाम् भेदधीवासनानां, नाशो नैव (भवति) तस्मात् तथोक्तज्ञानध्यानयोर्वैफल्यात्, आत्मज्ञानानुविद्धं स्वस्वरूपबोधप्रयुक्तं, सेवामयम् भगवत्कैङ्कर्यबुद्ध्याऽनुष्ठीयमानम्, अखिलतनोः कर्तृकर्मोद्देश्यफलतद्भोक्तृरूपिणः, मुरारेः सकलापराधनिवर्हणस्य परमात्मनो यत् प्रीणनम् आनुकूल्यजननन्तत्, कर्मैव शास्त्रप्रतिपन्नम्, महिताय सर्वोत्तमफलभूताय, आत्मावलोकाय कर्मबन्धविनिर्मुक्तभास्वत्स्वरूपाविर्भावरूपमोक्षलाभाय, नित्यम् उपायान्तरनिरपेक्षम्, प्रभवति निःसंशयफलजननम्भवति।

**भावार्थ – जब तक परमात्मा को सर्वात्मा यानी सकल क्रिया कारक निमित्त फल और भोक्ता के रूप में देखने का अभ्यास न बन जाये, जब तक परमात्मा से भिन्न किसी स्वतन्त्र वस्तु की कल्पना हृदय में बनी रहे तब तक चाहे जितना वेदाभ्यास करके ज्ञान अर्जित करे उस ज्ञान से मुक्ति नहीं होगी। योगाभ्यास से भी भेददर्शन के संस्कार तब तक नहीं मिटते जब तक तत्त्वबोध पूर्वक परमात्मा के प्रति अपना परिपूर्ण समर्पण का भाव न बन**

जाये। इससे सतत अभेद दर्शनात्मक स्वस्वरूप बोध से होने वाले भगवद्भजनरूप वे नित्यनैमित्तिक कर्म ही स्वस्वरूपाविर्भावरूप परमपुरूषार्थ मोक्ष के साधन बन सकते हैं जो सर्वान्तर्यामी परमात्मा को सन्तुष्ट करते हों।

**ज्ञानं कर्मैकलभ्यम्प्रगुणितमपि तत्कर्मभिर्ज्ञानपूर्वैः,**
**स्थैर्यं ज्ञानस्य भक्त्या भगवति, भगवान्प्रीणितो मोक्षहेतुः।**
**तत्प्रीत्यै शुद्धचित्तोद्गतकमलमिलद्वह्निसूर्येन्दुचक्रे,**
**स्वं तेजोराशिमीशं कलयति सुमतिः सूरिभिः सेव्यमानम्।।२३।।**

पुनरपि भङ्ग्यन्तरेण कर्मयोगं स्तौति—ज्ञानं कर्मैकेति। ज्ञानम् अभ्यर्हितो ज्ञानयोगोऽपि, कर्मैकलभ्यं, कर्मयोगादेवैकस्मान्नान्योपायेन लभ्यते। कर्मदग्धपाप— वासनानामेव चेतसि ज्ञानभानुप्रकाशं शास्त्रज्ञा वदन्ति। तज्ज्ञानम्मुक्तये प्रगुणितम् अभ्यासपुष्टमपि भवति ज्ञानपूर्वैः कर्मभिर्नान्योपायेन, ज्ञानस्य स्थैर्यं विषयान्तरास्फु— रणसहकृतं स्थायित्वम् अपि भगवति भक्त्या श्रवणादिनानाविधकर्मरूपया, भवति। वस्तुतो ज्ञानस्य महागुणत्वेऽपि प्रीणितो भगवानेव मोक्षहेतुर्भवति, ज्ञानन्तु ध्यानसाधनं स्यात्। अनादिनिरूढविषयवासनाक्षयस्य भगवद्रूपमहार्हविषयाभिलाषरूपभक्ति— धाराद्वारैव सम्भवात्। भगवत्प्रीतये भगवानेव ध्यातव्य इत्याह—तत्प्रीत्यै भगवत्सन्तोषविशेषोदयाय, सुमतिर्निष्पापचेता मुमुक्षुः, शुद्धे विषयस्पृहारहिते, चित्ते उद्गतं सरसीव विकसितं यत्कमलं ध्यायमानन्तत्र मिलति चेतोदृष्टे, वह्निसूर्येन्दूनां स्फुरज्ज्वालाग्निमण्डलस्थरविमण्डलगतचन्द्रमण्डलस्य चक्रे मध्ये, तेजोराशिं सूर्यादीनामपि तेजःसम्पादकमहातेजःसमूहरूपं, सूरिभिर्नित्यानुचरैः, सेव्यमानं नित्यानुकूलरसमयतयाऽनुभूयमानं, स्वम् अहार्यसम्बन्धम्, ईशं सकलस्थूलसूक्ष्म— भावनियमननिरततया मोक्षैकहेतुं, कलयति ध्यायति। अयमपि मानसः कर्मयोगः। भगवदनुग्रहेणैव मोक्षमाशंसमानः प्रपन्नो ध्यानं न साधनधियाऽपितु कैङ्कर्य— धियोत्कृष्टकैङ्कर्ययोग्यतोद्देश्येन च करोतीति विशेषः।

**भावार्थ — कर्मयोग ही मोक्ष का मुख्य साधन है यह बात प्रकारान्तर से बतलाते हैं। जो ज्ञानयोग मोक्ष का साधन माना जाता है वह भी कर्मयोग से चित्तशुद्धि होने के बाद ही निष्पन्न होता है, निष्पत्ति के बाद भी उसकी पुष्टि ज्ञानविशेष प्रयुक्त कर्मयोग से होती है। उस ज्ञान योग की दृढ़ता और स्थिरता भगवान् के प्रतिदृढ़भक्ति से होती है। वास्तव में ज्ञान से ध्यान निष्पन्न होता है, ध्यान ही भक्ति है जो श्रवण आदि नवउपायों से आती है,**



**श्रवण आदि नव उपाय कर्म ही हैं, ध्यान भी एक मानस कर्म है। भगवान् के भक्तजन अपने शुद्ध हृदय में अग्नि सूर्य चन्द्र मण्डल मध्यवर्ती नित्य सुहृद् अनन्ततेजोराशि भगवान् नारायण का ध्यान सभी कल्याणमय आयुधों परिकरों और नित्य सूरियों के साथ करते हैं।**

**कर्म ज्ञानञ्च भक्तिः प्रपदनमथ चाचार्यविश्रम्भकाष्ठा,**
**वेदादौ हेतवोऽमी बुधजनगणिता मोक्षलाभे स्वतन्त्राः।**
**स्वातन्त्र्यं शास्त्रसिद्धम्भवतु परममी स्वोद्भवे सव्यपेक्षाः,**
**प्रायोऽन्येषाञ्चतुर्णामिति भजनवतां चर्ययोह्यं सुधीभिः।।२४।।**

मोक्षहेतुज्ञानाङ्गतया कर्मणो न साक्षान्मोक्षहेतुत्वमित्यत्रोत्तरमाह कर्मज्ञानञ्चेति। कर्म ज्ञानञ्चेति। कर्म ज्ञानञ्च भक्तिः प्रपदनम् अथ च आचार्यविश्रम्भकाष्ठा अमी पञ्च बुधजनैः शास्त्रविद्भिर्गणिता अवधारिता मोक्षलाभे स्वतन्त्राः स्वफलजनने हेत्वन्तरनिरपेक्षा, हेतवः स्युर्मनीषिणो वदेयुः। (तत्) स्वातन्त्र्यं शास्त्रैर्वेदादिभिः सिद्धम् अवगतम् भवतु (नाम) परं किन्त्वमी पञ्चापि हेतवः स्वेषाम् प्रत्येकस्य उद्भवे जन्मनि, प्रायो बाहुल्येन, अन्येषां स्वेतराणां चतुर्णां शेषाणां सव्यपेक्षास्तत्तद्रूपयुता एव भवन्ति, इति त त्वम् भजनवताम् भगवदुन्मुखानां, चर्यया सदाचारैः, सुधीभिः प्रेक्षावद्भिः, ऊह्यम् अवधारणीयम्। कर्म ज्ञानञ्च भक्तिश्च प्रपत्तिर्गुरुवृत्तिता। मिथोऽनुविद्धाः पञ्चामी दृश्यन्ते मोक्षहेतवः।

**भावार्थ — कर्म का ज्ञानाङ्ग होने से महत्त्व घटता नहीं है। क्योंकि शास्त्र वचनों से भले ही फलोत्पत्ति में कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति और आचार्याभिमान ये पाँचो या कुछ साधन स्वतन्त्र माने जायें, किन्तु अपनी अपनी उत्पत्ति में ये पाँचों शेष चार की अपेक्षा रखते हैं, यह बात मुमुक्षु जनों की दिनचर्या से समझ में आती है। उनके जीवन में पाँचों का समावेश पाया जाता है। ज्ञान और भक्ति के बिना कर्म नहीं होता प्रथम तीन के बिना प्रपत्ति नहीं होती, प्रथम चार के बिना आचार्य निष्ठा नहीं होती। उक्त निष्ठा के बिना कर्म आदि कोई भी नहीं बन पाता। इस तरह सबका अन्योन्याश्रय है।**

**ज्ञानं कर्माद्युपायान्नियमयति तथा ज्ञानमप्युच्चकक्षं,**
**सूते भक्तिश्च तद्वत्प्रपदनमपि नुः शेषयोगान् भुनक्ति।**
**कर्म प्रागेव कार्यम्मतिरतिगतिवित्त्यादये पापहान्यै,**
**स्वाचार्यस्याभिमानः प्रपदनपरमं शान्तसत्त्वं वृणीते।।२५।।**

उक्तार्थमेवोपपादयति–ज्ञानमिति। ज्ञानं नाम मोक्षसाधनं, कर्मादीनपि तत्साधनत्वेनाभिमतान् उपायान्, नियमयति, तेषु स्वानुरूपावस्था ददाति, तथैव उच्चकक्षम् अधिकविशेषावगाहि, ज्ञानमपि, सूते जनयति। तद्वद् भक्तिरपि हरिकर्मानुरागरूपा, पूर्वोक्तानां हेतुर्भवति। तद्वत् नुः पुंसः, प्रपदनम् आत्मनः परमात्मने समर्पितत्वधीः, शेषान् अन्यान्, योगान् मोक्षोपायान्, भुनक्ति पालयति। भगवद्विश्वासादेव हि मोक्षोपायेषु प्रवृत्तिर्भवति। प्रकृतौ शास्त्रनियमे वा विश्वासोऽपि दूराद् भगवद्विश्वास एव। कर्म (च) प्रागेव सर्वेपायसम्पत्तिभ्यः पूर्वभेव, मतिः स्वरूपादिबोधो, रतिर्भक्तिः, गतिः सिद्धयनुकूलावस्था, वित्तिः कर्मोपायसन्निधानम्, एतेषामाप्तये लाभाय, कार्यं कर्तुमेष्यम्, (एवं) स्वाचार्यस्याभिमानो नाम अन्त्यो हेतुः, प्रपदनं शरणवरणम्, परमं स्वाचार्यवचसा उत्कृष्टं साधकं यस्य स तथोक्तस्तं, शान्तसत्वं सन्त्यक्तसंसाराभिलाषं नामाधिकारिणं, वृणीते स्वयमेवाश्रयते। एवं सकलोपायानां सन्निपत्योपकारकताऽवगम्यते। सर्वेऽप्युपाया इतराव्यवच्छेदेन यथा यथमवलम्बनीया एव, मिथःपोषकतया कोऽपि नोपेक्षणीय इति तात्पर्यम्।

नन्विदं सकलपूर्वाचार्याभिप्रायविरुद्धम्, उपायान्तराश्रयणे प्रपत्तिश्च्यवत इति हि तेषां रहस्यग्रन्थेषूद्घोषः, सम्प्रदायान्तरीयाणामपि नेदं रोचेत, कर्मप्रतिक्षेपपरा ज्ञानैकाश्रया हि ते कथमिदं सहेरन्, किञ्च एकस्यैवोपायस्य सम्पादने महान् क्लेश आयाति, सर्वसम्पादनन्तु सर्वथाऽशक्यमेव, तस्माद् वचनमात्रमिदं न सहृदयहृदयाह्लादावहमिति चेद् भ्रान्तोऽसि। नह्यत्रोपायान्तराश्रयणमुपदिश्यते, पूर्वोपायत्यागपूर्वकोत्तरोपायाश्रयणं हि नामोपायान्तराश्रयणं, न तदिहाभिप्रेतम्। अत्र तु प्रपन्नः स्वरूपरक्षार्थकैङ्कर्यं नाम कर्म करोति, अधीते, भजत्याचार्यञ्च शुश्रूषते, कर्मणः पूर्णताऽर्थञ्च प्रपन्नो भवति, कृत्स्नकर्मकृत्त्वं हि वाञ्छयते हरिणा, (गी० ४/१८)

ज्ञानात्प्रपद्यते, प्रपन्नो भजति, भजन् प्रपद्यते, सेवते, सदाचार्यञ्च श्रयते। यत् स्वतो भवति सतां जीवने तदेवेहोच्यते। पूर्वाचार्याणां वचःपद्धतिरन्याऽस्तु नाम, अभिमतिस्तु नैवान्या स्याद्, एकलस्योपायस्य क्वाऽप्यनुपलब्धेः। उक्तैः कर्मोत्तीर्णज्ञानिभिः स्वाभिमतं ज्ञानन्तावत्समीक्षणीयं, कर्तृस्वरूपस्वभावोद्देश्य–निर्धारणं विना कृतानामुपायानाम्बन्धैकहेतुत्वात्। अनेकोपायसम्पादने भवतु नाम महान् क्लेशो, न तावता किमपि महाफलमेकलेनोपायेन हस्तमायति।

कर्णमरित्रं दण्डं कूपस्तम्भम्महापटञ्च वाताढ्ययम्। व्यापारयन् यथास्वम्म–हानदन्तरति धीवरप्रवरः।



भववारिधिन्तरन्तः सकलोपायांस्तथैव बिभ्राणाः। स्युराप्तवन्तः पारम् भागवतम्मुञ्चति ननु को योगः।

**भावार्थ – पिछले अर्थों की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि पाँच मोक्षापायो की परस्पर सहकारिता देखी जाती है। वास्तव मुमुक्षु यथा सम्भव सभी उपाय अपनाते हैं, वे देखते हैं कि किसी को जैसा ज्ञान होता है उसके अनुरूप ही उसके सारे कृत्य होते हैं, ज्ञान आगे स्वयं विकसित होता रहता है, यानी वह नया अच्छा ज्ञान उत्पन्न करता है, पुरुषार्थ और उपायों में श्रद्धारूपी भक्ति भी ज्ञान की सहायता करती है, ऐसे ही शरणागति भी जो भगवान् की रक्षकता पर दृढ विश्वास है वह ज्ञान और भक्ति की सहायता करती हुई कर्म कराती है। और आचार्याभिमान जो कि शरणागति का मूल और पूरक है वह दृढ भक्तिवालों का स्वयं वरण करता है। इस तरह सारे उपाय साथ–साथ चलते पाये जाते हैं। ऐसी स्थिति में किसी साधन पर एकनिष्ठा जीवन के एक छोटे भाग की अवस्था हो सकती है। वास्तव में कोई एक उपाय समान फल वाले दूसरे सारे उपायों को अपने में समेटे ही रहता है।**

**एकः श्रीशोऽस्त्यनादिस्तदनुचरगणास्तत्समा नित्यसिद्धा,**
**एको लोको विशालोऽनवधिकसुखदस्तज्जुषां स्वप्रकाशः।**
**एतेषां कर्मजत्वं न भवति भगवन्नित्यसङ्कल्पभाजाम्,**
**ब्रह्माण्डान्तस्तु सर्वन्त्रिगुणमयमसङ्ख्यात्मकर्मव्यपेक्षम्।।२६।।**

अथेतः सप्तपद्यैः पुरुषार्थजातम्प्रकाशयन् अन्ते कर्मणामपि तदन्तर्गतत्वमाह–एकः श्रीश इति। एकः स्वरूपस्वभावगुणविभूत्यादिभिः सर्वोत्कृष्टः, अनादिः, शाश्वत उत्पत्तिरहितः, श्रीश ऐश्वर्यसुखसौन्दर्याधिष्ठात्र्या लक्ष्म्याः पतित्वेन सर्वोत्कृष्टन्तत्त्वम्परम्ब्रह्म, अस्ति शास्त्रैर्मीयते। (तथा) तत्समा नित्यसिद्धास्त–दनुचरगणा (अपि सन्ति), (एवम्) एकः सकललोकोत्कृष्टो, विशालोऽनवधिक–विस्तारः, लोकः सभोगस्वानुभवस्थानम्, तज्जुषान्तत्र् गतानां, स्वप्रकाशः सन्निकर्षनिरपेक्षस्वानुभवहेतुः अस्ति, भगवत ईश्वरस्य, नित्यसङ्कल्पस्य नित्याःसन्त्विमे इत्याकारकानादिसङ्कल्पस्य, भाजां, विषयभूतानाम्, एतेषामुक्तानाम् भगवत्तन्नित्यविभूतिनित्यजीवानां, कर्मजत्वं जीवकृतकर्मफलत्वं, न भवति (शास्त्रतः) (अथ) ब्रह्माण्डे परमेष्ठिविरचिते तज्जागराधीनसत्ताके, अन्तर् मध्ये तु सर्वं जन्यं, त्रिगुणमयं सत्त्वादिगुणपरिणामभूतम्, असंख्यातानाम् आत्मनां संसारिचेतनानां, कर्मव्यपेक्षं, तत्तत्कर्मफलन्तत्तदनुभवैकगोचरः। दृश्येषु प्रीत्यप्रीती भोगः,

भोगार्थोत्पत्तिकं हि सर्वम् ब्रह्माण्डे। दिव्यलोके तु भगवदनुग्रह– विशेषैकाधीनान वरतप्रीतिपात्रमखिलम्।

**भावार्थ – हम जो चाहते हैं और जो कुछ पा सकते हैं उसके ज्ञान से हमारी प्रवृत्तियाँ सुधरेंगी और हम सफल होंगे इससे उसका वर्णन करते हैं। एक अनन्त कल्याणगुणसागर अनादि परमात्मा सकल वैभव ऐश्वर्य और आनन्द की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के पति हैं। इनसे उत्कृष्ट कोई तत्त्व नहीं हैं। ऐसे ही उनके समान शीलगुण वाले उनके सिद्ध सेवक भी हैं। इसी प्रकार उन परमात्मा का एक अनन्त लोक भी है जहाँ अनन्त सुख मिलता है जो वहाँ वालो को स्वयं ही प्रिय अनुभव में आता है। ये नित्य ईश्वर जीव और लोक कर्म से न बने हैं न मिलते हैं, ये तो भगवान् के उस संकल्प के अधीन हैं जो इनकी नित्यता के नियामक हैं। भगवत्कृपा से वहाँ पहुँचने वालों को वहाँ का अनुकूल अनुभव प्राप्त होता है किन्तु ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जो कुछ है वह सत्त्व आदि गुणों के मिश्रण से अनन्त जीवों के कर्मों के फलस्वरूप बने हैं जो उनके ही अनुभव में आते हैं।**

**भोगो वा भोगहेतुस्त्रिगुणतनुभृताम्भोगभूर्वा विशाला,**
**संकीर्णा वा सदुःखा किमुत सुखमयी ये च भोगे सहायाः।**
**साद्यन्तं सर्वमेतद्भवति किल फलं कर्मणाम्प्राक्कृतानां,**
**ज्ञातुं कर्माणि तस्माद् भवति यतनवान्सन्मतिः शास्त्रनिष्ठः।।२७।।**

त्रिगुणतनुभृतां त्रिगुणमये लोके सर्वं कर्मजम्भवति। कर्मबद्धैः कर्मफलाय मोक्षाय च कर्मणां ज्ञानमर्जनीयमित्याह–भोगो वेति। त्रिगुणतनुभृताम् प्रकृतिमण्डलान्तर्गतानां चतुरशीतिलक्षयोन्यन्तर्गतशरीरधारिणां कर्मवश्यजीवानां, न तु कर्मतत्कृतत्रिगुणमुक्तानां शुद्धसत्त्वमयविग्रहाणां शास्त्रैकावसेयानां, (यः कश्चिद्) भोगः सर्वो वा शब्दादिरूपः, तद्धेतुः तदुत्पत्तिकारणन्तदनुभव–निमित्तभूतमिन्द्रियं वा मनःश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणरूपम्, भोगानां शुभाशुभप्रिया–प्रियानुभवानाम्, भूर्भूमिः, विशाला स्वर्गादिरूपा, संकीर्णा दुःखमयी, पृथिव्यादिरूपा, तत्रापि किमुत कस्याप्यनुभवेन, सुखमयी सुखैकहेतुर्बिलस्वार्गादिरूपा, ये चापि भोगे प्रियाप्रियानुभवप्रवाहे, सहायाः सहकारिणः, एतत् सर्वं सादि सान्तञ्च आरम्भावसानविशिष्टम्भवति। (यतो हि) प्राक् पूर्वजन्मसु कृतानां ज्ञाताज्ञातानुष्ठानविषयाणां विहितनिषिद्धानुभयरूपाणां कर्मणाम् फलम् परिणामस्तत्,



किलेतिप्रसिद्धम्। तस्मात् कर्मजत्वात्सर्वस्यापि वाञ्छितार्थस्य, सन्मतिः प्रशस्तधीः, शास्त्रनिष्ठः शास्त्रश्रद्धावशोऽधिकारी, शुभशुभतर–शुभतमनिरन्तरप्रिय–प्रियतर–प्रियतमभोगोपलब्धये, कर्माणि तत्प्रकारान्, बोद्धुं निर्धारयितुं यतनवान् प्रयत्नशीलो भवति। शास्त्रेणैव सामान्येन विशेषेण वा कर्माणि विदित्वा स्वसंस्कारानुरूप–मतिशयितम्भोगं सर्वविषयवैराग्यं वाऽऽप्नुयाच्छुद्धधीः।।

**भावार्थ – दुःखों से बचने और उत्तम सुख पाने के लिये संसार में व्यापक दृष्टि रखनी चाहिये, इससे दुःख घटते हैं और आनन्द बना रहता है। कैसे कैसे कर्मों से कौन कौन सा भोग मिलता है यह जान लेने से और उन भोगों के आदि अन्त का ध्यान होने से हर्ष विषाद कुछ नहीं होता। इस पृथिवी पर अनेक चक्रवर्ती सम्राट होकर मिट गए, मिट भी रहे हैं, आगें भी होंगे और मिटेंगे। आना रहना मिटना जारी रहता है। द्रष्टा आत्मा को तटस्थ भाव से केवल तमाशा मान कर देखते रहना चाहिये। इस से कुछ पाने की स्पृहा घटती है और कुछ छूटने से क्लेश नहीं होता। अप्रिय संग से भी दुःख हल्का ही होता है। यह जगत् ईश्वर का एक तमाशा है, यदि हम भी ईश्वर की कक्षा में बैठ जायें तो तमाशा ही दिखेगा। यह सुबोध कल्याणकारी मन्त्र ध्यान में रहना चाहिये कि यह भी नहीं रहेगा, यह भी नहीं रहेगा।**

**ज्ञानेच्छायत्नभेदाद्भजति बहुभिदाः कर्म यत्किञ्चिदेक–**
**न्तज्जत्वाद्विश्वमेतन्निरवधि भिदुरन्तद्विधाता सुपर्णः।**
**विस्मृत्यासौ सखायं स्वयतनफलदं संगतं, कर्मजाले,**
**स्वीये भ्राम्यन्न शान्तिं क्षणमपि लभतेऽनन्तधीशक्तिरज्ञः।।२८।।**

कर्मसु चिन्त्यमानेषु तत्फलदः सर्वात्मा सर्वस्वामी सर्वसुहृदीश्वरोऽपि लक्ष्यते, तेन भजने प्रवृत्तिर्दुःखनाशश्च सम्भवतीत्याह–ज्ञानेच्छा इत्यादि। यत्किञ्चि–देकमेकोद्देश्यकमपि कर्म उपादानोपकरणकारणादिविषयकज्ञानफलेच्छा–प्रयत्नविधानाम्भेदाद् बह्वीर्भिदा अगणितान्विशेषान् भजति लभते। तज्जत्वाद् अपरिमितभेदभिन्नकर्महेतुकत्वाद् एतद् विश्वं निरविधि भिदुरम् अपरिमितभेदभिन्नम् (उपलभ्यते) तस्यैतस्य विश्वस्य विधाता सुपर्णः ''द्वा सुपर्णा'' इति श्रुतिविदितः कर्मवशो जीवः, असौ जीवः स्वयतनफलदं सकलोपायफलोपस्थापकं, संगतं सततसहचारिणं, सखायं श्रुतिषु सदा प्रियहितसम्पादनप्रवणतया प्रतिपादितमीश्वरं, विस्मृत्य अजानन्, स्वीये स्वाज्ञानरचिते, कर्ममये परितो विस्तारितफलभोगभूमिके जाले आवरणे, भ्राम्यन् अनिरूपितोद्देश्यं सञ्चरन्, अनन्तधीशक्तिः कर्मबन्धापगमे

विश्वव्यापिधर्मभूतज्ञानयोग्यः, (अपि कर्मभिः संसरन्) अज्ञः स्वपरस्वरूपादिज्ञान—विधुरतयाऽलब्धनिर्गमपथः, क्षणम् अल्पकालमपि शान्तिं कामादिविकारफलविरामं, न लभते संसरन्नेवास्त इत्यर्थः। नित्यसहचरसुहृद्—भगवद्विस्मरणं सर्वानर्थबीजमिति भावः।

**भावार्थ — असंख्य भेदों वाले कर्मों से बने इस संसार की विविधता को और चेतनों के फललाभों की अचिन्त्य प्रक्रिया को देखने से विश्व की व्यवस्था रचने वाले परमात्मा का कण—कण में सक्रिय अस्तित्व समझ में आने लगता है और उन पर विशेष चिन्तन से शास्त्रों के विना भी उनके सुहृद्भाव और सकलपुरुषार्थ प्रदान करने की प्रवृत्ति का ध्यान होने लगता है, तब भजन में प्रवृत्ति होती है, तब शास्त्रीय नियम भी समझ में आने लगते हैं और दुःखों का अन्त भी हो जाता है। यही बात इस श्लोक से बतला रहे हैं कि ज्ञान इच्छा और प्रयत्नों के भेदों के कारण उनसे होने वाले सारे कर्म विलग होते हैं और उनका परिणाम यह संसार भी अनन्त भेदों वाला होता रहता है। इस महान् अचिन्त्य संसार के रचयिता परमात्मा तो हैं ही किन्तु जीवात्मा ही गाड़ी के बैलों की तरह निकटतम और कर्मफलों का भागी कर्ता है। इसके कर्मों से ही यह संसार बना है। इस अनन्त संसार को बनाने वाला चेतन तत्त्व जो जीव भी कहा जाता है। स्वभाव से ईश्वर के समान ही अनन्त ज्ञान और शक्तियों से सम्पन्न है किन्तु अनादि कर्मधारा से इसका ज्ञान और शक्ति कुण्ठित हो गयी है। इसी से यह अपने सारे कर्मों के फल देने एवं सदा साथ रहने वाले नित्य सुहृद् परमात्मा को भूलकर केवल अपने किये कर्मों के जाल में मकड़ी की तरह घूम रहा है। इसका यह भटकाव जगन्नियन्ता परमात्मा की ओर ध्यान जाने से दूर हो सकता है।**

**सत्त्वेऽसत्त्वेऽपि योऽर्थान् परिमृशति समं यस्य मिथ्याऽस्त्यसत्त्वं,**
**कालः कृत्स्नो हि यस्य स्फुरति जनिमताम्मालया हृद्यवेषः।**
**ईशानोऽन्तर्बहिश्च स्थिरमपि सजवं स्थूलसूक्ष्मार्थजातं,**
**सृष्ट्यादिं सद्विमुक्तिं यमयति स दृशोन्नीतयाऽद्धा रमायाः।।२६।।**

समाश्रयणौपयिकसकलगुणपूर्तिम्भगवति सूचयन्नाह—सत्त्वेऽसत्त्वेऽपीति। यो रमापतिः, सत्त्वे वर्तमानत्वे, असत्त्वेऽनुत्पन्नत्वे ध्वंसेऽपि, अर्थान् समं तुल्यरूपम्, परिमृशति यमयति विजानाति च, असतः परिमर्शमुपपादयन्नाह— असत्त्वं यस्य मिथ्याऽस्तीति। अर्थानाम् असत्त्वम् परिच्छिन्नदृशां संसारिणामेव व्यवहारविषयः,



क्रान्तदर्शिनः परमात्मनस्तु कृत्स्नः कालो जनिमताम् अवस्थावताम्, अर्थानाम् मालया परम्परया, हृद्यवेशोऽमूर्तोऽपि अमूर्तस्य परमात्मनः कृते रमणीयाकार इव स्फुरति प्रत्यक्षोऽस्ति। तेन येऽर्थाः संसारिणामनागता अतीता वा स्युस्ते सर्वेऽपि परमात्मनोऽनन्ते प्रत्यक्षभूते काले क्वचिदपि सन्तः प्रत्यक्षा वर्तमाना एव भवन्तीति न कस्याऽप्यसत्त्वं तद्दृशा इति असत्त्वम् मिथ्या एव। एतेन मायावादिनां वस्तुसत्त्वमिथ्यात्वमपास्तम्। यः स्थिरं गगनाद्यं, सजवम् परिच्छिन्नतया सञ्चारि अपि स्थूलम् परामर्शार्हं, सूक्ष्मं दुर्ज्ञेयञ्च अर्थजातं वस्तुसमूहम् ईशानो नियमयन् अस्ति स परमात्मा सृष्ट्याद्यं जगज्जन्मरक्षासंहारान्, सताम् अवधारिततत्त्वानाम् महात्मनां विमुक्तिम्मोक्षञ्च, रमायाः सहधर्मिण्या लक्ष्म्या उन्नीतया हर्षविशेषोत्फुल्लया दृशा नयनयुगलेन अद्धा नियमेन यमयति कालेनावच्छिनत्ति। यस्मिन् महापुरुषे रमाया नयनयोः पूर्णो विकासः स मुक्तो भवति, किञ्चिदल्पविकासे ब्रह्मलोकादिषु मोदते, मध्यविकासे मर्त्यलोके दृश्यते, ततोऽप्यल्पविकासे पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु प्राणिति, ततोऽप्यल्पे निरये, ततश्चाल्पे प्रलये वर्तते। एवमेव पूर्णविकासे सत्ययुगोऽल्पविकासे त्रेता, मध्ये द्वापरोऽल्पे च कलिः प्रवर्तते। एवमेव सर्वत्रोच्चावचसृष्टिरवधेया। अयमेव दृष्टिसृष्टिवादो मनीषिणाम्।

**भावार्थ — भगवान् ही एकमात्र सर्वोपकारक हैं, उनकी ही शरण ग्रहण करने से सारे पुरूषार्थ सिद्ध होंगे, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि जो लौकिक अलौकिक वस्तुओं के रहते और न रहते भी उनपर समान नियन्त्रण और ज्ञान रखते हैं, जिनके सामने सारा अनादि अनन्त काल सारे उत्पत्तिशाली अर्थों की माला पहन कर रमणीय वेष में प्रस्तुत रहता है, इसीसे किसी वस्तु का न होना उनके लिये एक झूठी बात हैं, एवं जो स्थूल सूक्ष्म स्थावर जंगम सारे अर्थों का नियमन कर रहे हैं वे समस्त सृष्टि रक्षा प्रलय और सत्पात्रों को मुक्ति प्रदान क्रिया केवल लक्ष्मी जी के नेत्रों के विकास के द्वारा सम्पादित करते हैं। भाव यह है कि लक्ष्मी जी की पूरी कृपा के कटाक्ष से ही कोई मुक्त होता है, कोई ब्रह्मलोक का आनन्द लेता है, कोई स्वर्गादि लोकों में और कोई पृथिवी पर मनुष्य पशु मृग पक्षि कीट पतंग आदि, नरक प्रलय आदि अवस्थाओं में रहता हैं। उनकी कृपा भगवान् के संकल्प से प्राचीन कर्मों के फलोन्मुख होने से होती है। इस तरह भगवान् भी जगत् के सारे व्यवहार लक्ष्मी जी की सहमति से ही करते हैं। उनकी शरणागति किये बिना विश्व का कल्याण सम्भव नहीं है। इसी से श्रीमान् नारायण की शरणागति की जाती है।**

**सृष्ट्यादावेव देवो दिशति तनुभृताम्मोक्षपर्यन्तसिद्धी–**
**र्द्रष्टुं लब्धुञ्च वेदान्मनुमुखचरितैर्बोधशुभ्रैरखेदान्।**
**आत्मा दीप्रोऽपि नित्यानुगतकृतमिलन्मायया मोहमय्या,**
**दीनः क्षुद्रार्थलीनो घनहतरविवन्नैति भव्यान् पुमर्थान्।।३०।।**

भवबन्धोऽज्ञानकर्मणा मोक्षो वेदादिभगवदुपदेशैरित्याह–सृष्टयादाविति। देवः श्रीमन्नारायणः, सृष्टयादौ जगदुत्पत्तावेव न तु पश्चात्, तनुभृतां देवादीनां कृते, प्राकृतभोगसाधनप्रभृतिमोक्षान्ताः, सकलाः सिद्धीः उपलब्धीः, द्रष्टुं विशदमनुभवितुं, लब्धुम्प्राप्तुञ्च, बोधशुभ्रैस्तत्त्वज्ञानपूर्वकै, र्मनुमुखानाम् प्रजापतिदेवादीनां चरितैरनुष्ठानैः, अखेदान् सुबोधान्, वेदान् सृष्टिरक्षाप्रलयबन्धमोक्षनियमान्, दिशति तनुभृद्भ्यो लम्भयति। स्वयम्प्रकाशस्यात्मनः को बन्ध इत्यत्राह–आत्मेति। दीप्रः स्वसंवेद्योऽपि, स्वावगमाय स्वेतरनिरपेक्षोऽपि, आत्मा चेतनः, सततमनुगतानि सर्वावस्थासु सङ्गतानि यानि कृतानि कर्माणि तैर्मिलन्ती संगच्छन्ती या मोहमयी देहादिष्वहङ्कारममकारकरी, माया "महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव चे" त्यादि (गी. १३/५) रूपा, तया हेतुभूतया, दीनो विस्मृतस्वस्वभावसामर्थ्यः, अत एव क्षुद्रेषु अर्थेषु देहतदनुबन्धिषु, लीनो ध्यायन्, घनहतरविवत् मेघवारितकरनिकर–भास्कर, स्वरश्मीनिव भव्यान् मंगलमयान्, स्वानुरूपान् ज्ञानानन्दसत्यसंकल्पादीन्, पुमर्थान् न एति लभते। स्वरूपाविर्भावेन ज्ञानानन्दात्मकमात्मानं न पश्यतीत्यर्थः।

**भावार्थ – हम प्रमाद से होने और बने रहने वाले अज्ञान से नाना प्रकार के कर्म करते रहते हैं, उन कर्मों के शुभ अशुभ सारे फल अज्ञान अवस्था में ही भोगे जा सकते हैं, इससे अज्ञान हमारा साथ नहीं छोड़ता। हम अपने को वैसे ही नहीं समझ पाते जैसे सूर्यनारायण मेघों से ढकने पर मेघ जैसे ही धूमिल लगते और क्रम से मेघ में ही मिल से जाते हैं। तब हम अपने स्वरूप के प्रतिकूल देह और देह सम्बन्धी अर्थों में अहम् भाव और ममता रखने लगते हैं। उस अवस्था में वेदादि शास्त्र जो कि समग्रतत्त्व बोध के लिये सदा से योग्य हैं, हमारे लिये विफल रह जाते हैं। अज्ञान की शिथिल अवस्था में हम वेदादि शास्त्र अपना सकते हैं, आत्मकल्याण पथ पर आगे बढ़कर दिव्य प्रकाश पा सकते एवम् भवबन्धन से छूट भी सकते हैं।**

**भगवान् ने मुक्तिपर्यन्त सारी सिद्धियों के बोध के लिये वेदादिशास्त्रों को मनु आदि तत्त्वज्ञ सक्षम अधिकारियों के द्वारा उनके अनुरूप अनुष्ठान भी कराकर सबके लिये सुलभ कर दिया है किन्तु किसी के उन पाप कर्मों का**



**नाश उन्होंने नहीं किया जिनसे संसारी चेतनों के चारों ओर अज्ञान का वातावरण छाया रहता है और वेदादि ग्रन्थों की ओर रुचि नहीं हो पाती। आत्मनिरीक्षण से अपने पापमय पर्दों को हटाकर कोई भी व्यक्ति कल्याण का मार्ग पकड़ सकता है।**

**स्वामी शेषी सखा यः प्रियसुहृदपि यो वेदतत्त्वार्थभूतः,**
**सर्वात्मा सर्वहेतुः सकलफलमयोऽनन्तसौख्याम्बुराशिः।**
**पूर्णोऽप्याप्तुं स्वजीवम्भवविपिनचरम्पृष्ठतो योऽनुगच्छं–**
**स्तं दृष्ट्वाऽनादितर्षं शमयति सुकृती द्वन्द्वमोहप्रशान्त्या।।३१।।**

सुकृतविशेषेण द्वन्द्वमोहनिवृत्तौ स्वामिनम् परमात्मानमाप्नोति, निवृत्तसंसारश्च भवति चेतन इत्याह–स्वामीति। यः परमात्मा, स्वामी स्वेच्छाधीनाखिलविनियोगः, शेषी शेषाधेयातिशयः, सखा नित्यसहचरः, प्रियो निरुपाधिकप्रीतिविषयः, सुहृद् हितकरणप्रवणः, अपि यो वेदानां तत्त्वरूपार्थभूतः तथात्वेन वैदिकेषु प्रथितः, सर्वात्मा सर्वरूपः, सर्वहेतुः सर्वकारणकारणम्, सकलफलमयः शुभाशुभसर्वकर्मफलात्मकः, अनन्तसौख्याम्बुराशिः नित्यानन्तानन्दनिधिः, पूर्णः अवाप्तसमस्तकामः अपि, भवरूपे विपिने वने चरतीति तथोक्तस्तं, स्वजीवं स्वप्राणवत्प्रियं स्वशेषभूतं चेतनम्, आप्तुं तस्य स्वरूपानुरूपे नित्यकैङ्कर्यरूपे मुक्तानुभवे योजयितुम्, पृष्ठतः तेनादृश्यमानः, अनुगच्छन् सर्वाश्चेष्टा अज्ञानमयीश्चानुमन्यमानः (अस्ति) तं, दृष्ट्वा शास्त्रैर्योगैरनुभवन् लौकिकप्रत्यक्षेणापि गृहीत्वा, सुकृती निवृत्तिनिरतश्चेतनः, द्वन्द्वानां सुखदुःखरागद्वेषविकाराणाम्, मोहस्य देहादिष्वात्मात्मीयत्वबुद्धेश्च, प्रशान्त्या पूर्णनिवृत्त्या सह, अनादिं तर्षम्, वास्तव सुखलिप्सां, शमयति पूरयति कृतार्थो भवतीति शेषः।

**भावार्थ – वेदों के मौलिक अर्थ परमात्मा चराचर विश्व के स्वामी हैं, चेतनमात्र के शेषी हैं, चेतनों से उन्हें महान् उत्कर्ष प्राप्त है। वे सदा प्रत्येक संसारी चेतन के साथ सभी अवस्थाओं में रहते हैं स्वभाव से ही वे प्रत्येक प्राणी के स्नेहभाजन हैं। वे सदाही, उनके परम हित साधन के अनुकूल अवस्था की चिन्ता में रहते हैं। विश्व के सारे अर्थ उनके ही रूप हैं, वे सभी कारणों के कारण हैं, सारे शुभ अशुभ कर्म फलों के रूप में वे ही मिलते हैं, वे अनन्त आनन्द के समुद्र हैं। यद्यपि वे पूर्ण हैं, उन्हें कोई अपेक्षा नहीं है फिर भी वे संसाररूपी वन में विचरण करते हुए चेतनों को अपने प्राणों के समान मानते हुए, उन्हें पाने के लिये, उन्हें कर्मबन्धनों से छुड़ाने के लिये, उनका**

पीछा करते रहते हैं। उनका दर्शन महान् पुण्य का फल होता है, जो उन्हें पा लेता है उसकी सुख की पुरानी प्यास बुझ जाती है, वह पहले ही सुख दुःख रागद्वेष मोह आदि दोषों से छूट चुका होता है।

**रुन्धानो रुद्धमेधाः खलचरितशतैर्विश्वकल्याणमार्गं,**
**कः सेव्यः को नु पूज्यः सुमहितधिषणः कः सुविद्यो युयुत्सोः**
**एकं वर्त्मैशमेष्यन्तदनुसरणिनः साधवः सेवनीया—**
**स्तद्रक्षार्थम्प्रवृत्तैः कुपथधृतपदाः सङ्गरे शातनीयाः।।३२।।**

अन्यायमार्गस्थितानाम् भीष्मद्रोणादीनाम् पूज्यता सेव्यता चेदानीं नास्ति, स्वस्वप्रकृतिवशतया गतायुष्कतया चाधुना ते सत्पथं नानुसरेयुरत एव मत्सङ्कल्पितमरणानां युद्धयतामेषां वध एवोचित इत्याह—रुन्धान इति। खलानां दुर्योधनादीनां चरितानाम् पाण्डवजिघांसयाऽवलम्बितानां विवासनलाक्षागृह—दाहादीनां कूटोपायानां शतैः समूहै, रुद्धा मेधा धर्मधीर्यस्यासौ तथा, विश्वस्य जगतः कल्याणस्य सुखस्य मार्गम् भगवदनुग्रहहेतुम् भूतदयारूपं, रून्धानो वारयन् सामर्थ्येऽपि प्रसंगेऽप्यप्रवर्तयन् वा महानपि युयुत्सोर्धर्मयुद्धोद्यतस्य, सेव्यः सन्तोषणीयः कः, पूज्य उपचरणीयः को नु, सुमहितधिषणः प्रत्युत्पन्नमतिः, सुविद्योऽध्यात्मविदपि को, न कोऽपीत्यर्थः। ऐशम् भगवत्प्राप्तिहेतुः, एकम् मुख्यं, वर्त्म मार्गः, वाञ्छनीयं कृत्यनिर्धारणाय, तदनुसरणिनो दयावन्तः, साधवो घृतसत्पथाः सेवनीयाः सन्तोष्टव्याः, तस्य पथो रक्षार्थम् अनुवर्तनाय, प्रवृत्तैः उद्यतैः क्षत्रियैः, कुपथेषु भगवन्निग्रहमार्गेषु धृतानि प्रवृत्तानि, पदानि चरणा येषान्ते तथोक्ताः, संगरे पापपक्षेण युद्धचन्तः, शातनीया निःस्नेहम्मारणीया, नहि जीवत्सु तेषु भगवत्पथो निर्विघ्नः स्यादित्यर्थः।

भावार्थ — भगवत्कैकंर्यबुद्धि से किया गया युद्ध गुरुद्रोह नहीं होता यह पहले कहा गया। अब कहते हैं कि इन भीष्म द्रोण आदि में गुरुत्व और पूज्यत्व रह भी नहीं गया है, इससे गुरुद्रोह की बात नहीं आती। खलों के अपराध देखते सहते रहने से अच्छों की भी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, तब वे उनसे मिल कर सारे विश्व के लिये कल्याणकारी सन्मार्ग का विरोध और कुमार्ग का समर्थन करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी सेवा पूजा की योग्यता जाती रहती है। तब धर्मयुद्ध में प्रवृत्त व्यक्ति उन्हें सामान्य विपक्षी योद्धा ही मानता हुआ श्रद्धा स्नेह भूलकर उनका वध चाहता हुआ लड़ता और मारता है। क्यों कि कल्याण के दो विरोधी मार्ग नहीं हो सकते। कुसंस्कारवश



अपनाया हुआ उनका मार्ग ग्राह्य नहीं हो सकता। सेवा तो भगवत्पथ पर चलने वालों की होनी चाहिये। उस पथ की रक्षा में तत्पर क्षत्रिय वीरों को चाहिये कि धर्मयुद्ध में कुमार्गियों को निःसंकोच मार डालें। बुरे संस्कारों से जकड़े होने से वे सन्मार्ग नहीं पकड़ सकते और समर्थ होने से सन्मार्ग का विरोध भी करते रहेंगे।

**आत्मा प्रत्यक्प्रकाशः श्वसनजलमुखार्थानपेक्षोऽपि भोक्तुम्,**
**पाकान् प्राक्कर्मजातान्करणतनुधरस्तद्वशस्तद्वशेक्षः।**
**बन्धोऽयं केवलात्मप्रतिनियतधियाऽर्थानपेक्षेण वार्य—**
**स्तस्मात्प्रज्ञाऽऽत्मनिष्ठा सुविजितकरणैर्धार्यते प्राज्ञवर्यैः।।३३।।**

कर्मबन्धवारणाय कर्मयोगसिद्धये स्वरूपबोधमवतारयति—आत्मा प्रत्यगिति। प्रत्यक् अन्तः, स्वस्मै स्वयमेव, प्रकाशोऽनुभवरूप, आत्मा चेतनः, श्वसनजलमुखेषु वायुजलादिषु जडेषु, अर्थेषु वाञ्छनीयेषु, अनपेक्षोऽसम्भाव्योपकारोऽपि, प्राक्कर्मभिः प्रारब्धाख्यैः, जातान् उत्पन्नान्, पाकान् परिणामान्, भोक्तुम् अनुभवितुं, करणानि इन्द्रियाणि, तनुं शरीरञ्च धरति नियमयतीति तथोक्तः, तद्वशः शब्दादिग्रहणे स्वयं समर्थोऽपि कर्मबन्धदशायान्तदेकापेक्षः, तद्वशा इन्द्रियाधीना ईक्षा दृग् यस्यासौ तथोक्तः (अस्ति उपलभ्यते, तथाऽपि) अयम् उक्तो बन्धः केवले महदहंकारतद्विकारेन्द्रियादिव्यावृत्ते, आत्मनि स्वस्वरूपे चेतने प्रतिनियता विषयान्तरस्पर्शरहिता या धीः प्रज्ञा, ध्यानरूपा, तया हेतुभूतया, अर्थेषु शब्दादिषु, अनपेक्षेण स्पृहारहितेन पुरुषेण, वार्यो निवर्तयितुं शक्यो (नान्येन देहेन्द्रियसम्मुग्धेन), तस्माद् हेतोः, सुविजितानि तत्त्वबोधाभ्यासनियन्त्रितानि, करणानीन्द्रियाणि येषान्तैस्तथोक्तैः, प्राज्ञवर्यैः शास्त्राभ्यासपरिशुद्धमतिभिर्विद्वद्भिः, आत्मनिष्ठा बाह्यार्थनिरपेक्षा, प्रज्ञा मतिर्धार्यतेऽवस्थाप्यते।

भावार्थ — कर्म बन्धन से छुटकारा कर्मयोग से ही सम्भव है और कर्म की पूर्णता स्वस्वरूप बोध से होती है इससे आत्मस्वरूप का वर्णन करते हैं कि आत्मा अपने को अपने आप प्रकाशमान होता है। इसे अपने बोध के लिये या अपने अस्तित्व के लिये कभी भी किसी भी बाहरी अर्थ की अपेक्षा नहीं है फिर भी पिछले जन्मों के प्रारब्ध कर्मों के फलों का अनुभव करने के लिये यह इन्द्रियों के साथ शरीर धारण करता है। इस स्थिति में इसकी स्वतन्त्रता दबी रहती है और इन्द्रियों के द्वारा ही विषयों का ग्रहण कर पाता है। भीतरी ज्ञान भी इसे मन के सहारे होता हैं। यही इसका मूलभूत संसार बन्धन है। इस

बन्धन से छूटने के लिये लौकिक अर्थों के प्रति वैराग्य और स्वस्वरूप का नित्य अनुसन्धान अपेक्षित होता है। इसी से विवेकी पुरुष जितेन्द्रिय होते हुए भी अपनी प्रज्ञा को सदा स्वस्वरूप से ही जोड़े रहते है।

**भास्वान् विश्वप्रकाशः क्षितिनिहितदृशामप्रकाशो यथा वा,**
**ढक्कानादो द्रढीयान्प्रियवचनधृतश्रोत्रलग्नोऽप्यलग्नः।**
**एवं नित्यप्रकाशोऽनवहितकरणैर्नेक्ष्यमाणोऽपि कामं,**
**वृद्धोक्त्या शुद्धचित्ते प्रतिफलतितरां सौख्यसिन्धुर्निजात्मा।।३४।।**

स्वस्मै स्वयं नित्यं स्फुरन्नप्यात्मा सदुपायापास्तरागमालिन्ये चित्तदर्पणेऽतितरां स्फुरति, स च शास्त्रोपदेशैस्ततोऽप्यतिशयेन प्रत्यभिज्ञायत इत्याह—भास्वान् इत्यादिना। विश्वप्रकाशः सुदूरविसृमरकिरणसहस्रः (अपि) भास्वान् सूर्यः, क्षितौ भूतलैकदेशे, निहिता योजिता, दृग् नेत्रं, येषान्ते तथोक्तास्तेषाम्, अप्रकाशोऽनुऽपलब्ध इव भवति, यथा वा द्रढीयान् श्रोत्रं तुदन् अपि ढक्कानादः प्रियवचनधृते विवाहादिप्रेयःसम्बन्धार्थवाक्यावलीलग्ने, श्रोत्रे लग्नः प्रविशन्नपि चेतसोऽन्यासङ्गितया अलग्नोऽप्रतीतो भवति। एवं सौख्यसिन्धुः सुखैकाकारो निजः स्वीय आत्मा स्वरूपं, नित्यप्रकाशः स्वस्मै स्वेन स्वयं सदा भासमानोऽपि, अनवहितानि बाह्यर्थबद्धानि करणानीन्द्रियाणि येषान्ते तथोक्तास्तैः, कामं नितान्तं न ईक्ष्यमाणोऽननुभूयमानोऽपि शुद्धे विषयसङ्गवर्जिते, चित्ते, वृद्धानां शास्त्रविदां गुरूणाम्, उक्त्या उपदेशेन प्रतिफलतितरां सुविशदमवभासत इत्यर्थः।

भावार्थ – आत्मा यद्यपि स्वयम् प्रकाशमान है, किसी को अपने होने में सन्देह नहीं होता फिर भी बाहरी शब्दादि विषयों में चित्त के उलझे होने के कारण उसका प्रकाश नहीं के बराबर हो रहा है। शम दम आदि साधनों से जब मन अन्तर्मुख हो जाता है तब उस शुद्ध मन में आत्मा प्रतिबिम्बित होने लगता है। तब उसके अस्तित्व में सन्देह तो होता ही नहीं, उसका स्वरूपभूत आनन्द भी प्रकट होकर मुक्त जैसी अवस्था ला देता है। विक्षिप्त चित्त में स्वरूप का प्रकाश न होने में दो दृष्टान्त हैं। जैसे सूर्य सबको दिखाई देता है किन्तु यदि किसी ने अपने नेत्रों को धरती से जोड़ रखा है तो उसे सूर्य का दर्शन नहीं होता, एवं डमरु की तेज ध्वनि कानों में घुसती ही है फिर भी जिसका ध्यान अन्य किसी वार्ता में लगा है उसके लिये डमरु की तेज ध्वनि भी अनसुनी ही रह जाती है। बहिर्मुखता ही सारे अनर्थों और पराभवों का मूल है। सारी सिद्धियाँ अन्तर्मुखता में मिलती हैं। मुमुक्षु चेतन अन्तर्मुख होते हैं।



**रागो रोगो गरीयान् भवमरुविपिने वैद्यभैषज्यहीने,**
**मिथ्याऽऽशावातरिङ्गद्वितथगुणकथाकीटकोटिप्रवृद्धः।**
**गृह्णन् कालादनादेर्मतिघटकतया मोहमूर्च्छालजन्तून्,**
**नाश्यो धीधैर्यवृत्तैर्गुरुवचनकृतैः श्रद्धया शुद्धचित्तैः।।३५।।**

बहिर्मुखताहेतुभूतस्य रागस्य प्राबल्यन्तन्नाशोपायञ्चाह—रागो रोग इति। वैद्यभैषज्यहीने चिकित्सकरहिते औषधरहिते च, भवः संसार एव, मरुरुज्जीवनसाधनरहितं विपिनं वनन्तस्मिन्, मोहोऽप्रतिभा, मूर्च्छा अचैतन्यन्तदुभयं लान्तीति तथाभूतान्, जन्तून् प्राणिनो देवमनुष्यादीन्, मतेर्ज्ञानस्य घटकतया सम्पादकतया, अनादेः कालाद्गृह्णन् वशयन्, मिथ्या अभूतार्थविषया या आशा सैव वातस्तत्र रिङ्गन्त्यः सञ्चरन्त्यो या वितथानाम्मिथ्याभूतानां गुणानां याः कथाश्चर्चास्ता एव कीटानां रोगाणूनां कोटयो बाहुल्यन्तेन प्रबृद्धो बहुलीभूतो, रागः शब्दादिविषयासङ्गः, स एव गरीयान् असाध्यो, रोगः, सहजचैतन्यविरोधी दोषः, शुद्धं शमादिभिर्वारितविषयसंस्कारं, चित्तमन्तःकरणं येषान्ते तथोक्तास्तैर्मुमुक्षुभिः, श्रद्धया उपायोपेयविषयकप्रीतिविशेषेण, गुरूणां सदाचार्याणां वचनैरादेशोपदेशैः, कृतैः सम्पादितैर्धीधैर्यवृत्तैः शास्त्रज्ञानेन परमार्थनिष्ठया निष्कामकर्मभिश्च, नाश्य उन्मूलयितव्यः।

भावार्थ – शब्दादि विषयों की ओर मन का झुकाव राग है, यह सभी अनर्थों का मूल है, उसके नाश का उपाय बतलाते है। यह संसार एक ऐसा जंगल है जहाँ पानी नहीं मिलने से जीना भी मुश्किल है। इसमें पड़ा जीव रागनामक भारी रोग से पीड़ित है। यहाँ इस रोग का न कोई वैद्य मिलता है न दवा। झूठी आशा के वातावरण में विषयों की झूठी गुणचर्चारूपी असंख्य रोगाणुओं से यह रोग बढ़ता ही रहता हैं। इसके बिना जीव की बुद्धि नहीं बन पाती। वह राग को अपने ज्ञान से अलग नहीं कर पाता। यह जीव तो देह आदि के प्रति मोह से मानो मूर्च्छित दशा में हैं। मूर्च्छा की स्थिति में रोग बढ़ते हैं।

इस रोग का नाश तभी हो सकता है जब सदाचार्य द्वारा परमार्थ का बोध हो, उसपर निष्ठा हो और वे कृपा कर निष्काम भगवदर्थ कर्मों में श्रद्धा उत्पन्न करते हुए उनमें प्रवृत्त कर दें जिससे चित्त शुद्ध हो जाये। राग रहते भी चित्तशुद्धि के प्रयत्न होते हैं। कर्मों के प्रभाव से प्रभुकृपा से चित्त की स्थायी शुद्धि होती है तब राग का लोप हो जाता है।

**सच्छास्त्रैः साधुवाग्भिर्मतिजितकरणैः सानुकम्पैः सदार्यैः,**
**सत्प्रज्ञादर्पणे स्वं घनगुणकिरणम्प्रेक्षमाणस्त्रिलोक्याम्।**
**निर्वाञ्छो दोषवत्यां नयति मतिमलं चेत्सुखाप्ये स्वरूपे,**
**ज्ञेया सद्भिः सुधीभिर्बहुमतिभणिता सुस्थितप्रज्ञतैषा।।३६।।**

उक्तमेवार्थं विशदमाह—सच्छास्त्रैरिति। अत्राद्यम्पदत्रयन्तन्त्रेण कर्मधारयो बहुव्रीहिश्च, तेन यथा सच्छास्त्रादीनि मुमुक्षोर्यत्नेषु करणानि तथैव तदाचार्यस्यापि तदुपकारे सहकारे च। एवं सदार्यैरिति तृतीया हेतौ सहार्थेऽपि विवक्षिता, तेन सदाचार्यस्य न शिष्योपदेशमात्रेण विश्रान्तिरपि तूपायसिद्धिपर्यन्तं सहकारोऽपि विवक्षितः। तथा च दोषवत्यां तत्त्वधीतिरोधायकरजस्तमःप्रचुरायां, त्रिलोक्याम् ब्रह्मलोकपर्यन्तभोगेषु, निर्वाञ्छ उक्ततत्त्वधीतिरोधानमोहजननादिदोषदृष्ट्या स्पृहारहितो योगी सद्भिस्तत्त्वावेदकैः श्रुतिस्मृत्यागमरूपैः शास्त्रैः प्रमाणभूतवाङ्मयैः, साधूनामात्मदर्शनसाधननिरतानामनुभवभरिताभिर्वाग्भिर्नीतया मत्या जितैर्वशीकृतै र्मनोबुद्ध्यहङ्काररूपैरन्तःकरणैः, सानुकम्पैः शिष्यसंसारक्लेशासहनरूपदयाभरितैः, सदार्यैः सत्तत्त्वनिष्ठैरुपकारिभिः सहकारिभिश्चाचार्यैः, सत्प्रज्ञादर्पणे सद्बुद्धिरूप आदर्शे, घना महाप्रभावा, गुणा अपहतपाप्मत्वादय एव किरणा रवेरिव यस्य स तथोक्तस्तं स्वमात्मानम्प्रेक्षमाणः साक्षात्कुर्वन्, चेद् यदि सुखेन अनायासम्, आप्ये साक्षाद्भूते, स्वस्यात्मनो रूपे स्वप्रकाशज्ञानानन्दमयत्वे, मतिम् अन्तःकरणम्, अलं यावदपेक्षं, नयति योजयति (तदा सा) एषा सुधीभिः शास्त्रतात्पर्यविद्भिः, सद्भिः सात्त्विकैस्तत्त्वज्ञैः, बहुमत्या मोक्षहेतुतया आदरातिशयेन, भणिता प्रकथिता, सुस्थितप्रज्ञता भगवद्गीतोक्ता मुख्या परवैराग्यहेतुका स्वरूपनिष्ठा भवति।

**भावार्थ — शब्दादि बाह्य विषयों में मन लगा रहने से आत्मानुभव नहीं हो पाता। उसके बिना आत्मबल नहीं होता न अच्छे कर्म हो पाते हैं। इससे वैराग्यपूर्वक आत्मनिष्ठा अपेक्षित है। प्रकृत श्लोक से आत्मनिष्ठा के उपाय और लक्षण बतलाते हैं। तत्त्वबोधक शास्त्रों से, उनके अनुकूल जीवन जीने वाले सन्तों के वचनों से, तत्त्व बोध से वश में किये गये अन्तःकरणों से, एवम् उक्त उपायों का उपयोग कर रहे दयालु सदाचार्य के साहचर्यपूर्वक निर्देशों से, शुद्धचित्तरूपी दर्पण में अपने तेजोमय स्वरूप का दर्शन करता हुआ साधक, ब्रह्मलोक पर्यन्त भोगों के प्रति दोष दृष्टि होने से रागशून्य होकर यदि अपने चित्त को इच्छानुसार अपने स्वरूप में जोड़ता रहता है तो उसका यह प्रयत्न वही स्थितप्रज्ञता माना जायेगा जो पर—वैराग्य नामक उत्कृष्ट**



**वैराग्य से होता है जिसका वर्णन विद्वान् साधकों ने बड़े आदर से किया है।**

**ज्ञानी वैराग्यमिच्छन् गुरुवचनबलात्कूर्मवत्खानि गृह्णन्,**
**निघ्नन् रागं विवेकाच्छ्रुतिवचनकृताद्दीर्घनिर्विघ्नयत्नात्।**
**ईर्ष्याऽसूयापराधाननियतविभवान् रागजान् ध्यानयोगाद्,**
**अस्यन्कालेन शुद्धे मनसि नभसि संसेवते स्वम्प्रदीप्तम्।।३७।।**

प्राचीनैर्योगज्ञैर्वैराग्यस्य यतमानसंज्ञा व्यतिरेकसंज्ञा एकेन्द्रियसंज्ञा वशीकारसंज्ञा इति चतस्रोऽवस्था वर्णिताः सन्तिः। तत्र चतुर्थी मुख्या मुक्तिदेति सैव पातञ्जलयोगसूत्रद्वयेन वर्णिता। तथा हि ''दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्'' ''तत्परम्पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्'' इति तत्र सूत्रद्वयम्। भगवता श्रीकृष्णेनापि गीतायाम् ''प्रजहाति यदा०'' इति सैव प्रथममुक्ता। अनन्तरश्लोकैश्च तृतीया द्वितीया प्रथमेति क्रमेणान्या अपि स्थितप्रज्ञल—क्षणतयोक्ताः। तथैवात्रापि सच्छास्त्रैरिति पूर्वश्लोके ''नयति मतिमलमिति'' चतुर्थी वर्णिता। इदानीम्प्रथमाऽवस्थोच्यते—ज्ञानी वैराग्यमिति। गुरुवचनबलात् सदाचार्योपदेशप्रभावात्, ज्ञानी लब्धात्मस्वरूपविज्ञानस्तत एव् च सम्पादितज्ञान—विज्ञानस्थैर्यार्थं वैराग्यं विषयस्पृहात्यागम्, इच्छन्, खानीन्द्रियाणि, कूर्मवद् गृह्णन् वशयन्, रागं विषयस्पृहां, दीर्घनिर्विघ्नयत्नाद् वेदान्तविद्यासहकारिभूतासु पदवाक्यप्रमाणविद्यासु चिरानुवृत्तनिर्विघ्नपरिश्रमात्, श्रुतिवचनकृताद् अध्यात्मविद्याऽनुशीलनाभिनिवेशजनिताद्, विवेकाद् आत्मनि तत्तद्देहेन्द्रिया—द्यनात्मद्रव्यभेदाध्यवसायात्, निघ्नन् तिरस्कुर्वन्, (अथ) रागजान् विषयासङ्गसमुद्भवान्, अनियतविभवान् असीमविस्तारान्, ईर्ष्याऽसूयाऽपराधान् ईर्ष्या परोत्कर्षासहिष्णुता, असूया ईर्ष्योद्भवो गुणेसु दोषाविष्कारः, एतन्मुखान् दम्भहिंसास्तेयफलान् अपराधान् दुःसङ्कल्पान्, दीर्घनिर्विघ्नयत्नात् चिरानुवृत्त—निरन्तराययमनियमासनप्राणायाममनोजयरूपाङ्गसम्पुष्टाद्, ध्यानयोगादात्मा—वलोकनाभ्यासाद्, अस्यन् क्षिपन्नपवारयन्, दीर्घेत्यादि योग्यतया तन्त्रेण द्विधाऽन्वेति, कालेन सद्भावपरिपाकोत्तरेण समयेन, शुद्धे विरागरोषे, मनसि चेतसि, नभसि गगन इव, प्रदीप्तं विकसितापहतपाप्मत्वादिब्राह्मगुणाष्टकं, स्वम् आत्मानं संसेवते सुखेनानुभवति। इयमाद्या स्थितप्रज्ञता यतमानसंज्ञावैराग्यस्य फलम्।

**भावार्थ — सत्संग शास्त्राभ्यास और योगाभ्यास से वैराग्य और चित्तशुद्धि धीरे धीरे होती है। शुद्धिक्रम से ही आत्मदर्शन और आत्मनिष्ठा प्राप्त होती है,**

आत्मनिष्ठा ही कर्मयोग को मुक्ति का साक्षात् उपाय बना देती है। अन्तिम वैराग्य जो मोक्ष का निकटतम कारण होता है उसके लिये गुरुवचनों से स्वरूप बोध होने के बाद उस बोध की स्थिरता के लिये वैराग्य की आवश्यकता मानकर साधक अपनी इन्द्रियों को वैसे समेटता है जैसे कछुवा अपनी रक्षा के लिये सभी अंगो को छिपा लेता है। तब वह वेदादि शास्त्रों के चिन्तन से आत्मा को अनात्म तत्त्वों से सर्वथा विलक्षण मानने लगता है। यह मान्यता ही विवेक कही जाती है जो पद वाक्य प्रमाण विद्याओं में निरन्तर चिरकाल श्रम करने से प्राप्त होती है। यह विवेक सारे विषयरागों को समाप्त करता है। किन्तु पहले का विषय राग चित्त में अनेक दुःसङ्कल्प उत्पन्न कर चुका होता है जिससे ईर्ष्या असूया आदि भाव बनते रहते हैं और हिंसा चोरी लूट ठगी दम्भ जैसे अपराधों की सृष्टि होती रहती है। तत्त्वदर्शी को भी संसारगर्त में गिराने वाले इन सारे अनर्थों को दबाने के लिये चिरकाल शुद्ध आत्मस्वरूप का ध्यान किया जाता है। यही ध्यान योग कहा जाता है जो यम नियम आदि आठ अंगों के द्वारा चिर अभ्यास से सिद्ध होता है। ध्यान योग से चित्त वैसे शुद्ध हो जाता है जैसे बादलों और कुहरों के छटने से आकाश शुद्ध होता है। तब उस शुद्ध चित्त में आत्मा बादलों से निकले प्रचण्ड मार्तण्ड की तरह कर्म बन्धनों से छूटकर अपने नैसर्गिक अनन्त विस्तार वाले ज्ञान के साथ चमकने लगता है। यह यतमानसंज्ञा नामक प्रथम वैराग्य का अल्प फल होता है।

**जानात्यर्थाननर्थान्मनसि च शयितांस्तेषु रागांश्च रोगान्,**
**भोगानात्मापधातान्यमनियमचयानात्मशक्तिप्रकाशान्।**
**ब्रह्माद्यैश्वर्यमल्पं निजसहजबलं श्रीशतुल्यञ्च विद्वान्,**
**ज्ञानेच्छायत्नयोगैर्भवति स गुणवान् द्राक् स्थितप्रज्ञधुर्यः।।३८।।**

इदानीं व्यतिरेकसंज्ञानामवैराग्यस्य फलभूतां स्थितप्रज्ञताया द्वितीयावस्थामाह—जानात्यर्थानिति। (यो) विद्वान् शुद्धबुद्धिः पुमान्, अर्थान् गृहरत्नसुवर्णान्नसुहृद्बन्धून् भोगहेतून्, अनर्थान् आत्मस्वरूपस्वभावविरोधिनो, जानाति मन्यते, मनसि कृतपदान् लीनान्, तेषु अर्थेषु रागान् स्पृहाः, रोगान् मोक्षरूपारोग्यावस्थाविरोधिनः, भोगान् अन्नवसनस्रक्चन्दनवनिताबन्धुभोगसुखानि, आत्मापघातान् स्वरूपस्वभावतत्त्वहितपुरुषार्थविस्मारकान्, यमानां नियमानाञ्च गणान् अहिंसासत्यादीन् शौचसन्तोषादींश्च, आत्मनः शक्तेः प्रकाशरूपान् नतु क्लिष्टतपोरूपान्, (तथा) ब्रह्मादीनाम् ऐश्वर्यं स्वामित्वाधिकारान्, अल्पम् स्वसामर्थ्यापेक्षया न्यूनं, (तथा) निजं स्वीयं, कर्मबन्धविगमे सहजं स्वभावसिद्धम्,



बलम् भोगसामर्थ्यं कर्मसामर्थ्यञ्च, श्रीशेनेश्वरणे च तुल्यं सृष्टिरक्षासंहारेष्वपि क्षमं जानाति, स एवंविधो, गुणवान् उक्ततत्त्वबोधविभासुरः सन्, एवंविधैर्ज्ञानेच्छाप्रयत्नरूपैर्योगैरुपायैः, द्राग् झटिति, स्थितप्रज्ञेषु स्वरूपनिष्ठेषु मुमुक्षुषु, धुर्योऽग्रगण्यो भवति।

भावार्थ — योगाभ्यास से विवेक की वृद्धि और स्थायित्व से व्यतिरेक संज्ञानामक दूसरे स्तर का वैराग्य प्राप्त होता है और उससे आत्मदर्शन पहले से अच्छा होता है तब भोगों के साधन सारे अर्थ अनर्थ यानी अपने स्वरूप और स्वभाव के विरोधी लगते हैं, उन अर्थों के प्रति सूक्ष्म भी राग एक असाध्य रोग सा लगता है, विषयभोग आत्मा को अन्धकार में छिपाकर अनर्थों में फंसाने वाले प्रतीत होते हैं और यमनियम कष्ट रूप न होकर आत्मशक्ति की वृद्धि के रूप में अनुभव में आते हैं। तब ब्रह्मापर्यन्त का ऐश्वर्य थोड़ा लगता है और अपना सहज सामर्थ्य ईश्वर के तुल्य जो "निरञ्जनः परमं साम्यम्" इत्यादि श्रुतियों से जाना जाता है वह दीखने सा लगता है, तब वह अधिकारी अपने ज्ञान से, दृढ़ इच्छा शक्ति से, और शुद्ध चित्त के प्रयत्नों से शीघ्र ही स्वरूपनिष्ठा पा लेता है, वही अपने स्तर के स्थितप्रज्ञों में श्रेष्ठ माना जाता है।

**अर्थेभ्योऽक्षाण्यपास्यत्यथ मनसि धृतांस्तेषु रागांश्च रुन्धे,**
**रुद्धारुद्धान्विविङ्क्ते मतिधृतियतनैर्हन्त्यरुद्धान्मुमुक्षुः।**
**संस्कारान् रागहेतून् हरति च शनकैः सर्वजन्यान्तदर्शी,**
**स्वात्मानं ध्वान्तसिन्धोरपनयति परं स स्थितप्रज्ञधुर्यः।।३९।।**

तृतीयाम् एकेन्द्रियसंज्ञानामवैराग्यस्यावस्थां स्थितप्रज्ञताञ्च पूर्वोत्तीर्णामाह— अर्थेभ्य इति। (यो) मुमुक्षुस्त्रिवर्गोत्तीर्णोऽर्थेभ्यो लौकिकैर्वाञ्छनीयेभ्यः स्त्र्यन्नपानादिभ्योऽक्षाणि अन्तःकरणनि, मन आदीन्यपास्यति तत्स्मृतिं वारयति, (अथैतावताऽतुष्यन्) हृदि चेतसि शयितान् अनुपलभ्यानपि सत, स्तेषु विषयेषु, रागान् आसङ्गान्, दृढ़संकल्पेन रुन्धे विफलयति, (अथापि) रुद्धान्, अरुद्धान् रोधनीयान्, च विविङ्क्ते चेतसि भेदेन पश्यति, (अथापि) मत्या तत्त्वधीसन्तानेन, धृत्या तद्दार्ढ्येन, यतनैर्हरितोषफलैः कर्मभिः, (क्रमेण) अरुद्धान् उपलभ्यमानान्, हन्ति शुद्धसंकल्पेन वारयति, (अपि च) रागहेतून् विषयरागप्रयोजकीभूतान्, संस्कारान् सूक्ष्मावस्थान् भ्रमान्, (सर्वेषामेव) जन्यभावानाम् अतएव संस्काराणामपि, अन्तस्य विनाशस्य दर्शी साक्षादिव दर्शनशीलः, शनकैर्धैर्येण उक्तैरेवोपायैर्हरति—

उच्छिनत्ति (एवं दृढविश्वासबलः) परम् उपायान्तरफलान्तर– निरपेक्षः स्वम् आत्मानमप्रत्यक्तत्त्वं, ध्वान्तस्य नानाऽज्ञानसमूहस्य सिन्धोः समुद्रादिव, अपनयति बहिष्करोति, स पूर्वोक्तानां स्थितप्रज्ञानाम्मध्ये धुर्यः स्वरूपसाक्षात्कारा– तिरेकाद् अग्रगण्यः स्यादिति भावः।

**भावार्थ – एकेन्द्रियसंज्ञक तीसरी अवस्था वाले वैराग्य और उससे होने वाली स्वरूपनिष्ठा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मुमुक्षु बाहरी इन्द्रियों को वश में कर चुकने के बाद विषयराग और संस्कारों के उन्मूलन के लिये केवल अन्तःकरण में प्रयत्न जारी रखता हुआ बाह्य विषयों से बाहरी इन्द्रियों को अनायास समेट कर मन में टिके हुए उन विषयों के प्रति रहने वाले रागों को रोकता हुआ रुके हुए और बेरोक रागों का विवेचन करता है एवं तत्त्वबोध ध्यान और निष्काम कर्मानुष्ठानों से न रुके हुए रागों को मानस प्रयत्नों से रोकता है, रागों के मूल प्राचीन विषयानुभवजन्य संस्कारों को भी, यह विश्वास रखता हुआ कि उत्पन्न होने वाले सारे भाव कार्य अवश्य नष्ट होते हैं, उक्त उपायों से ही धीरे–धीरे नष्ट करता है। इस प्रकार वह अपने आपको अनन्त अज्ञान समुद्र से केवल बाहर निकाल लेता है, तब स्वरूप का साक्षात्कार पहले से विशद होने से वही उत्तम स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।**

**प्रज्ञैवोत्तम्भनीया दुरितहृतबला वाञ्छता शर्म शश्वन्–**
**नित्यत्वं चिन्मयत्वं स्वमसमसुखतां ध्यायता वेदवाग्भिः।**
**उत्तिष्ठन्नात्मभासा रविरिव जलधेर्भूतसङ्घाच्छुभात्मा–**
**ऽऽत्मानम्भूतान्धकारं जहदनघगुणं विन्दते व्योम्न्यनिन्द्ये।।४०।।**

अतीतस्थितप्रज्ञतासन्दर्भसारांशमाह–प्रज्ञैवेति। शश्वत् नित्यं, शर्म सुखं, वाञ्छता सत्संगादिभिः कामयमानेन, (मुमुक्षुणा) वेदवाग्भिरुपनिषद्भिः, स्वमात्मीयं, नित्यत्वं सार्वकालिकत्वं, चिन्मयत्वं स्वप्रकाशज्ञानरूपत्वं नित्यज्ञानाश्रयत्वञ्च, असमसुखतां, विषयस्पर्शसुखोत्तीर्णमहानन्दमयत्वञ्च, (विदित्वा) ध्यायताऽवि– स्मरता, दुरितैः पूर्वपातकै, हृतबला कल्याणपथस्पर्शाक्षमा, प्रज्ञा स्वविषया धीरेव, उत्तम्भनीया उपायैर्वर्धनीया, (तेन) आत्मभासा स्वसम्बन्धिना विशदेन बोधेनोपलक्षितो, जलधेः समुद्राद् रविः सूर्य इव, भूतसङ्घात् शरीरादिरूपात्, उत्तिष्ठन् विशदभेदेनावधारयन्, शुभ उपायवारिताज्ञानवासन, आत्मा चेतनः, भूतान्धकारम् अचित्संसर्गजनितमज्ञानं, जहत् त्यजन्, अनघगुणम् प्रकृतिसंसर्गजनिताज्ञान–



दोषरहितम् उद्भूतापहतपाप्मत्वादिगुणसमूहशुभ्रञ्च, आत्मानं स्वम्, अनिन्द्ये दोषरहिते, व्योम्नि चित्ताकाशे, विन्दते साक्षात्कुर्वन् मोदत इति भावः।

**भावार्थ – सत्संग आदि से नित्य मोक्ष सुख पाने की इच्छा होने पर आत्मा के बारे वह ज्ञान ही बढ़ाना चाहिये जो पूर्व पापों से दुर्बल होकर कल्याण पथ नहीं पा रहा। इसके लिये यमनियम आदि उपायों के साथ श्रुतिवचनों से आत्मा का नित्यत्व चिन्मयत्व और नित्य आनन्दमयत्व का ध्यान बनाये रखना चाहिये। इससे चित्तशुद्धि के साथ स्वरूपज्ञान प्राप्त होता है। तब चेतन अपने को देह इन्द्रिय आदि के संसर्ग से होने वाले अज्ञानरूपी अन्धकार को छोड़ता हुआ अपने स्वरूप ज्ञान और अन्य अपेक्षित पुरूषार्थज्ञानों से सुशोभित होता हुआ समुद्र से सूर्य की तरह ऊपर उठकर निर्मल चित्ताकाश में अपने आपको निर्दोष गुणसमूह से युक्त पाकर आनन्दमय रहता है।**

**पृथ्वी गुर्वी पयोधिर्बहुलजलमयस्तत्समुत्थाः पयोदा,**
**भानुर्भास्वान्नभस्वान्निरवधि गगनं केतवो भानि कालः।**
**यस्यानन्त्यं गुणौघं तुलयितुमसमं न क्षमा जन्मभाजः,**
**प्राज्ञोऽसौ दभ्रलिप्सो भ्रमति मृगजले कानने कण्टके किम्?।।४१।।**

अथात्मनः सर्वजन्यद्रव्योत्कर्षम्प्रस्तुवन् संसारबन्धहेतुक्षुद्रार्थलिप्साया– स्तत्प्रतिरूपतामाह–पृथ्वी गुर्वीति। गुर्वी दुरधिगमभारविस्तारा, पृथ्वी, बहुलजलमयोऽसीमागाधविस्तारः, पयोधिः समुद्रः, तत्समुत्थास्तदुद्भवाः, पयोदा मेघा, भास्वान् सुदूरगगनव्यापितेजोरश्मि, र्भानुः सूर्यः, नभस्वान् सप्तस्कन्धो वायुः, निरवधि सर्वावकाशो, गगनमाकाशं, केतवः सुदूरगगनगामिनो नैकशतवर्षानन्तरदृश्या ज्योतिःसमूहा, भानि नक्षत्राणि, (सर्वाधारः) कालश्च, जन्मभाजः सर्वेऽप्येते, कालोऽपि जन्य एव व्यावहारिकः, यस्यात्मतत्त्वस्य, असममनितरसाधारणम्, आनन्त्यं ज्ञानेन सर्वव्यापित्वम्, गुणानाम्बुद्ध्यादीनाम् ओघं विस्तारञ्च, तुलयितुं स्वसमानमानेन प्रस्तोतुं, न क्षमा असमर्थाः सन्ति, असौ सर्वप्रमाणविषयः, प्राज्ञ उत्कृष्टज्ञानश्चेतनः स्वतः सर्वब्रह्माण्डनिर्वहण– क्षमोऽपि क्षुद्रकर्मबन्धादधुना क्षुद्रा अल्पशब्दादिविषया लिप्सा स्पृहा यस्य स तथोक्तः सन्, मृगजले जलभ्रमकररविमरीचितुल्ये पुरूषार्थशून्ये, कानने दुर्निस्तारे कण्टके दुःखमये च लोके, किं कुतो हेतोः, भ्रमति देहेन्द्रियाद्यवस्था आत्मनो मन्यते क्लिश्यति च। प्रमाद एव संसरणहेतुर्नान्यः कश्चिदिति भावः।

भावार्थ – वैशेषिक दर्शन में नौ द्रव्य माने हैं। उनमें आत्मा शेष द्रव्यों का भोक्ता और नियामक माना गया है। यह एक नित्य द्रव्य है, इसकी नित्यता निर्विवाद है। वेदों में आकाश आदि की उत्पत्ति मानी गयी है। नित्यता की दृष्टि से व्याप्ति की दृष्टि से एवं बुद्धि आदि गुणों की दृष्टि से आत्मा शेष द्रव्यों से अति विलक्षण और श्रेष्ठ है। इसके योग्य इसके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं हैं न इसे अन्य किसी द्रव्यगुणादि की आवश्यकता है किन्तु कर्मबन्धन की दशा में इसकी बुद्धि अति सीमित हो चुकी है, इसीसे यह अपने स्वरूप के विरूद्ध छोटी छोटी वस्तुओं की इच्छा लेकर निर्जल कण्टकाकीर्ण वनतुल्य संसार में चिरकाल से विचरण कर रहा है। यही बात प्रकृत श्लोक में कह रहे हैं कि बहुत बड़ी पृथिवी महान् समुद्र मेघ महान् तेजःपुञ्ज सूर्य, अनन्त आकाश में दूर तक विचरण करने वाला वायु, अनन्त आकाश, सुदूरचारी धूमकेतु और सर्वाधार काल ये सब आत्मा की भाँति नित्य नहीं हैं। दैशिक और कालिक व्याप्ति की दृष्टि से ये आत्मा से बहुत कम हैं। इन सबकी भी स्पृहा यदि आत्मा को हो तो वह उसके लिये अशोभनीय ही होगी। आत्मा तो स्वभाव से द्रव्यान्तरों और अन्य आत्माओं के प्रति भी अत्यन्त निरपेक्ष है। परमात्मा के नित्य संकल्प के अधीन इसकी सारी गतिविधियाँ मोक्षावस्था में भी होती हैं इससे परमात्मा के प्रति इसकी समग्र अपेक्षा शोभा है। यही इसका स्वरूपप्रयुक्त धर्म भी है। इसके अतिरिक्त और कुछ अपेक्षित न रहने पर भी यह चेतन दुःख रूप असार संसार में क्षुद्र अर्थों की कामना लिये एवम् उन कामनाओं की अपूर्ति से सदा दुःखी घूम रहा है यह एक महान् आश्चर्य है।

**सङ्कल्पादेव कामः प्रभवति वितथारोपतस्तत्त्वबोधाद्,**
**दुःसङ्कल्पो निवार्यो गुरुचरणबलादीशकारुण्यनिघ्नात्।**
**ईशः सेव्यो गुरूक्त्या विषयजयधिया श्रेयसे तत्त्वनिष्ठैः,**
**कामास्तेष्वब्धिमध्ये बहुलजलसरित्तुल्यलोपा न दोषाः।।४२।।**

सर्वानर्थमूलस्य कामस्य मूलं सङ्कल्पस्तन्मूलमज्ञानं, तद्वारणं, श्रद्धामयेन तत्त्वबोधेन कार्यमित्याह–सङ्कल्पादिति। कर्महेतुः सकलप्रयत्नमूलं, कामो विषयाभिलाषो, वितथानाम्मिथ्याभूतानाम् भोक्तृभोग्यादिभावानाम्, आरोपतो भ्रान्तेरेव, उत्पद्यमानः सन् बन्धहेतुषु कर्मसु प्रभवति प्रवर्तयति। दुष्टो मिथ्याज्ञानमयः, संकल्पश्च, ईशकारुण्यनिघ्नात् तदधीनाद् गुरुवचनबलात् निवार्यो रोद्धव्यो भवति। विषयेषु जयधिया तत्प्रभाववारणाय, श्रेयस आत्मकल्याणाय च,



तत्त्वनिष्ठैर्यथार्थवेदिभिः, गुरूक्त्या भगवदनुग्रहपथानुभविनः सदाचार्यस्य निर्देशेन, ईशो जगत्स्वामी, सेव्यो ध्यातव्यः प्रार्थयितव्यश्च। तेषूपासनप्रवणेषूपेक्षितसर्वकामेषु, कामा विषययोगा, अब्धिमध्ये समुद्रतले, बहुलजलाभिः सरिद्भिस्तुल्योऽनुपलब्ध्या समो लोपो येषान्ते तथोक्ताः सन्तो न दोषा बन्धहेतवो न भवेयुश्चित्तस्य भगवदेकप्रवणत्वादित्यर्थः।

भावार्थ – सभी अनर्थों का मूल है काम, काम का मूल है भ्रान्त संकल्प, उसका मूल है अज्ञान। अज्ञान को पालने वाला होता है एक गहरा संस्कार, जिससे सामान्य शाब्द ज्ञान उस अज्ञान को दूर नहीं कर पाता। उसके लिये श्रद्धापूर्ण अवधानात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है। वह भगवत्कृपा के अधीन किसी सदाचार्य की कृपा से मिलता है। उसके लिये प्रयत्न करने चाहिये यह इस श्लोक से कह रहे हैं। भाव है कि संकल्प से ही कामना होती है, तब कुछ पाने के लिये कुछ किया जाता है। अनिष्टकारी संकल्प भ्रान्तियों से होता है। भगवत्कृपा के अधीन होने वाली गुरुकृपा से उत्पन्न दृढ़ तत्त्वबोध भ्रान्तियों का वारण करता है। इससे सदाचार्य के आदेश निर्देशों से भगवान् का भजन करना चाहिये, तब विषयों का प्रभाव घटता है और मुमुक्षु विजयी होता है तब परमकल्याणस्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है। भगवद्भजन में लगे रहने वालों के जीवन में हुए काम्य अर्थों का संसर्ग कर्मबन्धन नहीं बना पाता, क्योंकि उनके जीवन में भक्ति की प्रधानता होती है, इससे विषयराग बनते ही नहीं।

**सन्त्यागो गृह्णतः स्याद्विषयचयमलं तत्त्वधीहर्षभूम्ना,**
**वार्धेर्भर्तुर्जलानामनिशमिव खलत्स्रोतसाम्भूरिवीचेः।**
**व्योम्नो वाऽनन्तभूम्नो विधृतबहुगुणासङ्गनिष्कम्पमूर्ते–**
**र्गोपीसाहस्रलीलास्वपि विमलमतेर्निश्चलस्येव विष्णोः।।४३।।**

वैराग्यार्थं विषयवर्जितदेशान्वेषणम्मा भूत्, नापि सन्निकर्षवारणोद्यमः किन्तु चेतसो विषयवैमुख्यमेव मुख्यं कार्यमित्याह–सन्त्याग इति। विषयाणां शब्दादीनां, चयं समूहम्, अलम्बाहुल्येन, गृह्णतोऽनुभवतोऽपि सन्त्यागो मुख्यस्त्याग–स्तत्त्वधीजनितस्य हर्षस्यानन्दविशेषस्य, भूम्ना वैभवेन, विषयहर्षस्य विलीनतया स्यात् सम्भवेत्। अत्र दृष्टान्तत्रयम्–जलानाम्भर्तुः स्वामिनो, भूरिवीचेरनन्त–महातरङ्गस्य, बार्धेः समुद्रस्य, अनिशं निरन्तरं, खलतां सञ्चीयमानानां स्रोतसां सलिलधाराणां सन्त्याग इव, अपि चानन्तभूम्नो निरवधिविस्तारस्य, विधृतानाम्बहूनां

गुणानां सत्त्वादिकार्यभूतज्योतिष्पिण्डानाम्, आसंगे दृढसम्बन्धेऽपि, निष्कम्पा अस्खलिता, मूर्तिः स्वरूपं, यस्य तत्तथोक्तन्तस्य, व्योम्नो गगनस्य, सन्त्याग इव, (अथापि) गोपीनां साहस्रस्य समूहस्य लीलासु विलासेषु, अपि विमलमतेरकामस्यात एव निश्चलस्य कामभावविधुरस्य, विष्णोः श्रीकृष्णस्य, सन्त्याग इव मुमुक्षोर्योगिनस्त्यागः स्यादित्यर्थः।

**भावार्थ – वैराग्य सिद्धि के लिये विषयों से दूर रहना सामान्य नियम है किन्तु दूरी के बाद भी रागवृद्धि देखी जाती है इससे उनके प्रति मनका लगाव न रहे ऐसा मानस प्रयत्न होना चाहिये। दुराचारी व्यक्ति सदाचारियों के बीच रहता हुआ ही अपने कुसंस्कारों से सदाचार से विमुख रहता है ऐसे ही विषयों में दोषदर्शन होने और उत्तम विषयों में लगाव अधिक होने से विषयों के सन्निधान में भी उनका त्याग और वैराग्य बना रहता है। इसमें तीन दृष्टान्त हैं। जैसे बड़ी बड़ी नदियाँ बरसात की अनियन्त्रित जलधारायें लेकर बड़े वेग से ऐसे दौड़ती है मानो समुद्र को भी बहा ले जायेंगी। किन्तु समुद्र कुछ ऐसा महान् है कि मानो उसे नदियों का जल चाहिए ही नहीं। समुद्र के पास नदियों का जल स्थिर होकर मानो उसमें प्रवेश के लिए प्रार्थना करता रहता है। समुद्र कहता है कि तुम में लावण्य हो, घनत्व हो, स्वच्छता और पारदर्शिता भी हो तभी यहाँ आ सकते हो। तब वह जलराशि जो अपने को महान् मानता था, पहले वैसा ही बनता है तब प्रवेश पाता है। फिर भी समुद्र में विकार लक्षित नहीं होता। इसी तरह अनन्त गगन में अनन्त प्रकार के तैजस पिण्ड अपना प्रभाव फैलाते रहते हैं किन्तु शून्यात्मक गगन सदा शान्त ही रहता है। उसकी अनन्त परिधिमें सब शून्य ही हैं, दूरी बढ़ने से सारे महान् शून्य हो जाते हैं। तीसरा दृष्टान्त है कि भगवान् बालकृष्ण को घेर कर असंख्य गोपसुन्दरियाँ नाना हावभावों के साथ चिरकालनृत्य करती रहती हैं किन्तु कृष्ण बने उन भगवान् विष्णु में कोई विकार या क्षोभ कैसे आये जो सारे तत्त्वों को उनकी सारी अवस्थायें स्वयं देते हैं। उन्हें तो न कुछ अज्ञात है न कोई अपेक्षा, तब विकार क्यों हो ? सिद्धि की ओर बढ़ता यति भी ऐसा ही होता है।**

**शास्त्रैर्युक्त्याऽनुभूत्या विधृतसुखघनाऽऽत्मानुभूतेर्यतेः स्यात्,**
**देवानां विस्मयार्थैरपि विषयगुणैः सन्ततैः कः प्रहर्षः।**
**आसृष्टेर्वर्षधारास्वपि कुधरशिलाः किन्तु शैथिल्यमापु–**
**र्गृह्णानम्पद्मवृन्दं जलमहिम रुचाऽऽस्ते शुभं सौरभाढ्यम्।।४४।।**



उक्तमेवार्थं विशदयन्नाह–शास्त्रैरिति। शास्त्रैर्वेदादिभिः, युक्त्याऽऽत्मभेद–साधिकयाऽनुभूत्या ध्यानाभ्यासजया, विधृताऽविचला, सुखघनस्याऽऽनन्दैकरूपस्य, आत्मनः स्वस्वरूपस्य, अनुभूतिर्ज्ञानं यस्य स तथोक्तस्तस्य, यतेर्योगिनो, देवानामिन्द्रादीनां विस्मयार्थैराश्चर्यफलकै, र्विषयाणां शब्दादीनां गुणैरुत्कृष्टा–वस्थाविशेषैः, संगतैः सन्निकृष्टैः, अपि, कः कीदृक्, प्रहर्ष आनन्दः स्यान्न कोऽपीत्यर्थः। तत्राविकारदृष्टान्तमाहआसृष्टेः सृष्ट्यारम्भादेव, वर्षधारासु मध्ये, स्थिता अपि, कुधराणाम् भूधराणां, शिलाः पाषाणाः, किन्नु शैथिल्यम् मार्दवम्, आपुर्नैवेत्यर्थः।

तत्र योगेन गुणपोषदृष्टान्तमाह–जलस्य, महिम प्रभावं (सततं) गृह्णानं लभमानम्, पद्मवृन्दं रुचा शुभं स्पृहणीयं कल्याणमयं, सौरभेण गन्धविशेषेण आढ्यं युक्तं, ((चाऽऽस्ते लक्ष्यते) तथैव यतयोऽपि बाह्यैः शब्दादिभिरविकृता लब्धरसाश्चान्तरैरनुभूतिगुणैः साधनदशायामपि सुखमया भवन्तीति भावः।)

**भावार्थ – पूर्व श्लोक का अर्थ विस्तार से कहते हैं कि वेदादि शास्त्रों, अनुकूल युक्तियों और ध्यानसिद्ध अनुभवों से आनन्दमय अनुभव के स्थिर हो जाने पर देवताओं को भी चकित करने वाले शब्दादि विषय बने हुए, सत्त्व आदि गुणों के परिणाम सदा उपलब्ध रहें तो भी उक्त योगी को कौन सा नया सुख हो पायेगा। आनन्दमय आत्मानुभूति से नित्य सन्तुष्ट योगी किसी भी महान् से महान् सुखसाधन से प्रभावित नहीं होता। जैसे सृष्टिकाल से ही पर्वत शिलाओं पर मेघ जल बरसा रहे हैं किन्तु कोई शिला ढीली या गीली नहीं हुई, ऐसे ही योगी बाहरी दृश्यों से कभी भी विचलित नहीं होता। एवं सरोवर के जल का सार, सदा लेते रहने वाला कमल सदा ही सुन्दर स्पृहणीय और सुगन्धित रहता है ऐसे बाहरी विषयों से भी योगी का आत्मानुभवरस ही पुष्ट होता है जिससे वह सदा सुखी शान्त और अनुकरणीय जीवन वाला होता है।**

**तत्तद्देहेषु गच्छंस्तदुचितविषयान् सेवमानोऽपि नात्मा,**
**तत्तद्भावानुबन्धं वहति न हि गतं वेत्ति नैष्यं च जन्तुः।**
**सङ्गं त्यागञ्च शश्वद्व्रजति तदुचितः श्रीशभक्तेषु संगस्,**
**त्यागो देहानुबद्धे जनधनविषयव्रातजातेऽपि शक्यः।।४५।।**

संगत्यागस्य स्वाभाविकतां सुशकताञ्चाह–तत्तद्देहेष्वित्यादिना, नवनवेषु तत्तन्नानादेहेषु क्रमेण गच्छन् प्रविशन् तत्र देहोचितान् विषयान् भोजनस्थान–

चेष्टादीन्, सेवमानः स्वीकुर्वन्नपि, आत्मा तत्तद्देहसम्बन्धिभावानां वासनानाम्, अनुबन्धं सम्बन्धं, न वहति न धारयति, अनायासं जहातीत्यर्थः। अत्र तर्कः, नहि एष्यमिव गतमपि जन्तुर्विजानाति। कात्स्न्येन गतजन्मनो विस्मृतत्वात्, जातिस्मरा अपि किञ्चित्कालानन्तरं सर्वं विस्मरन्ति। एतेन इदमायातं यत् जन्तुर्लब्धेन संगम् अतिक्रान्तस्य त्यागञ्च शश्वत् निरन्तरम् भजति। संगत्यागावस्य सहजः स्वभावः। तस्मात् श्रीशस्य परमात्मनो भक्तेषु मुमुक्षुषु संगो, देहेन अनुबद्धेऽन्नपानवसनबन्धुजनेऽन्येषु जनेषु धनेषु शब्दादिविषयसमूहेषु च त्याग उचितः शक्यश्च। स्वभावसिद्धानुष्ठास्यानायासत्वादित्यर्थः।

**भावार्थ — संसार में मिलना छूटना चलता रहता है। मिले से प्रेम और छूटे को भूलना भी स्वाभाविक हैं। तब यदि हमें अच्छे लोग मिलें तो उनसे प्रेम और छूटे एवं छूटने वाले लोगों से विराग स्वाभाविक अवस्था होगी। यही यहाँ बतलाते है। बार–बार जन्म लेता हुआ जीव जब जब नयी देह पाता है तब उसके अनुरूप विषयों का भोग करके भी छूटने पर उन्हें भूल जाता है। इसीसे पिछले जन्मों की बात लोगों को नहीं याद रहती। कुछ जातिस्मर लोग जो गत जन्मों की बात याद रखते हैं वे भी कुछ देर बाद भूल जाते और याद को भी बोलना नहीं चाहते। आगामी भोग का ज्ञान तो शायद ही किसी को होता होगा। ऐसी स्थिति में यदि भगवान् के भक्त लोग मिल जायें तो उनसे प्रेम अनुराग श्रद्धा सेवाभाव रखना और छूटने वाले जन धन विषय समूह को भी भूल जाना आसान और समुचित भी है। वैराग्य कोई कठिन कार्य नहीं है।**

**संगस्त्यागश्च बुद्धिर्न तु किमपि परम्भावना तत्प्रसूता,**
**तोकः स्तन्यप्रसक्तो मतिरहिततयाऽनाप्तनानाऽधिकारः।**
**एवं सन्तो गुरूक्त्या हरिचरणजुषो विस्मृतायोग्यकामाः,**
**सेवास्तन्यैकसंगाद् हतफलरुचयो यान्ति रागाब्धिपारम्।।४६।।**

वैराग्यसिद्धये तस्य बोधैकरूपत्वम् बोधस्य च कर्मानुष्ठानपर्यन्तत्वमाह–संगस्त्यागश्चेत्यादिना। संगो विषयेषु त्यागश्च तेषाम्, बुद्धिरेव न तु परमन्यत् किमपि कोऽपि भिन्नोऽर्थः, यदि तु बुद्धिभिन्नाम् भावनां कोऽपि संगत्यागौ मनुते तस्यापि पक्षे भावनाऽपि न पदार्थान्तरम्। तत्प्रसूता सूक्ष्माऽवस्थापन्ना बुद्धिरेव। अथ वैराग्यस्य ज्ञानानुत्पत्तिरूपतां विस्मृतिरूपताञ्च दृष्टान्तेनाह–तोकः शिशुः, स्तन्ये जनन्याः क्षीरमात्रे, प्रसक्तोऽनुगतानुरागो भवति। तेन विषयान्तरेषु मतिरहिततया, ऽनाप्तनानाऽधिकारः पैतृक– सम्पत्त्यादिविषये



किञ्चित्काराऽसमर्थो भवति। एवमेव सन्तोऽवधृतस्वरूप– स्वभावकृत्यजाता, गुरूणाम् उक्त्या आदेशनिर्देशरूपया, हरिचरणजुषो हरिसेवैकपरा अतएव विस्मृता अयोग्याः स्वरूपविरुद्धाः कामा मनोरथा येषान्ते तथोक्ताः, सेवा एव स्तन्यं क्षीरं शिशूनामिव तत्रैव एको मुख्यः कामो मनोरथो येषान्ते तथोक्ता, रागरूपाब्धेः पारम् अन्तं यान्ति गच्छन्ति, सर्वमेव विषयरागम् अतितरन्ति। भगवत्कृत्येष्वेवाप्तसरसाभिनिवेशा रागन्तरन्ति, भववारिधिमपि सुखेन तरन्तीत्यर्थः।

**भावार्थ — राग और विराग बुद्धि की ही अवस्थायें हैं। यदि उन्हें भावना मानें तो भावना भी बुद्धि की ही सूक्ष्म अवस्था होती है। वह कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इससे मोक्ष के लिये स्वरूपनिष्ठा और उसके लिये दृढ़ वैराग्य चाहा जाता है। वैराग्य में कर्मयोग बहुत सहायक होता है। इसमें शिशु प्रकृति दृष्टान्त है। शिशु माता के दूध के सिवा दूसरा कुछ न जानता है न चाहता है। वह यदि आगे राज्य का अधिकारी होने वाला होता है तो भी शैशव में वह दूध ही चाहता है। राज्य आदि की बातें वह समझता ही नहीं। ऐसे ही सदाचार्यों के द्वारा तत्त्वबोध और सत्कर्मों में रुचि प्राप्त हो जाने पर सन्त लोग भगवत्सेवा को शिशु की तरह माता के दूध के समान बिना भूले सदा चाहते और दूसरे फलों को समझते ही नहीं तो फिर चाहने की बात कैसे हो। इस तरह वे अनायास रागरूपी समुद्र को पार कर जाते हैं।**

**प्रज्ञा तत्त्वैकभोगा भवति भवभृतां दोषतोऽतत्त्वसङ्गा,**
**दोषप्लोषे सुसङ्गेऽनल इव विशदे व्यज्यते हेम तत्त्वम्।**
**यं यं गृह्णात्यनर्थम्मन इह भविनां कामकालुष्यनिघ्नम्,**
**बोधे बोधे भवाब्धौ पतति स सुमतेर्दुर्लभः को विरागः।।४७।।**

उक्त एवार्थोऽन्यथाऽप्युच्यते–प्रज्ञा तत्त्वैकेत्यादिना। रमणी कमपि विशेषार्थमिव नृणाम् प्रज्ञा धीः, तत्त्वैकभोगा तत्त्वं यथार्थमेव भोक्तुमिव वाञ्छति, तथाऽपि रोग इव दोषतो दोषविशेषेऽनुवृत्ते, अतत्त्वसङ्गा अतत्त्वेऽपि सज्जते। अथ अनले जाठरे बाह्ये वा विशदे सक्षमे दोषाणां वातादीनाम् बहिश्च तृणकण्टकादीनां यथा प्लोषो दाहो जायते तथैव सत्सङ्गेऽनुवृत्तेऽज्ञान–दुःसंगदुर्वृत्त्यादिदोषाणाम् प्लोषो दाहो जायते, तदा हेमवत् तत्त्वं व्यज्यते स्पष्टमवभासते। कामतद्विकाररूपकालुष्याणां निघ्नम् आयत्तम्, भविनां संसरतां चेतनानाम्, मनः यं यम् अनर्थम् अर्थवत् प्रतीयमानं, गृह्णाति वाञ्छति स सर्वोऽप्यनर्थो भवाब्धौ संसारसागरेऽतिगम्भीरे सुमतेः शुद्धबुद्धेश्चेतनस्य, बोधे

बोधे प्रतितत्त्वज्ञानम्, पतति पुनरुपलम्भानर्हमपैति। एवञ्च को विरागो दुर्लभः ? सर्वोऽपि रागस्तत्त्वबोधादेव नश्यति, स च सत्सङ्गेन सुलभ एवेति भावः।

**भावार्थ – जैसे कोई रमणी किसी खास वस्तु की विशेष इच्छा रखती है ऐसे ही चेतनों की बुद्धि यथार्थ का उपयोग विशेष रूप से चाहती है। अयथार्थ उसे पसन्द नहीं होता। फिर भी रोगी की रुचि वातादि दोषों के कारण अभोज्य अपथ्य भोगों में भी देखी जाती है ऐसे ही अज्ञानावस्था में असेव्य अमेध्य वस्तुओं की तरह मिथ्या अर्थों में भी आस्था हुआ करती है। तत्त्वदर्शी सत्पुरुषों की संगति देरतक मिलने पर अज्ञान और उसके कार्यरूप दोष जब जल जाते हैं तब तत्त्व वैसे ही चमकने लगता है जैसे आग में तपने पर सोना चमकता है। वास्तव में काम और उसके अधीन दोषों से लिप्त मानवमन जिस जिस अनर्थ को अर्थ मानकर अपनाता है वह उसका सारा अनर्थ ईश्वर की कृपा से अच्छी बुद्धि मिली होने से प्रत्येक तत्त्वबोध के बाद अगाध संसार समुद्र में गिरकर खो जाता है, फिर उसके मिलने की सम्भावना नहीं रहती। ऐसी स्थिति में इस संसार में कौन सा वैराग्य दुर्लभ होता है ? सत्पुरुषों की संगति से पर बैराग्य भी सुलभ होता है।**

**ज्ञानम्भक्तिः प्रपत्तिर्गुरुचरणकृपा कर्म वा मोक्षहेतु–**
**र्ज्ञानं सौख्यञ्च दुःखं किमधिकमखिलावाप्तिसन्त्यागशीलम्।**
**ज्ञानम्बन्धश्च मोक्षो जगदिदमखिलं श्रीशधीमात्ररूप–**
**न्तस्मात्तस्यैव हेतोर्दृढयतनपराः साधवः शान्तकामाः।।४८।।**

अन्ते ज्ञानप्राधान्येनोपसंहरन् ज्ञानायैव यतनीयमित्याह– ज्ञानम्भक्ति– रित्यादिना। मोक्षोपायेषु भक्तिप्रपत्त्याचार्याभिमानकर्मयोगेषु सर्वं ज्ञानमेव। कर्मणो ज्ञानप्रयोज्यत्वाज्ज्ञानत्वम्। स्वतः सिद्धत्वेन ज्ञानयोगस्य ज्ञानत्वं नोक्तम्। सुखं ज्ञानं, दुःखं ज्ञानं, लाभो ज्ञानं, त्यागोऽपि ज्ञानं, लाभत्यागयोः शीलं स्वभावोऽपि ज्ञानम्। संसारबन्धो ज्ञानम्, मोक्षो ज्ञानम्। चेतनाचेतनात्मकमिदमखिलं जगदपि श्रीशस्य विष्णोः, परमात्मनः संकल्पैकाधीनतया संकल्परूपं ज्ञानमेव मन्यताम्, प्राधान्येन व्यपदेशनियमात्। एतेन किमायातमिति चेद्, इदं यत् शान्तकामाः साधवस्तस्य ज्ञानस्यैव हेतोर्दृढयतनपरा दृश्यन्ते। ज्ञानादेवाज्ञाननिवृत्त्या संसारनिवृत्तिसम्भवादिति भावः।

**भावार्थ – दुःखनिवृत्ति या मोक्ष के उपाय जो भी माने गये हैं वह सब ज्ञान ही हैं। ज्ञानयोग के समान भक्ति भी ज्ञान की एक अवस्था है।**



**शरणागति उपाय स्वीकारात्मक होने से ज्ञान ही है। आचार्य का यह मान लेना कि मेरा शिष्य मोक्ष का उत्तम अधिकारी है, ज्ञान ही है। कर्मयोग भगवत्स्वरूप स्वभाव और अपना स्वरूप स्वभाव, सम्बन्ध और उनके अनुरूप स्वाभाविक कृत्य के बोध से होता है। उसमें बोध की प्रधानता होने से बोध रूप ही माना जा सकता है। सुख और दुःख ज्ञान की ही अवस्थायें हैं। लाभ और त्याग ज्ञान ही हैं। त्यागवृत्ति भी ज्ञान है, संसारबन्धन और मोक्ष भी ज्ञान है। जड़ चेतनात्मक यह सारा जगत् ईश्वर के संकल्प के अधीन होने से ज्ञान ही कहा जा सकता है। प्रधान के द्वारा ही अप्रधान का निर्देश होता है। इसी से तत्त्वबोध से विषयराग समाप्त होने के बाद कुसंस्कारों की निवृत्ति के लिये सत्पुरुष तत्त्वबोध को ही और सुदृढ़ करने में प्रयत्नशील रहते हैं जिससे ज्ञानरूपी अग्नि से सारे प्राचीन कर्म जल जायें और मोक्ष स्वतः सिद्ध हो जाये। ''ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते'' गीता ४/३७ यह भगवान् का वचन हैं।**

**२–स्वाज्ञानात्कर्मवैमुख्यमर्जुनोऽपि बभाज यत्।**
**श्रेयसे प्रेयसे तस्मात् स्वज्ञानं ज्वाल्यतां सदा।।४६।।**

यद् यतः स्वस्यात्मनो नित्यत्व–कर्मवशत्व–सत्कर्मश्रेयस्कत्व भगवदेकशेषत्व–तदेकसंकल्पाधीननिजसकलावस्थाकत्व–मुक्तैकस्वभावकत्वेन मोक्षाधिकारित्व–निरतिशयज्ञानानन्दमयत्वादिमहर्घगुणगणमयत्वस्याज्ञानात् ज्ञानाभावेन निःश्रेयसहेतोर्धर्मयुद्धादपि कर्मणोऽर्जुनः सामान्यतत्त्वधीधवलचेतनोऽपि वैमुख्यम् औदासीन्यम् बभाज स्वीचकार, तस्माद् हेतोः, श्रेयसे आत्यन्तिककल्याणाय प्रेयसे तदुचितावस्थाविशेषलाभाय (सद्भिः) सदा सर्वावस्थासु, स्वज्ञानं स्वगताशेषविशेषविषयको बोधः (दीपइव) ज्वाल्यतां संशयविपर्ययप्रमादराहित्येन सन्दीप्यताम्। अयमेव निःश्रेयसस्यैकः पन्थाः।

*इति द्वितीयोऽध्यायः*

**भावार्थ – ज्ञानप्रधान सात्त्विक चित्त वाला व्यक्ति अर्जुन कहा जाता है। वह भी अपने विषय में अधूरा ज्ञान होने से सत्कर्म से विमुख होकर आत्मकल्याण से दूर जा रहा था। इससे सज्जनों को चाहिये कि अपने बारे समग्र ज्ञान अर्जित करके सदा उसे कायम रखते हुए उसके अनुसार ही जीवन व्यतीत करे। आत्मकल्याण का यह एक ही मार्ग है।**

*दूसरा अध्याय समाप्त*

# अथ तृतीयोऽध्यायः

**कर्मैवोत्थानहेतुः स्वमवहितमलं ध्यायतः स्वेन चैष्यम्,**
**मिथ्यात्मार्थस्थदृष्ट्या चिरविधृतगलत्कर्मबद्धस्य जन्तोः।**
**अज्ञानज्ञानचेष्टाफलविषमदशा सर्वशो लोकवेद्या,**
**श्रेयोमार्गेऽपि तद्वद् भवति सुकृतिनस्तेन तत्त्वे यतन्ते।।५०।।**

अज्ञानतो ज्ञानतश्च कारणम्बन्धमोक्षयोः। कर्मैव देहिनस्तेन कर्म ज्ञानेन योज्यते।– कर्मैवेत्यादिना। मिथ्याऽऽत्मार्थस्थया मिथ्याभूतया, मिथ्याऽऽत्मविषयया, मिथ्यापुरुषार्थविषयया च दृष्ट्या अज्ञानेन हेतुना, चिरेण विधृतेन स्वयं धार्यमाणेनापि, फलानन्तरं स्वयं गलता च्यवता कर्मणा बद्धस्य पिहिततत्त्वदर्शनस्य जन्तोः संसारिचेतनस्य, स्वम् आत्मानं, स्वेनात्मना एष्यं वाञ्छनीयम्पुरुषार्थञ्च, अवहितं सावधानं यथा स्यात्तथा, अलं यावदपेक्षं, ध्यायतश्चिन्तयतः, कर्म नित्यं नैमित्तिकञ्च उत्थानस्य परमार्थसन्निधानस्य, हेतुः कारणम् भवति। तदपि तत्त्वबोधपूर्वकमेव फलतीति पूर्वोक्तं दृढयति–अज्ञानेत्यादिना। अज्ञानज्ञानाभ्याम् प्रयुक्तयोश्चेष्टयोः फलानां विषमदशा विभिन्नरूपता, सर्वशः पूर्णरूपेण लोके लौकिकेषु कृष्यादि सेवादिकृत्येषु वेद्या ज्ञातुं शक्या सर्वैरपि, तथैव श्रेयोमार्गे कल्याणपथेऽपि भवति, तेन हेतुना, सुकृतिनः पुण्यशीलाः सन्तः, तत्त्वे ध्यानार्हे प्रमेये, यतन्ते ज्ञानं शोधयन्त एव कर्मानुतिष्ठन्तीति भावः।

**भावार्थ – संसार में जीवों का उच्चावच भाव कर्मों से ही है। सत्त्वरजतम गुणों का मिश्रण और विभाजन ज्ञान अज्ञान, धर्म, अधर्म, यश, अपयश, सब कुछ कर्मों का ही परिणाम है, अभ्युदय और निःश्रेयस का साधन कर्म ही माना जाता है। अतः यदि हम अपने को और चाहने योग्य उत्तम अर्थों को, मोक्ष और उसके साधनों को ठीक से समझ कर कर्म करें तो संकल्प की शुद्धि से फल भी शुद्ध और उत्तम होगा। अभी तो हम अपने को और पुरुषार्थों को भी ठीक से नहीं समझ पा रहे, इससे निकृष्ट फल वाले कर्म हम से जुड़े हैं। लोक में देखा जाता है कि किसी काम को बिना समझे करने और समझकर करने से फलों में महान् अन्तर रहता है। परमार्थ पथ में भी यह अन्तर रहता है। इससे सत्पुरुष तत्त्वदर्शन में सदा यत्नशील रहते हुए ही कर्म करते हैं।**



**कृत्यैर्ज्ञानप्रमोषो भवति तनुभृतां ज्ञानलब्धिश्च शुद्धै–**
**र्वाचाऽऽचार्यस्य दीप्तैर्भवति भवलयो दीर्घकालानुवृत्तैः।**
**पुष्पेणैकेन मुक्तिं वितरति भगवान् भावशुभ्रेण तस्माद्,**
**देयं ध्येयञ्च वेद्यं हरिरितिसुधियाम्पादपद्मावलग्नैः।।५१।।**

भावशुद्ध्या कर्मशुद्धिस्तेनात्माऽपि विशुद्ध्यति।
स श्रीशकरुणास्नातो राजते परमे पदे।। इत्याह–

कृत्यैर्ज्ञानेत्यादिना। तनुभृताम् अज्ञानवशानां, कृत्यै रागादिप्रयुक्तैः कर्मभिः, ज्ञानस्य स्वरूपबोधस्य, प्रमोषो वारणम्भवति, अथ च शुद्धैः कर्तृत्वभोक्तृत्व–भाववर्जितैस्तैरेव ज्ञानस्य स्वरूपबोधस्य लब्धिरुदयश्च भवति, अथापि आचार्यस्यार्थपञ्चकतत्त्वविदो वाचा उपदेशनिर्देशादेशरूपया, दीप्तैरतितरां ज्ञानप्रकाशितैर्दीर्घकालं यावद् अनुवृत्तैर्जीवनव्यापिभिर्भवस्य संसारबन्धस्य लयोऽन्तो भवति। भावशुभ्रेण निर्ममाहङ्कारदास्यैकरतिप्रयुक्तार्पणेन, एकेन केनापि, पुष्पेणात्यल्पार्थेनापि, भगवान् मुक्तिं सर्वोत्कृष्टपुरुषार्थं, वितरति यस्मै कस्मै चिद् ददाति, इति प्रसिद्धम्, तस्माद् भगवते यद् देयं, दाने यच्च ध्येयन्तदुभयं हरिरित्या भक्त्या, द्वारा सुधियां शुद्धधियाम्भक्तिज्ञानवैराग्यशुभ्रशास्त्रप्रज्ञावतां विदुषाम्, पादपद्मयोरवलग्नैस्तद्भजननिरतैः सद्भिर्वेद्यं वेदितुमनिशं यतनीयमिति भावः।

**भावार्थ – अज्ञान से भावना दूषित होती है। उस अवस्था में किये कर्मों से ज्ञान दबता है तब अज्ञान की स्थिति में ही कर्मफल भोग हो पाता है। किन्तु यदि सत्संगादि से ज्ञान होने से भाव शुद्ध हो जायें तो उन्हीं कर्मों से तत्त्वबोध होता है। सदाचार्य के द्वारा ज्ञान के कुछ अधिक दीप्त होने से वे ही कर्म चिरकाल चलकर संसार बन्धन का नाश भी कर देते है। यदि मुमुक्षु की भावना पूर्ण समर्पण की हो तो उसके द्वारा समर्पित एक फूल भगवान् को इतना प्यारा लगता है कि उसे उस अर्पणमात्र से मोक्ष प्रदान कर देते हैं जब कि भावशुद्धि के अभाव में सौ अश्वमेध के बाद भी स्वर्गतक ही पहुँच हो पाती है। भोगवासना जीव का पीछा जल्दी नहीं छोड़ती, वही इसे संसार में ब्रह्मलोक से पातालतक विचरण कराती रहती है। स्वरूप का स्पष्ट बोध न हो पाने से ही भोगवासना रहती है। इससे मुमुक्षु को चाहिये कि सदा यह समझा करे कि प्रभु को मुझे क्या देना है और हृदय में क्या रखना है। प्रभु**

के चरणों में अनुराग रखने वाले महापुरुषों के चरणों से इस विषय में ज्ञान बढ़ता है। जिज्ञासुओं को उनकी सेवा करते रहना चाहिये।

**ज्ञानान्मुक्तिः प्रसिद्धा भवति तनुभृतां कर्मणा ज्ञानशुद्धिः,**
**कर्मार्थे यत्नवन्तो जगति सुविदिताः सत्त्वसंस्कारवन्तः।**
**न ज्ञानं कर्महीनं न च किमपि कृतं ज्ञानहीनम्प्रसूते,**
**सिद्धिं स्वल्पाञ्च सोऽयम्प्रभवति नियमो वेदवेद्ये महार्थे।।५२।।**

कर्मज्ञानयोर्मिथोऽपेक्षां लौकिकदृष्टान्तेनाह – ज्ञानादित्यादिना। ज्ञानात् तनुभृतां संसारिणाम्, अज्ञानतः क्लेशतो मुक्तिः लोके प्रसिद्धाऽस्ति, ज्ञानस्य शुद्धिश्च कर्मणा प्रसिद्धाऽस्ति। न ह्यक्रियस्य किमपि ज्ञानम्प्रथते। अक्रियो योगी च क्रियापर्यन्तं ध्यायन्नेव सफलं कर्मयोगं जनेषूपदिशति। जगति लोके च कर्मणोऽर्थे तत्सम्पादनाय यत्नवन्तो यतन्तः सत्त्वसंस्कारवन्तः सत्त्वेऽन्तःकरणे ज्ञानसंस्कारसम्पादनपराः सुविदिताः सन्ति। नहि ज्ञानं बिना किमपि स्वल्पमपि कर्म सिद्ध्यति। एवं लोके यथा कर्महीनं ज्ञानं ज्ञानहीनं कर्म च न कामपि सिद्धिंजनयति तथैव वैदेकवेद्ये महति परमार्थे मोक्षेऽपि नियमः प्रभवति। तत्राऽपि कर्मज्ञानयोर्मिथोऽपेक्षाऽस्ति। तेन –

ज्ञानाय यतमानस्य कर्मयोगः सहायकः।
चिकीर्षोः कर्म सफलं ज्ञानयोगः सहायकः।।
पक्षीव परमव्योम यियासुर्ज्ञानकर्मणी।
समम्प्रयुङ्क्ते को भेदः पक्षयोर्वामदक्षयोः।।

भावार्थ – ज्ञान से मुक्ति होती है यह सर्वविदित है किन्तु मुक्ति देने वाला ज्ञान कर्म से ही फल देने योग्य बनता है। लोक में देखा जाता है कि कर्म ठीक करने के लिये प्रशिक्षण लिया जाता है। इस से यह मानना पड़ता है कि कर्म के विना ज्ञान और ज्ञान के बिना कर्म सफल नहीं होता। यह लौकिक नियम अलौकिक पुरूषार्थ स्वर्गादि और मोक्ष में भी समान रूप से लागू होता है।

**यावत्प्राणाः शरीरेऽनुगतकृतफलावाप्तिहेतोश्चरन्ति,**
**यावच्चान्नादियोगाच्छतपरिणतयः सक्रमाः सम्भवन्ति।**
**यावत्स्वर्गापवर्गोदयलयनियताधारभूर्भाति भानु–**
**स्तावत्कर्माणि देही क्षणमपि मनसाऽप्युज्झितुं न क्षमेत।।५३।।**



प्राणिनां कर्मत्यागासम्भवमुपपादयति–यावत्प्राणाइत्यादिना। यावत्कालम्, प्राणा देहवायवः, शरीरेऽन्तरनुगतानां सहचरतां, कृतानाम्पूर्वकर्मणाम्, फलावाप्ति हेतोः फलोपलम्भाय, चरन्ति सञ्चरन्ति, यावच्च अन्नादीनाम् पानघ्राण–लेपनश्वासानां, योगात् शरीरेऽन्तरनुप्रवेशात्, शतम् असंख्या रसादिधातूनाम् परिणतयः, सक्रमाः तत्तत्फलभोगप्रतिक्रियारूपाः, सम्भवन्ति जायन्ते, यावच्च स्वर्गापवर्गयो, र्जगदुदयलययोश्च नियतोऽव्यभिचारी आधारभूः प्रधानहेतुर्भानुः सूर्यो, भाति प्रकाशमानः सर्वान् प्रवर्तयति, तावद् देही शरीरी चेतनः कर्माणि क्षणकालमपि मनसा कल्पनयाऽपि उज्झितुन्त्यक्तुं न क्षमेत प्रभवेत्, भोगायतनस्य शरीरस्य भोगाः कर्माण्येव, शारीराः परिणामाः कर्माणि कर्मान्तरप्रयोजका अपि भवन्ति। सर्वप्राणिप्रवृत्तिसामान्यहेतौ भानौ प्रकाशमाने कर्मविरामस्यासम्भव एवावसेयः।

**भावार्थ – कर्म कभी भी जीवन में छूट नहीं सकते, इससे आत्मकल्याण के लिये कर्मों का ही सहारा लेना आवश्यक है यह बतलाते हैं। जब तक शरीर में प्राण प्रारब्धों के फल देने के लिये गतिशील हैं और जब तक अन्नपान आदि से सैकड़ो रस रक्त आदि परिणाम एक व्यवस्थित क्रम से हो रहे हैं जो अनेक बाहरी कर्मों के निमित्त बनते हैं एवं जब तक भोग से मोक्षतक और सृष्टि से प्रलय तक सारे कर्मकलाप के नियामक सूर्यनारायण आकाश में चमक रहे हैं तब तक कोई भी जीव क्षणभर भी कर्मों के त्याग की कल्पना भी कैसे कर सकता है।**

**विशेष – अवश्य होने वाले कर्म भगवत्संकल्पों के अधीन होने से वे भगवान् को सन्तुष्टि देते हैं किन्तु यदि वे परिष्कृत ज्ञान के द्वारा हुआ करें तो प्रभु को इतनी सन्तुष्टि होती है कि उससे वे उस विवेकी को संसार बन्धन से अलग भी कर देते हैं।**

**लिप्साहानम्प्रहाणम्भवति मतिमतां कर्मणां शर्महेतु–**
**स्तत्त्वज्ञानेन लिप्सा प्रविलयमयते सर्वबाह्यार्थवर्गे।**
**देही बोधेऽप्यबाधं जड इव कुरुते कर्म बद्धः प्रकृत्या,**
**तस्यान्तर्यामिसर्वप्रभवलयमयश्रीशवाञ्छैव हेतुः।।५४।।**

बन्धहेतूनामपि कर्मणाम् मोक्षहेतुत्वम् अनुवृत्तफलेप्सात्यागेन तत्त्वबोधप्रयुक्तेन भवतीत्याह–लिप्साहानमित्यादिना। मतिमतां तत्त्वज्ञानवताम् मुमुक्षूणां

शर्महेतुर्मोक्षकारणं, लिप्सायाः कर्मफलेच्छाया, हानं त्याग एव कर्मणाम् बन्धहेतूनाम् प्रहाणम्भवति, तत्त्वस्यापरिणामिन एकाकारस्यात्मनः स्वरूपस्य ज्ञानेन सकलबाह्यार्थनिरपेक्षत्वप्रकारकबोधेन, सर्वत्र बाह्यार्थवर्गे लिप्सा वाञ्छा प्रकर्षेण विलयं नाशम् अयते प्राप्नोति। फलेच्छानाशेऽपि कर्मप्रवृत्तिर्न हीयत इत्याह—देहीत्यादिना। देही चेतनो, बोधेऽपि कर्मणाम् फलानामपि चेतनास्यानुपयोगित्वनिश्चयेऽपि प्रकृत्या चित्तस्वभावेन बद्धो नियन्त्रितः, जडोऽज्ञानीव, अबाधं निरन्तरं, कर्म शारीरं (यत्) कुरूते, तस्य सर्वान्तर्यामिणः सर्वस्य कार्यवर्गस्य प्रभवलयमयस्य तत्प्रचुरस्य श्रीशस्य परमात्मनो वाञ्छा एव केवलं हेतुः कारणं, नान्यत् किमपि। जडान् कर्मसु रागादिद्वारा प्रवर्तयन्ती प्रकृतिः फलविमुखान् ज्ञानिनोऽपि जीवनयोनियत्नमात्रेण सामान्येन प्रवर्तयति। तस्या अपि प्रवृत्तेर्लोकसंग्रहः प्रपत्तिभावनापरिपाकक्रमेण भगवता कृपाविशेषेण परिग्रहविशेषश्च विशदम् फलं स्यादिति भावः।

**भावार्थ — तत्त्व बोध से आत्मा को किसी भी प्रकृतिविकार की अपेक्षा न होने की बात ध्यान में आ जाती है। तब उस बोध के अभ्यास से फलापेक्षा स्वतः नष्ट हो जाती है। तब इन्द्रादिपद जैसे महान् फलों की भी अपेक्षा नहीं होती। किन्तु तत्त्वदर्शी यदि कोई चक्रवती सम्राट् होगा और सौ अश्वमेध यज्ञ करने का अधिकार और क्षमता रखता होगा तो वह इन्द्रपद की अपेक्षा न रहने पर भी प्रकृति से प्रेरित होकर भगवत्सन्तोष के निमित्त सौ अश्वमेध पूरे करेगा। तब यदि इन्द्र की ओर से ईर्ष्यादिवश बीच में विघ्न हो भी तो ''नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति०'' गीता० २/४० इस नियम से उसका वह कर्म पूरा ही माना जायेगा। बिना विघ्न के सौ अश्वमेध पूरे होने पर भी फलेच्छा के अभाव में उसे फल नहीं मिलेगा। क्यों कि इन्द्रपद के सुख से कुछ बड़े ही उद्देश्य वाले कर्तव्य में वह लगा रहता है। उस कर्तव्य में विघ्न रूप इन्द्रपद को वह स्वीकार ही नहीं करेगा। वह बड़ा उद्देश्य क्या होता है यह जानने के लिये किसी सिद्ध योगी से मिलना होगा जो अपने ध्यान में तीनों लोकों की सारी अवस्थाओं को देखा करता है और वहाँ पहुँचने एवं कुछ हेर फेर करने में भी सक्षम होता है। सिद्ध योगी त्रिलोक से ऊपर की, सिद्धि चाहता हुआ अपने चित्त का परिष्कार करता रहता है। इससे उस में अपहतपाप्मत्व से सत्यसंकल्प तक परमात्मा के महान् आठ गुण प्रकट होने लगते हैं तब वह त्रिगुणात्मक त्रिलोक से ऊपर उठकर शुद्धसत्त्वमय लोक में प्रवेश करता है। कामनाओं का त्याग साधन पथ की पहली सीढ़ी है। उससे ऊपर सिद्धियों के**



**बहुत से स्तर हैं, सबसे ऊपर परमपद है। आश्रितवत्सल भगवान् भक्तों को परम पद तक खींचने के लिये निष्काम कर्म कराते रहते हैं। थोड़ी उडान के लिये छोटे पक्षियों को हल्के पंख मिले होते हैं। ऊँची उडान के लिये गरुड़ जैसे वलिष्ठ पंख चाहिये ही। वही निष्काम कर्म हैं जो गरुड़ की तरह वैकुण्ठ तक पहुँचाते हैं। भगवान् जिस पर दया करते हैं उसे निठल्लों की पंक्ति में नहीं बैठाते।**

**दीर्घानुष्ठानशून्या न भवति सुधियां रागभङ्गाय बुद्धि—**
**र्भग्नो नूत्नम्प्ररोहं दृढमनुभजते हीनसङ्गेन रागः।**
**दुःसङ्गो दैवलब्धः क्षणमपि हरते सन्मतिं यत्नलब्धां,**
**तद्रक्षायै महान्तोऽखिलशुभनिलयं श्रीधरं संश्रयन्ते।।५५।।**

भगवत्परानुग्रहापेक्षया रागात्यन्तोच्छेदपर्यन्तं कुसङ्गवर्जनपुरस्सरम् आजीवनं निष्कामं कर्मानुष्ठेयमित्याह—दीर्घेत्यादिना। सुधियां शुद्धधियाम्मुमुक्षूणाम्, बुद्धिस्तत्त्वधीः, दीर्घकालं यावत् स्वानुगुणैरनुष्ठानैः कर्मभिः, शून्या सती रागभङ्गाय वैराग्याय न प्रभवति। अथ क्षणकालम् भग्नोऽसत्प्रायोऽपि रागो विषयाभिलाषो हीनानां विषयिणां सङ्गेन संसर्गेण नूत्नं नवं, दृढं दुरुच्छेदम् प्ररोहम् अंकुरमिव तरूणाम् अनुभजते, पूर्वरागम् प्रस्तौतीव। उक्तमेव दृढयतिदुःसंगइति। क्षणकालमपि, दैवाद् दुर्भाग्याल्लब्धो दुःसङ्गो यत्नैः शास्त्रशीलनाद्युपायै, र्लब्धां सन्मतिं सत्तत्वविषयां धियम्, हरते अपाकरोति, (तेन) तस्याः सन्मत्या रक्षायै अनुवर्तनाय, महान्तो मुमुक्षवोऽखिलानां शुभगुणस्वभावानां निलयमाश्रयं, श्रीधरं लक्ष्म्याः सकलशुभगुणग्रामरूपाया नियताश्रयभूतं नारायणं सम्यक् शुद्धभावैः श्रयन्ते। शरणं वृणते, विश्वरक्षाधिकृतत्वात्तस्येति भावः।

**भावार्थ — तत्त्वबोध से राग का क्षणिक विनाश सम्भव है किन्तु कुसंग पाकर वह तुरन्त ही कटे पेड़ के अंकुर की तरह नयी मजबूत अवस्था पाकर पहले से भी अधिक विघ्न करता है, इससे ज्ञानानुरूप, अनुष्ठान चिरकाल तक जारी रखना पड़ता है। प्राप्त ज्ञान को कुसंगादि दोषो से बचाने के लिये सर्वरक्षक परमात्मा की निश्छल भाव से शरणागति की जाती है।**

**३—करुणां श्रीहरेर्मत्वा सर्वश्रेयोविधायिनीम्।**
**तस्यै सन्तनुयात्कर्म निःश्वासमिव शान्तधीः।।५६।।**

भगवदुपदेशस्तत्करुणाया एवावतारः सैव सकलं श्रेयः सूते, इति मत्वा

तस्यै करुणायै तामुद्दिश्य, शान्तधीः कामादिरहितचेता मुमुक्षुः, स्वत एव कर्मफलाभिलाषशून्यो, निःश्वासमिवानवरतं सन्त्यक्तफलेच्छञ्च कर्म सन्तनुयाद् विस्तारयेत्, तेन कर्मफलपरम्परां च विच्छिन्द्यात्।

*इति तृतीयोऽध्यायः*

**भावार्थ– तीसरे अध्याय में कर्मयोग का उपदेश है। कर्मों के फल होते आये हैं। संकल्प की शुद्धि से कर्मफल अच्छे होते हैं। अन्तर्यामी प्रभु हमारे चित्त के संकल्पों को पहचान कर समय आने पर उनके अनुरूप फल देते हैं। यह कर्मफलदान का नियम जगद्व्यापार कहा जाता है। जो प्रभु की नित्य दया प्रदर्शित करता है। दया के सिवा जगद्व्यापार का कोई कारण नहीं बनता। हमारे संकल्प प्रभु की दया के अनेक स्तर बनाते रहते हैं। एक ऐसा भी संकल्प होता है जो मोक्ष का कारण बनता है, वह प्रभु की दया को पूर्ण विकसित कर देता है। संकल्प की शुद्धि होती है सत्कर्मों से पापों के धीरे–धीरे कटने से। इससे आजीवन निष्काम कर्म करते ही रहना चाहिये। जैसे हम श्वास छोड़ते रहते हैं फल चाहे विनाही, ऐसे ही अपने अधिकारों के अनुरूप निष्काम भाव से कर्म करने से प्रभु की सन्तुष्टि बढ़ती है, कर्मबन्धन कटते हैं, मुक्ति निकट होती है।**

*तीसरा अध्याय समाप्त*



# अथ चतुर्थोऽध्यायः

**ज्ञात्वाऽऽत्मानम्पुमर्थं कलयति पुरुषस्तत्त्वतस्तस्य लब्ध्यै,**
**कर्मार्हं चारु सूते फलमपि लभते वाञ्छितं दृष्टमेतत्।**
**मुक्त्यै कृत्यं विदित्वा स्वमथ गुरुमुखाल्लोकतो निर्व्यपेक्ष–**
**स्तद्वच्छेषानुरूपस्तुतिनतिचरणार्चासु युज्येत सच्चित्।।५७।।**

कर्मणाम् पूर्तिस्तत्त्वज्ञानाधीनेति तत्प्रस्तौति–ज्ञात्वाऽऽत्मानमित्यादिना। पुरुष आत्मानं तत्त्वतो ज्ञात्वा पुमर्थं वाञ्छनीयमपि तत्त्वतः कलयत्यवधारयति, अथ तत्त्वतः पुमर्थस्य तस्य लब्ध्यै अर्हं योग्यं, कर्म कर्तव्यं, चारु विधिवत्, सूते सम्पादयति, तेन वाञ्छितम् अभीष्टम्, फलमपि शिशुः क्रीडनकं, छात्रः पुस्तकं, युवा युवतीम्, अर्थी धनम, रोगी भेषजञ्च लभते प्राप्नोति, एतद् दृष्टम्, नियमोऽयं लोके सर्वैर्ज्ञायते। तद्वल्लोकवदेव सच्चित् सत्त्वगुणप्रधानश्चेतनो, गुरुमुखात् तत्त्वविदाचार्यस्यानुग्रहात्, स्वम् आत्मानं, कर्मबन्धायोग्यम्भगवच्छेषञ्च, विदित्वाऽवधार्य, एवं वाञ्छनीयाम्मुक्तिं तस्यै कृत्यं विधेयञ्च तत्त्वतो विदित्वा लोकतः पुरुषार्थान्तरादज्ञानलभ्यात्, निर्व्यपेक्षोऽपेक्षारहितो विरक्तः सन्, शेषत्वानुरूपासु स्तुतिनतिचरणार्चासु भगवदर्थासु गुणगानप्रणतिपूजासु निष्कामकर्मयोगरूपासु, युज्येत। परमपुरुषार्थलाभायार्थपञ्चकज्ञानमनुष्ठानपर्यन्त–मर्जयन्ति सन्तस्तद्रहिताश्च तद्वञ्चिता एव भवन्तीति भावः।

**भावार्थ – लोक में देखा जाता है कि जो व्यक्ति अपने को जिस रूप में जानता मानता है उस रूप के अनुरूप ही खिलौना, पुस्तक, विवाह, धन या औषध पाना चाहता है और उपाय करके पा लेता है, ऐसे ही परमार्थ पथ में भी कोई सात्त्विक पुरुष सदाचार्य के द्वारा अपने वास्तव स्वरूप को समझता है, औपाधिक अवस्था को समझता है, वास्तव अवस्था को ही अपेक्षित मानता है उसके लिये उपाय समझता है, बाहरी उपाधि से अपना मन हटाकर वैराग्य धारण करके केवल अपेक्षित अर्थ में ही चित्त लगाकर अपने स्वरूप के अनुरूप उपायभूत स्तुति प्रणाम ध्यान पूजाओं में लग जाता है, एक निष्ठा उसका सम्बल होती है, वही सफलता का रूप ले लेती है।**

**ज्ञानं यज्ञो महीयान् नहि भवति ततो मानसं कर्म शुभ्रं,**
**कर्माण्यन्यान्यनिन्द्यं ददति निजफलं ज्ञानसंशुद्धियोगात्।**
**ज्ञानप्राधान्यमुक्तं सकलबुधजनैः कर्मणां सत्फलानां,**
**धर्मे कामेऽर्थलाभेऽथ च परमफले कर्मबन्धप्रहाणे।।५८।।**

सर्वत्र पुरुषार्थोपायेषु ज्ञानस्यैव प्राधान्यमित्याह–ज्ञानं यज्ञ इत्यादिना। ज्ञानं स्वरूपोपायफलविषयकम्, महीयान् सर्वोत्कृष्टफलः, यज्ञो देवदेवस्य पूजा, भवतीति शेषः। ततोऽधिकं शुभ्रं निर्दोषम्, मानसम्मनःकरणकं, कर्म क्रिया, न भवति हीति प्रसिद्धिः, अन्यानि शरीरवाक्करणकानि, कर्माण्यपि, अनिन्द्यं निर्दोषं, निजम्फलं ज्ञानस्य स्वप्रयोजकीभूतस्य संशुद्धियोगाद् एव ददति प्रस्तुवन्ति, तत्रापि ज्ञानस्यैव प्राधान्यम्भवति। सकलैरपि तत्तत्पुरुषार्थवेदिभि, धर्मे तत्तत्प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपानन्तभेदभिन्ने, कामे षडिन्द्रियसुखजाते, अर्थानां हेमरत्ननृपश्वादीनां लाभे लाभोपायेषु, अथ परमे सर्वोत्कृष्टे लौकिके फले पुरुषार्थे, कर्मबन्धप्रहाणे च ज्ञानस्यैव प्राधान्यम् उपायेषूत्कर्षः, उक्तं स्वीकृतमिति भावः।

**भावार्थ – सभी उपायों में ज्ञान की प्रधानता है, उसे अर्जित करना प्रथम आवश्यकता है, यह कहते हैं। ज्ञान एक महान् यज्ञ है, वह एक मानस कर्म है, जो सारे कर्मों में श्रेष्ठ है, उससे अधिक प्रभावी और निर्दोष कोई कर्म नहीं है। वही परमात्मा की सब से अच्छी पूजा है, दूसरे जो शारीरिक या वाचिक कर्म हैं वे भी अपने प्रयोजक ज्ञान की निर्मलता के अधीन ही अच्छा फल दे पाते हैं। धर्म अर्जित करने में, लौकिक अलौकिक सुखभोगों में और धनार्जन में ज्ञान की ही प्रधानता सारे विशेषज्ञों ने स्वीकार की है, वैसे ही कर्मबन्धनों से छुटकारा रूप जो मोक्ष है उसमें भी ज्ञान की प्रधानता है। अच्छा ज्ञान वही होता है जो अच्छा कर्म करा दे।**

**लब्ध्वा देहम्प्रकृत्या रचयति पृथुकः शैशवे वक्ररेखा–**
**स्ताः शिक्षाभिः सतीभिः सुपरिणतिवशा भान्ति वर्णाः शुभार्थाः।**
**एवं कर्म प्रकृत्या पशुरिव पुरुषोऽर्थव्यपेक्षो वितन्वन्,**
**पश्चाद् गुर्वर्थनिष्ठः सुमतिपरिणताद्दोग्धि तस्मान्महार्थम्।।५९।।**

ज्ञानमेव कर्मणो महार्थतामापादयतीत्याह–लब्ध्वेत्यादिना। देहं शरीरं, लब्ध्या चेष्टमानः, पृथुकोऽर्भकः, शैशवेऽज्ञानावस्थायाम्, प्रकृत्या किञ्चिच्चिकीर्षया,



वक्ररेखा भूम्यादौ रचयति करोति निर्माति, ता एव रेखाः सतीभिर्वर्ण– संकेतोद्देश्याभिः, शिक्षाभिरुपदेशादेशनिर्देशरूपाभिः, सुपरिणतिवशा वर्णसंकेतरूपोन्मुखाः, शुभार्थाः काका, पापा, मामा, राम, नाम, धामादिप्रियार्थबोधिकाः सत्यो भान्ति शिशवेऽपि रोचन्ते। एवम् एव पुरूषोऽपि जगत्यजानन्नेव स्वया प्रकृत्या स्वभावेन, अर्थव्यपेक्षोऽज्ञानादेव स्वोचित– पुरूषार्थापेक्षारहितः सन्, पशुरिव स्वरूपोपेयोपाय ज्ञानाभावेऽपि, कर्म किमपि किमपि, वितन्वन्, गुर्वर्थनिष्ठः सदाचार्योपदिष्ट परमपुरूषार्थ– निविष्टचेताः, सुमत्या तत्त्वधिया, परिणतात् स्वरूपोपेयानुरूपतामाप्तात्, तस्मादेव कर्मणो महान्तं सर्वोत्कृष्टं नित्यम् अर्थम् आनन्दमयमात्मानं, दोग्धि दोषतिमिर– गर्भादाकृष्य पूर्णमाविष्करोति।

**भावार्थ – ज्ञान ही कर्म को उपयोगी बनाता है। जैसे छोटा बच्चा जन्म के बाद अपने बालस्वभाव से सीधी टेढ़ी रेखायें खींचा करता है। उचित शिक्षाओं के द्वारा वे ही रेखायें अच्छे अर्थों वाले वर्ण बन जाती हैं। ऐसे ही अपने पुरूषार्थ को अज्ञानवश न चाहता हुआ पुरूष भी अट पट काम करता रहता है, वही जब पुण्य वश किसी सदाचार्य की शिक्षा पा जाता है तो पुरूषार्थ और उपाय का स्वरूप समझकर उसी अटपट कर्म में सुधार ला कर महान् पुरूषार्थ मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है।**

**ज्ञानं कर्मैकनेयम्भवतिसुकृतिनां धीर्यथार्थाऽप्युदारा,**
**पापिष्ठानामनर्थेष्वपि हितविमुखाऽल्पायुषां कोपभाजाम्।**
**लोके सत्त्वोत्तराणाम्भवति च समये मोक्षमार्गप्रसिद्धि–**
**र्लुप्ता सा पापभाजां हरिगुरुकृपया व्यज्यते पुण्यदेशे।।६०।।**

ज्ञानस्यापि सत्कर्माधीनत्वमाह– ज्ञानं कर्मैकेत्यादिना। लोके सकलसुखदुःखानुभूतिनिमित्तभूतस्य ज्ञानस्य विभिन्नविषयकत्वं कर्मनानात्वैकायत्तं स्याद् अतो ज्ञानं सर्वस्यापि जन्तोः कर्मणैवैकेन केवलेन नेयं तत्तद्धिताहितविषयावगाहि भवति, न तत्र देशकालकुलजातीनाम्मुख्यम्प्– योजकत्वम्, अथ सुकृतिनाम्पुण्यशालिनां धीः प्रज्ञा यथार्था प्रमाभूता, उदारा सामान्यधर्मावच्छिन्नविषयताका च भवति। पापिष्ठानां कृतघोरपापानां, कोपभाजाम् अस्थानेऽपि कुप्यताम्, अत एवाल्पायुषाम् अल्पजीविनां धीः अनर्थेषु अनिष्टविषयेषु भवति, सा हितविमुखाऽपि हितकरविषयस्पर्शशून्या च भवति। एतत्सामान्यनियमानुसारं लोके जगति सत्त्वोत्तराणाम् प्रचुरसत्त्वगुणानां समये कालविशेषे, मोक्षमार्गस्य प्रसिद्धिर्बहुजनवेद्यता भवति। सैव च प्रसिद्धिः पापभाजाम्

प्रचुरदुष्कृतानां जनानां समये लोके लुप्ता अविदितप्राया सती, पुनः सात्त्विकजनेभ्यो हरेर्भगवतो विश्वगुरोः कृपया पुण्ये पावनतमे देशे भारतादौ व्यज्यते प्रथते।

भावार्थ – ज्ञान भी कर्म से ही होता है, उत्तम ज्ञान के लिये उत्तम कर्म करने चाहिये। इसी से देखा जाता है कि कुकर्मियों को अच्छा ज्ञान नहीं होता और सज्जनों की बुद्धि दुर्जनों के बीच भी जल्दी दूषित नहीं होती। पुण्यात्माओं की बुद्धि यथार्थपरक और उदार होती है जब कि पापियों की बुद्धि भ्रमपूर्ण और हित के विरुद्ध हुआ करती है। मोक्षमार्ग उत्तम सत्त्वगुणवाले शुद्ध हृदय महापुरुषों के लिये होता है। उसका बोध भी उन्हें ही होता है। इसीसे वैसे लोगों के अभाव में मोक्षमार्ग अनजाना ही रहता है, एवं जब वैसे अधिकारी जन समाज में होते हैं तो विश्व के गुरु भगवान् नारायण की कृपा से उनके कारक पुरूषों (नारदआदि जैसों) के या महान् आचार्यों के माध्यम से लुप्त हुआ मोक्षमार्ग भारत आदि पवित्र देशों में प्रकाश में आ जाता है।

**ब्रह्माणं नाभिपद्मे सुगणितसमये विश्वनिर्माणदक्षं,**
**सृष्ट्वा सद्योग्यताऽर्थं श्रुतिगणमखिलं चेतसाऽलम्भयद्यः।**
**सोऽयम्पार्थम्परेशः समरधृतधियं तत्त्वबोधाय शास्त्रं,**
**प्राचीनैर्दृष्टसारं जगदुपकृतये दिष्टवान् बोधसिन्धुः।।६१।।**

गीताशास्त्रस्य शाश्वतिकत्वमाह– ब्रह्माणमित्यादिना। यो बोधसिन्धुः सर्वज्ञाननिधानभूतः परमात्मा, सुगणिते सृष्ट्याद्युपयुक्ततया सुपरीक्षिते समयविशेषे, विश्वनिर्माणदक्षं सृष्टिप्रक्रियाकुशलम्, ब्रह्माणमात्मभुवं, स्वकीये नाभिपद्मोद्गते, पद्मे कमले, सृष्ट्वोत्पाद्य, सद्योग्यतार्थं विश्वमूलसत्तत्त्व–सम्बन्धिपरिपूर्णबोधार्थम्, अखिलं समग्रं, सार्थवेदराशिं, चेतसा संकल्पमात्रेण, अलम्भयत् तस्मै प्रापयामास, स एवायम्, परेशः श्रीकृष्णरूपः, समरे नैकमहापुरुषमारणप्राये संगरे, धृतधियं कृतसंकल्पम्, पार्थम् अर्जुनम्, उद्दिश्य प्राचीनैः परमेष्ठिप्रजापतिदेवर्षिराजर्षिभि, दृष्टसारम् अवधारितमुख्यार्थं, शास्त्रं गीताख्यं, जगतः सत्पुरुषाणाम्, उपकृतये कर्मभिरेव कर्मबन्धध्वंससिद्धये, दिष्टवान् प्रीत्यादरसौहार्दसहितम् उपदिदेश।

भावार्थ – यह गीताशास्त्र अनादि है। भगवान् ने इसे इस सातवें मन्वन्तर के आदि में विवस्वान् को पढ़ाया था, गीता ४/१। पहले के मन्वन्तरों में भी पढ़ाया होगा। यह वेदों का ही निचोड़ है, इससे ब्रह्मा को भी वेदोपदेश में मिला होगा। ब्रह्मा जी चिरकाल विश्वसृष्टि करते करते अपने कर्मों के फलस्वरूप स्वयं विश्व का कोई जन्तु बन जायें यह बात भगवान् को पसन्द



नहीं होनी चाहिये इससे उन्हें ऐसा ज्ञान तो मिला ही होगा जिससे वे अपने कर्मों के फन्दे में खुद न फंसें। वह ज्ञान ही गीताशास्त्र है। अनन्त ज्ञानराशि के समुद्र भगवान् नारायण ने पहले की तरह कृष्ण वेश से अर्जुन को माध्यम बनाकर विश्वकल्याण के लिये उसी गीताशास्त्र का उपदेश दिया जिसका निचोड़ प्राचीन महान् अधिकारियों ने पहले भी देखा था।

**जायन्ते देववर्गे नृपशुमुखतनुष्वप्यसङ्ख्यातजीवा–**
**स्तेष्वेकेषां कथाभिर्भवति तनुभृताम्पापनाशः प्रकाशः।**
**अस्त्येको जन्ममृत्युक्षयरहितमहाशक्तिरात्मान्तरात्मा,**
**ज्ञात्वा तज्जन्म कर्म क्षपितभवरुजस्तत्समास्तं लभन्ते।।६२।।**

भगवज्जन्मकर्मरहस्यज्ञानम्मोक्षसाधनमिति भगवदुक्तं ''जन्म कर्म च मे दिव्यम्०'' इति, (गीता० ४/९) सदृष्टान्तमाह–जायन्त इत्यादिना। देववर्गे देवयोनौ, नृयोनौ, पशुषु अपि असंख्याता जीवा देहिनो जायन्त उत्पद्यन्ते, तेषु मध्ये एकेषां विशिष्टानां गणेशमरुदादेर्युधिष्ठिरनलादेरैरावतोच्चैःश्रव आदेश्च कथाभिर्वर्णनैः तनुभृतां शास्त्रप्रामाण्यात् पापनाशः प्रकाशो ज्ञानञ्च भवति। तेषां विशेषा एव ध्याताः पापहानिज्ञानोत्पत्तिप्रयोजका भवन्ति। विशेषाभावे न तत्कथासु विशेषः। तत्र प्रशस्तेषु एकः प्रमेयेषु प्रधानभूतो, जन्ममृत्युक्षयरहितो, महती सर्वकार्यहेतुः, शक्तिः सामर्थ्यं, यस्य स तथोक्त, आत्मनां चेतनानामप्यन्त–रात्माऽन्तर्यामी अस्ति। तस्य दिव्यमसाधारणं जन्माविर्भावः, कर्म च निष्कामं ज्ञात्वा, क्षपितभवरुजः प्रशमितसंसारक्लेशाः सन्तस्तत्समास्तत्तुल्यतां तद्गुणैराप्तास्तं लभन्ते प्राप्नुवन्ति। अयमेव मोक्ष उक्तः। अत आह भगवान् ''त्यक्त्वा देहम्पुनर्जन्म नैति मामेति'' गीता ४/९ इति।

भावार्थ – भगवान् अवतार लेते हैं, धरती पर मानव या पशु आदि योनियों में प्रकट होकर कुछ लीलायें करते हैं। अपने गर्ज से नहीं केवल हमारे लिये। इस लिये कि हम समझें और परमार्थ पथ पर आगे बढ़ें। इसी बात को भगवान् ने ''जन्म कर्म च मे०'' गीता. ४/९ श्लोक से कहा है कि मेरे जन्म और कर्म का रहस्य जो ठीक से जान लेता है वह शरीर छूटने पर दुबारा जन्म नहीं लेता, बल्कि, वह मुझे ही पाता है प्रस्तुत श्लोक में यही बात दृष्टान्त के साथ कहते है कि देवता मनुष्य पशु आदि में भी बहुत ऐसे महान् चेतन हैं जिन्हें जानने से पापनाश पुण्यवृद्धि और ज्ञानवृद्धि होती है। यद्यपि वे संसारवासना युक्त होते हैं फिर भी उनका स्मरण कीर्तन कल्याणकारी

होता है। भगवान् तो नित्य निर्दोष हैं। उन्हें हम अवतार दशा में भी यदि सहज निर्लेप निस्पृह समझ लें और उनके क्रियाकलाप को केवल हमारे जैसों के कल्याण के लिये समझें तो संसारबन्धन से मुक्ति हो जायेगी।

कालेऽनादावनन्ताः प्रतिचिदनुभवाश्चित्रनानावपुर्भि–
र्जाता लुप्तास्तदानीम्परसमयवतां जन्मनां का नु वार्ता।
प्रत्यक्षन्तत्समस्तं कलयति यमयत्यात्मनां धीप्रयत्नान्,
क्रीडन् दिव्यैर्वपुर्भिर्वशयति सुधियस्त्वेष पार्थाश्वयन्ता।।६३।।

सकलफलप्रदस्य भगवतः सततं सकलार्थसाक्षात्कारमाहकालेऽनादा– वित्यादिना। अनादावनारम्भे, काले समये, चित्रैरन्यविलक्षणैराश्चर्यहेतुभि, र्वपुर्भिः शरीरैर्निमित्तभूतैः, प्रतिचिदनुभवा भिन्नतत्तन्नानाचेतनसमवेतानि असंख्यानि ज्ञानानि, जाता उत्पन्नानि, तदानीम् अविलम्बमेव, लुप्ताः स्मृत्ययोग्यदशां गताः, अथ परसमयवताम् अतीतानागतकालिकानां, जन्मनां ज्ञानोत्पत्तीनां, वार्ता का नु स्यात्। अथ एष गीतोपदेष्टा पार्थस्यार्जुनस्याश्वानां यन्ता नियामको भगवान् श्रीकृष्णस्तु, समस्तम् अखिलन्तज्ज्ञातृज्ञेयज्ञानजातम्, कलयत्यवधारयन् भवति, आत्मनाञ्चेतनानां, धियो ज्ञानानि, प्रयत्नांश्चेष्टाहेतून्, यमयति पार्थाश्वानिव स्वाभीष्टपथेषु चालयति, दिव्यैर्भूतसङ्घातविलक्षणैः सात्त्विकतेजोमयैर्वपुर्भि– र्विग्रहविशेषैः, सुधियो भक्तान्, वशयति भक्तिवृद्धिद्वाराऽऽत्मसात् करोति।

भावार्थ – भगवान् ने अर्जुन से कहा है कि तेरे जन्मों के समान मेरे भी बहुत जन्म बीत चुके हैं। मै अपने और दूसरों के बीते सारे जन्म जानता हूँ जब कि तुम अपने भी नहीं जानते। भगवान् अपनी सर्वज्ञता बतलाते हुए सकलफलदायकता सूचित कर रहे हैं। सब कुछ जान कर ही सब कुछ दिया लिया, छोड़ा या जोड़ा जा सकता है। भगवान् अपने अवतारों से भक्तों पर कृपा करते हैं और अन्तर्यामी रूप से संसार का सञ्चालन करते हैं। सारे जीव निजी संकल्प इच्छा और प्रयत्न होने पर भी स्वाधीन नहीं है। उनके सारे संकल्प आदि भगवान् के नित्य संकल्प के अधीन हैं।

कार्यं वाऽकार्यमेतच्छुभफलमफलं किन्नु दुःखानुबद्धं,
नो हेयं सत्फलत्वादिति वितथमतिः कर्मभिर्बन्धभागी।
कर्मैवैतत्फलम्मे हरिविशददयाहेतुतैकप्रकारं,
कृत्येष्वेवं समस्तेष्वविहतधिषणः कर्मठो न्यस्तकर्मा।।६४।।



निष्कामभगवत्कैङ्कर्यरूपातिरिक्तरूपाणि कर्माणि बन्धहेतव इत्याह– कार्यवाऽकार्यमित्यादिना। भगवत्कैङ्कर्यभावविधुरचेतसि नाना कर्मविकल्पा बन्धहेतवो जायन्ते। यथा एतत् कार्य वाऽकार्यं, शुभफलं शुभम्, अफलं निष्फलं वा स्यात्, किन्नु शुभफलमपि दुःखानुबद्धं शुभफलेन सहैव दुःखमपि जनयेत्, किञ्चिदशुभयोगेऽपि नो हेयं न त्याज्यं, सत्फलत्वात् शुभफलहेतुत्वात् इति एवम्प्रकारा वितथा मिथ्या मतिः धीर्यस्य स कर्मभिः स्वकृतै, र्बन्धभागी (स्यात् अथ) एतद् गुणकृतस्वभावानुबद्धं क्रियमाणं करिष्यमाणञ्च कर्म एव मे फलं नत्वनन्तरभावि किमपि दृष्टादृष्टम्, सुखदुःखान्यतरभिन्नस्य फलत्वानङ्गीकारात् कर्मणः कथम्फलत्वमित्यत्राह–हरिविशददयेति। हरेः सर्वनियन्तुरीश्वरस्य विशदा निरतिशयानन्दमयपरमपुरूषार्थमोक्षफलावधिका, दया करुणा, तस्यास्तन्निरूपिता या हेतुता निमित्तता, सैव एकोऽद्वितीयः प्रकारो मद्बोधविशेषणं यस्य तत्तथोक्तं (कर्म) मे मदभिलषितम् फलमित्युक्तम्। सुखहेतूनां सर्वेषामेव लोके फलत्वाङ्गीकारदर्शनान्महाफलानां सत्कर्मणाम् फलत्वस्वीकारो निर्बाध इति भावः। एवम् उक्तप्रकारा समस्तेषु निखिलेषु, कृत्येषु स्वानुष्ठानेषु, अविहता निर्बाधा, धिषणा धीर्यस्य स तथोक्तः, कर्मठः कर्मसु घटमानः पुमान्, न्यस्तकर्मा परित्यक्तसकलकृत्यःस्यात्। जीवतो निश्चेष्टतारूपायास्त्यक्तकर्मताया असम्भवाद्, अज्ञानावस्थायाम् फलत्वेन कल्पितेष्वर्थेषु तत्त्वबोधोत्तरं तेषु फलधीविरहस्यैव फलत्यागकर्मत्यागत्वाङ्गीकारस्य युक्तत्वादिति भावः।

भावार्थ – अपने कर्तव्यों के लौकिक फलों को ईश्वर के लिये या ईश्वर की प्रतिमूर्ति समाज के लिये मानते हुए उन फलों में तनिक भी स्पृहा न रखते हुए कर्म करने से कर्मों का कोई संस्कार जिसे अदृष्ट कहा जाता है वह नहीं बनता, तब उसके द्वारा होने वाला कोई शुभ या अशुभ फल वर्तमान या अगले जीवन में नहीं मिलता। कर्मों के बन्धन से, जिन्हें हम भव–बन्धन भी कहते हैं, छूटने का यह एक सरलतम साधन है, किन्तु यह साधन उन्हें ही मिल पाता है जो ठोस तत्त्वदर्शन प्राप्त कर चुके होते हैं। वे ही फलों को अपने लिये वैसे ही व्यर्थ समझते हैं जैसे समृद्ध लोग गरीबों का मोटा भोजन अपने लिए व्यर्थ समझते हैं। जब अपने शुद्ध आत्म स्वरूप का बोध हो जाता है तो लौकिक आवश्यकतायें अति सीमित होकर समाप्त हो जाती हैं, तब अवधूत भाव स्वतः बन जाता है। वह भाव वास्तव होना चाहिये। दम्भ पाखण्ड से भी वह भाव समाज में प्रदर्शित किया जाता है। लौकिक फलों की स्पृहा न रहने पर भी कर्म होते हैं। जैसे कोई किसी अशक्त को पीड़ा

पहुँचाता है तो सक्षम कोई, दयालु व्यक्ति बचाव करता है। वह बचाव उसका सहज मानव धर्म होता है जिसकी शिक्षा उसे प्रकृति से ही मिली होती है। कुछ कर्म श्रद्धा से भी होते हैं, जैसे किसी वृद्ध व्यक्ति के लिये कोई युवक गाड़ी में अपनी सीट छोड़ देता है, बाहर से चाय लाकर उसे भेंट करता है। परिचय के बिना ही उसका सामान चढ़ा उतार देता है। ऐसे ही जप, पाठ, दान, व्रत , होम, पूजा आदि कर्म भी किसी अदृष्ट शक्ति की सन्तुष्टि के लिये, न कि अपने किसी स्वार्थ के लिये, कुछ लोग करते है। इसे ही शास्त्रीय भाषा में निष्काम कर्म योग कहते हैं। ऐसे कर्मयोगी अपने किसी भी कर्म का दृष्ट या अदृष्ट फल बिना चाहे ही करते हैं। क्यों करते हैं? शुद्ध आत्मा का यह स्वभाव होता है। नित्य शुद्ध परमात्मा सारे विश्व की सृष्टि रक्षा और पालन करते हैं, सृष्टिकाल पूरा होने पर पुनः सृष्टि के लिये वर्तमान को समेट लेते हैं, यही उपसंहार या संहार कहा जाता है। आजतक इस सृष्टि प्रक्रिया से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ, न होना है न उन्हें कोई अपेक्षा है फिर भी दयावश वे यह कार्य कर रहे हें। जीवों को कर्मफल मिलते रहें और मुक्तियोग्य जीव छुटकारा पायें इसी के लिये वे यह करते रहते हैं। अतिशय समानता से जीवों को भगवान् अपना मानते हैं और उनके हित के जोगाड़ करते रहते हैं। जीव भी उन्हें अपना प्रभु मानकर कहीं न कहीं सिर झुकाते फूल फल जल समर्पित करते हैं। अपनापन जितना साफ समझ में आता है, उतना ही उक्त प्रणाम आदि कर्मों का शुभफल सामने आता है। ऐसे लोगों का मन अपराधों में नहीं लगता, न काम्य कर्मों में लगता है, वे केवल नित्य नैमित्तिक कर्म करते हैं और स्वरूपप्रयुक्त ध्यान अर्चन प्रणाम आदि तो करते ही हैं। इन्हें ही नैष्कर्म्यसिद्धि प्राप्त होती है जो परमार्थ पथ का ऊँचा गन्तव्य मानी जाती है। वे अपने कर्मों के विषय में कार्य अकार्य, सुफल, कुफल, मिश्रफल उपादेय, आदि भेदों का चिन्तन न करके केवल इतना समझते हैं कि यह जो मेरे द्वारा हो रहा है वह केवल प्रभु की सन्तुष्टि का हेतु है, उनकी सन्तुष्टि ही मोक्ष पर्यन्त सिद्धियाँ प्रस्तुत करती हैं। वे कर्मठ तो होते हैं किन्तु कर्मों का दृष्ट अदृष्ट कोई फल न होने से वे वास्तव संन्यासी माने जाते हैं।

आत्मा स्वेनैव तुष्टो भवविभवभवास्तोषदा नैव भावा,
देहेऽहम्बुद्धियोगात्सुमतिविरहतः पञ्चखाहारयोगः।
कस्यार्थे ज्ञानवन्तो निकटलयवशं बिभ्रतो देहपिण्डं,
कुर्युः कर्माणि देवः शुभमनसि वसंश्चेन्न सन्तोषमेति।।६५।।



आत्मनो नैसर्गिकीं निष्कामतामाह–आत्मा स्वेनैवेत्यादिना। आत्मा चेतनः स्वेन स्वरूपेणैव, तुष्टो बाह्यार्थनिरपेक्षो भवति। भवे जगति, ये विभवाः स्त्रीपुत्रमित्रबन्धुनीतिसुवर्णादयस्तैर्भवन्तो ये मोदप्रमोदान्नपानासन–शय्याविजयसम्मानकीर्तिस्वर्गादयो भावाः स्वसुखैकपर्यवसानास्ते, नैव तोषदाः, स्वरूपसुखोत्तीर्णसुखविशेषस्यासत्त्वात्, स्वरूपसुखस्य च नित्यसिद्धत्वाद् वास्तवसुखहेतवो न भवन्ति। बाह्यार्थापेक्षा तु देहेऽहम्बुद्धियोगात् स्वयम् अहमिति नित्यम्प्रकाशमानस्यात्मनः स्वकर्मजदेहवैशिष्टयवशात् सुमतेः स्वरूपैक–पर्याप्ताहम्बुद्धेर्विरहतोऽभावाद् हेतोः पञ्चानां खानाम् इन्द्रियाणां ये आहाराश्शब्दादयस्तेषां तेषूलभ्यमानेषु भोग्यतामतेश्च योगो भवति।

अयमेव कर्मबन्धः संसारबन्धः। किन्तु ये ज्ञानवन्तः स्वस्वरूपदर्शन–मात्रतुष्टचेतसस्ते निकटलयवशं सन्निहितविनाशं, देहरूपम् पिण्डं लोष्ठादितुल्यं, शीर्यत् तरुदलतुल्यं वा बिभ्रतो धारयमाणा अपि तत्पतनं सन्निहितम्पश्यन्तः कस्य देहस्य तदनुबन्धिनां वाऽर्थे प्रयोजनाय कर्माणि नित्यनैमित्तिकानि स्तुतिनतिपूजादीनि च कुर्युः सम्पादयेयुः, चेद्यदि शुभे निस्तमस्के भक्तियुते मनसि वसन् देवः परमात्मा सन्तोषं न एति न प्रसीदति। हरिसन्तोषातिरिक्त–स्यार्थस्याभावे ज्ञानिनां सकलकर्मविरामस्य जीवितोच्छेदमयस्या–वश्यम्भावादित्यर्थः।

भावार्थ – आत्मा को प्राकृतिक किसी भी वस्तु की कभी कोई अपेक्षा नहीं है, वह अपने आप में सन्तुष्ट रहता है। कर्मों के प्रभाव से उनके फल पाने के लिये उसे शरीर मिला होता है और फल के लिये ही देह इन्द्रिय आदि में उसे अहंकार ममकार होता है। उसकी तत्त्वदृष्टि दबी होती है, इससे पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से शब्दादि पाँच विषय उसे आहार की तरह मिलते रहते हैं। किन्तु जो तत्त्वदर्शी हैं, देहादि में अहम् मम भाव नहीं रखते, लौकिक कुछ भी अर्थ पाना नहीं चाहते वे यदि कुछ कर्म करते हैं तो वह किस उद्देश्य से करते होंगे। उत्तर एक ही है कि वे अन्तर्यामी परमात्मा की व्यापक प्रेरणा से कर्मों में अपने को प्रवृत्त पाते हैं, कर्मों का कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। क्षणभङ्गुर देह के प्रति आस्था न रहने से देहानुबन्धी फल वे चाहते ही नहीं।

सर्वार्थानां नियन्ता सकलतनुभृतां कर्मणाम्मुख्यकर्ता,
दाता तत्तत्फलानाम्परिणतिसमये मोहतः प्राक्कृतानाम्।

**निर्वोढा सृष्टितन्त्रे सहचरितरमामोदहेतोरजस्त्रं,**
**संकल्पाद्यस्तु विश्वं गमयति स कथं निष्क्रियाणाम्प्रसीदेत्।।६६।।**

कर्मशीला एव प्राकृतिकसर्वकर्ममयस्येशितुः प्रिया न तु ज्ञानमूढा इत्याह– सर्वार्थानामित्यादिना। सर्वेषां द्रव्यगुणादिपदार्थानां धर्मार्थादीनाम्पुरूषार्थानाञ्च, नियन्ता स्वरूपस्थितिपरिणतिप्रवृत्तीनां निर्वाहकः, सकलानां स्थावरजङ्गमानां, तनुभृतां कर्मणां सर्वव्यापाराणाम्, मुख्यः प्रयोजकः, कर्ता तत्तदुपादानगोच– रापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमान्, एवम् मोहतो देहात्मतादात्म्याध्यासतः प्राग्जन्मसु कृतानां कर्मणाम् परिणतिसमये तत्तत्कर्मपरिपाकावसरेषु तत्तत्फलानाम् प्रियाप्रियाणां दाता उपलम्भकः (एवं) सृष्टितन्त्रे विश्वनिर्माणनियमसमूहे निर्वोढा पदार्थानां धारणपोषणादिपरो यस्तु परमात्मा सहचरिताया रमाया मोदस्यानन्दविशेषस्य हेतोरुद्देश्येण, स्वस्यासाधारणधर्मभूतात् संकल्पाद् विश्वं जगद् अजस्रम् अविरामं गमयति सञ्चालयति स निष्क्रियाणां यत्किञ्चिज्ज्ञानलब्धमृषासन्तोषाणा– मलसानाञ्च कथं केन हेतुना प्रसीदेत् तद्वाञ्छापूरणपरो भवेत् नित्यसक्रियस्य निष्क्रियान् प्रति स्नेहोदयासम्भवादिति भावः।

भावार्थ – कर्मशील व्यक्ति ही प्रभु की कृपा पा सकता है न कि प्रमाद आलस्य या अज्ञान से कर्म त्यागने वाला, इस आशय से कहते हैं कि जो प्रभु विश्व के सारे पदार्थों, पुरुषार्थों के नियामक हैं एवं संसार के सारे जीवों के द्वारा होने वाले सारे कर्मों के प्रयोजक हैं, देहात्मविवेक के अभाव में पहले हुए कर्मों के परिपाक के समय उन उन फलों को प्राप्त कराते हैं, जो सृष्टि के सारे पदार्थों और नियमों का निर्वाह कर रहे हैं जो सदा साथ रह रही लक्ष्मी जी की सन्तुष्टि के लिये अपने नित्य संकल्प से जगत् का नित्य संचालन कर रहे हैं, ऐसे सब तरह से सक्रिय प्रभु निष्क्रियों पर कैसे कृपा करेंगे। उनकी किसी भी इच्छा की पूर्ति में वे क्यों सहयोग करेंगे।

**४–सत्कर्म तत्त्वधीपूर्वं सोत्साहं सुचिरं कृतम्।**
**सायुज्यं श्रीहरेः सूते सुहृदः शुभकर्मिणाम्।।६७।।**

अथाध्यायमुपसंहरन्नाह सत्कर्ममहिमानं–सत्कर्मेत्यादिना। तत्त्वधीपूर्वं विधिवदर्थपञ्चकबोधपुरस्सरम्, सोत्साहम् फललाभविश्रम्भेणानुपेक्षितेति– कर्तव्यताकं, सुचिरम् आजीवनं, कृतमनुष्ठितं, सत् निष्कामतयाऽविनाशिफलं,



कर्म भगवदर्था मनोवाक्कायव्यापाराः, शुभकर्मिणान्तथोक्तकर्मानुष्ठानिनां, सुहृदो हितकरणावसरप्रतीक्षस्य, भगवतः, सायुज्यं समानस्थानभोगलाभं, सूते जनयति।

*इति चतुर्थोऽध्यायः*

**भावार्थ – दूसरे अध्याय में स्वरूपनिष्ठा पर जोर दिया गया और तीसरे में कर्तव्यों पर। किन्तु कर्तव्य तो स्वरूप निष्ठापूर्वक ही होने चाहिये, तभी कर्म मोक्ष के साधन बनते हैं। भगवत्सम्बन्ध और प्रकृति सम्बन्ध समझने पर ही चेतन का स्वरूपबोध पूरा होता है। तभी स्वरूपनिष्ठा बन पाती है और तभी कर्मों से पापनाश और प्रभुकृपा की बात हृदयङ्गम होती है। तब कर्मों के प्रति पूरा उत्साह और सातत्य बनता है। तभी प्रभु की कृपा का चरम फल मोक्ष प्राप्त होता है। यही बात इस चौथे अध्याय में कही है।**

*चौथा अध्याय समाप्त*

# अथ पञ्चमोऽध्यायः

**चेष्टाः सर्वाः शरीरे श्वसितखरचितास्तादृशा नात्मनः स्यु–**
**र्ज्ञानेच्छायत्नधारा अपि खलु बहुशो देहयोगैकसाध्याः।**
**भोगा अज्ञानकर्मोच्चयविहितबला नैव शुद्धात्मनो मे**
**जानन्नेवं सुयोगी भवतिमिरहरं ज्वालयेज्ज्ञानदीपम्।।६८।।**

अत्र पञ्चमेऽध्याये शुद्धस्यात्मनः कर्मसंसर्गाभावम्प्रतिपादयन्नाह–चेष्टा इत्यादिना। शरीरे कर्मेन्द्रियेषु नाड़ीषु च जायमानाः, सर्वा अखिलाश्चेष्टा यत्नजा व्यापाराः, श्वसितेन प्राणेन, खैरिन्द्रियैश्च, रचिताः सम्पादिता यादृशा भवन्ति तादृशा आत्मनः केवलस्य, न स्युर्न भवेयुः। कर्माधीनदेहेन्द्रियवत एवात्मनः कर्मफलभोगहेतुसर्वव्यापारदर्शनात्। एवं सर्वचेष्टाहेतवो ज्ञानेच्छायत्नानां धाराः क्रमा अपि खलु बहुशो बाहुल्येन देहयोगेनैकेन साध्या जननीया भवन्ति। न हि निर्देहस्यात्मनो ज्ञानं हानोपादानोपेक्षाविषयं जायेत। भोगास्तत्तद्विषयानुभवा मनोव्यापारा अपि अज्ञानेन देहात्मभेदविस्मरणेन, जातानि यानि कर्माणि तेषामुच्चयेन समुदायेन विहितबलाः सम्पादनीया भवन्ति। नैव ते शुद्धस्य कर्मसंसर्गशून्यस्यात्मनश्चेतनस्य मे स्युः। एवं कर्मदेहेन्द्रिययोगवियोगभेदेनात्मानं जानन्ननुभवन् सुयोगी शास्त्राधीतात्मतत्त्वध्यानयत्नप्रथितो मुमुक्षुः, भवः संसार एंव तिमिरं स्वाज्ञानं तस्य हरं विरोधि ज्ञानं स्थितप्रज्ञतारूपं दीपम्प्रकाशं ज्वालयेत्प्रवर्धयेत् नान्यः शास्त्रज्ञानविधुर इति भावः।

**भावार्थ – भगवद्गीता के पाँचवे अध्याय में बतलाया गया है कि सारे कर्म प्रारब्धाधीन देह इन्द्रिय आदि के द्वारा होते हैं, उनके फल भी देह इन्द्रियों के सहारे ही मिलते हैं। मोक्ष दशा में देहइन्द्रिय सम्बन्ध नहीं रहता, तब न कर्म होते हैं न फल भोग होते हैं फिर भी आनन्द भरपूर होता है। आनन्द तो अपना स्वरूप ही है। यही तथ्य इस श्लोक में है। देखा जाता है कि सारी चेष्टायें प्राण मन इन्द्रियों के सहारे होती हैं इससे चेष्टाओं को उनके ही अधीन मानना पड़ता है। केवल आत्मा में यह सम्भव नहीं है। चेष्टाओं के मूल ज्ञान इच्छा और प्रयत्न भी प्रायः देह के योग से होते हैं।**



**कर्मफलभोग भी अज्ञानमय प्रारब्ध कर्मों के सहारे होते हैं। शुद्ध आत्मा को विषयभोग नहीं होते। मुमुक्षु योगी यह तथ्य जानता हुआ अपनी बुद्धि आत्मस्वरूप में टिकाये रहता है जिससे परमार्थ पथ में उसका प्रकाश बना रहता है।**

**देहोऽयं कर्मभिः स्वैः फलजननफलो गर्भ एवोपपन्नो,**
**नित्यात्माधीनसत्त्वः श्वसितखगणवान् वर्धते मोहवृष्ट्या।**
**मोहं रुन्धंस्तु योगी स्वनियतमनसा कर्मभिर्धार्यमाणे,**
**सन्नत्रैवात्मभासा हरति जनिततिम्भानुवद्ध्वान्तजालम्।।६९।।**

देहस्य तत्त्वम्फलमप्याह – देहोऽयमित्यादिना। अयमुपलभ्यमानोऽस्माकं देह उपचयशीलः पिण्डविशेषो मातुर्गर्भ एव कर्मफलानां जननम् उत्पादनम् फलम् उपयोगो यस्य स तथोक्त उपपन्नः फलहेतुतत्तद्विशेषविशिष्टो भवति। अपि च नित्यस्यात्मनोऽधीनं सत्त्वं स्थितिर्यस्य स तथोक्तः, श्वसितम्प्राणाः, खानीन्द्रियाणि च तेषां गणः समूहस्तद्वान् तद्युतः, मोहस्य जलस्येव, वृष्ट्या वर्षयेव, बहिर्देशादिव कर्ममेघप्रयुक्तनिपातेन मोहमयेन सुखविशेषेण वर्धत उपचीयते। योगी ध्यानप्रयत्नशीलस्तु मुमुक्षुः, स्वनियतेन स्वस्वरूपनिष्ठेन, मनसा चेतसा, मोहम् अज्ञानं, रुन्धन् वारयन्, कर्मभिः प्रारब्धैरत्रैव देहे, सन् अवस्थितः, आत्मभासा स्वस्वरूपसाक्षात्कारेण, भानुवत् सूर्यवद्, ध्वान्तजालं तमोराशिमिव, ध्वान्तजालं, जनिततिं जन्मपरम्परां हरति निवारयतीति भावः।

**भावार्थ – यह शरीर अपने उत्पादक कर्मों के अनुसार गर्भ में ही कर्मफल देने के योग्य बना होता है। इसका अस्तित्व नित्य आत्मा के अधीन होता है, यह संसार में सदा ही प्राणों और इन्द्रियों के साथ रहता है, इसका विकास सदा ही मोह रूपी जलवृष्टि से होता है। योगी तो आत्मदृष्टि रखता हुआ सदा मोह का निवारण करता रहता है और अपने आरम्भक कर्मों के द्वारा धारण किये हुए इस शरीर में रहता हुआ ही आत्मदृष्टि से सूर्य की भाँति अज्ञान अन्धकार की जन्मपरम्परा को जो कि अज्ञान से ही जारी रहती है, दूर करता है।**

**जानानः श्रीशशेषं जगदिदमखिलं ज्ञानवाञ्छाप्रयत्नां–**
**स्तच्छेषत्वेन गृह्णंस्तनुवचनमनःकर्मजालं वितन्वन्।**
**श्रीशेनैव प्रयुक्तन्तदपि नियमतः सद्वचोभिर्विजान–**
**न्नात्मानं शून्यकल्पं कलयति सुमतिः सन्ततं सत्पथस्थः।।७०।।**

आत्मनो निर्विशेषत्वम्प्रस्तौति– जानान इत्यादिना। इदमखिलं जगत् संसारं, श्रीशस्य विष्णोर्भगवतः, शेषं लीलोपकरणभूतं, जानानोऽवगच्छन् स्वीयानन्यदीयांश्च ज्ञानवाञ्छाप्रयत्नान् कर्महेतून् तस्यैव श्रीशस्य शेषत्वेन गृह्णन् स्वीकुर्वन्, तन्वा वचसा मनसा च कर्मजालं नित्यनैमित्तिकादि, वितन्वन् सम्पादयन्, तत् कर्मजालमपि, सतां सद्भिर्वचोभिः सात्त्विकशास्त्रवचनैर्गीतादिभि "बुद्धिर्ज्ञानम्" १०/४,५ इत्यादिभिश्च, नियमतो नित्यं श्रीशेनैव प्रभुणा, प्रयुक्तं संकल्पितं, विजानन् विशिष्यापि प्रत्येकमनुभवन्, सत्पथस्थः सात्त्विकमोक्षमार्गनिष्ठः सुमतिः सात्त्विको मुमुक्षुः, आत्मानं स्वं, शून्यकल्पम् अशेषबन्धहेतुविशेषरहितं, सन्ततमविरामं, कलयति चेतसा पश्यति।

**भावार्थ – आत्मा अज्ञानवश अपने में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का आरोप करता है, वह आरोप ईश्वरीय व्यवस्था में सही मान लिया जाता है, इस से उसे कर्मफल मिलते रहते हैं, यही उसका संसार होता है। वास्तव में इस जगत् में जीव का अपना ऐसा कोई स्वामित्व नहीं है जो ईश्वराधीन न हो, भोग भी सारे कर्माधीन एवम् ईश्वरीय संकल्प के अधीन होते हैं, जीव जो भी समझता चाहता और प्रयत्न करता है वह सब ईश्वरीय संकल्प के अधीन होता है, फलतः उसके किये सारे कर्म ईश्वर के ही किये होते हैं किन्तु वह माना करता है कि मैंने किये है, इससे फल उसे मिला करते हैं। जिसे सत्पुरुषों की वाणी से ईश्वर के व्यापक प्रमुत्व का बोध हो चुका होता है वह अपने लिये कुछ नहीं चाहता न अपने लिये कुछ करता है, वह तो शून्य की तरह आकाश की तरह, अपने को मानता हुआ, सन्मार्ग पर टिका होता है। शेषत्वबोध से वह रागद्वेषों से रहित होता है, इससे कर्मों के शुभाशुभ फलों से भी नहीं बन्धता। अज्ञाननिवृत्ति से अपराधनिवृत्ति और उससे दण्ड निवृत्ति देखी जाती है, यही नियम अध्यात्मपथ पर भी चलता है।**

**बुद्ध्याऽहम्बुद्धिशुद्धौ भगवति सकलं यत्नजातं विजानन्,**
**नैवेच्छन्न द्विषंश्च क्वचिदपि सुमतिर्नश्यदज्ञानबन्धः।**
**ध्यायन् कारुण्यसिन्धो रसमयचरणौ देहपाते तदाप्तौ,**
**विश्रब्धो न्यस्तसर्वो निरुपधिशरणे चेतसा वष्टि वासम्।।७१।।**

पूर्वोक्तमेव विशदयति–बुद्ध्येत्यादिना। बुद्ध्या सच्छास्त्राभ्यासज–याऽऽत्मविषयया प्रज्ञया, अहम्बुद्धेः स्वस्वरूपज्ञानस्य, शुद्धौ तत्तन्मृषाविशेष–विगमक्रमेण सन्मात्रात्मतत्त्वनिष्ठताऽऽपत्तौ शेषत्वबोधवैशद्ये च, सकलम्



प्राणिसामान्यगतं स्वीयञ्च, यत्नजातम् प्रयत्नसामान्यम् भगवति परमात्मनि तत्संकल्पायत्तं, विजानन् तत्तत्प्रयत्नानि विशिष्यापि जानन्, सुमतिरभ्रान्तो मुमुक्षुः, (क्रमेण) नश्यन् अपगच्छन् अज्ञानरूपो बन्धो यस्यासौ तथोक्तः, क्वचिदपि विषये, नैव इच्छन् न द्विषंश्च, कारुण्यसिन्धोर्दयासमुद्रस्य भगवतो, रसमयौ भक्तिविषयौ, चरणौ ध्यायन् देहपाते प्रारब्धक्षये तयोश्चरणयोराप्तौ लाभे, विश्रब्धो दृढविश्वासो, न्यस्तसर्वो भगवदीयानेव सर्वानर्थान् आत्मानञ्च विजानन्, आत्मपर्यन्तान् सर्वान् अर्थान् भगवदेकशेषत्वेनावधारयन्, निरुपधिशरणे स्वाभाविकसुहृदि त्रातरि परमात्मनि, वस्तुं स्वस्वरूपानुरूपम् अवस्थातुं, चेतसा सविश्रम्भं, नतु वागादिमात्रेण, वष्टि सततम् अविस्मृत्याऽप्रमादेन वाञ्छन् आस्ते।

**भावार्थ – जब मुमुक्षु सत्संग में शास्त्रवचनों से अपने आप को पहचान लेता है, देह इन्द्रिय आदि आगन्तुक विशेषणों को छोड़कर अपने शुद्ध चैतन्यमय रूप में आस्था पा लेता है एवं व्यापक शेषत्वबोध से संसार के सभी चेतनों के क्रियाकलाप को ईश्वरीय मानने लगता है, फलतः अपने आपको भी ईश्वरीय एक उपकरणमात्र मानने लगता है, बुद्धि में सत्त्वगुण की प्रधानता होने से धीरे–धीरे उसका अज्ञान बन्धन कटने लगता है, तब वह न कुछ चाहता है न किसी से द्वेष करता है, वह तो स्वभाव से ही दयासमुद्र भगवान् के भक्तिरसपूर्ण चरण युगल का ध्यान करता हुआ, प्रारब्ध के अन्त में उनकी प्राप्ति का भरोसा रखता हुआ, तत्त्वबोध से सब कुछ ईश्वर में ही स्थित मानता हुआ, अन्यत्र कहीं भी लगाव नहीं रखता और स्वाभाविक सर्वरक्षक परमात्मा में नित्य निवास की इच्छा लिये रहता है।**

**या या चेष्टा स्वभावाद् भवति तनुभृतः सत्फला वाऽन्यथा वा,**
**सर्वा सत्पुण्यगण्या यदि हरिपदयो रागतः स्यात् प्रवृत्तिः।**
**शेषः सर्गावसाने प्रदहति भुवनं कृत्स्नमस्यन् विषाग्निं,**
**नागं वा कच्छपोद्धं विपिनजलधितोऽश्नन् शुभो वैनतेयः।।७२।।**

भगवद्भक्तिरेव सर्वदोषनिबर्हणसत्पुण्यवृद्धिहेतुरित्याह–या या इत्यादिना। तनुभृतो देहिनो या या चेष्टा सफला वाऽन्यथा विफला दुष्फला वा स्वभावाद् देशजातिवंशवयःप्रयुक्ता भवति सा सर्वा सत्पुण्येषु भक्तिकोटिगतासु गण्या भगवताऽपि मन्तव्या स्याद् यदि चेष्टासु प्रवृत्तिर्हरिपदयो रागतः परिपूर्णस्नेह–प्रयुक्ता स्यात्। अत्र दृष्टान्तमाह–सर्गावसाने प्रलये शेषनागो भगवदंशो विषाग्निम् मुखतोऽस्यन् विष्वक् क्षिपन् भुवनं त्रिलोकम् प्रदहति भस्मसात् करोति। तथाऽपि

भगवत्सङ्कल्पाधीनचेष्टतयाऽसौ भगवतोऽतितराम् प्रिय एव। एवं वैनतेयो गरुड़ो, नागं गजराजं, कच्छपोद्धम् महान्तं कूर्मं विपिनेऽरण्यत एकान्तस्थितं, जलधितो महासमुद्रलीनमनपराधम्, अश्नन् भक्षयन् अपि शुभो भगवता सर्वदर्शिनाऽपि प्रशंसनीय एव न तु दण्डनीयो भवतीति भावः।

**भावार्थ – भगवान् के चरणों में अनुराग अपराधों को भी पुण्य के रूप में बदल देता है यह बात दृष्टान्त पूर्वक कहते हैं। यदि भक्त के हृदय में भगवान् के चरणों के अतिरिक्त और कुछ न हो, फलतः उसकी सारी प्रवृत्तियों का मूल भगवद्भक्ति ही हो तो उसके किये अशुभ कर्म भी शुभ की श्रेणी में गिने जाते हैं। जैसे शेष जी प्रलय काल में अपने मुँह से विष की आग उगलने लगते हैं और सारे संसार को जला डालते हैं, उनका वह कृत्य भगवान् के संकल्प से प्रेरित होता है इससे वह भगवान् की दृष्टि से भी पुण्य ही माना जाता है। ऐसे ही महाभारत की कथानुसार गरुड़ जी घने जंगल के बीच से हाथी और समुद्रतल से महान् कच्छप को पकड़ कर खा लेते हैं फिर भी वे महान् भक्त ही माने जाते हैं।**

***विशेष : हाथी और कच्छप अश्वमेध के घोड़े से कुछ अच्छा ही फल पाते होंगे।***

**जानन्निच्छन्यतंश्च प्रकृतिनियतधीश्चेतनः कर्म सूते,**
**पाकम्प्रज्ञाऽनुरूपं किमपि च लभते जीवने वा परेत्य।**
**तस्मात् प्रज्ञैव शोध्या स्वपरविवरदृग्योगतोऽसङ्गकृत्यै–**
**र्वाञ्छद्भि सत्त्वशुद्धिम्भवविलयकरीं सत्फलाप्त्यै सुधीभिः।।७३।।**

सर्वकर्मफलमूलं तत्त्वज्ञानमेव तेन तदेव सुकर्मभिः शोध्यमित्याह– जानन्नित्यादिना। प्रकृत्या देहेन्द्रियचित्तगतविषमानुपातगुणत्रयमय्या, नियता बद्धा धीः प्रज्ञा यस्य स तथोक्तश्चेतनो देही, कर्म शुभाशुभं, सूते जनयति, तस्य कर्मणः, पाकम्फलं च, प्रज्ञानुरूपं चेष्टाप्रयोजकज्ञानानुरूपमेव लोकवत्, किमप्यचिन्त्यन्तदेकानुभाव्यं, जीवने वर्तमाने कर्मवति, परेत्य देहान्तरे वा, लभतेऽनुभवति। नियमोऽयम् अविवादो, लोकदृष्टान्तानुसारात्। तस्मात् सतोऽविना– शिनो मुक्तावस्थारूपस्य फलस्य आप्त्यै लाभाय, भवस्य जगतो, विलयकरीं लोप्त्रीं, सत्त्वस्यान्तःकरणस्य शुद्धिं रजस्तमोऽपचयं, वाञ्छद्भिः सुधीभिः शास्त्रविद्भिः, स्वपरयोरात्मपरमात्मनोर्यद्विवरं भेदः, शेषशेषिधार्यधारक– भोग्यभोक्तृभावरूप, स्तादृशा ज्ञानेन योगतः प्रयोज्यैः, असंगैः फलानुरागरहितैः, कृत्यैः कर्मभिः, प्रज्ञा



स्वमतिरेव, शोध्या रागादिदोषापनयनेन शुद्धात्मतत्त्वमयी कार्येति भावः।

**भावार्थ – सारे कर्म और उनके फल उस ज्ञान के अधीन होते हैं जो कर्मों का प्रयोजक होता है। इससे कल्याण के इच्छुक जन अपने ज्ञान को ही निरन्तर शुभ कर्म करते हुए शुद्ध और सात्त्विक बनाते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने अन्तःकरण की बनावट के अनुसार जैसा जानता है वैसी ही इच्छा और प्रयत्न करता है जिससे उसका कर्म उत्पन्न होता है, उसका शुभ या अशुभ फल वह वर्तमान या आगामी जन्म में पाता है। इससे उत्तम फलों के लिये विद्वान् उस आत्मपरमात्मसम्बन्ध को ध्यान में रखकर निष्काम कर्म करते हैं जिससे किये कर्मों से चित्त शुद्ध होता है और संसार छिप जाता है, तब सायुज्य मोक्ष तक सारे शुभ फल सुलभ होते हैं।**

**संसारम्मोहसारम् प्रशमयितुमलं क्लेशजालानुसारं,**
**सत्प्रज्ञैका शुभाप्या नृहरिकरुणया शुद्धसत्त्वस्य साधोः।**
**तस्माद् विस्मृत्य गेहम् परिकरमखिलं स्त्रीसुहृद्वित्तबन्धून्,**
**सन्द्रष्टुं शुद्धतत्त्वं विपिनवसतयः सत्त्वशुद्ध्यै यतन्ते।।७४।।**

उक्तमेवार्थं दृढयति – संसारमित्यादिना। क्लेशजालस्य त्रिविध– दुःखसमूहस्य, अनुसारम् अनुसरणशीलम्, मोहसारम् मोहप्रधानं, संसारम् प्रशमयितुम् असत्त्वमापादयितुं, नृहरेर्भगवतः, करुणया शुद्धसत्त्वस्य निर्मलचेतसः, साधोः कर्मयोगतत्परस्य, शुभाप्या सत्कर्मैकलभ्या, एका एकला, सत्प्रज्ञा स्वस्वरूपनिष्ठा, स्थितप्रज्ञताऽभिधा, मतिरेव अलं समर्था, तस्माद् उक्तहेतोः, गेहम्, अखिलम् परिकरं रत्नसुवर्णपर्यङ्कपरिधानयानादिकं, स्त्रीः, सुहृदो वित्तम् बन्धूंश्च विस्मृत्योपेक्ष्य विपिनवसतयस्तपोनिष्ठाः साधवः, शुद्धन्तत्त्वं स्वरूपं सन्द्रष्टुं सम्यग् अव्यवधानेनोपलब्धुं सत्त्वशुद्ध्यै चित्तदोषवारणाय यतन्ते प्रयतनपरा भवन्ति।

**भावार्थ – इस संसार का सार अंश मोह है, यह सदा त्रिविध क्लेशों की ओर चलता है तत्त्वज्ञान से यह दबता है, किन्तु तत्त्वज्ञान सत्कर्मों से प्राप्त होता है। अपराधों का फल अज्ञान और शुभ कर्मों का फल तत्त्वबोध होता है, चित्तशुद्धि से शुभकर्म भी होते हैं, चित्तशुद्धि प्रभुकृपा से होती है तब शुभ कर्म और उनसे सद्बुद्धि प्राप्त होती है। यह नियम समझकर तपोनिष्ठ सन्तजन एकान्त वन में रहकर, घरद्वार सम्पत्ति, स्त्री मित्र परिवार भूलकर केवल शुद्ध आत्मस्वरूप के दर्शन और उसमें निष्ठा पाने के लिये अपने चित्त को शुद्ध करने के प्रयत्नों में लगे रहते हैं।**

ज्ञानेच्छाद्यं शिशूनामशनपरिचयात्प्राक्परस्तात्पृथक्स्यात्,
तत्कैशोरे युवत्वे वयसि च परतो भिद्यते देहभेदात्।
पुंसां स्त्रीणाम्पशूनां गुरुलघुवपुषां जातिभेदाद्विभिन्नं,
स्यान्नित्यैकात्मनस्तत्प्रकृतिपरिणतीर्बुद्धयोऽनुव्रजन्ति।।७५।।

सद्बुद्धिरेकरूपा सुखमयी, असद्बुद्धिश्च नाना प्रकृतिपरिणामानुरूपा क्लेशबहुलतया वर्जनीया चेत्याह – ज्ञानेच्छेत्यादिना। शिशूनां स्तनन्धयानाम्, अशनपरिचयात् स्वाहारबोधात्, प्राक् परस्ताच्च ज्ञानेच्छाद्यं, किमपि जानाति, तदिच्छति, तदर्थं यतते चेति व्यवहारक्रमस्तत् पृथग् भिन्नरूपम्भवति, तथैव तज्ज्ञानेच्छाद्यं कैशोरे युवत्वे च वयसि, परतः प्रौढावस्थायाञ्च देहस्य भेदाद्भिद्यते। एवमेव पुरुषाणां ज्ञानेच्छाद्यं स्त्रीणाञ्च पृथगेव भवति, गुरुलघुवपुषाम् अल्पमध्य–दीर्घाणाम् भयधार्ष्ट्यादिभेदाद्भिन्नानाम् पशूनां जातिभेदाद् गोमहिषादिरूपादपि विभिन्नं नानाभेदवद् भवति, तेनेदं स्वीकरणीयं यन्नित्यस्यैकरूपस्याप्यात्मनो नाना बुद्धयो ज्ञानानि प्रकृतिपरिणतीः शरीरधातुवृद्धिह्रासवैजात्यादीन् अनुव्रजन्ति तत्तदनुरूपा जायन्ते। इदमेव बुद्धीनामप्रामाण्यस्य क्लेशप्राचुर्यस्य च निदर्शनमिति प्राकृतबुद्धयोऽनादरणीयाः परमार्थनिष्ठैरिति भावः।

**भावार्थ – भगवद्गीता में व्यवसायात्मिका और अव्यवसायात्मिका दो प्रकार की बुद्धियाँ बतलायी गयी हैं। अव्यवसायात्मिका बुद्धि की कोई सीमा नहीं है। वह प्रकृति और देश काल के अनुसार बदलती रहती है। सारे व्यवहारों का कारण वही होती है। सारे क्लेश भी उसी से बन्धे होते हैं। छोटे और बड़े बच्चों की, किशोर की, युवा की और अधेड़ की बुद्धियाँ अलग अलग होती हैं। स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों से भिन्न होती है, पशु पक्षियों की बुद्धियां जातिभेद से अलग होती हैं। एक ही नित्य आत्मा की बुद्धियाँ शरीर की अवस्थाओं के भेद से भिन्न हो जाती हैं। ये बुद्धियाँ व्यवहारों का निर्वाह तो करती हैं किन्तु ज्यादातर अमर्यादित और क्लेशों से जुड़ी होती हैं। इन्हें परमार्थपथिक आदर नहीं देते।**

प्राज्ञाः स्वीयाम्मनीषामपि प्रकृतिकृतां साधवो नाद्रियन्ते,
नैष्कर्म्यस्थात्मतत्त्वावगमधृतधियाऽनित्ययोगान् क्षिपन्तः।
कर्मोपाधीरवस्था अनुपदमनुयन् प्राकृतो बन्धमुग्धो,
ध्यायन्नित्यात्मतत्त्वं न चलति प्रकृतेः क्रीडितैर्नित्यमुक्तः।।७६।।



उक्तार्थस्य ध्यानोपयोगमाह–प्राज्ञा इत्यादिना। नैष्कर्म्यं त्रिविधेषु शरीरवाङ्मनोजन्येषु कर्मस्वप्रवृत्तिः, इयम्प्रकृतिसंसर्गशून्यस्यात्मनोऽवस्था, तत्र स्थितस्य शुद्धस्यात्मतत्त्वस्यावगमे, ध्याने, धृता अवस्थिता, सावधाना या धीः प्रज्ञा, तया हेतुभूतया अनित्यान् आगमापायिनो, देहजातिवयोऽवस्थाविशेषान्, क्षिपन्त उपेक्षमाणाः, साधवो मोक्षोपायसाधनशीला मुमुक्षवः, प्राज्ञा अध्यात्मविद्याव्रतिनः, प्रकृतिकृताम् प्रकृत्यधीनपरिणामां, स्वीयाम् आत्मीयामपि, मनीषां धियं, नाद्रियन्ते नानुगच्छन्ति, वयोबद्धान् कामादीन् वयःस्वेव मन्यन्ते नात्मनि, अत एव कर्मोपाधीः प्रारब्धाधीनदेहजातिकुलगता, अवस्था दशा, अनुपदं क्षणे क्षणे, अनुयन् अनुगच्छन्, प्राकृतः प्रकृत्येकाधीनमतिः, बन्धमुग्धः प्रकृतिसम्बन्धमेव बहु मन्वानो भवति। नित्यमात्मतत्त्वं ध्यायन् नित्यमुक्तो नित्यावस्थैकनिष्ठस्तु, प्रकृतेः क्रीडितैः कामादिविकारै, र्न चलति स्वस्वरूपमविस्मरन्नेवैकधा वर्तत इति भावः।

**भावार्थ – शुद्ध आत्मा कोई क्रिया नहीं करता, इसकी यह सहज अवस्था नैष्कर्म्य कही जाती है। इस सहज अवस्था में स्थित आत्मस्वरूप के साक्षात्कार में प्रयत्नशील एवम् उपाधिवश आने जाने वाली अनित्य अवस्थाओं का आदर न करते हुए साधननिरत विद्वान् लोग शरीर आदि प्रकृति के संसर्ग से होने वाले अपनी भी बुद्धि को आदर नहीं देते। जो व्यक्ति प्रारब्ध के अधीन आने जाने वाले देह इन्द्रिय मन की अवस्थाओं का अनुगमन करने वाला यानी काम आदि विकारों को महत्त्व देने वाला होता है, वह प्रकृतिनिष्ठ होने से प्राकृत कहा जाता है वह प्रकृति के बन्धनों को ही महत्त्व देता हुआ उसपर ही मुग्ध रहता है। किन्तु जो तत्त्वदर्शी नित्य एकाकार आत्मतत्त्व से मन नहीं हटाता वह शरीर के रहते भी सदा मुक्त ही रहता है एवम् प्रकृति के खेल काम आदि विकारों से विचलित नहीं होता।**

निष्कामस्तत्त्वदर्शी जितकरणगणः स्वं विशुद्धं विजान–
न्नाज्ञा ईशस्य कुर्वन् फलमतिरहितस्तद्दयैकप्रतीक्षः।
भूतेष्वात्मैकदर्शी क्वचिदपि न रतो न द्विषन्नात्मनिष्ठः,
पश्यन् सर्वञ्च धीरो विशति पदमदो यत्स्वयम्भात्यजस्रम्।।७७।।

तत्त्वदर्शिनो निष्कामजीवनचर्यामाह–निष्कामइत्यादिना। निष्कामो विषयेषु निःस्पृहः, तत्त्वदर्शी सकलजडचेतनगुणसम्बन्धाभिज्ञः, जितो वशीकृतः, करणानामेकादशेन्द्रियाणां गणः समूहो येन स तथोक्तः, स्वम् आत्मानं विशुद्धं स्वेतरसामान्यनिरपेक्षं, विजानन् विशिष्यापि तत्तदपेक्षाविरहम् मन्वानः, फलमत्या

तत्तत्कैङ्कर्यविशेषेषु तत्तत्फलकल्पनया, रहितोऽयुक्तोऽपि, तस्य दयामेकाम्प्रतीक्षमाणः सन्, ईशस्य जगत्स्वामिनः परमात्मन, आज्ञाः शास्त्रविधिवचनानि, कुर्वन् पालयन्, विहितान्यनुतिष्ठन्, निषिद्धानि च वर्जयन्, भूतेषु जडजङ्गमेषु प्राणिषु काष्ठलोष्ठादिषु च, आत्मानमेकं द्रष्टुं शीलवान्, क्वचिदपि विषये, न रतो न सकामो, नापि द्विषन् आत्मनिष्ठोऽसंगात्मैकरतिः, सर्वम् प्रकृतिजातम् पश्यन्नपि, धीरोऽप्रच्युतस्वस्वरूपदर्शनः सन्, यत्स्वयमेव करणनिरपेक्षम्, भाति प्रकाशते, अदः, प्रस्तुतम् पदम् आत्मनः स्वरूपं, विशति नित्यमनुभवन् आनन्दैकभुग् भवति।

**भावार्थ – तत्त्वदर्शी का जीवन कैसा होता है यह बतलाते हैं। वह सामान्य रूप से किसी भी विषय में स्पृहा नहीं रखता, सारे जड़चेतन पदार्थों के गुण स्वभाव व सम्बन्धों को जानता रहता है, अपनी सारी इन्द्रियाँ सदा अपने वश में रखता है, अपने आपको सदा दूसरे पदार्थों के प्रति निरपेक्ष जानता है, एक एक पदार्थ की भी कोई अपेक्षा न होने की बात जानता रहता है। जो भी कर्म वह ईश्वर की आज्ञा मानकर करता है उसके किसी भी फल की कल्पना नहीं रखता, साथ ही ईश्वर की निर्हेतुक दया की प्रतीक्षा करता रहता है, विधि निषेधों का सदा पालन करता हुआ सर्वत्र जड़ पदार्थों में भी सक्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व का ही दर्शन करता है, कहीं भी कोई राग या द्वेष नहीं रखता, वह सदा ही अपने को असंग समझता हुआ, सब कुछ देखता हुआ स्वस्वरूपनिष्ठ ही रहता है, उसके अनुभव में नित्य स्वप्रकाश ज्ञानानन्दमय आत्मा के सिवा दूसरा कोई विषय नहीं आता।**

**कर्माणि स्युः प्रकृत्या विषयधृतधियामिन्द्रियैर्बुद्धिचित्तै–**
**र्योगारूढोपि चित्तासुमुखनियमनन्यस्तधीः कर्मनिष्ठः।**
**यो योगी श्रीशपादाम्बुजरससुरभिस्वान्तरङ्गो न किञ्चिद्,**
**बाह्यं गृह्णाति तद्धीः स्वसमपरिणतिर्मन्यतां कर्मकाष्ठा।।७८।।**

सतततत्त्वदर्शनेऽपि कर्माणि कान्यपि स्युरेवेत्याह–कर्माणिस्युरित्यादिना। विषयेषु शब्दादिषु धृता सन्निकृष्टा धीर्येषान्ते तथोक्तास्तेषां संसारिणां तूष्णीं स्थितानामपि, प्रकृत्या स्वभावादेव, इन्द्रियैः श्रोत्रनासात्वगादिभिः, कर्माणिस्युरेव, योगारूढः सिद्धयोगोऽपि, चित्तस्यासूनाम्प्राणानामिन्द्रियाणाञ्च नियमने वशीकरणे न्यस्ता विनियुक्ता धीर्यस्य स तथोक्तो, धीव्यापारैः कर्मनिष्ठ एव ज्ञेयः। अथ यो योगी श्रीशस्य भगवतः, पादाम्बुजरसेन भक्त्या, सुरभि मनोज्ञं स्वस्यान्तरंगं,



यस्य स तथोक्तो, बाह्यम् अनात्मभूतं, किञ्चिदपि न गृह्णाति न व्यवहरति, स्वसमपरिणतिरात्माकारपरिणामधारावती, तस्य धीरेव कर्मणो नैष्कर्म्यविरुद्धा–वस्थायाः काष्ठा सीमा मन्यताम् अतो नैष्कर्म्यं जीवतः कस्यापि योगिनोऽपि गौणमेव भवेदिति मन्तव्यमिति भावः।

**भावार्थ – ज्ञानयोग या भक्तियोग की स्थिति में कर्म नहीं होते, ऐसी मान्यता पर कहते हैं कि सामान्य लोग तो हाथ पैरों इन्द्रियों और मन से कर्म करते ही रहते हैं, जो योगी मन इन्द्रियों को वश में करने के प्रयत्नों में लगे रहते हैं उनके वे प्रयत्न ही महत्वपूर्ण फल देने वाले कर्म हैं। एवं जिन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, केवल साकार या निराकार रूप में ध्यान जमाये हैं वह उनका ध्यान जमाना बुद्धि का मूल्यवान व्यापार है, उनकी बुद्धिवृत्ति सतत एकाकार बनती रहती है। वास्तव में वही सही कर्म है जो कर्म की पराकाष्ठा है, ऐसी स्थिति में जीवित किसी महान् योगी का भी कर्मत्याग नहीं माना जा सकता। करचरणव्यापारमात्र को कर्म मानना स्थूल बुद्धि की पहचान है।**

**दुःसङ्कल्पास्तु वर्ज्या हरिचरणरतैः श्रेयसे तत्त्वनिष्ठै–**
**र्वेद्यं कृत्यं समस्तं जडप्रकृतिगतं श्रीशसङ्कल्पसाध्यम्।**
**कर्मन्यासोऽयमुक्तः श्रुतिसुमतिमता न स्वरूपेण हानं,**
**कृत्यानां, तद्धयशक्यं सहजचलवपुश्चित्तधीचेतनानाम्।।७९।।**

पूर्वोक्तदिशा सर्वस्यापि देहिनः सदा सक्रियत्वे सिद्धे भगवद्गीतोक्तस्य कर्मसंन्यासस्य का गतिरित्यत्रोच्यते, द्विविधं हि कर्म, रागद्वेषकृतं लौकिकं, शास्त्रोक्तपुरुषार्थहेतुः शास्त्रीयञ्च। तत्र स्वरूपनिष्ठस्य रागद्वेषानुदयाल्लौकिकं कर्म न सम्पद्यते, सङ्गादिनांऽशतः कृतमपि न बन्धहेतुः, सङ्कल्पाधीनत्वात्सकल–शुभाशुभफलानाम्। दुःसङ्कल्पवर्जनमेवैषां संन्यासः। शास्त्रीयञ्च दृष्टादृष्टफलस्पृहाऽभावेऽपि वर्णाश्रमदेशकालावस्थानियततया भगवत्प्रीतिहेतुतया क्रियमाणमपि भगवत्प्रीत्या कर्मबन्धध्वंसैकहेतुः। शास्त्रीयाणामनुष्ठीयमानानां कर्मणां सङ्कल्पवाक्येषु भगवतैव कार्यमाणत्वोक्तिः प्रकृतिगतत्वानुसन्धानञ्च संन्यासो न तु स्वरूपेण त्यागस्तस्य जीवतोऽशक्यत्वादित्याह– दुःसङ्कल्पास्त्वित्यादिना। तुना सक्रियस्यापि कर्मसंन्यासोपपत्तिः सूच्यते। तत्त्वनिष्ठैरात्मपरमात्मयाथार्थ्य–वेदिभिः, शेषत्वानुसन्धानेन हरेः सर्वस्वामिनश्चरणयो रतैर्भक्तैः, श्रेयसे

कर्मबन्धापनयपूर्वकं ज्ञानानन्दमय–स्वस्वरूपाविर्भावाय हेतवे, दूषिताः पुरुषार्थविरोधिरागद्वेषमयाः, संकल्पा इष्टसाधनताधियः, वर्ज्यास्तत्त्वबोधबलेनोच्छेद्या, (एवं) समस्तं शुभाशुभं, कृत्यं कर्मसामान्यं, जडायामपुरूषार्थभूतायाम्प्रकृतौ, गतमवस्थितम् अत एव प्रकृतिलये तेषामपि सहैव नाशित्वञ्च, पुनः श्रीशस्य सर्वान्तर्यामिणः परमात्मनः, सङ्कल्पेन सर्वकृत्यप्रयोजकेन साध्यं सम्पादनीयञ्च, वेद्यं सततमवधेयम्। अयम् उक्त एव श्रुतिसुमतिमता वेदतदर्थावधारणनिपुणेन श्रीकृष्णेन कर्मन्यासो भगवद्गीतायामुक्तस्तात्पर्यविषयो, न तु कृत्यानां कर्तव्यानां कर्मणां, स्वरूपेण हानं त्यागः, संन्यासो विवक्षितः, तद्धि हानं, सहजाः स्वभावेनैव चलाः सक्रिया, वपुश्चितधियः शरीरमनोबुद्धयो येषान्ते तथोक्तास्तेषां, चेतनानां देहिनाम्, अशक्यम् असम्भावनीयं हीति प्रसिद्धं लोक इति भावः।

**भावार्थ – जब सदा कर्म होते ही हैं तो शास्त्रोक्त कर्मसंन्यास कैसे होगा इस प्रश्न पर कहते हैं कि निषिद्ध कर्मों का त्याग तत्त्वबोध और भक्ति के द्वारा संकल्प शुद्धि से होता है और नित्य नैमित्तिक विहित कर्म जो न करने से दोष बढ़ाते हैं वे सबके लिये अवर्जनीय होते हैं उनका स्वरूपतः त्याग नहीं किया जाता, एवम् बहुत से देह इन्द्रिय मन के प्राकृतिक कर्म जो श्वास प्रश्वास की तरह स्वतः होते हैं उनका स्वरूपतः त्याग सम्भव नहीं है, इन दोनों प्रकार के कर्म वास्तव में जड़ प्रकृति के घटक सत्त्व आदि गुणों के अधीन होते हैं, इससे वे प्रकृति में हैं, पुरूष में नहीं, एवम् वे भगवान् के सङ्कल्पों के अधीन होते हैं इससे वे भगवान् पर आश्रित हैं, तत्त्वनिष्ठ कर्ता पर नहीं, इसप्रकार का निर्णय सदा बना रहे और ऐच्छिक कर्म शुरू करते समय संकल्पवाक्य में इस भाव को जगाने वाले वाक्य जोड़ लेना वास्तव कर्म संन्यास है। इस सन्दर्भ में ध्यान में रखने योग्य निम्न श्लोक है–**

स्वशेषभूतेन मया स्वीयैः सर्वपरिच्छदैः।
विधातुम्प्रीतमात्मानं देवः प्रक्रमते स्वयम्।।

**एवं संन्यस्तकर्मा भगवदनुभवैकान्तधीः कर्मजालम्,**
**प्रागज्ञानप्रसूतं यमनियममुखैर्योगमार्गैरपास्यन्।**
**स्वोपायत्वव्यपायाद्भवमरुसरिदुत्तारहेतुं रमेशं,**
**जानानस्तेन रत्नं स्वमिव नृपतिना धार्यते सर्वकालम्।।८०।।**

सिद्धिप्रकारमाह–एवमिति। एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण, संन्यस्तकर्मा वास्तवकर्मसंन्यासवान्, भगवदनुभव एव एकान्ता एकलक्ष्या धीर्यस्य स तथोक्तः,



योगस्य चित्तैकाग्र्यस्य, मार्गैरुपायै, र्यमनियममुखैरहिंसासत्यादिपञ्चक–शौचसन्तोषादिपञ्चकसहितै, रासनप्राणायामादिभिरष्टभिर्योगाङ्गैः, प्राग् अतीतजन्मसु, अज्ञानेन प्रसूतमुत्पन्नं, कर्मजालम् मीनादेरिव बन्धहेतुं कर्मसमूहम्, अपास्यन् दूरीकुर्वन्, स्वोपायत्वस्य स्वरक्षायाः, स्वस्मिन्नुपायत्वभावनाया व्यपायात् भगवदैश्वर्यबुद्धिवैशद्येनदूरीभावात् बाधादिति यावत्, रमेशं लक्ष्मीपतिं नारायणम्, भवमरुसरिदुत्तारहेतुम् मृषाक्लेशमयमृषासंसारनदीपारगमनहेतुं, जानानः स्वीकुर्वन्, तेन रमेशेन, स्वं रत्नं कौस्तुभमिव, नृपतिना राज्ञा स्वमसाधारणमतिप्रियं रत्नमिव च, सर्वकालं नित्यं, धार्यतेऽङ्गीक्रियते, क्षणमपि त्यागकल्पनाराहित्येन स्वीक्रियत इति भावः।

**भावार्थ – वास्तव कर्मसंन्यास का फल बतलाते हुए कहते हैं कि इस प्रकार कर्मों का संन्यास करके केवल भगवान् के अनुभव में मन लगाने वाला व्यक्ति योगसिद्धि के अंग यम नियम आदि आठ उपायों से पूर्वजन्मों के अज्ञानवश अर्जित उन सारे कर्मों को जो संसारबन्धन बने हुए है दूर करता हुआ एवम् प्रभु के व्यापक ऐश्वर्य पर ध्यान होने से अपनी रक्षा की योग्यता अपने में नहीं मानता हुआ, संसार रूपी मिथ्या एवं विकट नदी को पार लगाने में सक्षम एकमात्र रमापति भगवान् को ही मानता है इससे उनसे ही सदा रक्षा की प्रार्थना करता रहता है, प्रभु उसे पूर्ण निष्काम एवं तत्त्वनिष्ठ होने से बहुत प्रिय मानते हैं और जैसे कोई बड़ा राजा कोई मूल्यवान् रत्न सदा धारण करता है ऐसे या स्वयं कौस्तुभ की भाँति कभी त्याग की कल्पना नहीं करते हुए सदा स्वीकार धारण और रक्षा करते रहते हैं, यही मुक्ति है।**

**शुद्धं स्वेनैव वेद्यम्परपुरुषप्रकृत्यादिबोधैकभूमिं,**
**निःसङ्गं निर्विकारं सहजविभुसमस्तार्थधीनित्यहेतुम्।**
**ज्ञात्वा ध्यायन्नजस्रं स्वमसुमुखप्रकृत्यर्थनित्यानपेक्षं,**
**शान्तो देहेऽपि देही कतिपयसमयादुज्जिहीतेऽर्कभाभिः।।८१।।**

स्वस्वरूपानुध्यानफलमाह–शुद्धमित्यादिना। शुद्धं देहेन्द्रियादिसंसर्गेऽपि तद्दोषरहितम्, स्वेनैव वेद्यं स्वयम्प्रकाशमानं स्वस्मै स्वसाक्षात्कारे सहकारिनिरपेक्षम्, परेषां स्वेतरेषां चेतनानाम् प्रकृतितद्विकाराणाञ्च बोधस्य प्रमाणाधीनज्ञानस्य एकाम् प्रधानभूताम् भूमिमाश्रयम्, निःसङ्गं संसृष्टद्रव्यान्तरप्रभावरहितं, तेन निर्विकारं स्वगतपरिणामरहितं, सहजाया विशदायाश्च कर्मकृतसंकोचविगमे सर्वार्थविषयिण्या धियो, नित्यं हेतुम् उपादानभूतम्, असुमुखानाम् प्राणादीनाम्, प्राकृतार्था–

नान्तत्परिणामभूतानां विषये, नित्यमनपेक्षं तद्धारकत्वेऽपि वास्तवतदपेक्षारहितं, स्वमात्मानं शास्त्रगुरूक्तिध्यानाद्युपायैर्ज्ञात्वा स्वरूपपरिमाणस्वभावधर्मैरवधार्य, अजस्रं नित्यं ध्यायन्, देहे शरीरे सन्नपि निष्कामतया नित्यं शान्तः कामादितरङ्गरहितो, देही चेतनः, कतिपयसमयादनन्तरं ध्यानप्रभावाद्, अर्कभाभिः सूर्यकिरणैः सहायैरुज्जिहीते ऊर्ध्वलोकाभिमुखम् प्रतिष्ठते परमपदायेत्यर्थः।

**भावार्थ – स्वस्वरूप के ध्यान का प्रभाव बतलाते हुए कहते हैं कि आत्मा देह आदि स्थूल द्रव्यों और अतिसूक्ष्म कर्मों का संसर्ग रहते भी उनसे प्रभावित नहीं होता, वह स्वयं ही अपने आप को बिना किसी प्रमाण के जानता रहता है इसीसे स्वयम्प्रकाश कहा जाता है, अन्य चेतनों और सारे जड़ पदार्थों के प्रमाणाधीन ज्ञान इसीमें होते हैं। संसर्गवाले अन्य द्रव्यों का कोई प्रभाव इसपर नहीं पड़ता इससे इसमें कोई विकार नहीं होता, कर्मबन्धन के हटने पर इसका ज्ञान अनन्त विश्व में फैल जाता है, तब यह सब कुछ एक साथ देखने लगता है, तब अतीत अनागत सारे अर्थ इसके लिये प्रत्यक्ष रहने लगते हैं, क्यों कि तब यह त्रिकालदर्शी हो जाता है, यद्यपि यह प्राण इन्द्रिय आदि सारे प्राकृतिक विकारों को धारण करता है किन्तु उनकी कोई अपेक्षा इसे नहीं होती। ऐसे अपने स्वरूप परिमाण और स्वभाव को शास्त्रमनन, चिन्तन, गुरु उपदेश, तथा अनुमान और ध्यान से जानकर आगे जब लगातार ध्यान करने लगता है तब देह में रहता हुआ भी काम आदि तरंगों के न उठने से सदा शान्त रहता है और कुछ समय के बाद ध्यान के प्रभाव से सूर्य किरणों के माध्यम से ऊपर के लोकों के लिये एक दिन प्रस्थान कर जाता है, फिर वापस नहीं लौटता, वह मुक्त हो जाता है।**

**ज्ञानी बाह्यार्थलिप्साविरहितमनसा सादरं ध्यायति स्वं,
सुप्तैः कामैश्च दैवात् क्वचिदपि समये सम्प्रबुद्धैरबाध्यः।
सद्बोधात्कर्मयोगादुचितगुरुपदद्वन्द्वसङ्गादसङ्ग–
श्रीशध्यानप्रभावादविहतधिषणो धिष्ण्यमाप्नोत्यबाधम्।।८२।।**

सुगृहीतमोक्षोपायस्य मुमुक्षोर्दैवादुदिताऽपि विषयस्पृहा स्वयं नश्यति न तु महत उपायान् प्रतिबध्नातीत्याह–ज्ञानीत्यादिना। ज्ञानी पूर्वोक्तात्म–तत्त्वज्ञाननिष्ठो, बाह्यार्थेषु शब्दादिषु, लिप्साविरहितेन निष्कामेन मनसा चेतसा, स्वमात्मानं, सादरम्फलश्रद्धया, ध्यायति (तदा ज्ञानवैराग्याभ्यां) सुप्तैरसत्प्रायैरपि कामैर्विषयाभिलाषै, दैवात् प्रारब्धवशात्, क्वचित् समयेऽवसरे, सम्प्रबुद्धैरुत्क–



टदशामाप्नुवत्स्वपि, अबाध्यो, ऽविस्मृतात्यक्तसत्पथो, भवति, (कथमित्यत्राह) सद्बोधाद् अप्रतिरुद्धतत्त्वज्ञानात्, कर्मयोगाद् अनुवर्तमाननिष्कामकर्मानुष्ठानतः, क्षीयमाणमोहजनकाज्ञानतः, उचितस्य मोक्षपथाभियोजनप्रगल्भस्य, गुरोः सदाचार्यस्य पदद्वन्द्वे संगाद् भक्तेः प्रभावाद् (अथच) असंगं स्वावसरे वर्जितविषयाभिलाषं यथा स्यात्तथा, श्रीशस्य विष्णोर्ध्यानस्य कामबलहेतु– तमोनिवारकस्य, प्रभावात् कामनाशैथिल्यात्, इति हेतुचतुष्टयेन अविहतधिषणोऽबाधितध्येयार्थधीः, (प्रस्तुतो ज्ञानी) अबाधं निर्विघ्नं यथास्यात्तथा, धिष्ण्यम् परमम्पदम् आप्नोति लभते। दृढतत्त्वबोधबलाद् ध्यानप्रभावाच्च सर्वे विघ्ना लयं यान्ति, सिद्धिञ्च परमां विन्दति मुमुक्षुरिति भावः।

**भावार्थ – पूर्व श्लोक में प्रस्तुत मुक्ति के उपायों की बलबत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि तत्त्वज्ञानी बाहरी शब्दादि विषयों से मन के हट चुकने पर अपने स्वरूप का ध्यान आदरपूर्वक करने लगता है। तब कभी प्रारब्ध वश यदि दबा हुआ काम जग भी जाता है तो वह अपने साधन से विरत नहीं होता। क्यों कि वह तत्त्वनिष्ठ होने से बाहरी अर्थों में देर तक मन नहीं जोड़ता, दूसरे कर्मयोग में लगा होने से उसके चित्त का तमोगुण घटता रहता है जिससे काम को बल नहीं मिलता, तीसरे वह अपने आदर्श आचार्य के चरणों का ध्यान करता हुआ उनके मार्ग का ही अनुसरण करना चाहता है जिसमें काम का कोई स्थान नहीं होता और चौथा महान् उपाय उसका यह होता है कि वह सदा अनासक्त भाव से केवल भगवान् का ध्यान करता रहता है जिससे उसका हृदय उत्तरोत्तर उज्ज्वल होता रहता है जहाँ अज्ञान का अन्धकार ठहर नहीं पाता। इससे उसका वह तत्त्वबोध कभी कामभाव का उदय हो जाने पर भी बाधित नहीं होता और वह विना विघ्न के परम पद को पा लेता है।**

**ज्ञानेच्छायत्नसाध्यम्भवति तनुभृतां कर्म सर्वं समेषां,
ज्ञानाद्यन्तत्प्रकृत्या त्रिगुणपरमया, प्राकृतं कर्म तस्मात्।
सङ्कल्पादेव विष्णोर्घटनविघटने सिद्ध्यसिद्धी श्रुतिभ्य–
स्तस्मात्कर्तृत्वमद्धा भगवति गदितम्मोहतस्त्वस्मदादौ।।८३।।**

परममोक्षोपायशरणागतिविरोधितया स्वकर्तृत्वानुसन्धानं तत्त्वज्ञानेन–वारणीयमित्याह–ज्ञानेच्छेत्यादिना। समेषान्तनुभृतां देहिनां, शरीरवाङ्मनोजन्यं सर्वं कर्म, ज्ञानेन इच्छया यत्नाख्येन चात्मगुणविशेषेण साध्यं सम्पादनीयम्,

भवति। तत् तु ज्ञानाद्यं ज्ञानेच्छायत्नाः, त्रिगुणपरमया सत्त्वादिगुणत्रयप्रधानया प्रकृत्या भवति, तस्माद् हेतोः, समेषां देहिनां सर्वं कर्म, प्राकृतम् प्रकृतिनिष्ठं न तु पुरुषनिष्ठम् भवति। एवमेव विष्णोर्भगवतः, सङ्कल्पादेव घटनविघटने योगायोगौ, सिद्धयसिद्धी फलनिष्पत्तितदभावौ च भवतः, सर्वस्य परिणामक्रमस्यतदेकाधीनत्वात्, श्रुतिभ्यः सर्वात्मत्वसर्वशेषित्वसर्वान्तर्यामित्वप्रतिपादिकाभ्य इदमवसीयते। तस्मात् कर्तृत्वं देहिषु कल्प्यमानम् अपि, अद्धा सम्यग् यथा स्यात्तथा भगवति एव श्रुत्यादिभिर्गदितम्, मोहतस्तु देहात्मनोरविवेकतस्तु केवलम् अस्मदादौ चेतनेष्वपि व्यवह्रियते, तन्मिथ्यैवेति भावः।

**भावार्थ – शरणागति में केवल परमात्मा का कर्तृत्व मान्य है। इसी से यह मान्यता है कि जीवों के रक्षक और उद्धारक वे ही हैं। यदि जीव में भी वास्तव कर्तृत्व होता तो वह स्वयं ही देह इन्द्रियादि का नियन्त्रण और रक्षा करता हुआ जैसे पाया जाता है वैसे संसारबन्धन से भी छूट कर अपनी रक्षा कर लेता, जैसा कि दूसरे उपायवाले मानते हैं, किन्तु परमात्मा के समग्र ऐश्वर्य का चिन्तन करने पर उनकी मान्यता कट जाती है और शरणागति ही एकमात्र उपाय बचता है। शरणागति भक्ति की चरम अवस्था है, वही प्रपत्ति है। तत्वज्ञान तो भक्ति और प्रपत्ति का एक उपक्रम मात्र है। वह स्वतन्त्र साधन नहीं है, यदि तत्त्वज्ञान अकेले ही उपाय होता तो वैराग्य का सहारा नहीं चाहता। वैराग्य भक्ति की ही तैयारी होती है। उत्तम अर्थ का भरोसा होने से निकृष्ट अर्थों में वैराग्य होता है। भक्ति से मिलने वाला विशद भगवदनुभव सर्वोत्तम अर्थ है, वही वास्तव मुक्ति भी है। प्रपत्ति की पूर्णता अपनी रक्षा में अपना भरोसा न रहने से होती है। चेतन में कोई भी कर्तृत्व स्वतन्त्र नहीं है बल्कि वह केवल गाड़ी के बैलों की तरह प्रयोज्य कर्तृत्व मात्र है। इस भाव की दृढ़ता के लिए प्रकृत श्लोक में कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति शुभ अशुभ जो भी कर्म करता है वह कुछ जानकर चाहकर और प्रयत्न करके करता है। यह ज्ञान आदि चित्त के धर्म प्रकृति के सत्वरजतम गुणों के तारतम्य के अधीन होता है। इससे इसे प्रकृति में ही मानना चाहिये। दूसरी बात यह है कि विश्व का सारा घटना–क्रम ईश्वर के संकल्प के अधीन होता है, उनके न चाहते कुछ नहीं होता, इससे वास्तव कर्ता वे ही हैं। यह बात ''स कारणं करणाधिपाधिपः'' ''कारणं कारणानाम्'' इत्यादि बहुत से श्रुतिवचनों से सिद्ध है। ऐसी स्थिति में हम जो अपने को सांसारिक कार्यों का कर्ता माना करते हैं वह केवल माया के गुणों के सम्बन्ध से हो रहा एक भ्रममात्र है। इसे छोड़ना चाहिये, तभी प्रपत्ति पूरी होगी।**

इस पेज को चैक करें



**कःकर्तृत्वम्फलेप्सां त्यजति कृतमतिः कर्मसन्तानरूढं,**
**लोकेऽलोक्या निवृत्तिः सहजकरुणया केन सम्पादनीया।**
**अन्तर्यामी समेषां स्वचरणबलितम्प्रोद्दिधीर्षुर्मुमुक्षुं,**
**सद्देशं देशिकाग्र्यं नयति विनयते शश्वदीशोऽविलम्बम्।।८४।।**

लोकेऽसम्भवप्रायो मोक्षपथो भगवदनुग्रहेणैकेन सुलभ इत्याह–कः कर्तृत्वमित्यादिना। तत्त्वबुद्धिवार्यमपि अनादौ कर्मसन्ताने तत्त्वबोधवारके, रूढं दुरुच्छेदतयाऽवस्थितं, कर्तृत्वं ज्ञानेच्छाप्रयत्नरूपं तत्र स्वीयताधियञ्च, फलेप्सां कर्मफलकामनां च, कः कृतमतिः शास्त्राभ्याससम्पादितभगवदेककर्तृत्वधीः पुमान्, त्यजति चेतसो वारयति, न कोऽपि तथा लक्ष्यत इत्यर्थः। एवमेव लोके जगति, अलोक्या अदृष्टा, विषयेभ्यो मनसो निवृत्तिः परावर्तनं, शास्त्राभ्यासादप्यसाध्यं केन अदृष्टचरेण महापुरुषेण, सहजकरुणया आभिमुख्यमात्रसापेक्षया दयया, सम्पादनीया शिष्यचित्तेऽवस्थाप्या इति प्रश्नः। तत्रोत्तरयति–समेषाम् अन्तर्यामी मुमुक्षुम् मोक्षाभिषाषिणं, स्वचरणयोर्वलितम् अभिमुखीभूतं चेतनं, शश्वद् अनारतम्, प्रोद्दिधीर्षुः पूर्णोद्धारं कामयमान, ईशः सकलचेतनचेतोनियमननिरतः स्वामी, अविलम्बम् मुमुक्षासमकालमेव, सद्देशम् मोक्षाभिलाषानुकूलं स्थानविशेषं, देशिकाग्र्यं शिष्यधीवृद्धिनिपुणमाचार्यवरम्, नयति प्रापयति, तत्रान्तः स्थितो गुरुवचनानुसरणाय विनयते शिक्षयति च। सर्वनिर्वाहको भगवानेव मुमुक्षाम्, आचार्यवरणं, शरणवरणं, वासनाक्षयक्रमेण मोक्षञ्च सम्पादयति, तेन नित्यं स एव चेतसा परमपुरुषार्था–याभ्यर्थनीय इति भावः।

**भावार्थ – संसार में मोक्ष का मार्ग दुर्लभ है फिर भी भगवान् की कृपा से वह अधिकारी को सुलभ हो जाता है, यह कहते हैं कि कौन ऐसा शास्त्रनिष्ठ महापुरुष है जो अपने को कर्ता न माने या कर्म–फलों के प्रति इच्छा न रखे। ये दोनों भाव तो अनादि कर्मप्रवाह में सुदृढ़ रूप में बने ही रहते हैं। कर्मों की धारा अपने फल भोगों के लिये तत्त्वदर्शन के विरुद्ध केवल अज्ञान पर टिके इन दोनों भावों को बनाये ही रखती है। ऐसे ही शब्दादि विषयों से चित्त की निवृत्ति भी कहाँ देखने को मिलती हैं, कौन दयालु अपनी शक्ति से इस प्रवृत्ति को बदल कर निवृत्ति का रूप दे सकता है ? इस प्रश्न पर उत्तर देते हैं कि सारे चेतनों के अन्तर्यामी परमात्मा जो कि मुक्ति की थोड़ी चाह लेकर अपने चरणों का कुछ भरोसा करने वाले का शीघ्र पूर्ण उद्धार करने के लिये सदा से तत्पर रहते हैं, वे मुमुक्षु की मानसिक अवस्था**

देखकर उसे ऐसे स्थान पहुँचने को प्रेरित करते हैं जहाँ मोक्ष की इच्छा मजबूत हो और ऐसे उत्तम आचार्य से मिलाते हैं जो सन्मार्ग की ओर बढ़ायें, इस के बाद वे अन्तर्यामी रूप से आचार्य के वचनों पर उसे विनीत अर्थात् उत्तम अधिकारी बना देते हैं। इससे आदि से अन्त तक केवल भगवान् पर ही भरोसा रखना और उनसे ही प्रार्थना करते रहना परम कल्याण का एकमात्र उपाय है।

**प्रोद्वाहार्थोत्सवादौ ललितरसभरे सर्वतः सर्वलोके,**
**भेरीढक्कामृदङ्गध्वनिभृतललनागीतरागाब्धिमग्ने।**
**कन्या प्रेयःप्रसङ्गागमकलितमतिर्नेन्द्रियैर्बाह्यमर्थं,**
**गृह्णात्येवम्परस्मिन्धृतसरसमतिर्बन्धनेष्वेवमुक्तः।।८५।।**

विक्षेपावसरेष्वपि सद्धियो लक्ष्यबद्धत्वं सदृष्टान्तमाह प्रोद्वाहेत्यादिना। प्रोद्वाहार्थोत्सवादिष्ववसरेषु सर्वलोके सर्वेषु जनेषु, जातावेक वचनम्, सर्वतः सर्वोपायैः, ललितरसभरे प्रकृतमंगलोत्सवपूर्णे, भेरीढक्कामृदङ्गानां ध्वनिभिर्भृते पूर्णे, ललनानाम् महिलानां गीतरागाब्धौ समुद्रवद्दुष्पारे गीतरागवातावरणे, मग्ने निलीनमानसे सत्यपि, कन्या विवाहोद्यता किशोरी, प्रेयसो वरस्य, यः प्रसंगः स्निग्धः सहवासस्तस्य य आगमो ध्यानविषयोऽवसर, स्तेन कलिता गृहीता मतिर्यस्याः सा तथोक्ता, बाह्यं गीतवाद्यादिरूपमर्थम्, इन्द्रियैर्दृक्श्रोत्रमनोभि, र्न गृह्याति तेषु मनो न नयति। एवम् एव प्रेष्ठे सर्वातिशायिप्रीतिविषये, परस्मिन् भगवति, धृता योजिता, सरसा अनुरागमयी, मतिर्यस्य स तथोक्तोऽधिकारी, बन्धनेषु कर्मजेषु देहादिषु सत्स्वेव, मुक्तः संसारदुष्प्रभावरहितो भवति।

**भावार्थ – हमारा मन कुसंस्कारवश ही विषयों से जुट कर संसार बढ़ाया करता है। अन्यथा वह सहज ही स्वरूपनिष्ठ हो सकता है। उक्त तथ्य दृष्टान्त द्वारा बतलाते हैं। देखा जाता है कि किसी कन्या के वैवाहिक उत्सव के कार्यक्रम में जब सारे लोग बाहरी सजावटों और नाना प्रकार के वाद्यध्वनियों से मिले स्त्रियों के गीत राग ध्वनियों के समुद्र में डूबे रहते हैं, उनका मन आन्तरिक किसी बात के चिन्तन की स्थिति में नहीं रहता उसी समय विवाहवाली कन्या का ध्यान प्रियमिलन की कल्पना में इतना लीन रहता है कि उसे गीत और वाद्य ध्वनियों का पता ही नहीं चल पाता। वह मानो किसी अचिन्त्य तत्त्व के चिन्तन में डूबी रहती है। ठीक ऐसे ही जिन तत्त्वनिष्ठ महापुरूषों का ध्यान भक्तिभाव से भगवान् में लगा रहता है उनका**



**मन ध्यान तोड़ने वाले बाहरी अर्थों से जुड़ता ही नहीं, इससे वे बन्धनदशा में ही संसार से मुक्त रहते हैं, संसार का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता।**

**तत्त्वज्ञानं विनायत्किमपि च कुरुते कर्म कामाभिलाषी,**
**तस्य व्युष्टिस्तु षोढा तनुविषयधियां साध्वसाधुप्रभावात्।**
**यावद्धीः कर्मबद्धा भवति न भविनां शास्त्रतोऽप्यर्थबोध–**
**स्तस्मात्सन्तो विवेकं विपिनगिरिगुहादौ चिरम्मार्गयन्ते।।८६।।**

तत्त्वबोधाभावे शुभाशुभकर्मफलानां देहबुद्धिविषयाऽवस्थाऽनन्त्या–दनवस्थितत्वं दुर्निरुपत्वञ्च, तत्त्वविवेकरहितस्य पुंसः शास्त्रतोऽपि विधेयार्थबोधाभावञ्च पश्यद्भिर्ध्यानयोगस्यावश्यकताऽवधार्यत इत्याह–तत्त्वज्ञानं विनेत्यादिना। अतत्त्वविद् बाह्यमर्थजातं कामयते, तेन तत्त्वज्ञानं विना अतत्त्ववित्, कामाभिलाषी निसर्गत एव कामान् शब्दादिविषयान् अभिलषणशीलः कर्ता, यत् किमपि च कर्म कुरुते, तस्य व्युष्टिः फलन्तु, तनुविषयधियां शरीरबुद्धिविषयाणां, साध्वसाधुप्रभावात् त्रयाणां साधुप्रभावास्त्रयोऽसाधुप्रभावाश्च त्रयइति, षोढा षड्विधं जायते। वस्तुतोऽन्तरावस्थाभेदैरसंख्यन्तद् भवति, तेन कर्मफलानामव्यवस्थि–तत्वमायाति। एवं चेतनस्य धीः प्रज्ञा, यावत्कालं कर्मभिर्बद्धा भवति तावत् शास्त्रतोऽपि तदध्ययनमननैरपि नैव अर्थबोधो विधेयार्थावधारणं जायत इति दृश्यते। तस्मादेव हेतोः सन्तः सामान्येन लब्धात्मविवेका, विशदं विवेकं क्वचिद् भ्रष्टं रत्नविशेषमिव विपिनेषु काननेषु, गिरिगुहादौ कन्दरेषु बसन्तश्चिरम् बहुकालम् मार्गयन्तेऽन्वेषयन्तो ध्यानाय यतमाना दृश्यन्त इति भावः।

**भावार्थ – तत्त्वबोध के न रहने की स्थिति में कोई भी चेतन विषयों की इच्छा रखता हुआ उनके लिये ही कर्म करता है, वह अपने कर्म के साथ किसी विषय को स्पष्ट रूप में न जोड़े तो भी अपनी वासना के अनुसार कर्मफल के रूप में सामान्यतया वाञ्छित विषय ही प्राप्त करता है, तब उसका कर्म शुभ अशुभ भेद से दो तरह का और शरीर बुद्धि विषयों की अवस्थाओं के अनुसार छः तरह एवम् उक्त अवान्तर अवस्थाओं के अवान्तर भेदों से असंख्य प्रकार का हो जाता है। इस तरह कर्मफल की कोई एकरूपता नहीं होती, फल की उत्तमता के लिए बुद्धि की उत्तमता अपेक्षित होती है। जब तक चेतन की बुद्धि कर्मों से बन्धी होती है तब तक उसे शास्त्रों से भी वास्तव विधेय अर्थ का बोध नहीं होता, इससे सत्पुरुष जंगलों और पर्वत–गुफाओं में चिरकाल निवास करते हुए खोये हुए किसी मूल्यवान रत्न की भाँति विवेक**

की तलाश करते रहते हैं। दुर्लभ विवेक प्राप्त होने पर ही कर्मफल सुन्दर उत्तम और स्थायी होता है, तभी कर्म निष्काम होता है और परमफल मोक्ष की प्राप्ति होती है।

**ज्ञानम्भानुं निरुन्धे मनसि नभसि नुः सञ्चरन् कर्ममेघः,**
**धूते कर्माभ्रजाले सुतपसि पवने सत्त्ववृद्ध्याऽऽत्मदृष्टिः।**
**दृष्ट्या तत्त्वार्थवत्या विकलुषमनसा श्रीधरं सन्तमन्त–**
**गृह्णंस्तत्सख्यतस्तत्पदमपि सुलभम्पूर्णकृत्यः सुखी स्यात्।।८७।।**

उक्तमेवार्थमन्यथाऽप्याह–ज्ञानम्भानुमित्यादिना। ज्ञानमेव भानुर्ज्ञानात्मा प्रकाशस्तं नुः पुरुषस्य, मनसि नभसि चित्ताकाशे सञ्चरन्, कर्ममेघः पूर्वार्जितः प्रारब्धनामा कर्मरूपो मेघो निरुन्धे कल्याणार्थेभ्यो वारयति। अयं नियमश्चेतन–मात्रसाधारणः। अथ सुतपसि तत्त्वबोधस्फीते वर्णाश्रमोचितकर्मकलापश्रमे, पवने वाते, ऽनुवर्तमाने कर्माभ्रजाले प्रारब्धकर्मरूपे मेघसमूहे, धूते छिन्ने भिन्नेऽनावरके सति, सत्त्वगुणस्य चित्ताकाशे वृद्ध्याऽतिरेकेण, क्रमेण आत्मदृष्टिः स्वस्वरूपनिष्ठा, स्थितप्रज्ञताऽऽख्या जायते। तथा च तत्त्वाऽर्थवत्या मायिकमिथ्याभूतार्थवर्जनपरया, दृष्ट्या विकलुषेण चिरानुवृत्ताज्ञानदोषवर्जितेन मनसा अन्तरङ्गे, चित्तभित्तौ, सन्तं स्फुरन्तं, श्रीधरं सदा सेव्यम्भगवन्तं, गृह्णन् अनुभवन्, तस्य नित्यसख्यतः सौहार्दात्, तत्पदम्मोक्षावस्थारूपम् अपि सुलभं, गृह्णन् मन्वानः, पूर्णकृत्यो मुक्तिहेतुस्थिरतत्वदृष्ट्युत्पत्त्या सफलीभूतवर्णाश्रमोचित– सर्वकृत्यः सन्, सुखी नित्यम् पुरुषार्थचिन्तारहितः, स्याद् अवतिष्ठेत। देहपातमात्रम् प्रतीक्षमाण इति शेषः।

भावार्थ – अज्ञानावस्था के कर्मों का फल अज्ञान अवस्था में ही मिल सकता है इससे हमारा प्रारब्ध कर्म अपने फल देने के लिये हमारी बुद्धि को आत्मकल्याण की ओर बढ़ने से वैसे ही रोकता रहता है जैसे मेघ सूर्य के प्रकाश को। यह नियम सभी मनुष्यों पर समान रूप से लागू है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति आत्मकल्याण चाहता हुआ वर्णाश्रम धर्मरूपी तपस्या में देर तक रहता है तो वह तपस्या सारे प्रारब्ध कर्मरूपी मेघ को वैसे ही छिन्न भिन्न करके ज्ञानरूपी प्रकाश को नीचे आत्मस्वरूप की ओर आने का अवसर दे देता है जैसे तीव्र वायु सूर्यरश्मियों को। तब लौकिक दृष्टि आत्मनिष्ठ हो जाती है और मन में चिरकाल से बसा अज्ञान–दोष दूर हो जाता है जिससे वह अधिकारी हृदय में बसे श्रीमन्नारायण को देखने लगता है और उनकी



दयापूर्ण मित्रता का ध्यान भी उसे बना रहता है, इससे वह मानने लगता है कि लौकिक कामनाओं के न रह जाने से भगवान् अपना परम पद अवश्य देंगे। ऐसा भरोसा होने से वह कृतार्थ और निश्चिन्त होकर प्रारब्धक्षय की प्रतीक्षा करता हुआ जीवन व्यतीत करता है।

**सृष्टेः प्राग्बुद्ध्ययोगात्करणविरहतः शून्यवन्निःस्वरूपान्,**
**दृष्ट्वा जीवान्यथावत्कृतफलसमयञ्चेश्वरो नित्यबन्धुः।**
**सङ्कल्पादेव वाञ्छन् करणवितरणम्बुद्ध्यहङ्कारमुख्यम्,**
**भूम्यन्तन्तत्त्वजातं सृजति विधिमुखान् सर्वजन्तूंश्च विष्वक्।।८८।।**

मोक्षमुख्यफला भगवतो विश्वसृष्टिव्यापाराः सर्वे तदीयनिरुपाधिक स्वामित्वदयाप्रयुक्ता इति प्रतिपादयन् भूतादिहिरण्यगर्भादिसृष्टिक्रमः सङ्कल्पमात्रायत्त इत्याह–सृष्टेः प्रागित्यादिना। नित्यबन्धुः स्वभावादेव चेतनानां सर्वसाह्यप्रद, ईश्वरो जगत्स्वामी परमात्मा, सृष्टेः प्राग् गुणत्रयसाम्यावस्थायां, जीवान् देहिनः, करणविरहतो ज्ञानप्रसारहेतुस्थूलषडिन्द्रियाभावाद्, बुद्ध्ययोगाद् ज्ञानप्रसराभावात्, शून्यवद् आकाशवत्, निःस्वरूपान् निरुपणस्याप्यनर्हान्, कृतानाम् पूर्वकर्मणाम्फलानां समयम् उपस्थितं कालञ्च, यथावत् सविशेषं दृष्ट्वाऽवधार्य, करणवितरणम् इन्द्रियमयदेहोपलम्भनं, वाञ्छन् कामयमानो बुद्ध्यहंकारमुख्यम् भूम्यन्तं तत्त्वजातं साङ्ख्योक्तं सृज्यवर्गं, विधिमुखान् ब्रह्मादींस्तृणान्तान्, सर्वजन्तून् देहिनश्च, सङ्कल्पादेवास्मदादिवदिच्छा– यत्नचेष्टाभिर्विनैव, विष्वक् सर्वदिक्षु यथाऽर्हं, सृजति जनयति।

भावार्थ – परमात्मा सभी अवस्थाओं में चेतनों के निष्कारण बन्धु हैं। प्रलय काल में जब प्रकृति का कोई परिणाम उपलब्ध नहीं रहता जिससे देहइन्द्रियादि के न होने से जीवों का अस्तित्व नगण्य सा रहता है, जब उनके निरुपण का कोई माध्यम नहीं रहता जिससे उनके कर्मों के फल उन्हें मिलने की स्थिति नहीं रहती तब वे परमात्मा केवल बन्धुभाव से उनके कर्मफल देने के लिये देह इन्द्रियादि देना चाहते हैं इसके लिये वे अपने संकल्प से त्रिगुणों में विषमता लाकर मूल प्रकृति में परिणाम कराते हैं जिससे महतत्त्व अंहकार इन्द्रिय वर्ग और पञ्चभूतों की सृष्टि होती है। तब क्रम से सभी ओर ब्रह्मा से तृणपर्यन्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

**युङ्क्ते प्राक्कर्ममार्गे नवपशुशिशुवद्भोगलाभाय जन्तून्,**
**भुक्त्वा धृत्वा विदित्वा स्वमथ भवरुजो मुक्तये स्युः सयत्नाः।**

**इत्युद्दिश्यैव शश्वत्प्रलयसृजनवान्देवदेवो दयावान्,**
**धत्ते यज्ञाङ्गजातं रचयति च पुनः सिद्धिहेतून् वितानान्।।८९।।**

भगवतः सृष्ट्यनन्तरदयाकृत्यमाह—युङ्क्ते प्रागित्यादिना। दयावान् चेतनेषु करुणैकस्वभावः, शश्वत् नित्यम्, प्रलयसृजनवान् दैनन्दिनेष्वपि सृष्टिप्रलयकृत्येषु लग्नो, देवानाम्ब्रह्मादीनामपि, देवः श्रद्धेयो भगवान्नारायणो, भुक्त्वा जन्तवो भोगाननुभूय, धृत्वा भोगप्रयुक्तावधानेनावस्थाय, स्वमात्मानं, विदित्वा सामान्येन देहादिभेदेनावधार्य, अथानन्तरम्, भवरुजो दैहिकादितापत्रयात् मुक्तये स्वस्वरूपाविर्भावाय, सयत्नाः श्रवणमननादिरताः, स्युर्भवेयुरिति, उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्यैव, जन्तून् देहिनः, प्राक्कर्ममार्गे पूर्वजन्माभ्यस्तेष्वाहारादिकृत्येषु, भोगलाभाय जीवनोपयुक्ताशनपाननिवाससहवासाद्यनुभवाय, नवपशुशिशुवद् गोवत्सादीन् मातृस्तनादाविव, युङ्क्ते अन्तः प्रेरणया, बहिः सहकारिभिश्च योजयति, यज्ञाङ्गजातं पुण्यकृत्यहवनादिसम्भारान्, धत्ते सङ्कल्पेन धारयति, स्वयञ्च पुनः सिद्धिहेतून् फललाभहेतून्, वितानान् यज्ञानुष्ठानविशेषांश्च, चेतनानामनुकरणार्थम् ऋषिमुनिवेषैश्च रचयत्यनुतिष्ठति। एवं सृष्ट्यारम्भात् प्रभृत्येव यज्ञाद्यनुष्ठानपर्यन्तव्यापारैः प्रजाः सत्कर्मसु स्वयं स्वीयतया दयया च शिक्षयति श्रीश इति भावः।

**भावार्थ – भगवान् संसार रचकर जीवों के भरोसे छोड़ नहीं देते बल्कि जिस दया से वे सृष्टि रचते हैं उसी से जीवों को पूर्व जन्मों के अनुसार कर्म भी सिखला देते हैं कि उन्हें भोग मिलें जिससे सन्तुष्टि प्राप्त हो और स्थिर हो कर अपने को समझ कर दुःखों से छूटने के उपाय करने लगें। इसी उद्देश्य से भगवान् यज्ञों की साम्रगी उत्पन्न करते, उनकी रक्षा करते, उनके द्वारा ऋषि मुनियों के प्रेरक बनकर आदर्शभूत यज्ञयागादि भी करते हैं जिससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाये और प्रजा सन्मार्ग पर चला करे।**

**यादृग्भावो यथा वा परिचरति सुरान् यत्तपस्यत्यजस्रं,**
**सत्कर्मी तद्रसं योऽनुभवति सततम्प्रीयते स्वत्वयोगात्।**
**नित्यस्वामी सुखेप्सुः सकलतनुभृतां सन्निवृत्तिप्रतीक्ष–**
**स्तत्तोषैकव्रतानान्तनुकरणधियः सत्फलाः स्युः स्वभावात्।।९०।।**

भगवतः सर्वशुभकर्माराध्यत्वम् मनसि दधानाः स्वभावादेव शुभकर्माणःस्युरित्याह—यादृग्भाव इत्यादिना। सत्कर्मी शुभकर्मकर्तृत्वेनाभिमतः



पुमान्, यादृग्भावः स्वकर्मतदाराध्यफलविषयकयादृक्सङ्कल्पः, यथा यत्प्रकारैः, सुरान् देवान्, परिचरति यज्ञहोमदानादिभिः समाराधयति, अजस्रं निरन्तरं, निष्कामं यत्तपस्यति धर्मार्थं कायक्लेशान् सहते, तेषां यज्ञहोमदानतपसां, रसं सारांशम्, फलहेतुकर्तृकर्मोपकरणादिविशेषजातं, यः सकलानां सर्वेषां स्थावरजंगमानां, तनुभृतां देहिनां, सुखेप्सुः सुखोपाययोजनेच्छुः, सत्याम् अदम्भात्मिकायां, निवृत्तौ स्वस्वरूपानुभवजनिते वैराग्ये, प्रतीक्षा हितसाधनार्थाऽपेक्षा यस्यासौ तथोक्तो नित्यस्वामी सतां निरुपाधिकः संरक्षकः, सततम् अविरामम्, अनुभवति साक्षात्करोति, स्वत्वयोगात् आत्मीयतासम्बन्धस्य सत्वात्, प्रीयते, (च) तस्य भगवतस्तोषैकव्रतानाम् भगवत्प्रीतिमात्रोद्देश्येन कर्म कुर्वतां सतां, तनुकरणधियः शरीरेन्द्रियबुद्धयः, स्वभावात् शुभभावनाविशेषाद् एव, सत्फला उत्तमपरिणामव्यापाराःस्युः सम्भवेयुः।

**भावार्थ – सारे शुभ कर्मों के द्वारा परमात्मा की ही आराधना होती है, अन्य देवताओं की सन्तुष्टि से भी वे ही मुख्यरूप से सन्तुष्ट होते हैं, परमात्मा की प्रेरणा से ही दूसरे देवता शुभ फल प्रदान करते हैं। वे अकेले ही सारे विश्व का संचालन करते हैं। इस रहस्य का ध्यान रखकर किये हुए सत्कर्मों का फल स्वभाव से ही शुभ होता है। यही बात यहाँ बतला रहे हैं कि कोई भी शुभ कर्म करने वाला व्यक्ति जैसी भी भावना रखकर जिस रूप से जिन देवताओं का आराधन जिस उद्देश्य से करता है वह सब परमात्मा प्रत्यक्ष देखते हैं। सभी कार्यकारणों और कर्ताओं के अन्तर्यामी होने से उनके लिये सब कुछ प्रत्यक्ष तो रहता ही है, सभी शुभ कर्मों से सन्तुष्टि भी मुख्यरूप से उन्हें ही होती है, क्यों कि सारे जीव उनके अपने प्रिय हैं, वे सदा उनका हित और सुख चाहते हैं। वे इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब यह संसार से विमुख होकर मेरी ओर झुके कि मैं इसका वास्तव हित करुं। ऐसी स्थिति में कर्ता के द्वारा किसी की भी सन्तुष्टि होने से प्रभु ही मुख्यरूप से सन्तुष्ट होते हैं। इस बात पर ध्यान रहने से अपराध नहीं हो पाते और शुभ कर्मों के फल अधिक शुभ होते हैं। मन इन्द्रिय बुद्धियों का प्रवाह शुभतम कृत्यों की ओर ही अधिक होता है।**

**५–पञ्चमे तत्त्वधीभूम्ना भगवन्न्यस्तकर्मणाम्।**
**कर्ममोक्षः शुभावाप्तिस्ततो मुक्तिश्च वर्णिता।।९१।।**

अध्यायार्थमुपसंहरति—पञ्चम इत्यादिना। पञ्चमेऽध्याये तत्त्वधियो भगवत ऐश्वर्ये यथार्थबोधस्य, भूम्ना दार्ढ्येन, भगवन्न्यस्तकर्मणां जगति तत्तज्जन्तुकृतानि

सर्वाणि कर्माणि भगवतैव स्वसंकल्पेन प्रयत्नेन च तत्तच्चेतनज्ञानेच्छा–प्रयत्नयोजनपूर्वकं क्रियन्ते, तेन मत्कर्माणि च वस्तुतो भगवत एव यत्नविषया इति विजानद्भिः स्वकर्मसु स्वकर्तृत्वानुसन्धानवैमुख्येन सकलक्रियासु भगवदेककर्तृत्वानुसन्धानशीलानाम्मुमुक्षूणां, कर्ममोक्षः सञ्चितानामश्लेषो भविष्यतां विनाशश्च शुभानाम्भावानां सत्यसङ्कल्पफलभूतानाम् आप्तिरुदयस्ततो बन्धापगमे मुक्तिर्भगवत्कृपापूर्त्या देशविशेषे परिपूर्णभगवदनुभवानन्दश्च वर्णिता सूचिता विवृता।

*इति पञ्चमोऽध्यायः*

**भावार्थ – चौथे अध्याय में वर्णित तत्त्वबोधपूर्वक कर्मयोग में तत्त्वबोध की उत्तरोत्तर दृढ़ता से भगवान् के समग्र ऐश्वर्य के अन्तर्गत सर्वकर्तृत्व के बोध से अपने कर्तृत्व का बोध बाधित हो जाता है और सारे कर्मों के कर्तृत्व और फल की सत्ता भगवान् में ही समझ में आने लगती है। ऐसी भावना देर तक रहने से कर्मबन्धन कट जाते हैं। पिछले कर्मों के फल नहीं मिलते, अगले कर्म ज्ञान से ही नष्ट होते रहते हैं। तब आत्मा के सहजगुण उभरते हैं जिससे देहधर्म प्रभावी नहीं होते है। एवं सत्यकाम सत्य संकल्प आदि महान् वैभव प्रकट होते हैं और आगे चलकर मोक्ष हो जाता है।**

*पाँचवा अध्याय समाप्त*



# *अथ षष्ठोऽध्यायः*

**शास्त्रैः सद्भिः सुबुद्ध्या धृतमपि सुधियां स्वप्रकाशात्मतत्त्वं,**
**तावन्नाभाति सम्यग्यदवधि न समाधानमाप्नोति चित्तम्।**
**तस्मात्पातञ्जलीयैर्यमनियममुखाष्टाङ्गयोगैः सुदीप्ते,**
**स्फीते चित्ते स्वबिम्बं रविमिव सलिले लब्धुमिच्छन्ति सन्तः।।६२।।**

शास्त्रगम्यस्य स्वयम्प्रकाशस्याप्यात्मनो महार्थस्य मानसः साक्षात्कारो महाफल इति पूर्वाचार्याभिसन्धिरिह विशदम्प्रतिपाद्यते षष्ठाध्याये– शास्त्रैरित्यादिना। शास्त्रैर्वेदादिभिः, सद्भिस्तदर्थानुभवप्रथितैः, सुबुद्ध्या सुसंस्कारवता स्वाभाविकेन च ज्ञानेन, धृतं विषयीकृतमपि, स्वप्रकाशं स्वयमेव सदा स्वस्मैभासमानमपि आत्मतत्त्वं स्वस्वरूपं, सुधियां सात्त्विकधियामपि तावत्कालं, सम्यक् स्पष्टं, न आभाति न प्रकाशते, यदवधि चित्तम् अन्तःकरणं, स्थैर्यं समाधानं, न आप्नोति न लभते। तस्मात् सन्तो लब्धकल्याणोपाया, अपि पातञ्जलीयैर्योगशास्त्रोक्तैर्यम–नियममुखैरष्टाभिरुपायैर्युक्तैर्योगैः, सुदीप्ते प्रकाशमाने, स्फीते लब्धवैशद्ये, चित्ते स्वान्तरङ्गे, सलिले रविमिव, स्वबिम्बं स्वस्वरूपं, लब्धुम् प्राप्तुम्, इच्छन्ति यतन्ते। शास्त्रदृष्टमपि महार्थं योगेन साक्षात्कुर्वन्तीति भावः।

**भावार्थ – आत्मतत्त्व तीन तरह से जाना जाता है। एक तो वह स्वयम्प्रकाश है जिससे वह अपने आप सदा अपनेको विदित ही रहता है, दूसरे वह आगम निगम वाक्यों से और अनुमान प्रमाण से अनेक रूपों में जाना जाता है, तीसरे वह मानस प्रत्यक्ष से भी जाना जाता है। सुख दुःख ज्ञान अज्ञान का प्रत्यक्ष सबको मन से होता रहता है, वैसे ही सुखादि के आश्रय आत्मा का भी प्रत्यक्ष होता हैं किन्तु विषयों के संस्कारों से दूषित चित्त आत्मा को साफ नहीं पकड़ पाता, इससे यमनियम आदि उपायों से चित्त को शुद्ध किया जाता है, तब उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब मिलता है। योगशास्त्रीय उपायों से शुद्ध चित्त के द्वारा ध्यान रूप अनुभव से आत्मनिष्ठा दृढ़ होती है, तब विषयवासना मिटती है, वैराग्य दृढ़ होता है और भगवान् के प्रति स्थिर भक्ति प्राप्त होती है जिससे चित्त पहले से भी अधिक उज्ज्वल होता है और**

प्रपत्ति का भाव सुदृढ़ होता है। इस तरह तत्त्वज्ञानपूर्वक योगाभ्यास निवृत्तिमार्ग का सर्वोपरि उपाय है।

**आत्मेक्ष्यः स्वप्रकाशो विषयचयगताजस्रधीवृत्तिदभ्रः,**
**खे भानुर्दूरनिर्यत्किरणगणहतान्ध्योऽपि मेघैरशुभ्रः।**
**रुद्धप्राणप्रणुन्नाशुभमतिजलदो ध्यानदृग्लक्ष्यरूपो–**
**ऽरूपोऽयम्प्रत्यगात्मा मिहिर उदयते हृत्तलव्योम्न्यनिन्द्ये।।६३।।**

नित्यं स्वप्रकाशोऽप्यात्मा विषयव्यावृत्तचित्तैर्विशदं द्रष्टुं शक्य इत्याह– आत्मेक्ष्य इत्यादिना। विषयाणां शब्दादीनां यश्चयः समुदायस्तद्गता तत्सम्बद्धा या अजस्रा निर्विरामा, धीवृत्तिः प्रज्ञासम्बन्धः, तया दभ्र इव दभ्रोऽस्पष्टज्ञान–तयाऽसत्प्राय आत्मा चेतनः, स्वस्वरूपभूत, ईक्ष्यो दर्शनीयो ध्यानदृशा। बाह्यार्थव्यासङ्गवशाददृष्टप्रायोऽन्तर्मुखीकृतेन्द्रियैः स्वयमेव दृश्यत इत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तमाह–खे गगने, भानुः सूर्यो, दूरं यथा स्यात्तथा निर्यतां प्रसरतां किरणानाम्मयूखानां गणैः समूहैर्हतं निवारितमान्ध्यं तमो येन स तथोक्तोऽपि, मेघैरावृणद्भिरशुभ्रोऽप्रकाश इव भाति, तथैवायमात्माऽपीत्यर्थः। रुद्धैः प्राणायाम विधिना निश्चलीकृतैः प्राणैः क्लेशतपःसम्पादकैः, प्रणुन्ना प्रकर्षेण दूरीकृता, याऽशुभा मतिर्विषयाविला धीः, सैव जलदो यस्याऽसौ, ध्यानदृशो ध्यानरूपस्य नेत्रस्य लक्ष्यं विषयभूतं रूपं ज्ञानैकाकारं यस्याऽसौ, अरूपः चक्षुरगोचरोऽयम् प्रत्यगात्मा मिहिरः सूर्य इव, अनिन्द्ये निर्दोषे हृत्तलव्योम्नि चित्ताकाशे उदयते प्रकर्षेण प्रतीयत इति भावः।

**भावार्थ – अपना आत्मा (स्वरूप) प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही ज्ञात रहता है फिर भी बाहरी दृष्टि आत्मदृष्टि को झुठलाती सी रहती है, इससे इसके विषय में विवाद रहता है। हमें कुछ समय भी बाहरी दृष्टि रोक कर अपने विषय में ध्यान जमाना चाहिये। सूर्य महान् तेजस्वी पिण्ड है। वह बहुत दूरी तक प्रखर प्रकाश फैलाता हुआ अन्धकार का वारण करता रहता है, फिर भी बादल घिरने पर वह नहीं दीख पड़ता, ऐसे ही आत्मा के बारे में जानना चाहिये। प्राचीन अशुभ कर्म अपने फल देने के लिये हम पर अज्ञान का पर्दा डाले रहते हैं। प्राणायाम के प्रभाव से अज्ञान घटता है तब ध्यान दृष्टि में ज्ञानमय आत्मा प्रकट होता है, वह आँखों वालारूप तो नहीं रखता फिर भी मनोग्राह्य उसका रूप है, वह ध्यान में लक्षित होता है, शुद्ध चित्त रूपी आकाश में वह सूर्य की भाँति उत्तरोत्तर स्पष्ट होता रहता है।**



**भानुं क्रामन्ति खेटा विधुधरणिसमुद्राब्भ्रवाताः समन्ताद्,**
**आत्मानं कर्मनुन्नासुगगनमुखसद्भूतसङ्घाश्च शश्वत्।**
**कामं क्रामन्तु केन्द्रं सकलपरिधिगास्तन्तु न स्प्रष्टुमीशा–**
**स्तद्बद्धाः सन्तु सर्वे क्वचिदपि न पुनस्तेषु कोऽप्यस्य बन्धः।।६४।।**

ध्यानोत्साहहेतुं चेतनस्यासङ्गत्वं सदृष्टान्तमाह–भानुमित्यादिना। खेटा ग्रहा, विधुधरणिसमुद्राभ्रवाता भूमिस्तदनुषंगी चन्द्रो जलधरजलधिवायवश्च, भानुं सूर्यं, सदा परितः, क्रामन्ति चलन्ति, तथैव आत्मानं चेतनं कर्मभिः पूर्वार्जितैर्नुन्ना ईरिता, असवः प्राणा, गगनमुखा वायुतेजोजलभूमयः, सन्तः सूक्ष्मस्थूलावस्थाभि–रनादिसहचारिणो, भूतानामुक्तानामाकाशादीनां सङ्घाः समूहाश्च, तद्वत् तथैव, शश्वन्नित्यं, क्रामन्ति परितश्चरन्ति। किन्तेनेत्याहकाममिति, सकला अपि परिधिगाः केन्द्रं कामं क्रामन्तु किन्तु तं केन्द्रभूतम् परमार्थं, स्प्रष्टुं स्वेन योजयितुं, न ईशाः समर्थाः स्युः, तथैव तेनात्मना बद्धाः सर्वे प्राणादयः सन्तु नाम किन्तु तैरस्यात्मनो न कोऽपि बन्धोऽस्ति। आत्मा बन्धदशायामपि मुक्तप्राय एवेति भावः।

**भावार्थ – आत्मा वृत्त के केन्द्र की भाँति असङ्ग है। जैसे आकाश में सूर्य केन्द्र स्थानीय है, सारे ग्रह और चन्द्रमा पृथिवी सहित समुद्र मेघ और वायुमण्डल उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। ऐसे ही आत्मा के चारों ओर प्राणों के सहित अव्यक्त बुद्धि महत्तत्त्व और पञ्च महाभूत उसके कर्मों से प्रेरित घूमते रहते हैं। जैसे सूर्य के आकर्षण से उसकी परिक्रमा करते ग्रहगण अपनी अपनी कक्षाओं में ही रहते हैं वे कभी सूर्य को छू नहीं पाते ऐसे ही आत्मा को भी उसके कर्मरूप आकर्षण से बन्धे एवं कर्मों से ही प्रेरित भूत और अव्यक्त आदि उसके पास तो रहते हैं किन्तु उस अतिसूक्ष्म असंग आत्मतत्त्व को छू नहीं पाते न उस पर अपना कोई प्रभाव डाल पाते हैं। इससे शुद्ध रूप में उसका ध्यान और अस्तित्त्व दोनों सम्भव हैं।**

**आत्मा दुःखैर्हतात्मा चिरवृजिनफलैर्लब्धुमेष्यम्पुमर्थं,**
**नोत्साहं नापि साह्यं क्षणमपि लभते सञ्चरन् भ्रान्तिजाले।**
**एषा दौर्लभ्यसीमा हरिपदरजसां कोऽथ तत्र प्रयासः,**
**श्रीसङ्गादुद्दिधीर्षौ भगवति सकृदौन्मुख्यमात्रप्रतीक्षे।।६५।।**

प्रकृत्या दुर्लभो मोक्षोपायो भगवदौन्मुख्यमात्रेण सुलभो भवतीत्याह– आत्मेत्यादिना। चिरवृजिनानाम् अनादिपरम्पराऽनुवृत्तानान्त्रिविधापराधानाम्, फलैः

परिणामभूतैर्दुःखैर्दैहिकादिभिर्हतो विरूपित आत्मा ज्ञानानन्दमयं रूपं यस्य स तथोक्तो भ्रान्तिजालेऽहम्ममाभिमानरूपे, सञ्चरन् नानाऽज्ञानावस्थास्वेव वर्तमान, आत्मा चेतन, एष्यं वाञ्छनीयम्, पुमर्थं स्वाभाविकावस्थारूपम्मोक्षं, लब्धुम्प्राप्तुम्, उत्साहमध्यवसायं, क्षणमल्पकालमपि, कुतोऽपि साह्यं सहयोगमपि न लभते। हरिपदरजसाम् भगवदजस्रपरिचर्याफलाया मुक्तावस्थाया भक्तेः, एषा प्रकृता दौर्लभ्यस्य सीमा पराकाष्ठा ज्ञेया। अत्र पृच्छ्यते—श्रीसङ्गात् करुणैकमूर्तिलक्ष्मी—साहचर्यतः, सकृद् एकवारमेव, औन्मुख्यमात्रं स्वविषयानुध्यानमात्रम्, प्रतीक्षमाणे, उद्दिधीर्षौ संसारसागरात् सकलजन्तुजातम् उद्धर्तुं साभिलाषे, भगवति श्रीमन्नारायणे, सति तत्र मोक्षलाभे कः प्रयासो, न कोऽपीयर्थः।

**भावार्थ — जीव की सांसारिक अवस्था को देखते हुए मुक्ति का उपाय अत्यन्त दुर्लभ है किन्तु भगवान् की शरणागतवत्सलतारूपी महान् गुण को देखने से वह अति सुलभ मालुम होता है। जीव अनादि कर्म प्रवाह के दुःखों से सदा दबा रहता है, वह अपने स्वरूप और सामर्थ्य को कभी सोच भी नहीं पाता। उसे कभी भी मोक्ष की इच्छा नहीं होती। मोक्ष की ओर इंगित करके कुछ सहयोग पहुँचाने वाला व्यक्ति भी कभी इस असार संसार में देखने सुनने को नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में भगवान् को प्राप्त करना ही असम्भव है, उन्हें प्राप्त करके उनकी सेवा का सुख पाना तो और भी दुर्लभ है। फिर भी मोक्षोपाय अति सुलभ है। भगवान् के साथ श्री जी सदा विराजमान हैं। वे चेतनों के उद्धार की चिन्ता अधिक रखती हैं। उनके साहचर्य से भगवान् का सहज दयागुण पूर्णचन्द्र के प्रभाव से लहराने वाले समुद्र की भाँति बढ़ता ही रहता है। उनकी दया में कभी कोई कसर नहीं है। बस हम उनकी दया चाह लें, अपने दुःखों को छोड़ना सोच लें, एकबार उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना कर लें तब आगे के कार्य भगवान् स्वयं सम्हाल लेते हैं। भगवान् ने गीता में स्वंय कहा है—**

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति०" २/४०।।

**शेषत्वं चिन्मयत्वं स्वसहजसुखता बाह्यतत्त्वानपेक्षा,**
**नश्यत्कर्मानुबन्धोऽथ च फलविरतिर्गम्यमाना प्रपत्तिः।**
**निष्ठाऽऽचार्येषु भर्तुः कुसुमदलफलैरर्चनं सत्प्रणामः,**
**सिद्ध्यै ध्यानस्य योगी कलयतिकथिते पञ्चके सिद्धसाध्ये।।६६।।**

योगोद्युक्तेन मुमुक्षुणा निर्विघ्नचरमसिद्धिलाभाय स्वीया नित्याः पञ्च विशेषा



अवधेया, अनुष्ठानैश्च पञ्च विशेषा नियतमर्जनीया इत्याह— शेषत्वमित्यादिना। शेषत्वम् भगवदेकाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वे सति तदेकातिशयाधानहेतुत्वम्, तत्त्वञ्च तत्सङ्कल्पानुविधायित्वं, तच्च जडानाम्परिणामैश्चेतनानान्तु सङ्कल्पैः। चिन्मयत्वं ज्ञानप्रधानगुणकत्वम्, स्वसहजसुखता नित्यस्वानुभवजनितानन्दमयता, तेन, बाह्यतत्त्वानपेक्षा कर्मबन्धाधीनदेहेन्द्रियाद्यपगमे ज्ञानानन्दमयस्वरूपाविर्भावाय स्वेतरतत्त्वा— पेक्षाशून्यत्वम्, संसरणसमये च फलानुभवैः प्राचीनकर्मणां नश्यन् अनुबन्ध इति पञ्चविशेषाः सहजाः। अथ सम्पादनीयान् पञ्च विशेषान् आह—फलविरतिः स्वरूपबोधप्रयुक्तो लौकिकफलस्पृहात्यागः, गम्यमाना प्रपत्तिः सविधिविहितस्य भगवच्छरणवरस्याविस्मरणेन रसमयभगवदुपायताऽनुसन्धान—सातत्यम्, आचार्येषु शरणागतितत्त्वावेदकेषु भगवन्तमेव प्रथमाचार्यम्मन्वानेषु महत्सु निष्ठा भक्तिविवृद्धिहेतुरुपकाराविस्मरणम्, भर्तुः श्रीमन्नारायणस्य नित्यस्वामिनः शेषिणः शेषत्वानुरूपकिञ्चित्काररूपं कुसुमदलफलैर्यथालब्धद्रव्यैरर्चनं सविधि निवेदनम्, सन् प्रणामो भक्तिफलभूतम् पुनः पुनः स्वसमर्पणम् इति सिद्धसाध्ये पञ्चके पूर्वोक्तं सिद्धपञ्चकम् अनन्तरोक्तं साध्यपञ्चकञ्च ध्यानस्य सिद्ध्यै चित्तवशीकारपूर्वकदर्शनसमानाकारभगवदनुभवसातत्याय योगी ध्यानपरायणो मुमुक्षुः हृदये चेतसि कलयति अविस्मरणेन धारयति।

**भावार्थ — मोक्षमार्ग में योग का बहुत महत्व है। शास्त्रश्रवणमात्र से प्रमाद से छुटकारा नहीं होता, वैराग्य नहीं होता, तब अकेला शास्त्रज्ञान सफल नहीं हो पाता। आत्मकल्याण के लिये नाशवान् संसारी तत्त्वों से चित्त हटाकर शास्त्रों के सहारे अविनाशी प्रिय हितमय परम तत्त्व परमात्मा का श्रवण मनन चिन्तन और ध्यान किया जाता है। इससे प्रीति और श्रद्धा विकसित होती है और क्षुद्र विषयों से मन स्वतः हटने लगता है। यही वैराग्य कहा जाता है। विषयों से हटा हुआ मन पुराने गाढ़े स्नेह के संस्कारों से कभी भी वापस हो जाता है। स्नेह के संस्कारों से छूटना ही संसार से छूटना है। वे संस्कार ही नये कर्म और भोग में निमित्त बनते हैं। वैराग्य की चार अवस्थायें मानी गयी हैं। सामान्य साधकों में वह यतमान संज्ञा कही जाती है। सिद्धियों से पहले की अवस्था एकेन्द्रिय संज्ञा और सिद्धों की वशीकार संज्ञा कही जाती है। तीसरी अवस्था तक संस्कार शेष रहते हैं। अपने स्वरूप का साक्षात्कार होने पर संस्कार समाप्त हो जाते हैं। इसे ही योग सूत्र में "तत्परम्पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्" और गीता में "परं दृष्टवा निवर्तते" कहा गया है। इस अवस्था को पाने में कई जन्म लग जाते हैं। बीच में भगवान् की**

कृपा से प्रगति तेज होती है। भक्ति की चरम अवस्था आत्मनिवेदन कही जाती है। वही प्रपत्ति या शरणागति है। इसमें सम्पूर्ण समर्पण हो जाता है, यानी अपने स्वरूप स्वभाव और कर्तव्य एवम् फल भगवान् के ही आश्रित दीखने लगता है। यही आत्मा की निर्विशेषता या शून्यता है जो बहुतों को बहुत भाती है। इसी अवस्था में प्रभु की कृपा प्राप्त होती है। कृपा वह काम कर देती है जो चेतन के वश का नहीं होता। धर्मभूत ज्ञान का पूर्ण विकास और परमपद तक पहुँचना केवल प्रभुकृपा पर निर्भर होता है। साधनावस्था में प्रभुकृपा प्राप्त करने के लिये योगी शरणागति को विशद रूप से समझता रहता है। योगी की वह समझ ही प्रकृत श्लोक में दस रूपों में विभक्त करके प्रस्तुत की गयी है। स्वरूप की विस्मृति और स्वरूप प्रयुक्त कर्तव्यों की उपेक्षा से प्रमाद होता है। स्वरूप भूल न पाये इसके लिये इस श्लोक में स्वरूप से सम्बन्धित पाँच विशेषताओं का चिन्तन जारी रखने का सुझाव दिया जा रहा है, एवम् वे पाँच कर्तव्य भी बतला रहे हैं जो स्वरूप के नित्य स्वभाव से अनुबन्धित हैं जो प्रमाद नहीं होने देते। आत्मा की सर्वसामान्य प्रथम विशेषता है शेषत्व। मनुष्य के धन सम्पदा अस्त्र शस्त्र वस्त्र वाहन भूषण आदि के समान सारा विश्व भगवान् का शेष है। शेष वह होता है जो स्वयम् अपने उत्कर्ष के लिये न होकर अपने सम्बन्धी किसी दूसरे के उत्कर्ष के लिये होता है। चेतन आत्मतत्त्व भी जड़ तत्त्वों के समान ही भगवान् का शेष है। शेषत्व का निर्णय तत्त्वबोध से होता है। शेषत्व का ध्यान रहने से मनुष्य अपने लिये जो भी करता है उसे निष्ठापूर्वक भगवान् की सेवा का अङ्ग मानता है। स्वस्थ शरीर एवं सुन्दर वस्त्राभूषणों के साथ भगवत्तत्त्व का बोध रखते हुए स्तुति पूजा प्रणामादि से भगवान् को पूर्ण सन्तुष्टि होती है और ऐसे भक्त चेतन को वे कल्याण पथ पर आगे बढ़ाते हैं। शेषत्वज्ञान के अभाव में केवल प्रमाद रहता है, संसार बढ़ता है। चेतन की दूसरी विशेषता चिन्मयत्व है। ज्ञान उसका महान् गुण है, उसके अभाव में वह जड़तत्त्वों के तुल्य हो कर अपने परम पुरुषार्थ मोक्ष से दूर रहता है। ईंट पत्थरों का अज्ञान दूर नहीं होता, न वे मुक्त होते हैं। साधक को अपने स्वरूप का प्रामाणिक ज्ञान और ध्यान बना रहे इसके लिये अपनी ज्ञानमयता या चिन्मयत्व का स्मरण सदा रखना चाहिये। इससे ज्ञानार्जन में उत्साह बढ़ता रहता है। चेतन की तीसरी विशेषता है स्वाभाविक आनन्द। संसार अवस्था में आनन्द के उपाय करने पड़ते हैं। उपायों से स्वाभाविक महान् आनन्द का ही कुछ अंश अनुभव में आता है। योगमार्ग से संसारियों की अपेक्षा बहुत अधिक आनन्द अनुभव में आता है। चित्तशुद्धि से ऐसा होता है। रजोगुण तमोगुण से आनन्द ढका रहता



है। उनकी कमी होने पर आनन्द विशद रूप से सहज ही अनुभव में आने लगता है। सत्त्व गुण के बढ़ने से आनन्द बढ़ता है। वैकुण्ठ में विशुद्ध सत्त्वगुण है, इससे वहाँ सहज आनन्द पूर्ण रूप से अनुभव में आता है। वास्तव में विकसित ज्ञान ही अतिशय अनुकूल होने से आनन्दरूप होता है। इसी से मोक्ष चाहा जाता है। श्रुतियों ने विकसित आनन्द के रूप में ही मोक्ष का वर्णन ''अहमन्नम्० अहमन्नाद०'' इत्यादि वाक्यों से किया है। आनन्द के अभाव में मोक्ष पुरुषार्थ ही नहीं हो सकता। दुःखाभाव सहज आत्मसुखोपलब्धि की भूमिका के रूप में ही वाञ्छित होता है। चेतन की चौथी विशेषता है बाह्यतत्त्वानपेक्षा। आत्मा अपने आपके लिये स्वयम् पर्याप्त है। इसे अपने आनन्दमय स्वरूपाविर्भाव के लिये किसी बाहरी तत्त्व की आवश्यकता नहीं है। इस तथ्य का ध्यान रहने से बाहरी वस्तुओं के प्रति आस्था घटती है, वैराग्य बढ़ता है, ध्यान जमता है, प्रमाद नहीं हो पाता। इसकी पाँचवीं विशेषता है संसार अवस्था में नश्यत् कर्मानुबन्ध। यह अपने किये कर्मों से अनादि काल से बन्धा है किन्तु कर्म इससे नित नये जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं। सञ्चित राशि से प्रारब्ध राशि में आने पर ही कर्म इसके बन्धन होते हैं। क्यों कि वे तत्त्वज्ञान से भी नष्ट नहीं होते। उनका नाश भोग से ही होता है। इस तथ्य का ध्यान रहने से साधक अपने जीवन की अवस्थाओं से न तो दुःखी होता है, न सुखी, क्यों कि वह जानता रहता है कि यह सब बदलते ही जायेंगे। वह बदलाव के लिये विशेष प्रयत्न नहीं करके स्वरूप के आविर्भाव यानी मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है। वर्तमान अवस्थाओं पर आस्था न होने से उसका चित्त ध्येयाकार बना रहता है और प्रमाद नहीं हो पाता।

अब आगे वे पाँच विशेषतायें बतला रहे हैं जो प्रयत्नों से सम्पादित होते हैं। १– फलविरति अर्थात् शास्त्रीय कर्मों के लौकिक फलों के प्रति स्पृहा का त्याग। यह मानसिक व्यापार है जो तत्त्वज्ञान के बाद होता है। तत्त्वबोध होने के बाद भी मन पुराने संस्कारों से अतत्त्व में फँसा ही रहता है। तम्बाकू की बुराई जानकर उसे छोड़ने का संकल्प दुहराते हुए भी मन की दुर्बलता से कुछ लोग तम्बाकू छोड़ नहीं पाते। बलवान् मन ही अमंगल से उबर सकता है ''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'' योगी का मन बलवान् होता है, वह फलों के प्रति विराग बना सकता है।

२– गम्यमान प्रपत्ति, शरणागति आत्मकल्याण का सर्वोत्तम उपाय है। यदि इस उपाय का विधिवत् अनुष्ठान हो जाये और इसका ध्यान भी बना रहे तो एक असाधारण सन्तुष्टि रहती है। भगवान् शरणागत की रक्षा करते हैं

केवल दया से। उनकी दया और अपनी दुर्दशा का ध्यान हो, दुर्दशा से छूटने के बाद की स्थिति की कल्पना हो, एवं दया के मार्ग पर ही चलते रहने के कारण स्वयं को दया प्राप्त होने का भरोसा हो तो जीवन प्रमाद रहित एवम् आनन्दमय होता है, कोई अभाव नहीं खलता, अन्य किसी उपाय की अपेक्षा नहीं होती। तब योगसाधना कैंकर्य के अन्दर मिलती है, स्वरूपज्ञान रहने से कैंकर्य छूटता नहीं, विघ्नों की परवाह के बिना साधना जारी रहती है, उसका फल चित्त की उत्तर अवस्था के रूप में मिलता रहता है इससे प्रगति देख उत्साह बढ़ता रहता है। इस साधक की विशेषता यह होती है कि वह योगसाधना को उपाय नहीं मानता फिर भी सेवाभाव से साधना जारी रखता है। उपाय तो वह भगवान् की स्थिर कृपा को ही मानता है। शेषत्व–ज्ञान बना रहने से स्वरूप–विरुद्ध चिन्तन नहीं होता, इससे विघ्न दूर ही रहते हैं।

३– आचार्यों के प्रति निष्ठा, भगवान् को ही उपाय उपेय मानने वाले और समझने वाले आचार्यों की अनादि परम्परा है। प्रथम आचार्य भगवान् ही हैं, वे सृष्टि के आरम्भ में और बाद में भी सत्पात्रों को रहस्य का उपदेश करते हैं। उनका उपदेश ही बाद के अधिकारियों को प्राप्त होता है। अधिकारी की भावना के भेद से उपदेश के विषयों में हेरफेर भी होता है। इसीसे सम्प्रदायों में भेद पाया जाता है। शास्त्रानुकूल तर्कों से सम्प्रदायों में भी शिष्टपरिग्रहहेतु समीक्षायें चलती हैं। योगी भगवान् से प्रवर्तित किसी सम्प्रदाय का अनुयायी होता है सम्प्रदाय के प्रथम मानव आचार्य को भगवान् से जो उपदेश और आश्वासन प्राप्त रहता है उसका ज्ञान और निष्ठा उस योगी के आचार्य को होनी चाहिये। आचार्य से वही निष्ठा योगी को होनी चाहिये। वैसी निष्ठा की अनादि परम्परा भी योगी की समझ में श्रद्धा के साथ रहनी चाहिये। ऐसी निष्ठा को आचार्य निष्ठा कहते हैं। उक्त निष्ठा से मोक्षमार्ग राजमार्ग की तरह उदार निरापद और प्रकाशमय समझ में आयेगा और योगाभ्यास में कुछ विघ्न होने पर भी अपनी मुक्ति के प्रति योगी को सन्देह नहीं रहेगा।

४– स्वामी की पुष्प फलदल आदि सुलभ सामग्री से नियमित पूजन, शेषत्वज्ञान होने से प्रभु की कुछ–कुछ सेवा करते रहने की इच्छा स्वयं होती हैं, इच्छा न होने पर शेषत्व बोध केवल मौखिक रहता हैं। हार्दिक बोध के अभाव में होने वाली पूजाओं में प्रमाद की अधिकता देखी जाती है। क्रिया कलाप से भी ज्ञान दृढ़ होता है, इससे योगी भी यथासाध्य, पूजन करते रहते हैं।



५– सत्प्रणाम, सही प्रणाम होना चाहिये, प्रणाम भगवान् के लिये ही उचित है, बड़ों को किया गया प्रणाम भी भगवान् को प्राप्त होता है, इससे बड़ों के रूप में भगवान् को ही मानकर प्रणाम किया जाये। अनावश्यक अभिमान का त्याग करते हुए नम्रता दीनता और शरणागति का भाव व्यक्त करने वाला वचन बोल कर, वचन का भाव मन में भी लाते हुए प्रणाम होना चाहिये। सही प्रणाम का भाव मन में आया करे इसके लिये सदाचार्य का उपदेश श्रद्धा से सुनते रहना, पढ़ते रहना, मनन करते रहना चाहिये जिससे प्रतिदिन सत्प्रणाम निष्पन्न हो सके। इस प्रकार पूर्वोक्त सिद्ध विशेषपञ्चक और बाद में आये साध्य विशेषपञ्चक का चिन्तन योगी करता ही रहता है जिससे ध्यान की लम्बी प्रक्रिया में कहीं भी विघ्न न आये और चरम सिद्धि में विलम्ब न हो।

**उक्तार्थेषु प्रमत्तो यदि यतति यतिः सच्चिदानन्दयोगे,**
**तत्पापैस्तस्य चित्तं विसरति सुषिराद् योगयोग्यार्थहानात्।**
**गृह्णात्यर्थानथोक्तान् हृदि हरिचरणद्वन्द्वपद्मे मिलिन्दी–**
**भूतञ्चित्तं सुयोगाधृतफलमखिलं क्रामति क्रान्तवीर्यम्।।६७।।**

उक्तेषु द्विधा पञ्चस्वर्थेषु प्रमत्तोऽनाद्रियमाणो यतिर्मुमुक्षुर्यदि सच्चिदानन्दयोगे स्फुटस्वस्वरूपानुभवोपाये यतति ध्यानोपायाननुतिष्ठति, तदा योगयोग्यानां ध्यानसिद्धिहेतूनाम् अर्थानां हानात् अनवकलनात्, तस्य मुमुक्षोः, पापैर्विषयाभिलाषजनकैर्दुष्कृतैर्हेतुभिस्तस्य चित्तम् मनः, सुषिरादिन्द्रियमार्गाद्, विसरति ध्यानं विस्मृत्य विषयैर्युज्यते। अथान्यथा उक्तान् उभय पञ्चार्थान्, हृदि चेतसि, गृह्णाति मन्यते धारयति च, (तदा) हरिचरणद्वन्द्वपद्मे मिलिन्दीभूतम् अवियुक्तं (तस्य) क्रान्तवीर्यम् असामान्यप्रभावम्, अखिलं सकलमपि सुयोगाधृतम् फलम् अष्टसिद्धिनवनिधित आरभ्य परमपदारोहसामर्थ्यपर्यन्तं, क्रामति स्वायत्ती कुरुते। तस्य चित्तमिति पूर्वेणान्वयः।

भावार्थ – यदि कोई योगी अज्ञानवश या अहंकारवश उक्त दस अर्थों में ध्यान नहीं रखता तो योग के रक्षक तत्त्वों के छूटने से उसके पाप उसके चित्त को इन्द्रियमार्ग से बाहर कर देते हैं और वह विषयों से लिप्त होकर संसारियों की श्रेणी में आ जाता है। किन्तु यदि उक्त अर्थों पर आदर पूर्वक ध्यान रखता है तो उसके चित्त में प्रभु के प्रति भक्ति बनी रहती है। वह प्रभु के प्रति ही पूरा भरोसा रखता हुआ योग साधन के अंगों को कैंकर्य के रूप

में स्वीकार करता हुआ पूरा करता रहता है। इससे उसका चित्त असामान्य सामर्थ्य पा कर योग के अंगों पर निर्भर सारे फलों पर अपना स्थायी अधिकार प्राप्त कर लेता है।

**ध्येयं शब्दैर्विदित्वाऽनवधिसुखकरं स्वात्मना नित्यबद्धम्,**
**प्रेयांसम्प्रीतिविघ्नं सुमतिसुफलदं नित्यबन्धुम् मुमुक्षुः।**
**चित्तन्तत्रैव युङ्क्ते प्रकृतिपरवशोऽप्यात्मनैवाऽथ शास्त्रैः,**
**स्वं सर्वोत्कर्षभाजं यदि हृदि मनुतेऽन्यं कथं ध्यातुमिच्छेत्।।६८।।**

तत्त्वविदो भगवत एवैकस्य ध्यानार्हत्वं ध्यानैकपरत्वञ्च तस्याह– ध्येयमित्यादिना। शब्दैः श्रुतिस्मृतीतिहासगतैः परमार्थपरैः, ध्येयम् परमात्मतत्त्वम्, अनवधिसुखकरम् ''आनन्दं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ''एष ह्येवानन्दयाति०'' इत्यादिमोक्षपर्यन्तमहानन्दावहं, स्वात्मना चेतनेन, नित्यम् अनौपाधिकतया, शेषित्वेन, अन्तर्यामित्वेन, सखित्वेन च, बद्धं सम्बन्धभाजम्, प्रेयांसम् ''अनन्तकल्याणगुणात्मकोऽसावि०'' त्यादिवचनावगतैर्मुमुक्षोदयादारभ्य मोक्षलाभपर्यन्तासु सर्वावस्थासु चेतनानां कल्याणावहगुणगणभरितत्वेन निरवधिकप्रीतिविषयम्, प्रीतिविघ्नम् अनन्याश्चिन्तयन्तो मामित्युक्तप्रीतिपरीक्षापरं, सुमतिसुफलदं सदनुष्ठानहेतुसद्बुद्धिसत्फलोपधायकं, नित्यबन्धुं शेषित्वादि– सम्बन्धप्रयुक्तमहोपकारपरं, विदित्वाऽवगत्य, मुमुक्षुर्विषयसन्निधानेऽप्यविच्छेद्य– मोक्षाभिलाषो यतिः, प्रकृतिपरवशोऽपि विषयाबद्धेन्द्रियमनोमतिवृत्तिरपि, आत्मनैव ''द्रष्टव्यः श्रोतव्य०'' इत्यादिविविधवचनैर्विनाऽपि स्वविवेकमात्रेण, स्वकीयं चित्तम् अन्तःकरणं, तत्रैव अनन्तकल्याणगुणगणभरिते परमात्मनि एव, युङ्क्ते विषयेभ्यो निवर्त्त्य योजयितुम् अनिशं यतते, अथ च शास्त्रैर्वेदान्तवचनैः, स्वं चेतनसामान्यमेव, सर्वोत्कर्षभाजं विधिशिवादिपदोपयुक्तं, तदुपर्यपि महैश्वर्यनिर्वहणक्षमम् मोक्षफलाधिकारिणमपि, यदि हृदि निर्व्यलीकेन मनसा, मनुतेऽवधारयति तदाऽन्यम् मायाशबलचेतनविशेषेषु कमपि, ध्यातुम् आराधयितुं कथम् इच्छेद् वाञ्छेत्।

ध्येय आत्मैव सर्वात्मा नियतः परमात्मना।।
सर्वोत्कर्षोचितः शश्वत् शुद्धः किं शबलात्मना।।

**भावार्थ – जिसे विश्व के मूलभूत तत्त्व का मानस साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है वह उस तत्त्व में ही ध्यान देता है, उसका मन उस तत्त्व से इस कारण नहीं हटता कि उसमें अनन्त कल्याण गुणगण हैं, फलतः वह ध्यानस्थ ही रहता है। योगी पहले न तो योगी होता है न मुमुक्षु किन्तु जैसे जैसे वेदान्त**



**श्रवण बढ़ता है वैसे वैसे उसे वेदान्त के महान् अर्थ परमात्मा के बारे ज्ञान बढ़ता जाता है, वह परमात्मा का अनन्त आनन्दमय और अनन्त आनन्द देने वाले स्वामी के रूप में सखा के रूप में नित्य सम्बन्धी के रूप में, सबसे अधिक प्रेमपात्र के रूप में, प्रेम की सही परख करने वाले के रूप में, प्रत्येक सद्बुद्धि का समुचित फल समय से देने वाले प्रेमी के रूप में समझने देखने सोचने लगता है, तब वह वास्तव योगी और वास्तव मुमुक्षु हो जाता है। तब वह उस परम तत्त्व में ही मन लगाता है, यद्यपि पुराने संस्कारों से मन विषयों की ओर लपकता है किन्तु उसे सम्हालकर निरन्तर उस परमतत्त्व में ही जोड़ता रहता है। यद्यपि वेदादि शास्त्र परमात्मा को ही सदा ध्यानयोग्य मानकर ध्यान का विधान करते हैं किन्तु वह योगी शास्त्र श्रवण से शास्त्रीय संस्कार पा जाता है तब वह विधिवाक्यों के बिना ही प्रेम के प्रभाव से ध्यान करने लगता है। यदि वह शास्त्रों के द्वारा आत्मतत्त्व को समझ कर यह सुनिश्चित कर लेता है कि लौकिक छोटे पदों से लेकर ब्रह्मपद तक और उससे भी ऊपर के महान् पद यह शुद्ध चेतनतत्त्व ही पाता है, तब वह शुद्ध चेतनतत्त्व का ही ध्यान करता है, तब वह सीमित साधनाओं से मिले बीच के पदों से मुग्ध नहीं होता और न बीच के अधिकारियों का ही ध्यान स्मरण पूजन में जुटता है। वह तो शुद्ध चेतन और प्रेरक परम चेतन परमात्मा को ही नित्य ध्येय मानता है।**

**एकं स्वं वा परं वा महितगुणनिधिं शास्त्रविद्भिर्विदित्वा–**
**ऽऽत्मानं नित्यं समानम्प्रकृतिगतगुणस्पर्शशून्यम्महान्तम्।**
**को विस्मृत्याल्पतोषं क्षणिकमथमहाऽनर्थजालावरुद्धं,**
**देहन्तत्संसृतं वा जडमजडमतिश्चेतसा ध्यातुमिच्छेत्।।६९।।**

पूर्वोक्तमर्थं दृढयति–एकमित्यादिना। स्वम् आत्मानम्, महितगुणनिधिम्परं वाऽऽत्मानम्ब्रह्म, शास्त्रविद्भिराचार्यैः सहान्तेवासिभिश्च सहायै, र्नित्यं त्रैकालिकं, समानं तुल्यतया, प्रकृतिगतगुणस्पर्शशून्यं सत्त्वादिगुणप्रभावरहित, म्महान्तं गुणैः स्वरूपेण च विभुम् एकं केवलं सर्वशेषिणञ्च विदित्वाऽवधार्य विस्मृत्य ध्यानादपास्य, को मुमुक्षुः अल्पतोषं सुखाभासमात्रहेतुमपि, क्षणिकं कतिपयक्षणमात्रस्थायिनम्, अथ च महाऽनर्थजालावरुद्धं नरकादि– दीर्घदुःखपथगतं, जडं चैतन्यानर्हं, देहं शरीरं, तत्संसृतन्तदनुबद्धम् मित्रधनदारादिकं वा कोऽजडमतिर्ज्ञानवान् पुमान्, चेतसा संकल्पपुरस्सरं, ध्यातुम् प्रियहिततया चिन्तयितुम् , इच्छेत् अपेक्षेत, न कोऽपीत्यर्थः।

भावार्थ – पूर्वोक्त अर्थ को प्रकारान्तर से कहते हैं कि कौन ऐसा ज्ञानवान् मुमुक्षु होगा जो वेदान्तविद्या के आचार्य से और सन्तों एवं सहाध्यायियों से आपस में अत्यन्त तुल्य आत्मा या परमात्मा को यह जानकर कि ये दोनों नित्य हैं, प्रकृति के सत्त्वादि गुणों के प्रभाव से समान रूप से अछूते हैं, अपने गुणों और प्रभावों से विभु हैं, परमात्मा स्वरूप से भी विभु हैं, इन तथ्यों को भूलकर क्षुद्र सुख के साधन, कुछ ही क्षण ठहरने वाले एवम् अनेक महान् अनर्थ अमंगलमय क्लेश नरकादि से जुड़े शरीर और उसके सम्बन्धी स्त्री मित्र धन विषयोपभोगादि जड़ पदार्थों को जान बूझकर ध्यान में लाना चाहेगा। कोई भी व्यक्ति विवेक पूर्वक अनर्थों का संग्रह नहीं करता। अनर्थों का सम्बन्ध प्रमाद से ही बना रहता है। तत्त्वदर्शन ध्यानादि से विवेक अर्जित करके अनर्थों से छूटने के प्रयत्न करना ही मानव जन्म की सफलता है।

बाह्यार्थाक्षिप्तचेता जगति विचरति क्लेशले कर्मजालै–
रन्तश्चिन्ताऽपहारैर्नवनवदुरितान्यर्जयत्यर्थबुद्ध्या।
सोऽयं स्वात्मानमन्तःसुखघनमखिलानर्थदूरं स्ववेद्यं,
ध्यात्वैवानर्थदोषान्प्रणुदति सुकृती सद्गुरूक्त्यैव सत्या।।१००।।

उक्तोऽर्थः सदाचार्यानुग्रहैणैव हृदयमधिरोहति, सोऽन्वेष्टव्य इत्याह– बाह्यार्थेत्यादिना। योऽन्तश्चिन्ताऽपहारैः स्वरूपध्यानविमुखताऽऽपादकैः, कर्मजालैः प्रारब्धाख्यैर्हेतुभिर्बाह्यार्थेषु शब्दादिषु, आक्षिप्तचेता आकृष्टमनाः सन्, क्लेशले नानादुःखमये, जगति संसारे, विचरति, अपि चार्थबुद्ध्या, अनर्थानेवार्थान् मन्वानो जनः, नवनवानि दुरितानि पातकानि अर्जयति स्वस्मै सम्पादयति, स एवायं जनः, सत्या प्रमाणभूतया, सद्गुरूक्त्या सदाचार्यनिर्देशेनैव, सुकृती तद्वचनपरिपालनमात्रपुण्यवान्, स्ववेद्यम् प्रमाणनिरपेक्षसततस्वानुभवम्, अखिलानर्थदूरम् अनिष्टकर्मफलहेतुप्रकृतिसंसर्गनिरपेक्षस्वभावम्, अन्तः सुखघनम् विषयसुखोत्कृष्टस्वरूपप्रयुक्तसततसुखनिधिं, स्वमात्मानं स्वस्वरूपं, ध्यात्वा एव देहेन्द्रियव्यापारान्विनाऽपि, अनर्थदोषान् अज्ञानकृतकर्मफलसंसर्गान्, प्रसक्तानपि प्रणुदति वारयति।

भावार्थ – कल्याण पथ की प्राप्ति के लिये सदाचार्य की आवश्यकता बतलाते हुए कहते हैं कि संसारी जीव प्राचीन कर्मों के फलस्वरूप अपने आप को सही रूप में कभी नहीं समझ पाता, इससे उसकी बुद्धि बाहरी, अर्थो में ही खिंची रहती है और वह क्लेशमय संसार में भटकता रहता है एवम् अनर्थों



को ही अर्थ मानता हुआ नये नये अपराध बढ़ाता रहता है। वह जीव यदि कहीं सदाचार्य की कृपा प्राप्त कर ले, उनके उपदेश से अपने शुद्ध आनन्दमय स्वरूप के केवल ध्यान में लग जाये तो पुण्यात्मा हो जाये और प्राचीन पापों के बुरे फलों को भी रोक ले। इससे स्वरूप–बोध कराने वाले सदाचार्य का अन्वेषण करना चाहिये।

ध्यायत्येकासनस्थः सुनिभृतकरणश्चेतसा चिन्तितार्थं,
संस्कारैर्बाह्यवृत्तिष्वपि तदनुसृतिर्ध्यानयोगीव भोगी।
योगी लब्धार्थयत्नो भवति किल फलं तस्य विज्ञानदार्ढ्यं,
निर्विज्ञानस्तु भोगी चरति बुसमिवार्थानसारान्प्रहृष्टः।।१०१।।

योगिभोगिनौ भवे तुल्यश्रमौ, योगिनस्तु परमम्फलमित्याह–ध्यायतीत्यादिना। भोगी शब्दादिप्रवणमनोरथो, ध्यानयोगी पातञ्जलपथानुगामीव, एकासनस्थो विस्मृतासनक्लेशः, सुनिभृतकरणो वाञ्छितार्थचिन्तैकतानचेता, बाह्यवृत्तिषु सतीष्वपि, संस्कारैश्चिन्तितमर्थं, तदनुसृतिर्योगिनमनुसरन्निव, ध्यायति स्वीये रागद्वेषविषये चित्तं योजयति। योगी आन्तरमिव भोगी वाह्यमर्थमासनजयचित्तैकाग्र्यादि–साम्येन ध्यानं करोतीत्यर्थः। तथाऽपि द्वयोरपि महदन्तरमस्तीत्याह–(तयोर्योगिभोगिनोः) योगी लब्धोऽर्थ उद्देश्यं यस्य स तथोक्तो यत्नः प्रयासो यस्य स तथोक्तो भवति। तस्य फलं विज्ञानदार्ढ्यम्प्रकृतिपुरुषविवेकस्थैर्यम्, भवति किलेति प्रसिद्धिः। भोगी विषयप्रवणस्तु निर्विज्ञानो विज्ञानानपेक्षः सन् असारान् उपेक्षितसुखहेतुस्थिरचैतन्यांशान् अर्थात् विषयान्, बुसम्पलालमिव, पशुवत् प्रहृष्टोऽसारार्थैरेव सन्तुष्टश्चरति अनुभवन्नास्ते।

श्रमे समानेऽपि विवेकयोगाद्यतिः समाप्नोति फलं विशालम्।।
उच्छास्त्रचित्ता अविवेकवित्ता हृष्टा मृषाऽर्थैः पशुवच्चरन्ति।।

भावार्थ – योगी और भोगी का मनोव्यापार प्रायः तुल्य ही रहता है किन्तु योगी बहुत लाभ में रहता है और भोगी सदा घाटे में ही प्रसन्न रहता है। भोगी भी योगी की तरह उसी विषय का ध्यान करता रहता है जिसका उसे ज्यादा अभ्यास रहता है। योगी का अभ्यास शास्त्रबल से होता है और भोगी का लौकिक अनुभवों से। दोनों चिन्तन के समय आसन पर स्थिर हो जाते हैं। दोनों भीतरी बाहरी वृत्तियों से अपने अपने मुख्य लक्ष्य में मन लगाये रहते हैं, उस समय दोनों की इन्द्रियाँ संयमित रहती हैं। किन्तु योगी की विशेषता यह होती है कि वह अपने स्वरूप का ध्यान देर तक करने से ज्ञान

**और आनन्द का अनुभव अधिक प्राप्त करके संसार से उदासीन हो जाता है जबकि भोगी को विवेक न होने से निःसार सांसारिक विषयों में वैसे ही सन्तुष्ट रहता है जैसे पशु घास भूसा से। जब समान श्रम में अधिक फल मिलता हो तो अधिक फल वाला श्रम करना ही उचित है।**

**तुल्ये यत्नेऽपि बाह्यान्तरविषयधियोर्यन्न बाह्येष्वसङ्गो,**
**नान्तर्दृष्टिर्जनानाम्भवति च कठिनः संयमः स्वस्वरूपे।**
**सोऽयं संसारबन्धः स्वकृतविषमयाऽनल्पभोगाय माया**
**बाह्येष्वानन्दबिम्बं दिशति मुखमिवाऽऽदर्शगं लोभनीयम्।।१०२।।**

भोगयोगयोर्यत्नसाम्येऽपि योगेऽप्रवृत्तिर्भोगप्रावण्यञ्च कर्मप्रभावादित्याह— तुल्ये यत्नेऽपीत्यादिना। ब्रह्यान्तरविषयधियो, र्बाह्यार्थबुद्धिप्रत्यगात्मबुद्ध्योः, यत्ने सन्निकर्षविधाने, तुल्ये समानेऽपि, यद् यस्मात्, जनानां नृणाम्, बाह्येषु अर्थेषु, असंगःअनुरागाभावः, अन्तर्दृष्टिश्च न भवति, स्वस्वरूपे विषये, संयमो धारणाध्यानसमाधिरूपः, कठिनोऽसाध्य इव च भवति सोऽयमेव संसारबन्धः, कथमिति चेत् स्वेन कर्मभिः कृताय सम्पादिताय, विषमयाय दुःखप्रायाय, अनल्पाय चिरानुभाव्याय, भोगाय सुखदुःखान्यतरसाक्षात्काररूपाय, माया आश्चर्यकार्यकरी प्रकृतिः, बाह्येषु जडार्थेषु, आदर्शगं दर्पणस्थं, लोभनीयं विमोहहेतुम् मुखमिव, आनन्दस्य बिम्बमिव किमप्याकर्षणं दिशति सृजति। प्राचीनकर्मफलभोगाय माया जडेषूपेक्षणीयेष्वेवार्थेषु आनन्दमयमिव किमपीदमिति धियं सततं जनयन्ती जनान् बध्नातीति भावः।

**भावार्थ — बाहरी पदार्थों को समझने में जो श्रम होता है उससे अधिक श्रम आत्मतत्त्व को समझने के लिये योगाभ्यास में नहीं लगता, फिर भी हमारा मन बाहरी अर्थों को छोड़ कर अन्दर अपने स्वरूप को देखना नहीं चाहता, उधर हमारी प्रवृत्ति नहीं होती, यही हमारा संसारबन्धन है। हमने पूर्व जन्मों में जो जो कर्म किये हैं उनके दुःखमिश्रित बहुत से फलभोग हमें मिलना अनिवार्य होता है। माया दर्पण में रमणीय मुखप्रतिबिम्ब की तरह जड़ तत्त्वों में आनन्द का कोई ऐसा प्रतिबिम्ब सा प्रस्तुत करती रहती है जिससे हम कभी आनन्द के मुख्य स्रोत आत्म—स्वरूप की ओर दृष्टि नहीं डालते और बाहरी अर्थों में ही आनन्द मान कर मन लगाये रहते हैं।**

**चित्तन्दत्तं विधात्रा भवविटपिजटोत्पाटनार्थं नराणां,**
**लब्धुं यत्नैरसङ्ख्यैर्जगति च विशदे विष्णुतल्पान्तभोगान्।**



**कर्म ज्ञानञ्च भक्तिः प्रपदनमथ चाचार्यविश्रम्भहेतु—**
**श्चित्तस्यैव ह्यनादेः शुभपरिणतयो भोगतत्कार्यवेशाः।।१०३।।**

चित्तवशीकारमहिमानमाह—चित्तमित्यादिना। विधात्रा परमेष्ठिना, नराणां कृते, चित्तमन्तःकरणम्, भवविटपिनः संसारवृक्षस्य, जटोत्पाटनार्थं विषयवासनानाम् मूलोच्छेदनार्थं, विशदे महाविस्तारे, चतुर्दशभुवनात्मके, जगति संसारे, असङ्ख्यैर्गणनातीतैर्यत्नैर्लौकिकालौकिकोपायैः, विष्णुतल्पान्तान् भूलोकादारभ्य विष्णुलोकपर्यन्तान्, भोगान् आनन्दविशेषान्, लब्धुम् भोक्तुञ्च, दत्तं सृष्टयादौ योजितम्। इदमेवोपपाद्यते, कर्म, ज्ञानम्, भक्तिः, प्रपदनम्, अथ च आचार्यविश्रम्भहेतुः शिष्यस्यानुवृत्तिविशेष इत्येते शास्त्रप्रसिद्धाः पञ्च मोक्षोपाया, अनादेर्देहिनश्चित्त— स्यान्तः करणस्यैव, भोगवेशा अनुभवरूपाः, तत्कार्यवेशा अनुभवप्रयुक्ताःप्रियाप्रियाः पूजास्तवनत्यादयश्च शुभाः कल्याणमय्यः परिणतयोऽवस्था— विशेषाः सन्ति। चित्तावस्थाविशेषैरेवात्मनो धर्मभूतज्ञानस्य मोक्षावस्थापर्यन्ताः परिणतयो भवन्ति। मतान्तरस्थास्तु चित्तस्यैव परिणतीर्मन्यन्ते, तेन तन्मते चित्तस्य नाशित्वे नाशित्वम् मिथ्यात्वे मिथ्यात्वञ्च बन्धमोक्षाणामायाति।

**भावार्थ — विधाता ने हमें लौकिक छोटे बड़े सारे सुख पाने के लिये और अनादि संसार वृक्ष के मूल विषय—संस्कारों को उखाड़ने के लिये चित्त नामक एक महत्वपूर्ण उपकरण दिया है। कोई भी सुख पाने के लिये इसे उसके अनुकूल बनाना पड़ता है। अन्यथा हम कोई भी सुख नहीं पा सकते। हम कर्म ज्ञान भक्ति शरणागति और विशेष गुरु कृपा हेतु गुणविशेष इन पाँच मोक्षोपायों में एक या अनेक जो भी प्राप्त करते हैं वह चित्त की एक असाधारण शुभ अवस्था होती है। वे अवस्थायें कुछ ज्ञान रूप और कुछ सुख दुःख रूप होती हैं। चित्त की अवस्थाओं के अनुसार ही आत्मा का धर्मभूत ज्ञान अनेक परिणाम प्राप्त करता है। जो लोग ज्ञान का परिणाम नहीं मानते वे चित्त का ही परिणाम मानते हैं। उन्हें चित्त के नाशवान् होने से बन्धमोक्षों को नाशवान् और मिथ्या होने से मिथ्या मानना पड़ता है।**

**चित्तं सञ्चार्य चारु प्रथितपरपदावाप्तिधन्या अनेके,**
**नैके लोके प्रमादैर्निरयमयपदे खिद्यमाना अशान्ताः।**
**शुद्धप्राणैकसाध्यम्महितधनमिदं हन्त ! चित्तं विसार्य**
**प्रायः सन्त्यर्थचिन्ताप्रशिथिलमनसो मृग्यमाणस्वकार्याः।।१०४।।**

चित्तशुद्धिरेव परः पुरूषार्थ इत्याहचित्तमिति। अनेकेऽसंख्याता यतयः, चित्तम् अन्तःकरणम्, चारु विधिवत्, सञ्चार्य शास्त्रमार्गे गमयित्वा, प्रथितस्य शास्त्रोक्तस्य, परपदस्य वैकुण्ठादे, रवाप्त्या धन्याः श्लाघनीयाः सन्ति। अथ नैके तथैव, असङ्ख्याता लोके प्रसिद्धाः, प्रमादैः कर्तव्येष्वनवधानैः, कुमार्गयाना निरयमयेऽतिक्लेशे पदे स्थानविशेषे खिद्यमाना दुःखानुभवपरा अशान्ताः सन्ति। शुद्धेन कुम्भकविधिवशेन, प्राणेनैकेनान्यनिरपेक्षेण, साध्यं वशयितुं शक्यम्, महितम्महार्घम्, इदं चित्तं नाम धनं, विसार्य विस्मृत्य, हन्त ! दुर्दैवादेव प्रायो बाहुल्येन, जना अर्थचिन्ताप्रशिथिलमनसो धनलाभोपायचिन्ताक्लिष्टा, मृग्यमाणस्वकार्या निजकर्तव्यान्वेषणनिरताः सन्ति। महदिदमाश्चर्यं यद् आत्मवशम्मनोऽसाधयन्तः परवशजडधनसाधनचिन्तया जीवन्ति।

**भावार्थ– चित्त हमारा है, हम इसके स्वामी हैं, यह सबसे महान् धन है, इसीसे बाहरी सारे धन आते हैं, यह परमपद मोक्ष तक सिद्धि प्राप्त कराता है, प्रमाद में रहने से यही इस लोक में और यम लोक में नरक का क्लेश उत्पन्न करता है। इसने बहुतों को मुक्त किया है, यही बहुतों को नरक में डाल कर तड़पा रहा है। केवल शुद्ध प्राणों के द्वारा वश में होकर महान् सभी पुरूषार्थ सिद्ध करने वाले इस मूल्यवान् धन को भूलकर लोग मामूली धन पाने की चिन्ता में घुलते रहते हैं और नहीं समझ पाते कि अपने इष्ट के लिये हमें क्या करना है।**

**कः स्वर्गो यत्र यातान् मिलति सुचरितान् भूरिसौख्यं विदुःखं,**
**कःपापानामनन्तासुखमयनिरयो यः कृतान्तैकनेयः।**
**विज्ञास्तुल्याश्रयत्वं नियतमवदधुः कारणानाम्फलानां,**
**कर्तृत्वाढ्येऽथ चित्ते निरयसुरपुरीविष्णुधामानि सन्तु।।१०५।।**

स्वर्गनरककैवल्यसायुज्यानि चेतस एवावस्थाविशेषा, लोका अपि तदनुरूपैश्चेतोभिरेवानुभवनीयास्तस्मात् तस्यैव वशीकरणयत्नो विधेय इत्याह– कः स्वर्ग इत्यादिना। यत्र यातान् सुचरितान् पुण्यशीलान्, विदुःखं दुःखासम्भिन्नम्, भूरिसौख्यम् आनन्दविशेषो मिलति स स्वर्गः कः, पापानाम् पापशीलानाम्, अनन्तासुखमयो भूरिदुःखबहुलो, निरयो नरकं, यः कृतान्तेन यमेन एकेन अन्यनिरपेक्षेण, नेयो विधेयः, स कः कुत्र कीदृशः, इति प्रश्न उत्तरमाह– विज्ञास्तर्कशीला विद्वांसः कारणानां हेतूनाम्फलानां कार्याणां च, नियतम् अव्यभिचारि, तुल्याश्रयत्वं सामानाधिकरण्यम्, अवदधुर्निश्चितवन्तः, विज्ञेषु प्रथेयं सार्वत्रिकीत्यर्थः।



अथ तस्मात्, कर्तृत्वाढये ज्ञानेच्छायत्नयुते, चित्त एव कृतिफलसामानाधिकरण्य– नियमात्, निरयो नरकः, सुरपुरी स्वर्गो, विष्णुधाम बैकुण्ठञ्चास्तु। चित्तावस्था एव नरकस्वर्गमोक्षाः सन्तु। तस्माच्चित्तावस्थामात्मनीनां विलोक्य पारत्रिकी दशा कल्पनीया। चित्तशुद्धये यतनीयञ्च सद्भिरिति भावः।

**भावार्थ – वह कौन सा स्वर्ग है जहाँ पुण्यकर्मियों को बिना दुःखों वाला महान् सुख मिलता है और वह नरक कौन है जहाँ पापियों को अनन्त दुःख मिलता है जिसका नियन्त्रण यमराज स्वतन्त्र रूप से करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि जो चित्त पुण्यपाप सोचता चाहता और करता है वही स्वर्ग नरक मोक्ष का भी रूप लेता है। कारण और कार्य एक ही आश्रय में रहते हैं, यह मान्यता सभी दर्शनों में समान है, जिस चित्त से कर्म हो उसी से फल भोग होना स्वाभाविक है। यह तो माना जा सकता है कि स्वर्ग आदि स्थान भूलोक से दूर कहीं हैं किन्तु चित्त वहाँ भी वही जायेगा जो कर्म में सहायक होगा। जब चित्त हमारे वश में है तो उसकी अवस्था के अनुसार आगे मिलने वाले फलों और लोको की कल्पना हम आसानी से कर सकते हैं और चित्त में शुभ संस्कारों के प्रयत्न भी हम कर सकते हैं, करने चाहिये।**

**देवा वा देवदेवोऽपि स भवति शिवो विह्वलो बाह्यवृत्त्या,**
**विस्मृत्यानन्दवार्धिं स्वमसमविभवं गूढमप्यात्मभासम्।**
**विस्मृत्यैव प्रसूं स्वाम् पृथुमतिपृथुकः शोकसंक्लेशदुष्टो**
**देवं श्रीशं समेषां सुहृदमपि तथाऽजानतां शोकमोहाः।।१०६।।**

स्वस्वरूपविस्मृतिः स्वस्वामिविस्मृतिश्च सर्वेषां सर्वविधदुःखहेतुरित्याह– देवा वेत्यादिना। असमविभवम् पारमेष्ठ्यादिपर्यन्तवैभवोपयुक्तस्वरूपम्, आनन्दवार्धिं स्वरूपस्वभावभूतानन्दैकतानम्, गूढमपि देहेन्द्रियादिति– रोहितस्वरूपमपि, आत्मभासं स्वस्मै सदा स्वयम्प्रकाशमानं स्वमात्मानं, विस्मृत्य उपेक्ष्य, देवा इन्द्रादयो, देवानां देवः स प्रसिद्धः शिवोऽपि, बाह्यवृत्त्या शब्दादिनिष्ठचेतसा, विह्वलोऽस्वाभाविकावस्थो, भवति सम्पद्यते। अत्र कथा भागवतादौ प्रसिद्धाः। एवं स्वाम् आत्मीयाम्, प्रसूं जननीं, विस्मृत्यैव विस्मरणमात्रेण, पृथुमतिः स्थूलबुद्धिः, पृथुको बालः, शोकसंक्लेशाभ्यां दुष्टो दुरवस्थो भवति, तथैव देवं निरवधिकदीप्तिप्रभृतिगुणं, श्रीशम् भगवन्तं विष्णुमजानताम् अननुभवतां देहिनां, स्वस्यैवानौपाधिककर्तृत्वभावनया पदे पदे विच्छिन्नेष्वर्थेषु शोको, लाभार्हेष्वप्यलभ्येषु मोहो ममैवेदमुपयुक्तमितिधीश्च भवतीति भावः।

भावार्थ – अपने आपको न जानना, भूले रहना और अपने संरक्षक परमात्मा को भी भूले रहना सभी अनर्थों का मूल है। सारे देवता और देवों के भी देव शिव जब यह भूल जाते हैं कि मैं ब्रह्म पद और उससे भी ऊपर के पद पाने और निभाने के योग्य हूँ विश्व का बड़ा से बड़ा पद मेरे लिये सुलभ है यद्यपि देह इन्द्रिय आदि का ध्यान स्वरूप की विस्मृति कराता है फिर भी स्वयम्प्रकाश मैं सदा स्वयं को समझ भी रहा हूँ, मैं महान् आनन्द का समुद्र हूँ, लौकिक कोई भी अर्थ मुझे अधिक आनन्द नहीं दे सकता, तब उन्हें बाहरी शब्दादि जड़ पदार्थों में लगाव हो जाता है और उनकी प्राप्ति के लिये वे प्रयत्नशील हो जाते हैं, तब नटनागर भगवान् उनके घातक मनोरथों को बिगाड़ने लगते हैं। और वे विह्वल यानी स्वरूप भूलने से दुःखी हो जाते हैं। एवं जैसे कोई छोटा शिशु खेलता हुआ अपनी जननी को भूल जाने मात्र से उसके कल्पित वियोग के क्लेश से व्याकुल हो जाता है ऐसे ही सकलकल्याणगुणसागर श्रीपति परमात्मा को प्राणिमात्र का सुहृद्, उनके केवल हित साधन में तत्पर न जानने तथा अपने को ही सब कुछ का कर्ता धर्ता माने रहने से छूटते हुए अर्थों के लिये शोक और मिलने योग्य किन्तु अलभ्य अर्थों के प्रति मोह होता रहता है। अपने आप को और अपने स्वामी को न जान पाना ही घोर संसार और उसका कारण भी है।

**शब्दाद्याहारयोगं यमयति न यतिः सर्वथा दैन्यभीते,–**
**र्निर्मर्यादं न भुङ्क्ते यमविहतिभयान्मध्यमाश्रित्य मार्गम्।**
**गच्छन् सिद्धिं विदूरेऽखिलविषयरसोच्छेदलक्ष्यैकताभ्या,–**
**मूढाम्पश्यन्नविद्यातिमिरविगमतः स्वात्मनीष्टामुपैति।।१०७।।**

''युक्ताहारविहारस्येति'' भगवदुक्तं विवृणोति–शब्दाद्येत्यादिना। यतिश्चित्तशुद्धौ यतमानो मुमुक्षुः दैन्यभीतेरुत्साहविरोधिभावापत्तिभयात्, शब्दाद्याहारयोगं पञ्चविषयभोगसाधनं, सर्वथा न यमयति न निरुन्धे, यमविहतिभयाद् अहिंसाद्युपायभंगभयात्, निर्मर्यादम् असीमं यथा स्यात्तथा, विषयान् न भुङ्क्ते, स्वात्मनि स्वस्वरूपविषये, अविद्यारूपस्य तिमिरस्याज्ञानस्य, शास्त्रश्रवणध्यानाभ्यां विगमतो दूरीभावात्, अखिलविषयेषु वर्तमानस्य रागस्योच्छेदेन समूलोन्मूलनेन, लक्ष्यस्य प्राप्यस्य स्वरूपाविर्भावतत्फलक्रमस्य, एकतया प्राधान्येन च ऊढाम् अवलम्बिताम्, इष्टां तत्त्वधिया वाञ्छितां, सिद्धिम् मुक्तिं, विदूरे चिरसाधनोत्तरकाले, पश्यन् जानन्, मध्यम् अल्परागाल्पत्यागमयम्, मार्गं योगपथम्, आश्रित्यावलम्ब्य, गच्छन् योगपथे सञ्चरन्, क्रमेणोपैति लभते। सुचिरलभ्याय



फलायात्वरन् यतमानः कर्ता सिद्धिं विन्दतीति भावः।

**भावार्थ – संसारी स्वभाव का त्याग कर मुक्तावस्था प्राप्त करना एक बहुत लम्बी प्रक्रिया है जो धैर्य और संयम से साधना में लगे रहने पर पूरी होती है। दूर की यात्रा दौड़ने पर पूरी नहीं होती और न टहलने से ही पूरी होती है। तत्परता से सामान्य गति से चलते रहने से ही गन्तव्य मिलता है, ऐसे ही योगमार्ग में भी न तो ज्यादा संयम से काम होता है न भोगपरायणता से। मध्यम मार्ग ही योगसिद्धि में सहायक होता है। स्वस्वरूप का अज्ञान धीरे धीरे दूर होने पर ही विषयों से पूर्ण वैराग्य होता है और लक्ष्य में पूरी निष्ठा होती है। इन दो पर ही योग सिद्धि निर्भर होती है। सिद्धि को बहुत दूर से देखता हुआ योगी लक्ष्य में निष्ठा होने के बाद साधना से विरत नहीं होता और क्रम से साधना की चरम अवस्था परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है।**

**आत्मा नित्यप्रकाशोऽखिलतृणमशगो देवगो वा स्वशक्त्या,**
**विश्वसृष्ट्यादिशक्तो हरिरिव, विविधैः कर्मभिः शक्तिरोधात्।**
**नानारूपाणि बिभ्रत्त्रिभुवनरचनावस्थितिध्वंसहेतुः,**
**श्रीशस्येत्याहुरार्याः श्रुतिविदभिमतं दृष्टतर्कानुषक्तम्।।१०८।।**

अज्ञाननिवृत्तिहेतुम् आत्मज्ञानम्प्रस्तौति–आत्मेत्यादिना। आत्मा अखिलतृणमशगः क्षुद्रशरीरेषु, दैवगः स्वर्गादिलोकवर्तिषु विभूतिमयशरीरेषु वा कर्मभिः सम्बद्धोऽपि, नित्यम् आत्मने प्रकाशमानः, स्वया स्वाभाविक्या, शक्त्या सामर्थ्येन हरिरिव परमात्मेव, विश्वस्य जगतः, सृष्ट्यादौ जननरक्षणसंहरणेषु, शक्तः क्षमोऽपि, विविधैर्नानारूपैर्नानाफलैः, कर्मभिर्हेतुभिः, शक्तिरोधात् उक्तशक्त्या अवष्टम्भात्, नानारूपाणि सुरनरतिर्यक्छरीराण्यवस्थाश्च, बिभ्रद् धारयमाणः सन्, श्रीशस्य भगवतोऽभिमतस्य संकल्पाधीनस्य, त्रिभुवनरचनावस्थितिध्वंसादेर्हेतुर्निमित्तम् भवति, इति आर्याः शिष्टाः, श्रुतिविदभिमतं दृष्टानुगुणं तर्कानुषक्त–मनुमानसिद्धञ्चेति प्रमाणत्रितयानुगुणमाहुः कथयन्ति। योगिना एवमेवात्माऽवधेय इति भावः।

**भावार्थ – आत्मा चाहे तृण आदि स्थावरों में हो या कीट आदि क्षुद्र जीवों में या मानव से भी ऊपर वैभवशाली योनियों में हो वह स्वयम् अपने आप को सदा प्रकाशित होता रहता है, वह स्वभाव से अपनी सहज शक्ति से वैसे ही संसार की सृष्टि रक्षा और संहार कर सकता है जैसे भगवान् करते हैं। संसार में रहते समय नाना प्रकार के कर्मों से इसकी शक्ति कुण्ठित रहती**

है कुण्ठित शक्तियों से यह छोटी बड़ी बहुत सी योनियाँ प्राप्त करता हुआ भगवान के द्वारा होने वाली सृष्टि रक्षा और संहार में निमित्त बनता है। यह बात देखने में भी बहुत कुछ आती है, अनुमान भी इस अर्थ की नाना प्रकारों से सिद्धि करता है और श्रुतियाँ तो स्पष्ट बतलाती ही हैं। इससे नाना योनियों में आत्मा को केवल सीमित शक्तियों से पहचानना केवल अज्ञानमय व्यवहार है।

**योगी सर्वात्मसाम्यं कलयति सततं योगशक्त्याऽपि नित्यम्,**
**भेदांश्चाशेषभूतेष्वखिलभुवनगान्कर्मधारानुबद्धान्।**
**साम्यैकध्यानयोगात्सुचिरनियमितादिद्धधीचित्तशक्तिः,**
**सर्वस्थं स्वं स्वनिष्ठं सकलमपि धियाऽबाधयैवाऽभिचष्टे।।१०६।।**

योगिनः शास्त्रविदपेक्षया वैशिष्ट्यमाह—योगीत्यादिना। योगी ध्यानाभ्यासपरो मुमुक्षुः, योगशक्त्याऽपि शास्त्रविदितं सर्वात्मनां साम्यन्तुल्यत्वं नित्यमविरामं, कलयति मनसा प्रत्यक्षयति, अखिलभुवनेष्वशेषभूतेषूपलभ्यमानान्, भेदान् उच्चावचान् विशेषांश्च, कर्मणां धाराभिः परम्पराभिरनुबद्धान् प्रयुक्तान् कलयति, सुचिरं दीर्घकालं यावत्, नियमितात् समसमययत्नयुतात्, साम्यैकध्यानयोगात् प्रकृतिसंसर्ग— जवैषम्यत्यागेन समानावस्थशुद्धात्मदर्शनाभ्यासात्, इद्धा सुदीप्ता, धियश्चित्तस्य च शक्तिर्यस्य स तथोक्तो योगी, स्वमात्मानं, सर्वस्थं सर्वप्राणिसु वर्तमानं, सकलम् प्राणिजातं, स्वनिष्ठमात्मस्थञ्च, अबाधयैवाविच्छिन्नयाऽसन्दिग्धया च धिया प्रज्ञयाऽभिचष्टे साक्षात्करोति। शास्त्रज्ञानं विषयानुभवैर्विच्छिद्यते, वैराग्यसहकृता योगजा प्रज्ञा तु निरन्तरमनुवर्तत इति विशेषोऽवधेयः।

भावार्थ — शास्त्रज्ञों की अपेक्षा योगी की यह बड़ी विशेषता होती है कि योगी शास्त्रों की बातों को अपने शुद्ध चित्त से प्रत्यक्ष भी देखता है। प्रत्यक्ष से शास्त्रीय अर्थों के प्रति अनास्था दूर होती है। प्राणियों में जो भी छोटे बड़े का भेद मिलता है वह प्रकृति में होता है, पुरुष में नहीं। योगी सारे भेदों को प्रकृति में ही देखता है। सामान्य लोग प्रकृति पुरुष में भेद नहीं कर पाते इससे प्रकृति के विकारों को पुरुष में और पुरुष के ज्ञानानन्द गुणों को प्रकृति में माना करते हैं। इसी से क्लेशमय संसार बढ़ता रहता है। योगी चेतनों में समानता के दर्शन का चिरकाल तक नियमित अभ्यास करता है, इससे उसकी बुद्धि की और चित्त की शक्ति बढ़ जाती है, तब वह ''सर्वभूतस्थमात्मानं सुर्वभूतानि चात्मनि'' इस गीतावचन का अर्थ प्रत्यक्ष सा देखने लगता है, तब उसे चेतनों में विषमता का और जड़ पदार्थों में प्रियता आदि का भ्रम सामान्य लोगों की तरह नहीं हुआ करता।



**ध्यानाभ्यासप्रभावात्पुनरपि च यतिः साम्यधीशक्तियोगा—**
**दात्मेशैक्यञ्चसाक्षात्कलयति न ततो ब्रह्मणोऽपैति बुद्ध्या।**
**एवं युक्तञ्च विश्वोद्भवफलमतुलं सम्भ्रमादेव देवः,**
**स्वीकर्तुं शुद्धिहेतोः स्वयमपि यतते सत्यसंकल्पशक्तिः।।११०।।**

समदर्शनफलम्ब्रह्मात्मैक्यदर्शनमाह—ध्यानेत्यादिना। यतिः शुद्धात्म दर्शनयतनवान् मुमुक्षुः, पुनरपि एकाकारनित्यात्मदर्शनसिद्धेः परमपि, ध्यानाभ्यासस्य क्रियमाणस्य प्रभावात्, साम्यधियः पूर्वोक्तायाः शक्तेः योगात् सम्बन्धात्, सर्वजीवैक्यमिवात्मेशैक्यञ्च जीवपरमात्मनोरप्यैक्यञ्च श्रुत्युक्तं साक्षात् कलयति। सामान्यमनोऽयोग्यमपि जीवेश्वरतादात्म्यमसौ योगजप्रत्यक्षेण विशदं गृह्णाति। तेनात्मनिष्ठोप्यसौ ब्रह्मनिष्ठो भवति, आत्मपरमात्मनोस्तस्य भेदाग्रहात्। ततः स ब्रह्मणः परमात्मनः, सकाशात्, बुद्ध्या ज्ञानेन, नापैति न दूरी भवति न विस्मरति। एवंविधं युक्तं योगाभ्यासपरं तं यतिम्, विश्वोद्भवस्य जगत्सृष्टेः, अतुलमसामान्यम्फलं स्वीकर्तुम् भोग्यत्वेनादातुं, सत्यसङ्कल्पशक्तिः सद्यःफलवत्संकल्पो देवो भगवान्, सम्भ्रमादेव विलम्बमसहमान एव, शुद्धिहेतोः प्रकृतिसंसर्ग— जचिरन्तनदोषापनयनाय, स्वयमपि यतते, योगिनः प्रयत्नैः फललाभविलम्ब— सम्भवात् स्वयमेव त्वरया दोषानपनीयाङ्गी करोतीति भावः।

भावार्थ — सर्वत्र शुद्ध एकाकार चेतन तत्त्व के चिर दर्शन के अभ्यास का फल ब्रह्मात्मैक्यदर्शन होता है, उसका फल मोक्ष में भगवान् का स्वेच्छा से सहयोग होता है। वास्तव में जीवात्मा और परमात्मा के शुद्ध स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। अणु विभु का भेद और व्यक्तिभेद रहने पर भी जैसे एक बिन्दुजल और और तडाग के जल में शुद्ध अवस्था में कोई भेद नहीं होता ऐसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा में भी भेद नहीं होता। इसी से जीवों के अधीन अनन्त आकार प्रकारों वाले शरीरों में एक ही शुद्ध आत्मतत्त्व का दर्शन होता है। क्यों कि आत्मा या परमात्मा दोनों के ध्यान में ध्येय और ध्यान समान ही होते हैं। इस तरह अन्तर न देखते हुए सतत भगवद्दर्शन की प्रवृत्ति मान कर योगी को भगवान् सृष्टि का महान् फल मानते हुए उसे शीघ्र स्वीकार करने को उत्सुक हो जाते हैं और उसके स्वीकार में विलम्ब सह नहीं पाते, तब उसके दोषों को स्वयम् अपने महान् सङ्कल्प से दूर कर के शीघ्र अपना लेते हैं।

**ध्यायन्निर्दोषदीव्यद्विशदतमधियाऽऽनन्दसिन्धुं स्वरूपं,**
**साम्यं सर्वत्र जीवेष्वथ भगवति चाऽवस्थितिं सर्वतश्च।**
**योगी व्युत्थानकाले विविधविधभिदावर्तिचित्तोऽपि योगो–**
**द्दीप्तात्संस्कारवीर्याद्भगवदनुभवान्नापयाति क्षणार्धम्।।१११।।**

निर्दोषया रागद्वेषरहितया, दीव्यंत्याऽपेक्षितसर्वार्थावगाहिन्या, विशदतमया दुरितकृतावरोधरहितया, धिया बुद्धिवृत्त्या, आनन्दसिन्धुम् अपरिमितानन्दकन्दं, स्वं रूपं, सर्वत्र जीवेषु चेतनेषु साम्यं ज्ञानैकाकारताम् अथ भगवति परमात्मनि च जीवेषु साम्यं ज्ञानैकाकारतां, सर्वत्र स्वस्य भगवतश्चावस्थितिं व्याप्तिं, च ध्यायन् तेष्वर्थेषु धारणाध्यानसमाधीन् अभ्यस्यन्, योगी मुमुक्षुः, व्युत्थानकाले व्यवहारदशायां, विविधविधासु नानाप्रकारासु, भिदासु विषमतासु, वर्ति युज्यमानं, चित्तं यस्य स तथोक्तोऽपि योगेनाष्टाङ्गवता उद्दीप्ताल्लब्धप्रकर्षात् संस्काररूपाद्, वीर्याद् बलाद् हेतोः, भगवदनुभवाद् व्युत्थानेऽसम्भवप्रायादपि, क्षणार्धमत्यल्प–कालमपि, नापैति विरहितो न भवति। बहिर्मुखतायामपि स शुद्धधिया विशदमन्तर्मुख एव भवतीति भावः।

**भावार्थ – चिरकाल योगाभ्यास से बुद्धि तत्त्वग्राही और व्यापक हो जाती है, क्यों कि बुद्धि को बिगाड़ने वाले रागद्वेष तब क्षीण हो चुके होते हैं। तब आनन्द का समुद्र अपना स्वरूप पहले से अधिक प्रकाशित होने लगता है, तभी सारे जीवों में और परमात्मा में भी समबुद्धि बनती है, तभी सर्वत्र अपना अस्तित्व समझ में आता है। तब योगी विषमता–प्रधान सारे व्यवहारों के होते समय भी योगसिद्ध समभाव का त्याग नहीं करता और नित्य भगवदनुभव में रमता रहता है। जिसका जो विषय प्रबल होता है वह सदा दीखता ही रहता है, जैसे कंस को मृत्यु आने पर सदा भगवान् दिखाई पड़ते रहे। योग से भगवत्सम्बन्धी संस्कार के प्रबल हो जाने से उनका अनुभव सदा होता रहता है।**

**तस्माद्दुःखादिहेत्वागमसमसमयेऽस्पृष्टदुःखादिगन्धो,**
**योगी योगापनीताखिलवितथभिदाऽध्यासजाग्रत्प्रबोधः।**
**ध्यातुं श्रीशं किलाप्तुञ्चिरमनुभवितुं शुद्धसत्त्वैकभूमिम्,**
**भूमिं गन्तुञ्च योग्यो भवति न भवति स्थातुमज्ञानभूमौ।।११२।।**

योगजनित्यभगवद्दर्शनफलमाह–तस्मादित्यादिना। तस्माद् रसमयभगव–दनुभवसातत्याद्, दुःखशोकादिभावहेतूनां कारणानाम्, आगमसमसमये



पूर्णसन्निधानेऽपि, दुःखाद्यनुदयाद् अस्पृष्टदुःखादिगन्धोऽविच्छिन्नभगवदनु–भवसन्तानः, योगेनाभ्यस्तेनापनीतो निवारितोऽखिला वितथा मिथ्या, भिदा वैषम्यं, तस्याध्यासो भ्रमो यस्य स तथोक्तस्तत एव जाग्रद् अबाधितोऽविस्मृतः प्रबोध आत्मदृष्टिर्यस्य स तथोक्तश्च योगी मुक्तये सततयतनः, श्रीशम् भगवन्तम्, आप्तुं सेवौपयिकं तद्दर्शनं लब्धुं, चिरमव्याहतं यथा स्यात्तथाऽनुभवितुं, शुद्धस्य रजस्तमोयोगरहितस्य, सत्त्वगुणस्य भूमिम् आश्रयभूतम्, भूमिं बैकुण्ठलोकं, गन्तुं योग्यो भवति, अज्ञानभूमौ त्रिभुवने स्थातुं योग्यश्च संसारिवन्न भवति। तेन परम एव पदे स भगवता सह भगवानिव दीव्यति।

**भावार्थ – योगसाधनाओं से शुद्ध बलिष्ठ और पारदर्शी अन्तःकरण के द्वारा भगवान् का निरन्तर अनुभव होते रहने से प्रारब्धाधीन लौकिक दुःखों के कारणों के जुटने पर भी योगी को दुःख शोक मोह और बिषयानन्द नहीं होते। उसके हृदय में योगबल से भेदभावनायें न रह जाने से उसे सदा सर्वत्र एकमात्र प्रभु का ही दर्शन बना रहता है। तब प्रारब्धवश दुःख शोकों के कारणों के आने पर भी उसे दुःख आदि नहीं होते, तब वह सतत भगवद्नुभवशील लोगों के लोक वैकुण्ठ में ही रहने के योग्य हो जाता हैं। वह इस त्रिगुणात्मक दुःखशोकमय लीलाविभूति में रहने के योग्य नहीं रह जाता है, इससे वह वहीं पहुँच जाता है और भगवान् के समान ही उनके साथ सदा प्रकाशमान रहता है।**

**चित्तञ्चाञ्चल्ययोगादसुखसुखदशाऽऽलम्बि लोके समेषां,**
**सत्कृत्यैर्योगशक्त्याऽथ सदनुभवतः सत्त्ववृद्ध्यैति शान्तिम्।**
**आत्मा सत्त्वे प्रवृद्धे सुखमनुभवितुं दुःखभङ्गाय नित्यं,**
**चित्तं सौख्यैकभूमौ यमयति यतते मुक्तये याति सिद्धिम्।।११३।।**

उक्तार्थचिन्तनपरो मुमुक्षुरुक्तावस्थाऽऽप्तये सत्त्वैकभूमिम् भगवन्तमेव ध्यायतीत्याह–चित्तमित्यादिना। लोके चतुर्दशभुवनेषु, समेषां जनानां देवादीनामपि चित्तम् अन्तःकरणं, चाञ्चल्यस्य सहजचपलस्वभावस्य, योगात् सत्त्वात्, असुखस्य दुःखस्य, क्वचित्सुखस्य च दशाम् आलम्बत, एवं समेषामेव जीवनं दुःखानुविद्धं दृश्यते। किन्तु तदेव चित्तं सत्कृत्यैस्तत्त्वधीपूर्वकै– र्भगवदर्थैश्चिरानुवृत्तैः कर्मभि, र्योगस्य ध्यानाभ्यासस्य शक्त्याऽसामान्येनार्जितेन सामर्थ्येन, अथापि च सतो जगन्मूलतत्त्वस्य परमात्मनो विषये, सतः सविधिलब्धाच्छास्त्राभ्यासजनितवैशद्याद् अनुभवतो हेतोर्जातया सत्त्वस्यान्तः– करणस्य तदारम्भकस्य सत्त्वगुणस्य च,

वृद्ध्या विकासेन, भ्रान्तिजातनिवृत्त्या शान्तिं स्थैर्यम्, एति लभते। ततश्च सत्त्वेऽन्तःकरणे सत्त्वगुणे च प्रवृद्धे सति, आत्मा चेतनः, सुखं स्वाभाविकमकर्ममयमानन्दमनुभवितुं, दुःखानां समेषामपि कर्माधीनानाम्, भङ्गाय निवृत्तये, चित्तं स्वीयमन्तःकरणं, सौख्यस्य सहजानन्दस्य एकमात्रभूमौ स्थाने, भगवति, यमयति धारणा ध्यानसमाधि– भिर्योजयति, एवं स मुक्तये यतते, तेन सिद्धिं सफलतामपि, सकलविघ्ननिवृत्त्या याति लभते।

**भावार्थ – किसी भी उत्तम व्यक्ति या देश या दोनों को सुनने समझने के बाद ही उसे पाने की इच्छा होती है। शास्त्रों के द्वारा आत्मा की सहज सुखमय अवस्था और उसके उपयुक्त वैकुण्ठादि देशों का ज्ञान होता है। तब योगी अपने सहज चंचल चित्त को जो दुःख शोकों का कारण बनता रहता है उसे शुभ गुणों के एकमात्र आश्रय भगवान् के चरणों में योगशास्त्रीय रीति से लगाता है। सामान्य योगाभ्यास से चित्त में कुछ अच्छे संस्कारों के बनने पर ही यह प्रयत्न बनता है। निष्काम कर्मपूर्वक भगवदनुभव के साथ योगाभ्यास से अन्तःकरण सत्त्वगुण के साथ विकसित होता है, तब चेतन नित्य एकाकार ज्ञानानन्दमय भगवान् का चिन्तन करता हुआ सहज आनन्द में ही रहता है और विषयों के संस्कारों का क्षय होने पर परम सिद्धि मोक्ष भी पा लेता है।**

**विशेष – जिस प्राकृतिक नियम से विषयसंस्कारों का क्षय और मुक्त अवस्था की प्राप्ति होती है उस के क्रम में पूर्वपापों से नाना विघ्न आते रहते हैं और योगी सफलता से वञ्चित ही रहता है, कभी कभी विघ्नों के मारे उसका योग छूट जाता है और वह दुबारा संसार में भटकने लगता है। यह सब न हो इसके लिये पतञ्जलि ने ''ईश्वरप्रणिधानाद्वा'' ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'' ये दो सूत्र बतलायें हैं। प्रथमसूत्र शरणागति का सुझाव देता है और दूसरा उसके सतत चिन्तन का। इन दोनों उपायों से आत्मा अपने में कर्तृत्व का भाव छोड़ देता है। इससे विघ्न रुकते हैं और सिद्धि सन्निहित हो जाती है।**

कः क्लेशोऽक्लेशसौख्ये कथमिव न मनो दुःखतो याति दूरं,
को लाभोऽभव्यभूमावसुखजलवहो यत्र कर्माम्बुवाहः।
प्रार्थ्यं सत्त्वोत्तरत्वम्मनसि न तु गुणा यज्जगत्कारणन्तद्,
ध्येयञ्चिन्त्यं विचार्यं कथमिव नु मही स्वं दधाना न वेद्या।।११४।।

योगपथस्व सुखमयत्वमावश्यकत्वञ्चाह–कः क्लेश इत्यादिना। अक्लेशे सहजे स्वाभाविके नित्ये, सौख्ये स्वरूपैकप्रयोज्य आनन्दे, तदुपलब्धौ कः क्लेशः ?



न कोऽपि, नित्यस्याव्यवहितस्योपायानपेक्षत्वात् मनः दुःखतो दूरं कथं न याति ? यात्येव, अप्रियतयैव नित्यमनुभूयमानत्वेन स्वतस्त्याज्यत्वात्। दुःखत्यागस्य प्राणिसामान्यार्थत्वात्। यत्र असुखमेव जलं बहतीति तथोक्तः, कर्माण्येव अम्बुवाहो मेघो भवति, स सदा दुःखमेव समेषां सदा वर्षति, तस्याम् अभव्यायाम् भूमौ त्रिभुवने, को लाभः ? तिरोहितस्वरूपस्याज्ञानबद्धस्य जनस्य स्वर्गादिसुखमपि लाभत्वेन न गणनीयं, अज्ञानकार्यदुःखमिश्रत्वात्। तस्मादेतत्त्याग एवोचितः। अत एव लोकेऽस्मिन् एकमेव प्रार्थनीयं शिष्यते, किन्तदिति चेत् मनसि सत्त्वोत्तरत्वं रजस्तमोऽनभिभूतम्प्रवृद्धं सत्त्वं, न पुनरन्यद् अमुख्यम्प्रार्थनीयम्, अमुख्यलाभेन मुख्यस्य त्यागसम्भवात्। तदर्थं किं कर्तव्यमिति चेत्, जगतो मूलभूतमुपादानं निमित्तञ्च कारणं ध्येयं ध्यानारुढं कार्यम्, तदर्थं तस्य चिन्तनं शास्त्रैः कार्यं, तदर्थविचारश्च मनसाऽनिशं करणीयः। तत्र युक्तिमाह–कथमिवेति, स्वम् आत्मानं दधाना मही भूमिः कथमिव न वेद्या। यत्र स्थीयते तत्स्थानमवश्यमेव विचार्यते सर्वैः, तत्स्थानप्रयुक्तहानिलाभनियमनविमर्शाय। परमात्मनि एव सर्वं वसति। चेतनाः सर्वेऽपि तद्धृतास्तन्नियन्त्रितास्तत्सौहार्दफलभाजश्च सन्ति ज्ञानमात्रेण। ज्ञानाभावादद्यावधि तद्वञ्चिता, ज्ञानेन च लाभान्विता भूयास्मेति नूनन्तद्विचारो विवेकवताऽवताऽऽत्मानं करणीय इत्यर्थः।

**भावार्थ – मोक्षपथ पर प्रवृत्ति न होने में केवल प्रमाद हेतु हो सकता है। अन्यथा क्या कारण है कि लोग अपने स्वाभाविक नित्यसिद्ध आनन्द को पाना नहीं चाहते। वह तो सदा प्राप्त ही है। बस उधर ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारा मन जिन अर्थों में उलझा रहता है उनका एक ही नाम है दुःख। दुःखों से तो मन का हटना सदा स्वाभाविक है। इसके लिये किसी विधि विधान की या बहुत सोचविचार की आवश्यकता नहीं है। बस एक ही निर्णय होना चाहिये कि मैं दुःख न बटोरुँ, यदि कोई कहे कि इस संसार में जब तक हम हैं तब तक दुःख मिलेंगे ही, मच्छरों वाले देश में मच्छर काटते ही हैं, तो इस देश को छोड़ ही क्यों न दिया जाये। इस देश में जो बादल सदा घिरा रहता है वह है हमारा प्रारब्ध जो सदा दुःखों की ही वर्षा करता है। कभी यह सुख नहीं बरसाता, सुख की तरह जो कुछ समझ में आता है वह भी दुःख प्रधान होने से दुःख ही दुःख है।**

**ऐसी स्थिति में इस संसार से चाहने योग्य कुछ नहीं है। फिर भी यदि चाहना ही हो तो चित्त में सत्त्वगुण का विकास चाहा जाये, इसके सिवा और**

कुछ न चाहा जाये। अन्य कुछ चाहने से कल्याणकारी यह चाह छूट जायेगी। इस पवित्र चाह की पूर्ति के लिये जगत् के कारणभूत परमात्मा का ध्यान स्मरण और चिन्तन करते रहना चाहिये। इसी से चित्त में सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। हमारी बुद्धि अर्थ की विशेषताओं को पकड़ती है। भगवान् विष्णु शुद्ध सत्त्वमय हैं, इससे उनका देर तक ध्यान करने से बुद्धि में सत्त्वगुण का विकास होता है। उनके कल्याणकारी गुणों को शास्त्रों से विधिवत् समझने से बुद्धि शुद्ध होती है जिससे मुक्ति का मार्ग प्रकाशित होता है।

हम जहाँ रहते हैं उस स्थान को बहुत कुछ समझते हैं, उससे हम लाभान्वित होते और हानियों से बहुत कुछ बचते भी हैं। न समझने से हम पशुओं की भाँति निम्न अवस्था में ही रह जाते हैं। परमात्मा सारे विश्व के और सारे चेतन तत्त्वों के एकमात्र आश्रय धारक और हितकारक हैं। वे प्राणिमात्र के कल्याण के लिये नित्य ही कृत–सङ्कल्प हैं। हमारा अज्ञान उनके सङ्कल्प का प्रतिबन्धक होता है। प्रतिबन्ध रोकने के लिये भी उन्हें समझना आदर देना याद रखना और उनके गुणों और उनसे अपने सम्बन्धों को अधिकाधिक समझते रहना आवश्यक है। इससे योगमार्ग सुखमय होता है और लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्र होती है।

**विश्वसृष्ट्यादिहेतोर्यदि गुणमखिलं तत्त्वनिष्ठो व्यजानात्,**
**नूनं सत्त्वोत्तरत्वान्महितनिजजनिं सार्थयेद् दृष्टतत्त्वः।**
**स्वामी सर्वस्य, कामी स्वचरणमनसाम्माययाऽऽवेष्ट्य विश्वं,**
**क्रीडन्नानन्दसिन्धुः सपदि हरिरमुम्प्रोद्धरेन्नित्यबन्धुः।।११५।।**

तत्त्वनिष्ठया तत्त्वदृष्टिस्तया च जन्मसाफल्यमित्याह–विश्वसृष्ट्यादीति। तत्त्वनिष्ठस्तत्त्वावबोधाय कृतसङ्कल्पो योगी, यदि विश्वस्य जगतः सृष्ट्यादेः सृष्टिस्थितिसंहाराणां, हेतोः कारणस्य परमात्मनोऽखिलं जगत्कारणतानिर्वाहकं, गुणं विशेषजातं, व्यजानात् ज्ञातवान् तदा, सत्त्वोत्तरत्वात् सत्त्वगुणप्राधान्यात्, महिताम् उत्कृष्टाचरणां, निजाम् आत्मीयां, जनिं जन्म, नूनम् अवश्यं, सार्थयेत् सफलीकुर्यात्। कथमित्यत्राह–दृष्टतत्त्वइति, तत्त्वदर्शनस्यैवायम् प्रभावो यज्जन्मसाफल्यम्मोक्षलाभश्चेति। तद्विषये भगवतः प्रवृत्तिमाह स्वामीत्यादिना। सर्वस्य कार्यवर्गस्य, स्वामी अधिपतिः स्वचरणमनसाम् भक्तिमतां, कामी उपेक्षितुमशक्नुवन्, विश्वं सचराचरं जगत्, मायया स्वसङ्कल्पबलेन, आवेष्ट्य वशीकृत्य, क्रीडन् ससुखं विहरन्, नित्यबन्धुश्चेतनानां स्वभावादेवात्मीय,



आनन्दसिन्धुरपरिमितसुखराशि, हरिः सर्ववशीकरणस्वभाव ईश्वरः, अमुम् प्रस्तुतं योगिनं, सपदि अविलम्बम्, उद्धरेत् कर्मबन्धान्मोक्षयेत्। जगत्कारण–गुणानुचिन्तनयोगः शीघ्रपरमपुरुषार्थसाधक इति भावः।

भावार्थ – तत्त्वज्ञान के लिये श्रद्धा और तत्परता से तत्त्वदृष्टि प्राप्त होती है, तब जीवन सफल होता है। जो योगी वेदादि शास्त्रों के तात्पर्य के अनुसार जगत्कारण के निरूपण में प्रयत्नशील रहता है और फलस्वरूप परमात्मा को कारण मानता हुआ उनके कारण बनने के उपयुक्त सारे गुणों को समझ लेता है वह निश्चित ही अपने महान् जीवन को सफल बना लेता है, क्यों कि परमात्मा सारे विश्व के स्वामी होने से सबके प्रति आत्मीयता का भाव रखते हैं और जो तत्त्वज्ञ होने से उनका भक्त भी होता है उसे वे बहुत ही चाहते हैं, उसे वे देर तक अपने से दूर रहने देना नहीं चाहते, सारे विश्व का नियन्त्रण करते रहने से और नित्य ही आनन्द में रहने से एवं चेतनमात्र के स्वाभाविक बन्धु होने से वे अनायास उसका उद्धार करके अपना लेते हैं।

**६–ध्यानार्थविषयोपायाविस्मृत्या ध्यानसन्ततौ।**
**सततम्भासते श्रीशः सूरीणां स्वे पदे यथा।।११६।।**

षष्ठेऽध्याये ध्यानविधिर्वर्णितः। ध्यानाभ्यासाद् ध्यानार्थानां ध्यानार्हाणां, विषयाणाम्मोक्षोपायानाञ्चाविस्मृत्या ध्येयतयोपायतया च ध्यानसन्ततौ समानाकारचित्तवृतौ, श्रीशो भगवान्, सततं तथा भासते यथा सूरीणां वैकुण्ठमहानगरवासिनां, तत्र स्वलोके साक्षाद्अनुभूयते।

*इति षष्ठोऽध्यायः*

भावार्थ – ध्यान का अभ्यास प्रत्येक कल्याणकामी या अभ्युदय के इच्छुक व्यक्ति के लिये अपेक्षित होता है। उसी से वाञ्छित विषय नहीं भूलता, अन्यथा सारे संसारी लोग जंगल में चारे के लिये अनियमित घूम रहे पशुओं की भाँति क्षुद्र स्वार्थों के लिये घूमते रहते हैं और समझा बूझा भी परमार्थ उनके पल्ले नहीं पड़ता। इसी से भगवान् ने छठे अध्याय में ध्यान का विधान किया है। ध्यान में ध्यानयोग्य और मोक्ष के उपायभूत भगवान् वैसे ही प्रत्यक्ष रहते हैं जैसे नित्य सूरियों को बैकुण्ठ में प्रत्यक्ष रहते हैं।

*छठा अध्याय समाप्त*

# अथ सप्तमोऽध्यायः

**यद्वै किञ्चिज्जगत्यां जगदिदमखिलं यच्च दूरेऽपि गम्यं,**
**यच्चातीतं यदेष्यं गुणमयरचनं यच्च तत्सूक्ष्ममूलम्।**
**सर्वन्तत्सर्वरूपप्रभुवपुरमुना धार्यते तन्नियाम्य–**
**न्तत्संकल्पात्तसत्तन्न तदपरतया किञ्चिदिच्छन्ति सन्तः।।११७।।**

ध्यानाभ्यासफलम् प्रमेयसामान्यस्य भगवद्रूपत्वदर्शनम्प्रस्तौति–यद्वै किञ्चिदित्यादिना। वै प्रसिद्धं, जगत्यान्त्रिलोक्यां, यत् किञ्चित् किमपि जगत् परिणममानं गच्छच्च, इदम्प्रत्यक्षगम्यं, यच्च दूरेऽपि गम्यम् अनुमानशब्द–प्रमाणविषयः, यच्च अतीतम्भूतं, यद् एष्यम् आगामि गुणमयरचनं सर्वं विकारजातं सत्त्वादिगुणानामेव, गुणतारतम्यप्रयुक्ता अनन्ता भेदा, अथ च यत् तेषा विकाराणां सूक्ष्मम्मूलम् मूलप्रकृतिरित्युक्तं, सर्वमपि तत् सर्वरूपधरस्य प्रभोः परमात्मनो, वपुः शरीरमिति श्रुतिस्मृतिभिरवधेयम्, अतः सर्वमपि अमुना परमात्मना, धार्यते, तन्नियाम्यं तेन स्वेच्छया विनियुज्यते, तस्य परमात्मनः, सङ्कल्पेन ज्ञानविशेषेण आत्ता अधीना, सत्ता यस्य तत्तथोक्तं विज्ञेयं, तेन सन्तः सुविदिततत्त्वाः, तदपरतया किञ्चित् न इच्छन्ति न स्वीकुर्वन्ति। सर्वस्य प्रमेयजातस्य भगवच्छरीरत्वेन भगवत्त्वेन तदतिरिक्तार्थकल्पनाया निरवकाशत्वादिति भावः।

भावार्थ – ध्यानयोग से वेदान्त की एकत्वदृष्टि बनती है। वही एकत्व प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि विश्व में दृश्यमान सारे परिणामी पदार्थ परमात्मा के शरीर हैं, जो दूरस्थ या अतीत या अनागत परिणामी या अपरिणामी पदार्थ हैं वे भी परमात्मा के शरीर हैं। जो चेतन जिस द्रव्य को नियमित रूप से धारण करता है, अपनी इच्छा से उसका नियमित उपयोग करता है, उसके अंदर रहकर उससे सभी सुखदुःख अनुभव करता है, वह उसका शरीर कहा जाता है। यह शरीरलक्षण सारे ब्रह्माण्ड में परमात्मा के लिये घटित होता है। सभी चेतनों के सारे सुख दुःखों का प्रत्यक्ष अनुभव परमात्मा को भी तटस्थ भाव से होता है। शास्त्रीय विधि निषेधों के पालन और उल्लंघन से भी उन्हें अनुकूलता और प्रतिकूलता का तटस्थ भाव से



अनुभव होता रहता है। प्रतिकूलता उन्हें भारी नहीं पड़ती, इससे यह भी माना जाता है कि उन्हें कोई दुःख नहीं होता। वे सारे कार्यकारणों के घटनाक्रम का स्वेच्छा से निर्वाह करते हैं, धारण तो वे अपने सङ्कल्प से सारे विश्व का करते ही हैं, इससे सब कुछ उनका शरीर है। शरीरी चेतन अपने शरीर को अपने अहम् के अन्दर मानता है। दूसरों के द्वारा निन्दा स्तुति सेवा और अपराध किसी भी चेतन को शरीर के द्वारा ही प्राप्त होता है। कोई यह नहीं कहता कि मेरे साथ कोई व्यवहार नहीं हो रहा। जब कि किसी भी चेतन के साथ साक्षात् कोई व्यवहार सम्भव नहीं। ऐसे ही किसी जड़ या चेतन के प्रति होता हुआ हमारा सारा व्यवहार परमात्मा को सीधे मिलता है। इस तथ्य का ध्यान रहने से हमारा सारा क्रिया–कलाप शास्त्रों के द्वारा नियन्त्रित हो जाता है और हमारी अद्वैतदृष्टि भी पुष्ट होती है जिससे मुक्ति का द्वार शीघ्र खुलता है। इसी से शास्त्रज्ञ सन्त ईश्वर के अहम् से बाहर कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं करते। यही वेदान्त का मर्म अद्वैतभाव है।

विशेष – अद्वैतभाव असंख्य जटिल विवादों का केन्द्र बिन्दु है। जैसे आज कल अनिरूपित धर्मनिरपेक्षता बहुतों को प्यारी हो गयी है। वैसे ही प्राचीन काल में असंख्य पण्डित प्रकाण्डों ने अपने अपने मत से नानाविध अद्वैतों की स्थापना की हैं। इस विषय पर विद्वन्मूर्धन्य अप्पय्य दीक्षित का ''सिद्धान्त लेश संग्रह'' पठनीय और मननीय है। उन नाना अद्वैत दृष्टियों पर तटस्थ समीक्षा के लिये प्रौढ पाण्डित्य अपेक्षित है। यहाँ वही अद्वैत भाव प्रस्तुत किया गया है जो सबके लिये कल्याणकारी शिष्टसम्मत और प्रामाणिक है। अन्य वादियों को भी यह अच्छा लग सकता है। इसे मानकर भी वे अपना अभिमत वाद चला सकते हैं।

**स्वं रूपं निष्प्रपञ्चं त्रिगुणविरहितं ज्ञानमात्रस्वरूपं,**
**नित्यं श्रुत्यन्तवेद्यं यतिरनुभवति ध्यानयोगाच्चिरस्य।**
**तेनानन्तस्वरूपम्प्रभुमनुभवितुं युज्यतेऽनन्तबोधं,**
**विश्वात्मानं सखायं हृदि निहितपदं सद्धियां नित्यवेद्यम्।।११८।।**

पूर्वं विशिष्टस्वरूपस्य भगवतो ध्यानसिद्ध्युपायमाह, इदानीं शुद्धस्वरूपस्य ध्यानोपायं स्वस्वरूपध्यानमाह–स्वं रूपमित्यादिना। यतिर्मुक्तये प्रयतमान, श्चिरस्य ध्यानयोगात्, निष्प्रपञ्चं स्वस्मिन् सृष्टिविस्ताररहितं, तत्र हेतुस्त्रिगुणविरहितमिति, सृष्ट्यादिपरिणतिहेतूनां सत्त्वादिगुणानां जडद्रव्येष्वेव सत्त्वाच्चेतने तदभावः। ज्ञानमात्रस्वरूपं स्वस्मै स्वयम्भासमानत्वरूपं, नित्यं शाश्वतं, श्रुत्यन्तैर्वेद–

रहस्यभागैर्वेद्यं तेषु प्रथितं, स्वम् आत्मीयं रूपम् असाधारणाकारम् अनुभवति। तस्य फलमाहतेनेति, तेन चिरध्यानानुभावेन, अनन्तं विभु स्वरूपं यस्य स तथोक्तस्तम्, अनन्तबोधं सुशक्यानन्तप्रमेयावगाहं, विश्वात्मानं सकलप्रमेयप्रसरदहङ्कारं, हृदि सर्वदेहिनां चित्तेषु, निहितपदम् प्रतिष्ठितं, सद्भियां शास्त्रसंस्कारजुषां, नित्यं सततं वेद्यम् अनुभाव्यं, सखायं सर्वस्य प्राणिजातस्य सुहृदम् प्रभुम् परमात्मानम्, अनुभवितुं योगजप्रत्यक्षेण साक्षात्कर्तुं युज्यते क्षमते। योगसंस्कृतचेतसा साक्षात्कृतस्वरूपस्य निर्विशेषभगवत्साक्षात्कारः सुशक इति भावः।

**भावार्थ – अपने शुद्ध स्वरूप का ध्यान भगवान् के शुद्ध निर्विशेष स्वरूप के ध्यान की योग्यता बन जाता है। कर्मबद्ध जीव प्रकृतिमण्डल में अनेक विशेषतायें लिये रहता है। उन सारी विशेषताओं को छोड़कर केवल विशेष्य अंश का (धर्मों का त्याग करते हुए धर्मीमात्र का) ध्यान किया जाता है। वही वास्तव आत्मा है। परमात्मा का कोई कर्मबन्धन नहीं होता। वे स्वभाव से ही सदा अशेष विशेषों से युक्त रहते हैं। उनके भी शुद्ध रूप (विशेष्य अंश) का ध्यान किया जाता है। जीव का स्वरूप अणु और परमात्मा का विभु है। दोनों स्वयम्प्रकाश नित्य ज्ञानानन्दमय होने से समान हैं। अपना ध्यान सिद्ध होने से परमात्मा का ध्यान स्वतः होने लगता है।**

**यद्वद्देहानुबन्धात्खलु चिदनुगता देवदत्तादिसंज्ञा,**
**तद्वत्सर्वार्थदेहो भवति स भगवान् सर्वशब्दाभिलप्यः।**
**भूमिर्गन्धो रसो वा बलमपि विदितं वाञ्छितं वाऽपि चित्तं,**
**यद्यद्धत्तेऽभिधानन्तदखिलकथितो विश्ववर्ष्मा परात्मा।।११६।।**

पूर्वं सर्वरूपत्वेन प्रस्तुतस्य भगवतः सर्वशब्दवाच्यत्वमप्याह– यद्वदित्यादिना। यद्वद् यथा देहेन शरीरेण अनुबन्धात् संसर्गाद् हेतोः देवदत्तादिसंज्ञा शरीरविशेषे संकेतिताऽपि चितम् अनुगता चेतनधर्मभूतसुखदुःखादिविशेषैः प्रस्तावे चेतनमेव अभिधत्ते, जडशरीरस्य तदयोगात्, शारीरान् विशेषानपि चेतनः शरीरित्वादात्मन्येव मन्यते। तथैव सर्वेऽर्था देहो यस्यासौ तथोक्तः परमात्माऽपि पञ्चभूतानि तज्जातिगुणविशेषानशेषानपि कात्स्न्येनैकैकशोऽपि देहान् देहीव अहमिति मन्यते। अत्रार्थे श्रुतिस्मृतिपुराणवचनानि सन्ति भूयांसि प्रमाणानि। जीवेशयोरहम्बुद्धावयं विशेषः,–जीवस्य तत्तच्छरीरेषु कर्मकृतोऽहमभिमानः शरीरान्तरं न स्पृशति,



स्वशरीरस्यापि गताऽनागतावस्था न स्पृशति। परमात्मनस्तु सर्वावस्थेषु सर्वेषु द्रव्यगुणकालेषु सृष्टिप्रलययोः सदैवाऽनादिसङ्कल्पकृतोऽहमभिमानः। अत एव प्राणिमात्रहिंसा वर्ज्यते सद्भिः। जीवस्येव परमशिवस्यापि सर्वार्थाश्रयतया स्वगततयैव दुःखानुभवतत्प्रतीकारावश्यम्भावात्। तदेवाह तद्वदित्यादिना द्वितीयचरणेन। तदेव च विवृतमुत्तरार्धेन कृत्स्नेन। भूम्यादीनां या या व्यावहारिक्यः संज्ञास्ताभिः सर्वाभिरपि परमात्माऽभिधयैव नियतम्प्रतिपाद्यते। वेदान्तश्रवणादेव शाब्दी व्युत्पत्तिः पूर्यत इति सदाचार्याः। विश्ववर्ष्मा सर्वजगच्छरीरी पर आत्मा।

**भावार्थ – परमात्मा देवदत्त आदि के रूप में सदा सब को प्रत्यक्ष हैं। क्यों कि हम जो भी कुछ देख रहे हैं वह सब वे ही हैं। यदि हम कहें कि परमात्मा कोई स्थूल तत्त्व नहीं हैं, वह तो मन इन्द्रियों से परे हैं तो देवदत्त भी कोई स्थूल तत्त्व नहीं है, वह भी मन इन्द्रियों से परे है। नामकरण शरीर के माध्यम से अदृश्य सूक्ष्म आत्मा का ही होता है। मृत शरीर को कोई सम्बोधित नहीं करता। जैसे व्यवहारों के बल पर शरीर का अधिष्ठाता अलग अदृश्य चेतन तत्त्व माना जाता है वैसे ही हमारे विचारों भावनाओं और संकल्पों का निर्वाहक एक परम चेतन तत्त्व भी मानना पड़ता है। हम देखते हैं कि हमारी एक छोटी सी बात पचासों व्यक्ति ठुकराते जाते हैं, वह घटित नहीं होती और कभी बड़ी बात हमारे प्रस्ताव के बिना भी एक असामान्य व्यक्ति स्वयम् मान लेता है। हम किसी भविष्य की कल्पना इच्छा और प्रयत्न तो करते हैं किन्तु प्रयत्न में सफलता की जो एक असाधारण प्रक्रिया होती है उसे न समझ पाने के कारण बहुधा अपेक्षित फल नहीं पा सकते। हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश पर अपना अधिकार किसी को नहीं मिलता, फिर भी उक्त छः प्रकार की घटनाओं का एक व्यवस्थित क्रम होता है। क्रम की व्यवस्था कायम रखने वाली शक्ति को ही परम चेतन व परमात्मा कहा जाता है। सूक्ष्मतम घटनाक्रमों पर नियन्त्रण के लिये वह शक्ति कण–कण में छिपी रहती है। इसी से हम परमात्मा को सर्वान्तर्यामी कहते हैं। सर्वान्तर्यामी को ही सर्वशरीरी भी कहते हैं। जैसे शरीर का नियामक होने से देवदत्त आदि संज्ञा शरीरी चेतन को प्राप्त होती है। वैसे ही पृथिवी समुद्र ग्रह गगन अणु परमाणु की सारी संज्ञायें परमात्मा को प्राप्त हैं। वे सर्वशरीरी हैं इससे सारे शब्दों के द्वारा वाच्य भी है। लोक में शरीरविशिष्ट आत्मा वाच्य होता है किन्तु तत्त्वदर्शियों के समाज में शरीरविशिष्टचेतनविशिष्ट परम चेतन वाच्य है। इससे वाच्य भेद से द्वैतभाव का अवकाश नहीं है।**

सन्तो विज्ञानशीला नियममिममलं चेतसा धारयन्तः,
सर्वम्ब्रह्मेति बुद्धया प्रणिपतनपराः श्रद्धया न द्विषन्तः।
कस्मैचित् क्वापि, सर्वं स्वमपि च हरिणा बन्धुना सन्नियाम्यं,
जानानास्तम्प्रपन्ना विहतभवभया निष्प्रमादाश्चरन्ति।।१२०।।

उक्तार्थबोधफलमाह— सन्तइत्यादिना। सर्वार्थानाम्भगवदेकनियाम्यत्व—धार्यत्व—भोग्यत्वज्ञानं विज्ञानमिह विवक्षितं तच्छीलं येषान्ते तथोक्ताः, सन्तो लब्धस्वस्वरूपस्वभावबोधा, इमम्प्रस्तुतं नियमम् भगवदेकधार्यत्वरूपं चेतसाऽवधानवता मनसा, अलम् अनुष्ठाननिर्वाहकं यथा स्यात्तथा धारयन्तो न विस्मरन्तः, सर्वस्यार्थस्य ब्रह्मशरीरतया सर्वं सकलं, तत्त्वजातम् ब्रह्म परमात्मैव नः स्वामीति बुद्धया, श्रद्धया महनीयताधिया, सर्वत्र प्रणिपतनपराः सर्वं साष्टाङ्गप्रणामार्हमिति मन्वानाः कस्मैचित् चेतनाय जडाय वा, क्वापि देशे काले वा, न द्विषन्तोऽद्वेषशीलाः, सर्वं तत्त्वजातं, स्वम् आत्मानमपि, बन्धुना सर्वस्यापि प्रियहिततत्परेण हरिणा सर्वनियमनपरेण परमात्मना, सन्नियाम्यं तत्सङ्कल्पैकाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदं जानाना बुद्ध्यन्तः, तम्प्रपन्नाः सर्वनियन्त्रा तेनैव रक्षणीयतामात्मनो जानन्तस्तत एव विहतभवभया अपवारितसंसार—क्लेशसम्भावना, निष्प्रमादाः, तत्त्वभावनाविरोधी विषयानुभवजो हर्षविशेषः प्रमादस्तद्रहिताः चरन्ति कालं क्षिपन्ति।

**भावार्थ — हम सामान्यरूप से यह जानते हैं कि सारा जगत् परमात्मा के अधीन है किन्तु उस अधीनता में अपने अन्तर्भाव का ध्यान नहीं रखते। रखते भी हैं तो केवल अकर्मण्यता के लिये न कि आत्मरक्षा के लिये। सारे विश्व में परमात्मा के नियन्त्रण का सिद्धान्त अपनी रक्षा में अपनी प्रवृत्ति को रोकता हुआ परमात्मा की ओर चातक के समान सदा ध्यान अपेक्षा और भरोसा दिलाता है। यही भक्ति है, यही प्रपत्ति है। इस भावना की प्राप्ति के लिये सामान्य रूप से सारे विश्व में प्रभु की व्याप्ति के ध्यान के सिवा प्रतिव्यक्ति में, प्रत्येक दशा में प्रत्येक दर्शन में प्रभु की उपस्थिति का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि हम सदा यह समझा करें कि मेरी चोरी कहीं भी छिप नहीं सकती तो चोरी की प्रवृत्ति सदा के लिये दब जायेगी। ऐसे ही यदि हम प्रभु को केवल सातवें आसमान पर टिका न जानकर प्रत्येक कण में पूर्ण क्षमता के साथ उपस्थित देखा करें तो सदा सर्वत्र श्रद्धा और भक्ति के सिवा दूसरा कोई भाव बन नहीं पायेगा। हमें चाहिये कि विश्व के सारे प्रत्यक्षों को हम प्रभु के ही प्रत्यक्ष के रूप में स्वीकार करें।**



विस्पष्टानन्तशक्तिः सुनियतचिदचिच्छेषिभूतः परात्मा,
नित्यं विष्वक्प्रकाशस्त्रिगुणपिहितधीर्नैव तं वेत्ति जन्तुः।
निर्मायं सेवितुं तन्त्रिगुणजवनिकां तस्य नेतुं विलोपं,
द्रष्टुं तं तत्र रन्तुम्परिचरणपराः सक्षमास्तम्प्रपन्नाः।।१२१।।

विश्वव्यापिनः परमात्मनः सर्वेषामनुपलब्धौ हेतुमुपलब्ध्युपायञ्चाह—विस्पष्टेति। महतः कस्यापि कार्यस्य दृष्टकारणानुपलब्धौ कार्यानुरूपम्महत् किमप्यदृष्टं कारणं कल्प्यते। यथा रविमण्डलतत्संसृष्टग्रहतदुपसृष्टोपग्रह—तद्गतिपथतदीयाश्चर्यफलव्यवस्थादौ। तत्कारणमेवेश्वरं कथयन्त्यानुमानिकाः। अनन्तकार्यविस्पष्टतैव कारणगतानन्तशक्तिविस्यष्टता। तदेवाह—विस्पष्टानन्तशक्तिरिति, विशेषैः कार्यगतैः स्पष्टा सुबोधा अनन्तकार्यहेतुतयाऽनन्ता शक्तिर्यस्यासौ तथोक्ता, सुनियतानां स्वेच्छाधीनविनियोगोचितसर्वावस्थानां, चितां चेतनानाम् अचिताम् अचेतनानाञ्च शेषिभूतो निरुपाधिकः स्वामी, परः सर्वेषामात्मनामप्यात्मा धारको नियामको भोक्ताऽविकृतैकाकारश्च परमात्मा, समेषां चेतनानां कृते, नित्यम् अनारतम्, विष्वक् स्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्यशी—लादिभिर्विशिष्टवेषः सन्, प्रकाशोऽतिरोहितावस्थो दर्शनार्होऽस्तीति शेषः। तथाऽपि त्रिगुणैः सत्त्वादिभिः पिहिता निरुद्धा धीर्यस्य स तथोक्तो जन्तुः प्राणी, तम् उक्तम् परमात्मानं, नैव वेत्ति नोपलभते। मायाविशिष्टवेषेण तमुपलभमानोऽपि शास्त्रजबोधाभावाद् अनुपलभमान एव भवति। तम् परमात्मानं निर्मायं तद्विशेषणीभूतमायांशत्यागेन, मायाकार्यस्वचित्तदोषत्यागेन च, सेवितुं निरतिशया—नुकूल्येनानुभवितुं, तस्य परमात्मनः, त्रिगुणमयीम् मायाजवनिकां स्वपरस्वरूप—तिरोधानकरीं विलोपम् अदर्शनं नेतुम् प्रापयितुम्, अथ च तं द्रष्टुं साक्षात्कर्तुं, तत्र परमात्मन्येव रन्तुम् असीमसुखमनुभवितुं, तम् परमात्मानम्, प्रपन्नाः सकलपुरुषार्थोपायभावेन जानानाः, परिचरणपरा नित्यस्वामित्वाध्यवसायवशतया यथा शक्यसेवानिरता, निष्पापाः साधवः, सक्षमा लब्धसामर्थ्याः स्युरितिशेषः।

**भावार्थ — सारा दृश्य जगत् भगवान् की मूर्ति है, जगत् के रूप में हम उन्हें सदा देख रहे हैं फिर भी हम उनका दर्शन मानते नहीं, क्यों कि वे हमारी कर्माधीन गतिविधियाँ जारी रखने के लिये काष्ठमौन धारण किये हैं, उनकी कोई भी प्रतिक्रिया हमें लक्षित नहीं होती। फिर भी यदि हम उन्हें जड जगत में ढूंढें तो आसानी से पा सकते हैं। अचिन्त्य घटनाओं के प्रवर्तक के रूप में वे सदा हमारे सामने हैं। अदृश्य प्रेत कभी कभी अपने उपद्रवों से**

अपनी भयानक उपस्थिति सूचित करता है, ऐसे ही उन कार्यों के कर्ता के रूप में भगवान् सदा उपस्थित हैं जो मानव से या देवों से भी साध्य न हों। पृथिवी की रचना देवता नहीं कर सकते। पृथिवी ने ही शुभ कर्म करा कर देवता बनाये हैं। असंख्य ग्रह उपग्रहों सहित सूर्यमण्डल की रचना जिस अचिन्त्य शक्ति के अधीन है वही परमात्मा हैं। उन्होंने यह सब बना कर किसी गाड़ी की कम्पनी की तरह छोड़ नहीं दिया है बल्कि ड्राइवर की तरह सदा चला रहे हैं मैकेनिक की तरह मरम्मत और रक्षा भी कर रहे हैं। यह तथ्य शास्त्र तो बतलाते ही हैं, लौकिक अनुभवों से भी यह जाना जाता है। उत्पत्ति रक्षा और विनाश की बहुत सी घटनायें चौंकाने वाली होती हैं जो किसी अज्ञात शक्ति की ओर संकेत करती हैं। वह शक्ति ईश्वरीय भी होती है।

परमात्मा अपने पाँच रूपों से विश्व को नाना प्रकारों से प्रभावित करते हैं। पाञ्चरात्र संहिताओं में वे रूप पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार इन पाँच नामों से सूचित और विस्तार से वर्णित हैं। अन्य प्रमाणों से भी हम इन्हें बहुत कुछ जान समझ सकते हैं। ऐसी स्थिति में प्रभु का ध्यान अर्चन प्रणाम भक्ति प्रपत्ति आदि सब कुछ आसान हैं फिर भी हम प्रभु से सदा दूर ही रहते हैं। हमको हमारी बहिर्मुखता उनसे दूर रखती है। यह एक असाध्य रोग है। यही हमें सारी सुविधाओं के रहते भी सारे पुरुषार्थों से वंचित रखता है। जीवन की सारी अपूर्णताओं का यही एक मात्र कारण है। बहिर्मुखता के सहकारी होते हैं हमारे अधूरे संकल्प इच्छा और प्रयत्न, और ये हमारे प्रारब्ध के अनुरूप रहते हैं। इन्हें प्रारब्ध की परिधि में कायम रखने वाली अचिन्त्य शक्ति को हम अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में जानते हैं। अन्तर्यामी की गतिविधियाँ बहुतों को बहुत बार अधिक समझ में आती हैं। समाज अपने को उनके ही अधीन पाता है। उनकी शरणागति सहज में हो सकती है। इसीसे भगवान् ने शरणागति का सुझाव अर्जुन को दिया है। गीता श्लोक० ६१–६७ अध्याय १८। हम अपने को उनके प्रति पूर्ण समर्पित पाकर और मानकर उनकी यथाशक्ति सेवापूजा में अपने को स्वयं जोड़कर उनके अनुग्रह का और परम पुरूषार्थ मोक्ष का भागी बन सकते हैं। यही इस श्लोक का तात्पर्य है।

**योग्ये गर्भे निधत्ते यमयति सदसत्तत्कृतं तत्र सूते,–**
**योंग्यं कालं वृणीते सकलगगनगांस्तत्फलार्थं नियुङ्क्ते।**



**क्षीरान्नाद्यादियोगैः सुखयति सुचिरं किञ्च भोगावसाने,**
**रक्षत्यन्यत्र जन्तून् स सततभुवनोत्पादसंहारशीलः।।१२२।।**

प्रस्तुतम् भगवतोऽन्तर्यामित्वं किञ्चिद् विशदयति देहिनस्तदधीन–ताऽवगमाय–योग्ये गर्भ इत्यादिना। सततम् अविरामं, यथा स्यात् तथा, भुवनानां लोकानाम्, उत्पादो जन्म, संहारो विनाशस्तौ, शीलम् अभ्यासो यस्यासौ तथोक्तः, स प्रस्तुतः परमात्मा, जन्तून् देहिनो, योग्ये प्रारब्धकर्मफलानुरूपे, गर्भे स्त्रीयोनौ, निधत्ते स्थापयति, तत्र गर्भे सद् असत् शुभमशुभञ्च, तत्कृतं कर्म यमयति भाविशरीरोत्पादानुरूपफलोन्मुखं करोति, सूतेर्जन्मनो, योग्यम् भाविफलानुरूपं कालं ग्रहाद्यवस्थाविशेषविशिष्टं, वृणीते निश्चिनुते, सकलान् अखिलान्, गगनगान् ग्रहान्, तत्फलार्थं सामान्यफलदाः प्रस्तुतजन्मिनः फलविशेषनियता यथा स्युस्तथा, नियुङ्क्ते असाधारणतत्फलसङ्कल्पवशान् करोति, गर्भे जननीनाड़ीद्वारा जातस्य च बहिः क्षीरम्, अन्नम् ओदनादि, अद्यम् भक्ष्यम् पट्टिकामोदकादि च, तेषां योगैः प्रापणैः, सुचिरम् आजीवनं, सुखयति शैशवाद् अन्तकालावधि कर्मानुरूपं यथाक्रमं सुखविशेषान् उपलम्भयति, किञ्च पुनरपि, भोगावसाने प्रारब्धान्ते, जन्तून् देहिनः, अन्यत्र जननान्तरेऽपि, रक्षति पूर्ववदेवाऽऽद्यन्तं निभालयति। गर्भप्रवेशशरीर–पातान्तरालिकसकलसुखासुखोपलम्भपूर्वकदेहान्तरोपलम्भमपि सनात् नियमयन् नित्यबन्धुः परमात्मैव ध्येयः सेव्यः पूज्यश्च नान्यो नियतसंयोगवियोगो देवनरतिर्यगादिजन्तुरितिभावः।

भावार्थ – हमारे प्रभु चेतनों की देखभाल अनादि काल से नित्यबन्धुता के फलस्वरूप बड़ी तत्परता से कर रहे हैं, यह तथ्य न जानकर हम क्षुद्र विषयों में और क्षुद्र देवताओं में आसक्त रहते हैं, एवम अपने अनुरूप महान पुरुषार्थ से वंचित रहते हैं यह बतलाते हुए कहते हैं, कि वे प्रतिक्षण विश्व की सृष्टि और संहार के कार्यों में लगे रहते हैं इससे किसी भी चेतन को नया शरीर देने के लिये उसके कर्मों के अनुरूप स्त्री के गर्भ में रखते हैं, वहाँ, उसके भावी फलों के अनुरूप शरीर मन बुद्धि प्राप्त करने के लिये उसके प्रारब्ध शुभाशुभ कर्मों को गर्भ की स्थिरता पुष्टि और आकार प्रकार आदि के अनुरूप क्रम में रखते हैं। गर्भावस्था में उसके लिये माता को और जन्म के बाद उसे दूध फल अन्न औषध आदि उपलब्ध कराकर बढ़ाते हुए सुख पहुँचाते हैं जिससे वह आगे के सारे शुभाशुभ फल भोग सकें। यह क्रम वे जीवन भर जारी रखते हैं और प्रारब्ध की पूर्ति होने से शरीरत्याग के बाद

अगला जन्म देने के लिये अपने संरक्षण में रख लेते हैं। ऐसी तत्परता वे सारे चेतनों के लिये सदा से बरतते आ रहे हैं। यदि यह तथ्य हमारे ध्यान में रहे तो हम कभी उन्हें भूलें नहीं और कभी भी किसी भी विषम परिस्थिति में उनके प्रति अनुराग में कमी न लायें, बल्कि उत्तरोत्तर उनकी महती कृपा की प्रतीक्षा करते रहें।

**पुण्यम्पापं गृहीत्वा प्रकृतिकणगणं वर्ष्म खासूंश्च जन्तो,–**
**र्निर्मात्येषा हि माया शुभसरणितिरस्कारिणी सोऽस्य बन्धः।**
**भोगायाज्ञानतानं दृढयति न ततः सत्पथं यान्ति लोका,**
**मायेशम्भक्तिवश्यं सुमतिधृतपदम्प्राप्तवान्स्याद् विमुक्तः।।१२३।।**

उक्तं सर्वं संरक्षणं नियमनञ्च भगवान् मायासहाय एव करोति, माया च कर्मफलभोगाय चित्तेऽज्ञानपरम्परां संरक्षतीति तत्त्वं विशदं ज्ञात्वा भगवदाभिमुख्यं लभ्यमित्याह–पुण्यम्पापमिति। हि यत, एषा दृश्यमाना, जडाऽपि परमचेतनैकनेया, शुभाया नित्यसुखानुभवहेतुभगवद्भक्तिप्रदायाः, सरण्या उपायस्य, तिरस्कारिणी लौकिकनानाविषयोपन्यासेन तद्दर्शनवारिणी, माया आश्चर्यमयानन्तकार्यकरी प्रकृतिः, पुण्यं शुभफलार्हम्, पापम् अशुभफलौपयिकञ्च, प्रकृतिकणानाम् प्रज्ञाभावनानियमनौपयिकानां, गणं समूहविशेषं, गृहीत्वा कर्मबलेनैकत्रीकृत्य, जन्तोर्देहिनो, वर्ष्म शरीरं, खानि इन्द्रियाणि, असून् प्राणावस्थाविशेषान्, च निर्माति रचयति, स उक्त एवास्य बन्धः कर्मसम्बन्धो ज्ञेय इति शेषः। भोगाय शुभाशुभकर्मफलानुभवाय, अज्ञानस्य देहाभिमानपरिवारस्य, तानं सन्तानं, दृढयति सत्संगादिप्रयोज्यम्भङ्गं वारयति, ततः तेनैव हेतुना, लोका जनाः सत्पथं कल्याणमार्गं न यान्ति नालम्बन्ते। मायाया ईशं स्वामिनमपि, भक्त्या शुद्धया वश्यं वशीकर्तुं शक्यं, सुमतिभिः शास्त्रज्ञैः शास्त्रवश्यैः, धृतं ध्यानगम्यम् पदं स्वरूपं चरणयुगलञ्च यस्य स तथोक्तस्तम्, प्राप्तवान् ज्ञानावस्थाविशेषेण धृतवान्, विमुक्तः कर्मबन्धरहितः स्यादित्यर्थः।

**भावार्थ – भगवान् जीवों का नियन्त्रण उनके कर्मों के अनुसार माया के सहारे करते हैं इससे माया को ही मुख्य नियामक माना जा सकता है। यह माया जब किसी को नया जन्म देने वाली होती है तब उसके प्रारब्ध शुभ और अशुभ कर्मों को तोलती है और उनके शुभ अशुभ फलों की प्राप्ति के लिये बुद्धि और भावना को नियन्त्रित करने के उपयुक्त भौतिक परमाणुओं का संग्रह करके शरीर मन इन्द्रियों और प्राणों की रचना करती है। यही जीव का**



संसार बन्धन है। घटक परमाणुओं के सत्त्वादिगुणभेद से ही मानव मानव में भेद पाये जाते हैं। माया का पहला काम होता है मोक्षमार्ग का आवरण। यह करके वह कर्मफलों के भोग के लिये देहाभिमान और उसके फलस्वरूप अनेक अज्ञानों की धारा जारी रखती है, उसे कभी टूटने नहीं देती। इसीसे लोग अच्छे मार्ग पर चल नहीं पाते। फिर भी सन्मार्ग बन्द नहीं हैं। हमारे भगवान् माया के स्वामी होते हुए भी भक्ति के अधीन रहते हैं। शास्त्रज्ञान के सहारे उनके स्वरूप स्वभाव आदि का एवम् उनके चरणकमलों का ज्ञान और प्राप्ति हो जाती है। वही परम पुरूषार्थ मुक्ति है।

**अद्येवादौ ततः प्रागपि परिणमयत्यन्तराविश्य विश्वं,**
**शून्यं कुर्वन्ननन्तम्पुनरपि तनुते शून्यतामेव विष्वक्।**
**कः कुर्यात्तस्य पूजाम्बत किमवगमः सर्वयन्तुः किमीहः,**
**स्वेच्छायत्ताखिलार्थो रुचितजनकरैः पूज्यते स्वेच्छयाऽसौ।।१२४।।**

करुणयैव भगवान् स्वतन्त्रः कमपि जन्तुं स्वीकरोतीति तत्करुणैवैकाऽपे–क्षणीया प्रतीक्ष्या चेत्याह–अद्येवेत्यादिना। प्रकृतेः सुसूक्ष्मास्वप्यवस्थासु परमेश्वरस्यान्तर्यामित्वं निर्बाधं, तेन अद्येव सृष्टेरादौ ततोऽपि प्राक्काले च अन्तराविश्य (यो) विश्वं जगत्, परिणमयति, शून्यम् अभावसामान्यम् अनन्तम् अगणनीयगगनत्ववायुत्वादिनानाविशेषसमूहं कुर्वन् रचयन्, पुनरपि उक्ते विशेषजाते विष्वक् सर्वत्र शून्यताम् एव तनुते सम्पादयति, तस्य सर्वयन्तुः सकलार्थनियमनपरस्य भगवतः पूजां किमवगमः किं विज्ञाय, किमीहः किं कृत्वा कः कुर्यात् ? कर्तुम् प्रभवेत्, न कोऽपीत्यर्थः। तर्हि पूजा कथं दृश्यत इति चेदाह–स्वेच्छायत्ताखिलार्थ इति, तदिच्छामयसंकल्पाधीना एव सर्वेऽर्थाः। देहिभिरर्थानामुपादानोपयोगवर्जनानि वस्तुतो भगवतैव कृतानीति मन्तव्यम्। तेनासौ भगवान् रुचितस्य दयाविषयस्य, जनस्य देहिनः, करैः करणैः, स्वेच्छया पूज्यते, न कोऽपि तं स्वसङ्कल्पेन पूजयितुम् प्रभवतीति भावः।

**भावार्थ – संसार में, सुख दुःखों के प्रवाह में बने रहना, उससे उबरना और प्रभु की प्राप्ति यह सब केवल प्रभु के सङ्कल्प के अधीन होता है। संसार अवस्था में हमारे कर्म भी प्रभु के सङ्कल्प के सहायक होते हैं किन्तु संसार से उद्धार में केवल उनकी कृपा की अपेक्षा और प्रतीक्षा करते रहना जीने का सही तरीका है। यही बात प्रस्तुत श्लोक से सूचित करते हुए कहते हैं कि जैसे आज वैसे ही आज से पहले और उससे भी पहले हमारे प्रभु**

अन्तर्यामी रूप से संसार की सभी अवस्थाओं का निर्वाह करते रहे और आगे भी करेंगे। जड़चेतनों की सारी गतिविधियाँ उनके सङ्कल्प के अधीन ही होती हैं। किसी वृक्ष से कोई फूल लेकर कोई व्यक्ति यदि उसका कोई भी उपयोग करता है तो वह भी भगवान् के सङ्कल्प से ही होता है। ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति भगवान की कोई भी पूजा स्वेच्छा से कैसे किस रूप में और क्या जान सीखकर कर सकता है? वास्तव में भगवान् दया से जिस व्यक्ति से जब जितनी पूजा लेना चाहते हैं तब उससे वैसे उतनी ही पूजा ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में अपने को अपनी बारी के योग्य बनाये रखकर प्रतीक्षा करते रहना ही एकमात्र कल्याण मार्ग है।

**पापाधिक्यात्कुबुद्ध्या हतशुभमतयो मन्न वाञ्छन्ति किञ्चिन्–**
**मुग्धा भोगैकसक्ता धृतकुमतिगणाः सद्गुणद्रोहशीलाः।**
**एवम्पुण्याश्चतुर्धा सुखविभवविवेकार्थिनो मुक्तिकामा,**
**रक्षाम्मत्प्रार्थयन्ते, वदति हरिरिदं, स्वं विजानन्तु सन्तः।।१२५।।**

भगवत्यभिमुखा विमुखाश्चेति, सामान्येन द्विधा भिन्ना लोकाः। उभयेष्वपि सुकृतदुष्कृततारतम्येन प्रत्येकं चतुर्भेदा लक्ष्यन्त इति ''न मां दुष्कृतिन'' इत्यादिश्लोकद्वयेनोक्तम्भगवता, तदेवेह संगृह्योच्यते–पापाधिक्यादित्यादिना। दुःखोपनिपात–तदनुभवसम्पत्तये पापानि प्रज्ञां विलुम्पन्ति। तेन सा लोके सर्वत्र कार्यकारणसम्बन्धेषु क्वचिदपि परमात्मनो नियमनं नाकलयति। केवलेन स्वेन परेण वा दृष्टेन जनेन कृतम्प्रतिबद्धं वा कमप्यर्थम् मन्यते, तदेवाहपापाधिक्यादिति। अल्पानि पापानि सच्छीलेष्वपि भगवद्विस्मृत्या कतिपयकालं स्वकर्तृत्वाभिमानं जनयन्ति। अधिकानि तु नित्यमेव भगवन्तं विस्मारयन्ति, तेनोच्यते पापानां दुष्कृतानाम्, आधिक्याद् बाहुल्याद् हेतोः, कुबुद्ध्या स्वकर्तृत्वाभिमानरूपया, हता प्रतिबद्धा, शुभा भगवन्नियमनरूपकल्याणार्थविषयामतिर्येषान्ते तथोक्ताः संसारिणो, मत् सर्वनियन्तुः परमात्मनः सकाशात् किञ्चिदपि सामान्यं विशेषभूतं वा वस्तु, न वाञ्छन्ति नापेक्षन्ते, तेषु केचिन्मूढा विषयस्पृहैकाधीनवृत्तयः, परे तु लब्धार्थानाम् भोगे प्रियानुभवे, प्रकर्षेण अन्यार्थत्यागेन, सक्ता विधृतचेतसः, अन्ये च धृतोऽवलम्बितः, कुमतीनां भगवदैश्वर्यधीविरोधिकुतर्काणां, गणः समूहो, यैस्ते तथोक्ता, अपरे च सद्गुणद्रोहशीलाः सत्सु भगवदीयेषु चेतनोद्धरणफलेषु गुणेषु द्रोहोऽसहनप– राकाष्ठा शीलं स्वभावो येषान्ते तथोक्ताश्चतुर्थप्रकारा दुःसाध्या भवन्ति।



एवम् पापा इव पुण्या अपि सुखविभवविवेकार्थिनः सुखं लब्धप्रतिबद्धं, विभवस्तद्विस्तारहेतुर्नव्यार्थराशिः, विवेक आत्मानात्मविषयः कैवल्यफलः, तान् अर्थयन्त इति तथोक्तास्त्रिविधा, अथ चतुर्थप्रकारा मुक्तिकामा लब्धकैवल्यस्यापि भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धकीभूतदोषविशेषादपि मुक्तिं कामयमाना इति चतुर्धा चतुष्प्रकारा भवन्ति, ते मत् परमात्मनः सकाशात् रक्षाम् पापापनोदम्, प्रकर्षेण नितराम्, अर्थयन्त इति इदं हरिर्वासुदेवः परमात्मा वदति गीतादिष्वाह। किमेतेनेति चेदुच्यते–सन्तः साधवः स्वम् आत्मानं विशेषेण पापपुण्य– मयाष्टप्रकारेष्वन्यतमेन प्रकारेण जानन्तु अवधारयन्तु, निर्वर्तनीयचित्तशुद्धौ यतन्ताञ्चेति भावः।

**भावार्थ – संसारमार्ग में चलते हुए चेतन के कर्मप्रवाह में प्रायः पाप का अनुपात अधिक रहता है जिससे अमर्यादित आत्मविश्वासरूपी दुर्बुद्धि बनी रहती है इससे भगवान् की ओर से अपने शेषत्वानुरूप पुरुषार्थों की अपेक्षारूपी सद्बुद्धि दबी रहती है और चेतन सदा अव्यवस्थित रूप से कल्पित पुरुषार्थों के लिये विफल प्रयत्न करता रहता है। पापों के तारतम्य से उसके चित्त की चार अवस्थायें होती हैं। अधिकांश लोग मोहग्रस्त होकर विषयों की उपलब्धि के लिये प्रयत्नशील होते हैं, दूसरे लोग विषयलाभ से अपने को कृतार्थ मानकर विषयानुभव में लीन रहते हुए कल्याणमय शास्त्रीय अर्थों को जानकर भी उनकी उपेक्षा करते हैं, तीसरे लोग वे हैं जो कल्याण के विरुद्ध बहुत से कुतर्कों के भण्डार होते हैं, अपने कुतर्कों को वे छोड़ नहीं पाते। चौथे वे होते हैं जो शास्त्र आदि प्रमाणों से परम तत्त्व को ठीक से जान समझकर उस पर श्रद्धा के बदले रावण आदि की तरह द्रोहभाव बनाये रहते हैं। इस प्रकार जैसे पापमय चित्त की चार अवस्थायें होती हैं। वैसे कतिपय पुण्यमय चित्तों की भी पुण्यों के तारतम्य से चार अवस्थायें होती हैं। अधिकांश लोग किसी कारण से छूट चुके अपने सुख साधनों की प्राप्ति भगवान् से चाहते हैं। उनसे अच्छे लोग अनन्त ऐश्वर्यमय प्रभु से असामान्य ऐश्वर्य चाहते हैं। जिससे अपरिमित सुख प्राप्त हो। उनसे अधिक पुण्य के प्रभाव में जी रहे लोग माया के सारे जालों से निकलकर अपने शुद्ध वास्तव रूप में रहना चाहते हैं, यह वाञ्छित अवस्था कैवल्य कही जाती है। सुकृत का सर्वोत्तम रूप वह होता है जिसके होने से चेतन परमात्मा का नित्य कृपामय सन्निधान चाहता है। वही सायुज्य मोक्ष कहा जाता है। चित्त की पापपुण्यमय ये आठ अवस्थायें भगवान् ने गीता श्लोक १५–१६ अध्याय ७ में स्वंय कही है। सत्पुरुषों को चाहिये कि अपने हृदय में चल रहे प्रधान मनोरथों की परीक्षा करते हुए देखें कि उक्त चार**

पापमय और चार पुण्यमय वर्गों में अपना मनोरथ किस वर्ग में किस श्रेणी में आता है, और यह भी सुनिश्चित करें कि हृदय में उत्तम मनोरथ की प्रतिष्ठा कैसे हो।

**यद्यप्येषा त्रिलोकी त्रिगुणजनिमताम्भोगहेतुः समन्ताद्**
**वर्ष्म श्रीशस्य चेयं श्रुतिविदितमथानन्तसाद्गुण्यसिन्धोः।**
**देही नित्यो नियन्ता भवति जडतनोः, सद्धियो ज्ञानदृष्ट्या,**
**तं सम्पश्यन्ति भक्त्या गुणफलविमुखास्तान्न बध्नाति माया।।१२६।।**

सर्वशरीरिणः परमात्मनो ज्ञानदृष्ट्याऽवलोकनम् भक्तिसहकारेण मोक्षसाधनम् भवतीत्याह—यद्यप्येषा त्रिलोकीति। यद्यपि एषा दृष्टिश्रुतिविषयभूता त्रिलोकी त्रयाणां स्वर्गपातालमहीनां लोकानां चतुर्दशभुवनात्मकानां समाहारः त्रिगुणजनिमतां सत्त्वरजस्तमोमयचित्तदेहभृतामात्मनां सर्वेषां, समन्तात् साकल्येन भोगहेतुः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारकारणम् अस्ति, अर्थ तथाऽपि, इयं त्रिलोकी अनन्तसाद्गुण्यसिन्धोः, अनन्तानाम् अपरिमेयानां साद्गुण्यानां कल्याणमयगुणानां सिन्धोः सागरस्येवागाधस्य निधेः, श्रीशस्य विष्णोः, श्रुत्या "यस्य पृथिवी शरीरं, यस्यात्मा शरीरमि" त्याद्यन्तर्यामिब्राह्मणादिरूपया, विदितमवधृतं, वर्ष्म शरीरं च भवति। नित्योऽनन्तशरीरधारणत्यागपरो, देही शरीरी चेतनो, जडस्य स्वस्मै स्वयं विनियोगानर्हस्य, तनोः शरीरस्य, नियन्ता स्वेच्छयोपयोगकर्ता भवति। गुणेषु सत्त्वादिरूपेषु कर्मफलेषु विमुखा उदासीनाः सद्धियो यथार्थदर्शिनः साधवो, ज्ञानदृष्टया शास्त्राभ्यासजनितज्ञानचक्षुषा, भक्त्या भगवति वात्सल्यादिगुणसागरे नित्यसम्बन्धावधारणजनितेन निरन्तरप्रेम्णा, तम् अन्तर्यामिणम्परमात्मानं, सम्यक् निरन्तरमबाधितम् पश्यन्ति। माया तत्त्वधीतिरोधानकरी प्रकृतिः, तान् तत्त्वदर्शिनो न बध्नाति देहाभिमानादिद्वारा न संसारयति।

**भावार्थ — संसार के प्रति यथार्थ दृष्टि बन जाने से मोक्षमार्ग सुलभ होता है। इससे यह तथ्य बतला रहे हैं कि यह त्रिलोक संसारी सारे चेतनों के कर्मफल सुखदुःखों के अनुभव के लिये बना है, इस से सुखदुःख तो होते ही हैं किन्तु यह परमात्मा का शरीर भी है। श्रुतियाँ यह तथ्य विस्तार से बतलाती हैं। पुराणों में भी यह वर्णन मिलता है। प्राकृतिक कई घटनाओं से इसका अनुमान भी होता है। ऐसी स्थिति में जैसे हम देवदत्त आदि शरीर के सामने आने पर उसके नियामक चेतन के सुख दुःख इच्छा अनिच्छा आदि का ध्यान रखकर उसके अनुरूप ही वर्ताव करते हैं, केवल जड़शरीर के प्रति**



**कोई वर्ताव नहीं करते, ऐसे ही तत्त्वदर्शी सत्पुरूष सारे जगत् के कण—कण में अन्तर्यामी परमात्मा का दर्शन करते हुए, उनपर श्रद्धा भक्ति होने से उनका नित्य दर्शन होते रहने से नित्य ही प्रसन्न पुलकित और रागद्वेषों से रहित रहते हैं। वे गुणमय कर्मफलों के प्रति कभी भी कोई स्पृहा नहीं रखते इससे कभी हर्षशोक राग द्वेष आदि उन्हें नहीं होता, इसप्रकार सारे विश्व को बान्धने वाली माया उन्हें नहीं बान्ध पाती है।**

**पापानां तारतम्यादशुभतनुभृतां स्यादबोधश्चतुर्धा,**
**वैमुख्यं तेन भव्यादनिशमनुगतम्भव्यसंगेऽप्यभङ्गम्।**
**वैचित्यं हीनसंगो हतशुभमतिता सन्मतेर्दुष्प्रयोग—**
**श्चैवं घोरोत्तरैस्तं स्थिरसखमहितासंगिनो नानुयान्ति।।१२७।।**

अधीतशास्त्राणाम्प्रशिक्षितसदाचाराणामपि दृश्यमाने भगवद्वैमुख्ये हेतुमाहपापानामिति। अशुभानाम् पापमयानां, तनुभृतां देहिनाम् पापानाम्प्रारब्धघटकदुष्कृतानां, तारतम्यान्न्यूनाधिकभावात् चतुर्धा चतुष्प्रकारेषु कस्याप्येकस्य जनस्यान्यतमप्रकारो, अबोधस्तत्त्वधीबाधोऽनुगतः, स्याद्भवेत्, तेनाबोधानुगमेन, भव्यानां कल्याणमयार्थानां, संगेऽतिशयसान्निध्येऽपि, अभंगम् निर्बाधम्, अनिशं सन्ततम्, अनुगतं सम्बद्धम्, भव्यात् कल्याणमयार्थात् वैमुख्यम् उदासीनत्वं, स्यादित्यनुषङ्गः। प्रस्तुतञ्चातुर्विध्यं विवृणोति—वैचित्यमित्यादिना। वैचित्यम् अविवेको भोगप्रावण्यातिशयः, (१) हीनानां नृणामर्थानाञ्च, संगोऽनुरागस्तत्त्व— बोधानवस्थानफलः, (२) हता कुतर्कैरनिशं हन्यमाना, शुभा कल्याणफला, मतिर्यस्य स तथोक्तस्तस्य भावः, (३) सन्मतेर्दुष्प्रयोगः भगवत्प्राप्तिफलायाः सद्बुद्धेर्भगवद्— द्वेषपर्यन्तवैमुख्यहेतुत्वापादनमीर्ष्यादिभिः, (४) चेति समुच्चयः, एवं चतुष्प्रकारैः, घोरोत्तरैःउत्तरोत्तरम्भया— नकानिष्टफलैर्हेतुभिःअहितेषु कल्याणविरोधिष्वर्थेषु आसङ्गिनो दृढानुरागाश्चेतनाः तं श्रुत्यादिप्रसिद्धं, स्थिरं चेतनानां वैमुख्येऽप्यभिमुखं सखायम्परमात्मानं न अनुयान्ति तदानुकूल्यसङ्कल्पं न कुर्वन्ति।

**भावार्थ — शास्त्रज्ञान और सत्संग प्राप्त होने पर भी भगवान् के प्रति स्पष्ट विमुखता का कारण बतलाते हैं कि पापप्रधान चेतनों के पापों की कमीबेशी के फलस्वरूप चार प्रकार का अज्ञान होता है। किसी भी प्रकार का अज्ञान होने से भगवान् के प्रति ऐसी विमुखता बनी रहती है जिससे सत्संग विफल होता रहता है। प्रथम प्रकार से विषयाभिलाष बढ़ा रहता है। दूसरा**

प्रकार विषयों की उपलब्धि से तत्त्वबोध को विफल करता रहता है। तीसरा प्रकार तत्व के विरुद्ध नाना कुतर्क खड़ा करता रहता है और चौथा प्रकार भक्ति के द्वारा मुक्ति दिलाने वाले तत्त्व–बोध से असुरों वाला स्वभाव पालता हुआ रावण कंस आदि की तरह निरन्तर द्रोह उत्पन्न करता रहता है। इनमें पहले से दूसरा, उससे तीसरा और उससे चौथा प्रकार अधिक घातक होता है।

**एवम्पुण्यैश्चतुर्धा कुशलमतिजुषः श्रीधरं संश्रयन्ते,**
**आर्तार्थार्थात्मवन्तो भगवदनुभवापूर्तिवित्ता उदाराः।**
**तेषान्तुर्यम्प्रशंसन्निगदति भगवान्दुर्लभं सर्वकाले,**
**स्वप्रीतिस्नेहभाजन्तदनुविधिपरं स्वञ्च कोऽस्मादुदारः।।१२८।।**

पापानिव पुण्यानपि चतुर्धा विभजते—एवम्पुण्यैरिति। एवम् पूर्वश्लोकोक्तप्रकारेण पुण्यैः प्रारब्धघटकसुकृतविशेषैः चतुर्धा प्रस्तूयमानचतुर्भेदा, उदाराः पापकृतसङ्कोचरहितज्ञानवन्त, आर्ता ऐश्वर्यनाशजनितक्लेशभाजः, पुनस्तल्लाभकामाः, (१) सङ्कल्पितसुखविशेषपूर्तयेऽप्राप्तैश्वर्यकामा, (२) आत्मवन्तो जितेन्द्रिया जितविषयगणाः स्वस्वरूपप्रयुक्ताविच्छिन्नानन्दानुभवाय मायासम्बन्धध्वंसमनोरथाः, (३) भगवदनुभवानां शास्त्रज्ञानयोगाभ्याससदुपदेश–प्रयुक्तानाम् आ समन्तात् पूर्त्या सम्पत्त्या वित्ताः सद्भिर्निरूपिता मुमुक्षव (४) इति चतुष्प्रकाराः कुशलमतिजुष आत्महितैषिणः, श्रीधरम्असङ्कुचितदयामयीं श्रियं धारयन्तम्भगवन्तं, संश्रयन्ते विश्रम्भहेतुगुणग्रहणपूर्वकमालम्बन्ते। तेषामुक्तानां चतुर्णाम् मध्ये, तुर्यं चतुर्थम्, प्रशंसन् श्लाघमानो भगवान् सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वेश्वरो नारायणः, सर्वकाले सदैव, दुर्लभं स्वस्यापिदुष्प्रापं, स्वप्रीतिस्नेहयोर्विषयं, स्वम् आत्मानञ्च, तदनुविधिपरं तदिच्छानुविधायिनं, निगदति नितरां व्यक्तं वदति, अस्माद् उत्कृष्ट उदारोऽसंकुचितदयातत्कार्यः, कोऽस्ति न कोऽपीत्यर्थः। स एव सता हितपरेण सदाऽऽलम्बनीय इति भावः।

**भावार्थ :** सारे विश्व में पाप और पुण्य का सामञ्जस्य बना रहता है फिर भी ऊपर के लोकों में पुण्य का और नीचे के लोकों में अधिकांश पाप का बाहुल्य माना गया है। ऐसे ही जबतक परमात्मा को सारे पुरुषार्थों का नियामक मानते हुए उनसे किसी भी पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये या अपना स्वरूपप्रयुक्त धर्म मानते हुए उनका स्मरण ध्यान अर्चन और प्रार्थना की प्रवृत्ति नहीं हो पाती तब तक जीवन में पापों की प्रधानता और उक्त प्रवृत्तियों के शुरू होने पर पुण्य की प्रधानता मानी जाती है। इसी से भगवान् ने गीता



में ''न मां दुष्कृतिनः प्रपद्यन्ते'' चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः'' श्लोक १५,१६ अध्याय ७ इत्यादि श्लोकों से भजन और उसके अभाव से पुण्यपापों का सीमांकन किया है। इस श्लोक में पुण्य के प्रभावों को चार विभागों में दरसाया है। किसी भी कारण से नष्ट हुए ऐश्वर्य की पुनः प्राप्ति की इच्छा से या लोकोत्तर ऐश्वर्य के लिये या कैवल्य अवस्था की प्राप्ति के लिये या भगवान् के नित्य परिपूर्ण आनन्दमय सान्निध्य की प्राप्ति के लिये उनकी शरणागति की जाती है। प्रथम से दूसरे का उससे तीसरे का और उससे चौथे का उत्कर्ष माना गया है। भगवान् ने सब को उदार कहा है, क्यों कि चारो सर्वोपरि शक्ति परमात्मा का सहारा लिये होते हैं। इससे पुरुषार्थ लाभ में व्यवधान नहीं होता या अल्प होता है। चौथे को भगवान् ने अति दुर्लभ अधिकारी मानते हुए कहा है कि वह त्रिकाल में कहीं भी लक्षित नहीं होता। इससे कर्मबन्धन की व्यापकता सूचित होती है। उसे भगवान् ने अपना आत्मा कहा है। आत्मा शरीर का धारक होता हैं। ऐसे ही प्रभु ने भी भक्त को अपना धारक मानते हुए उसे आत्मा कहा है। श्रीमद्भागवत में ''अहम्भक्तपराधीनः'' ''अनुब्रजाम्यहं नित्यम् इत्यादि से यही बात सूचित है। आत्मा कहकर भगवान् ने भक्तज्ञानी को सबसे ऊँचा पद दिया है, यही भगवान् की सर्वोपरि उदारता है। उनकी शरणागति न कर के संसार में अज्ञान की गलियों में भटकते रहना केवल पूर्व पापों का फल हो सकता है।

विशेष – इस संदर्भ में श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध के चौथे अध्याय में श्लोक ६३–६८ का और ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में श्लोक १६ का प्रकरण परिशीलन योग्य है।

**आसृष्टेरर्थकामप्रवणमतितया काम्यकर्माणि कुर्वन्,**
**देही संसारजालम् प्रथयति सघनं का कथा कामशान्तेः।**
**कोऽप्येकः सत्प्रसंगादिभिरमलमतिः श्रीशतोषाय किञ्चित्,**
**कृत्वा स्तुत्वाऽथ नत्वा हतदुरिततया तत्पदम्मूर्ध्नि धत्ते।।१२९।।**

जगति चेतनाः संसारिण एव दृश्यन्ते, तेष्वेकस्यापि भगवदौन्मुख्यं र्दुलभमित्याह—आसृष्टेरिति। आसृष्टेर्विश्वोद्भवक्षणादेव, पूर्वविषयवासनावशतया देही अर्थकामप्रवणमतितया तस्यप्रज्ञा वासनामेवानुसरति तेन, काम्यानि कामोपलम्भहितानि, कर्माणि शास्त्रीयाण्यशास्त्रीयाणि च कुर्वन् निष्पादयन्, सघनं सुदृढं, संसाररूपम् मतिमत्स्यग्रहणप्रवणं जालम्, प्रथयति विस्तारयति, एवंस्थितौ कामशान्तेर्विषयविमुखतायाः कथा कैव न काऽपि। विषयलाभायैव

धावन् लोकः कथन्तद्विमुखः स्यात्? एवं स्थितौ कोऽपि भगवदनुग्रह– विशेषभाजनम्, एको विरलो जनः, सताम् प्रकृष्टैर्वासनावाराण– पर्यन्तफलैः, सङ्गादिभिः, आदिना शास्त्रपरिशीलनयोगाभ्याससङ्ग्रहः, अमला संसारवासनावर्जिता, मतिर्यस्य स तथोक्तोऽधिकारी श्रीशस्य भगवतो– विष्णोस्तोषाय न स्वार्थहेतोः, किञ्चिल्लौकिकं वैदिकं तान्त्रिकम् भूरि दभ्रं वा कर्म कृत्वा, स्तुत्वा तदीयगुणवर्णनं कृत्वा, नत्वा मनोबुद्ध्यहंकारसहितं स्वं तस्मै निवेद्य, हतदुरिततया सत्कर्मसन्तानेन पापनाशे जाते, तत्पदम् भगवदीयं चरणायुगलम्, शास्त्रैकगम्यन्तत्स्वरूपञ्च मूर्ध्नि शिरसि, धत्ते धारयते, ऽङ्गीकरोति च, एवं स भवबन्धध्वंसोपायम्पूरयति, ततो मुच्यते।

विरला एव विमुक्त्यै हतदुरिताः प्रयतन्ते साधुजनाः।
कुमतीनां लोकेऽस्मिन् क्वचिदपि लभ्येत किं सतां सेना।।

**भावार्थ – अज्ञानियों के लिये बने इस संसार में मुमुक्षुओं का दुर्लभ होना स्वाभाविक है। यहाँ तो सभी अर्धकामपरायण लोग होते हैं। वे अर्थकामों के लिये ही सदा शास्त्रीय और लौकिक कर्म करते रहते हैं। उन कर्मों से उनके मनोरथों की पूर्ति के साथ अज्ञान की पुष्टि भी होती रहती है। उनकी कामनाओं की शान्ति की तो बात ही व्यर्थ है। यहाँ तो शायद ही कोई प्रभु की विशेष कृपा लिये उत्पन्न होने वाला व्यक्ति अपने स्वरूप स्वभाव कर्तव्यों की जिज्ञासा और समीक्षा में पड़ता है और सन्मार्ग प्राप्त करके निष्कामता का महत्व समझता है और भगवान् की संन्तुष्टि हेतु निष्कामभाव से कर्म करता है, स्तुति करता है, शुद्ध भाव से प्रणाम करता है, इस तरह निष्पाप होकर समयानुसार भगवान् के लोक में पहुँच कर उनकी वास्तव प्राप्ति करता है।**

**यद्योगीशुद्धचेता अनुभवति परन्तत्त्वमध्यात्मयोगात्,**
**तच्छास्त्रैः सद्गुरूक्त्या सुचरितशुभया सद्धियाऽऽप्नोति भव्यम्।**
**योगाप्यम्मूलतत्त्वं निगदति भगवान् युद्धसज्जाय सख्ये,**
**धन्यन्तत्कर्म यस्मिन् हितमतिजनने पात्रतां वेद विष्णुः।।१३०।।**

योगाभ्यासलभ्यन्तत्त्वज्ञानं शुद्धचेतसां सच्छास्त्रैरेव सुलभमिति पार्थकृष्ण संवाददृष्टान्तेनाह–यद्योगी। शुद्धं कामादिदोषानुपहतं चेतो यस्य स तथोक्तो, योगी चित्तवृत्तिनिरोधपरो मुमुक्षुः, यद् भव्यं कल्याणमयम्, परन्तत्त्वम् अध्यात्मयोगात् शुद्धात्मदर्शनोपायरूपध्यानाभ्यासात्, अनुभवति योगजसन्निकर्षेण साक्षात्करोति, तत् शास्त्रैर्वेदादिभिः, सदगुरूक्त्या तद् द्वारा, सुचरितशुभया पुण्योत्कर्षशुद्धया,



सत्या निरन्तरया धियाऽपि आप्नोति अनुभवति। अत्रदृष्टान्तमाह–योगाप्यम् ध्यान योगैकगम्यम्, मूलतत्त्वं जगदुपादाननिमित्तभूतम्परमात्मानं, युद्धसज्जाय ध्यानप्रतिरूपावस्थावते, सख्ये मित्रभूतायार्जुनाय, भगवान् सुचरितशुभयेतिपूर्वोक्तं संगमयति तत् पूर्वजन्मार्जितम् प्रारब्धघटकं कर्म धन्यम् प्रशंसनीयं यस्मिन् सति, विष्णुःसर्ववित् परमात्मा हितमतिजनने कल्याणमयप्रज्ञोत्पत्तौ प्रसक्तायाम् पात्रतां योग्यताविशेषं वेद जानाति। तदेव कर्म शास्त्रेष्वन्विष्य सम्पादनीयं यस्मिन् सम्पन्ने भगवान् स्वयमेव तत्त्वोपदेशप्रवणो भवतीतिभावः।

**भावार्थ – यदि बुद्धि पवित्र हो तो योगाभ्यास से होने वाला ज्ञान शास्त्रों से भी उत्तमगुरुओं की कृपा से प्राप्त हो जाता है। योग में भी चित्तशुद्धि अपेक्षित होती है। योग से चित्त को शुद्ध करने में बहुत समय लगता है। यदि पूर्वजन्म के पुण्य से सात्त्विक बुद्धि प्राप्त हो तो योग से मिलने वाली सिद्धि शास्त्राभ्यास से भी हो जाती है। यह बात भगवान् कृष्ण ने समझी थी इससे युद्ध जैसी अशांन्ति के समय भी अर्जुन को सत्पात्र मानकर अध्यात्मविद्या का उपदेश दिया था। कर्म तो वही सबसे उत्तम होगा जिसके होने से भगवान् स्वयं स्वेच्छा से विद्या का उपदेश देते हैं।**

**वाञ्छापूर्तिं स्वमुक्तिन्तदनुभवरसं तेन वा नित्ययोगम्,**
**पुण्यानान्तारतम्यान्नियतमतिरुचिस्तम्प्रन्नो यदिच्छेत्।**
**तद्दानायैव लक्ष्मीं हृदि वहति हरिः क्षीरपाथोधिरत्नं,**
**जीवानाम्प्रत्नमूर्तिं घनविशदरुचिं कौस्तुभन्तत्पुरस्तात्।।१३१।।**

भगवत औदार्यस्य रहस्यमाह–वाञ्छापूर्तिमिति। तं हरिम्, प्रपन्न उपायम्मन्वानश्चेतनो, वाञ्छापूर्तिं लौकिकार्थलाभं, स्वस्यात्मनः कर्मबन्धात् मुक्तिं, तदनुभवरसम् भक्तिं, तेन हरिणा, नित्ययोगं सायुज्यं वा यत् किमपीच्छेद् वाञ्छेत्, तद्दानाय तस्य तत्सम्पादनाय, एव हरिर्भगवान्, लक्ष्मीं हृदि वक्षसि, वहति धारयति, तत्पुरस्तात् तस्याः समक्षं, घनविशदरुचिं सान्द्रसुदूरव्या– पिरम्यतमप्रकाशं, जीवानां चेतनानां सर्वेषामपि, प्रत्नाम् अनादिकालानुवृत्ताम् मूर्त्तिम् अभिव्यक्तिविशेषम्, कौस्तुभन्तन्नामकं क्षीरपाथोधेरुत्पन्नं रत्नविशेषं, च हृदि पूर्वोक्तस्थान एव, वहति धारयति। करुणावात्सल्यशेवधिः श्रीस्तत्तद्वाञ्छितार्थ– पूरणावसरेषुसमीचीनं साचिव्यं नियतं यथा कुर्यात्तथा भूमिकायां सदा वर्ततेश्रीशइति तात्पर्यम्।

भावार्थ – भगवान् की असाधारण उदारता का रहस्य बतलाते हुए कहते हैं कि भगवान् की शरणागति करने वाला चेतन जिस असाधारण पुण्य से प्रेरित रहता है वह पुण्य उसकी बुद्धि और इच्छा को अपने अनुरूप लक्ष्य से जोड़ता रहता है, इसी से अल्पपुण्य से वह लौकिक अर्थों की इच्छा रखता है, उत्तम पुण्य से वह अपनी मुक्ति चाहता है, उससे भी अच्छा पुण्य होने से वह स्थिरभक्ति चाहता है, भक्ति का फल मुक्ति होता है, सनकादि नारदादि को भक्ति है, अभी वे मुक्ति नहीं चाह रहे। कुछ अधिकारी शीघ्र मुक्ति चाहते हैं, वे उपायभूत भक्ति का व्यवधान नहीं चाहते, उनका पुण्य कुछ दूसरे प्रकार का होता है। इन सभी शरणागतों की इच्छाओं की पूर्ति भगवान् उदारता से ही करते हैं। अपनी उदारता में कहीं कोई कभी न रह जाये इसके लिये वे अतिशय दया वात्सल्य औदार्य की देवी श्रीजी को वे अपने वक्षःस्थल में धारण करते हैं, उनके सामने ही वह कौस्तुभ मणि धारण किये रहते हैं जो ब्रह्माण्ड के सारे चेतनों का प्रतिनिधित्व करता है एवं सबके कर्मों भावनाओं ज्ञान इच्छा और उसकी पूर्ति की प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष रूप है। इससे श्रीजी को किसी भी चेतन का कोई पूरणयोग्य मनोरथ पूरा करने में तनिक भी व्यवधान नहीं होता और प्रभु तो केवल अविरोध से ही उनके किये का समर्थन करते रहते हैं।

**प्रज्ञा वाञ्छानुरूपा भवति, खगशिशुर्व्याददात्यास्यमुच्चै–**
**र्वत्सोऽन्विष्य स्तनाग्रं धयति, परपदप्रस्थितौ नीतिरेषा।**
**आत्मानं सत्स्वभावम्भवपतनपदं किञ्च हेयानुपेयान्**
**अर्थांस्तेषाम्पथोऽपि प्रणिहितमनसोऽन्यैरदृष्टान्स्पृशन्ति।।१३२।।**

यथा लौकिकाः प्राणिनः स्वाहारपरिचियतल्लिप्साधीनचेष्टाभिर्जीवन्ति तथैव मुमुक्षवोऽपि मोक्षोपायज्ञानतल्लाभेच्छाधीनचेष्टाभिरुज्जीवनं लभन्त इति पशुपक्षिदृष्टान्तेनाह–प्रज्ञा वाञ्छानुरूपेति। प्रज्ञा उपायावधारणम्, वाञ्छानुरूपा उपेयपूर्त्यनुकूला भवतीति सामान्यनियमस्तत्रदृष्टान्तद्वयमाह–खगशिशुः पक्षिशावको मातृमुखादेवाहारम् प्रतीक्षमाण उच्चैरुपरि आस्यम् मुखं, व्याददाति आहारग्रहणाय विस्फारयति एवं वत्सो गवार्भकः स्तनाग्रम् मातुश्चूचुकम्, अन्विष्य यत्नैरुपलभ्य, धयति चूषति, एषा दृष्टान्तीकृता, नीतिः नियमः, परपदप्रस्थितौ मोक्षपथयात्रारम्भेऽपि दृश्यते। प्रणिहितमनसो मोक्षमार्गीयविशेष– जातान्वेषणपरायणमानसा मुमुक्षुस्वभावाश्चेतना, अन्यैः संसारिभिः अदृष्टान् सामान्येनाप्यननुभूतान्, सत्स्वभावम् नित्यैकाकारम्, आत्मानं स्वं स्वरूपम्, भवे संसारे पतनस्य चिरावस्थानविशेषस्य,



पदं स्थानं विषयरागबलम्, किञ्च दोषहेतून् चित्तशुद्धिहेतूंश्च हेयान् वर्जनीयान् उपेयान् उपादेयांश्चार्थान्, तेषाम् अर्थानाम् पथो मार्गान् आगमहेतूंश्च स्पृशन्ति विशदमनुभवन्ति। सत्कर्माधीनसत्स्वभावभाजो महामनसः क्षुद्रार्थान्नित्यमुपेक्षमाणा मोक्षपथ– तदनुसरणपरिष्करणपरा एव सदा दृश्यन्ते। तेन सर्वैरपि सत्कर्मपरैरेव– भाव्यमितिभावः।

भावार्थ – मोक्ष की इच्छा किसी को भी जन्मजात होती है। पूर्वकर्मों के फलस्वरूप वह मोक्ष की इच्छा लेकर ही जन्म लेता है। जैसे चिड़िया का बच्चा जानता है कि मां मेरे मुहँ में चारा डालेगी, इससे वह ऊपर की ओर मुँह फैलाया करता है किन्तु गाय का बच्चा जानता है कि मुझे स्वयम् माँ का स्तन ढूँढना है और उसे मुहँ में लेकर चूसना है, अन्यथा जीवन दुर्लभ है। इससे वह पहले खड़ा होने का अभ्यास करता है, फिर चलना सीखता है। जब वह देख लेता है कि मैं चल सकता हूँ और दूध पीने के लिये खड़ा भी रह सकता है, तब स्तन की तलाश करता है, उससे पहले वह टहलने का अभ्यास करता पाया जाता है, इन घटनाओं से यह निश्चित होता है कि जीवन की प्रमुख आवश्यकतायें और उनकी उपलब्धि के उपाय सभी प्राणियों को सामान्य रूप से गर्भ से ही ज्ञात होते हैं। हाईस्कूल की कक्षाओं में शिक्षा पा रहे छात्रों में किसी की रुचि गणित में दूसरे की विज्ञान में और तीसरे की काव्य में अधिक पायी जाती है। रुचि वाले विषय में वे प्रगति भी करते हैं। ऐसे ही मोक्ष के विभिन्न साधनों में किसी विरल मुमुक्षु को कोई एक साधन अच्छा लगता है। उसी से वह आगे बढ़ता रहता है। चेतनों को सारे पुरुषार्थ परमात्मा के सङ्कल्प से मिलते हैं। उनके सङ्कल्प से ही किसी खास पुरुषार्थ की दिशा में किसी एक व्यक्ति की प्रवृत्ति पायी जाती है। यदि किसी को कोई महान् पुरूषार्थ प्राप्त होता है या उसके लिये श्लाधनीय प्रयत्न देखे जाते हैं तो वहाँ प्रभु की विशेष कृपा दृष्टि मानी जाती है जो जन्म के समय ही पड़ चुकी होती है। वही व्यक्ति अपने आपको देहादि से विलक्षण नित्य एकाकार मानता है, सारे विकारों को प्रकृति में मानता है। उद्धार के उपायों और पतन के मार्गों को बारीकी से पहचानता हुआ वह मोक्षमार्ग में बहुत आगे बढ़ जाता है। जिन विषयों पर सर्वसाधारण की दृष्टि नहीं पड़ती उनमें वह निसर्ग से ही विशेषज्ञ होता है।

**देही दुर्देहमाला जगति कलयते कर्मभिर्यन् कुयोनी–**
**र्ध्यायन्निन्द्यार्थसौख्यम् प्रकृतिगतिमता चेतसा रेतसा च।**

**प्राक्पुण्याप्ताप्तवाचोज्झति पुनरशुभां संसृतिं, ग्राम्यचर्या–**
**त्यागाप्तब्रह्मचर्यार्जितनिगमशिरःश्लाघितब्रह्मविद्यः।।१३३।।**

सत्कर्मोदयावधि सर्वेषां संसरणं दुर्बारमतः सत्कर्मपरतैवैका कल्याणहेतुरित्याह–देहीति। देही चेतनः, कर्मभिः पूर्वकृतैः, प्रकृतिम् अचैतन्यां जडाम्प्रति, गतिमता, चेतसा मनसा, रेतसा शरीरारम्भकेण च प्रयुक्तः निन्द्येषु सद्भिर्गर्हणीयेषु शब्दादिषु, सौख्यं स्पृहातिशयविषयं, ध्यायन् हेयत्वेऽपि तदेव चिन्तयन्, तेन कुयोनीः, दुर्मतिशरीरयोग्यमातृगर्भान्, यन् गच्छन् सन्, जगति प्रथिता दुर्देहानां दुष्प्रवृत्तिप्रधानतया निन्दितानां शरीराणाम्, मालाः परम्पराः कलयते धारयते। इयं चेतनानां साधारणी गतिः। पुनः किन्तु प्राक्पुण्यैः पूर्वसुकृतविशेषैः, आप्ता उपदिष्टा हृद्गता च या आप्तवाक् तया तत्त्वबोधेन, ग्राम्यचर्याणामष्टविधमैथुनानां, त्यागेन वर्जनेन, आप्तं सिद्धं, यद् ब्रह्मचर्यं तेजोमयी चित्तावस्था, तेनार्जिता सम्प्राप्ता, निगमशिरोभिर्वेदान्तैः श्लाघिता सर्वथाऽऽनुरूप्येण प्रशस्ता, ब्रह्मविद्या मोक्षहेतुभूतं ज्ञानं, येनासौ तथोक्तोऽधिकारी अशुभाम्पापप्रधानां, संसृतिम् अनादिसंसारयात्राम्, उज्झति जहाति।

**भावार्थ– संसारी चेतन सभी अपने कर्मों से बन्धे होने से स्थूल प्रकृति को ही देख पाते हैं, उसमें रहता हुआ प्रकाशमान चेतन उनके ध्यान पर नहीं चढ़ता, इससे प्रकृति के केवल निन्दित शब्दादि विषयों की प्राप्ति के लिये तरसते और प्रयत्नशील रहते हैं। फलतः वे निन्दित गर्भों में पहुँचते और ऐसे ही शरीर प्राप्त करते हैं जिसमें रहते हुए वे कल्याण की बात सोच भी नहीं सकते। इस तरह गलत सोच, गलत इच्छा, गलत प्रयत्न, गलत गर्भ, गलत शरीर, उससे फिर गलत सोच आदि का क्रम जारी रहता है। किन्तु कभी पूर्व जन्म का कोई पुण्य उदय होता है तब किसी सत्पुरुष से संसार की वर्जनीयता समझ में आती है और ब्रह्मचर्य सिद्धि के लिये वह अष्टविधमैथुनों का हृदय से त्याग करता है तब उसमें एक असाधारण आत्मबल प्राप्त होता है जिससे उसे उपनिषदों में वर्णित कल्याणमयी ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है जिससे मोक्ष प्राप्त होता है, तब उसकी संसार यात्रा स्वतः छूट जाती है।**

**७–सर्वत्र भगवद्दृष्ट्या भगवत्यखिलात्मनि।**
**कृत्स्नस्य जगतोऽवस्थाम्पश्यन्सत्पथमृच्छति।।१३४।।**

सप्तमेऽध्याये ध्यानार्हं स्वं रूपम् भगवान् ''अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय'' इत्यादिना''



हरिरेवजगज्जगदेवहरि'' रित्यभियुक्तोक्तिविषयतया प्रत्यपादयत्। भगवदतिरिक्तस्यासत्त्वाद् ध्यानपथः सर्वोऽर्थो भगवानेवेति पर्यवस्यति। तदेवोच्यते–सर्वस्वरूपे, भगवति परमात्मनि, कृत्स्नस्याशेषस्य, जगतः संसारस्यावस्थामवस्थितिम्, पश्यन् प्रत्यक्षवदवबुध्यन् मुमुक्षुः, सत्पथं कल्याणस्यैव मार्गम् ऋच्छति लभते। तस्य संसारश्वभ्रप्रपतनभीतिर्निवर्तते।

*इति सप्तमोऽध्यायः*

**भावार्थ – सातवें अध्याय में बतलाया गया है कि जो भी कुछ समझ में आता है वह सब भगवान् का ही रूप है और सर्वस्वरूप भगवान् में टिका हुआ है, यानी ऐसा कुछ नहीं है जिसका अस्तित्व भगवान् के संकल्प के बिना हो। इस तथ्य पर ध्यान रहने से सर्वत्र भगवद्बुद्धि के फलस्वरूप केवल पूज्यता का भाव बनता है जो भक्ति की ही पूर्णावस्था है और कहीं भी भोग्यता बुद्धि या स्वेच्छा से अपने उपयोग की कल्पना नहीं होती, राग नहीं होता, तब द्वेष भी नहीं होता, सदा समभाव बना रहता है, यह समभाव भी भक्ति में साधक है। इस तरह मोक्षमार्ग में सातवें अध्याय का बहुत उपयोग है।**

*सातवाँ अध्याय समाप्त*

# अथ अष्टमोऽध्यायः

गर्भे रेतो निषिञ्चन् क्षणसुखनिरतो वेत्ति कामी स्वतन्त्रं,
स्वात्मानं वस्तुतोऽसौ भवति विनिहितो जन्मदात्रा विधात्रा।
भोक्ता जीवोऽविजानन् प्रविशति कुहरं कर्मणाम्प्राक्कृतानां,
जातस्तातो न माता किमपि च मनुते तन्नियोक्ता तु सर्वम्।।१३५।।

अज्ञानात्स्वस्य कर्तृत्वं ज्ञानात्पश्यन्नसङ्गताम्। बध्यते मुच्यते जन्तुः कर्तृत्वन्तदिहेक्ष्यते—गर्भे रेत इति। क्षणसुखनिरतः अल्पसुखलाभार्थयत्नः, कामी सम्भोगोद्यतः पुमान्, गर्भे स्त्रीयोनौ, रेतः शुक्रं, निषिञ्चन् प्रवेशयन्, आत्मानं, स्वतन्त्रं स्वेच्छाधीनचेष्टं वेत्ति मन्यते, वस्तुतः किन्त्वसौ, जन्मदात्रा "सर्वयोनिषु अहम्बीजप्रदः पिता" अ.१४ श्लोक ४ इति गीतोक्तप्रमाणेन मुख्येन जनकेन, विधात्रा सततसकलनिर्माणपरेण परमात्मना, विनिहितः भोगभाटकेन सृष्टौ प्रवर्तितः, भवति। तत्र भोक्ता स्वकर्मफलसततभोगपरो, जीवश्चेतनः, अविजानन् स्वयम्प्रकशतयाऽऽत्मानं सत्त्वेनानुभवन्नपिस्वकर्मतत्फलतत्प्रयोजकपित्रादिसम्बन्धान् विशिष्याननुभवन्, कुहरं गर्भाशयमध्यम्, प्रविशति सेन्द्रियप्राणादिसमूहो नवशरीरनिर्माणायान्तर्गच्छति, जातः शिशुः, तातः पिता, माता जननी च, प्राक्कृतानां जीवेनार्जितानां, कर्मणां शुभाशुभानां विषये, न किमपि मनुतेऽवधारयति, तेषां जननी जनकजातकानां, नियोक्ता प्रवर्तकः परमात्मा तु सर्वम् अपि विशदमवगच्छंस्तदनुरूपमखिलं कार्यकारणजातम् प्रवर्तयन्नास्त इति भावः।

**भावार्थ – चेतनों की सारी प्रवृत्तिनिवृत्तियों के प्रयोजक नित्यसहचारी सखा परमात्मा को भूलकर चेतन, अकेले अपने आपको कर्ता मानता हुआ उत्तरोत्तर अज्ञान और क्लेश बढ़ाता हुआ उद्धार का मार्ग नहीं पा रहा है। उस मार्ग का आरम्भ है कर्तृत्वाभिमान का त्याग। इसी से युक्ति प्रमाण पूर्वक कर्तृत्व का निरूपण गर्भदृष्टान्त से कर रहे है। किसी स्त्री के गर्भ में कौन सा चेतन कितनी आयु और सुख दुःख लेकर आता है यह जानने का कोई साधन अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। फिर भी गर्भ–प्रवेश, प्रसव, जीवन सुख दुःख देहत्याग की व्यवस्थित अगणित विधायें अनादि काल से देखी जा रही**



**हैं। जीवन में लक्षित, कल्पित, आकलित सारी व्यवस्थायें पूर्वकर्मों के अधीन होती हैं, चेतन अपने पूर्वकर्मों और फलों को स्वयं ही नहीं जानता, उनके शुभाशुभफल उसे देशकाल अवस्था मात्रा के नियमों के अनुसार मिलते रहते हैं। जड़ का नियमन चेतन के द्वारा ही होता है। जड़ अनन्त अज्ञात कर्मों का नियमन कोई अनन्त अज्ञात महान् चेतन शक्ति ही कर सकती है। उसे ही परम आत्मा कहते हैं। यही बात प्रकृत श्लोक से कहते हैं कि कोई कामी पुरुष किसी स्त्री के गर्भ में शुक्र का निषेचन करता है तब वह उस कर्म में अपने को स्वतन्त्र मानता है किन्तु वस्तुतः वह सर्वथा पराधीन रहता है, वह तो क्षणिक सुख की मजदूरी पर उस परम पुरूष परमात्मा की सेवा करता है जो संसार के सारे जीवों को अपने विचार से पूरा समझ बूझकर जन्म देते रक्षा करते और उसकी आयु का निर्वाह करते हैं। आयु पूरी होने पर उसे अगले शरीर के लिये वर्तमान शरीर से अलग कर के सम्हाल लेते हैं। गर्भ में प्रवेश लेता हुआ चेतन अपने पूर्वकर्मों को कभी नहीं जानता न उसके माता–पिता जानते है जब कि सर्वनियन्ता परमेश्वर सबकुछ सदा जानते हुए उनका नियन्त्रण करते रहते हैं।**

इच्छाद्वेषौ दधानः पृथुक इव वृथा घोरसंसारवीथ्यां,
निर्भेदार्थेषु कर्माहितवितथमतिः संसरत्येष जीवः।
सोऽयं श्रीशाभिलाषार्जितसुकृतहतावद्यनिर्मूलराग–
द्वेषोऽध्वानम्महान्तं सरति भवहतिस्फीतमानन्दसिक्तम्।।१३६।।

पूर्वपद्यनिरूपितक्रमेणावधृतेषु सामान्यचेतनेषु कश्चिदेको भगवदसाधारण–सङ्कल्पेन क्लिष्टसंसारकान्तारनिर्गमपथमप्यालम्बत इत्याह–इच्छाद्वेषाविति। कर्माहिता प्रारब्धवशाद् बहिर्देशादिवानीय निक्षिप्ता, वितथा भ्रान्तिमयी, मतिर्यस्यासौ तथा, एष मृषासुखदुःखानुभवपरो, जीवश्चेतनः, निर्भेदेषु प्रियाप्रियत्वप्रयोजक वास्तवविशेषरहितेषु, अर्थेषु वाञ्छोपेक्षाद्वेषविषयेषु, पृधुकः शिशुरिव, वृथा वास्तवहिताहितफलं विनैव, इच्छाम् अपेक्षाम्, द्वेषम् अप्रीतिविशेषं च, दधानो धारयन्, धोरायाम् भयहेतौ, संसारवीथ्यां संसाररूपेऽज्ञानकृतसंकोचक्लेशमये पथि, संसरति निरन्तरम् अनिरूपितलक्ष्यविन्दु प्रचलन्नास्ते। सोऽयं तेष्वेकः, श्रीशस्यविष्णोः, अभिलाषेण सङ्कल्पविशेषेण, अर्जितैः एकलक्ष्यीकृतैः, सुकृतैः पुण्यविशेषैः, हतं नाशितम्, अवद्यं तत्त्वबोधप्रतिबन्धि दुष्कृतं यस्यासौ तथोक्तः स चासौ निर्मूलौ नष्टस्वप्रयोजकाज्ञानौ, रागद्वेषौ यस्य स तथोक्तः, भवहतिस्फीतम्, नवनवतनुधारणवारणेन मोहमूर्च्छाप्रसंगायोगेन असंकुचिताबाधितसदाचार्य–

दयालब्धतत्त्वावबोधेन शश्वत्सप्रकाशम्, आनन्देन स्वस्वरूपप्रयुक्तेन भगवदनुभवप्रवाहजनितेन च सुखविशेषेण, सिक्तम् सतताभिलषणीयम्, महान्तम् सर्वोत्तमलक्ष्यमयम्, अध्वानम् पन्थानम्, उद्दिश्यं लब्ध्वानुक्रम्य सरति रागद्वेषमूलकुसंस्कारक्षरणक्रमेण शनैर्गच्छति।

भावार्थ – संसारी जीवों में ही कभी कोई भगवान् की विशेष कृपा से पापमय अज्ञानान्धकार से बाहर निकलकर मोक्षमार्ग पर चलने लगता है। संसारी जीवों के साथ सदा लगा रहने वाला पाप उसकी बुद्धि में बहुत सी भ्रान्तियाँ बनाये रखता है। इससे यद्यपि संसार में वास्तव रूप से न तो कुछ संग्रहयोग्य है न त्यागयोग्य, फिर भी देश काल अवस्था जाति आदि माया की उपाधियों से उपादेय और वर्जनीयों के वर्ग बनते और रागद्वेष भी होते रहते है। जीव नहीं जानता कि मुझे क्या मिलता है और क्या नहीं मिलता, इससे वह अन्धेरे में टटोलने जैसा अधिकांश विफल प्रयत्न करता रहता है। उसकी अवस्था एक अबोध बालक जैसी ही होती है। ऐसे भटकते संसारी चेतनों में ही कोई जो भगवान् की विशेष कृपा का पात्र हो जाता है, उसका अज्ञान उसके कुछ पुराने पुण्यों के इकट्ठे होने से नष्ट हो जाता है, तब वह रागद्वेषों से ऊपर उठकर मोक्षदायक उस महान् मार्ग पर चलने लगता है जहाँ जन्ममरणका क्रम नहीं होता, तत्त्वबोध बना रहता है, स्वरूपसुख और भगवदनुभवसुख जारी रहता है जिससे प्रगति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

**योऽयं रेतोनिषेकः सुरनरपशुषु क्षुद्रजीवेषु चेष्टः,**
**कर्मैतद् द्वारभूतं सकलतनुभृतां कर्मणाम् प्राक्कृतानाम्।**
**मा भूवन्तन्निषेक्ता हरिगुरुकृपया मा च भूयो निषिक्तो,**
**ज्ञानाग्निप्लुष्टकर्मा हरिजनकृपया जन्मवार्धिं तरेयम्।।१३७।।**

शुक्रक्षरणमवार्यन्तनुते नृणां चिराय संसरणम्। तत्सन्धारणमद्धा चित्तविशुद्ध्योपहरतिकैवल्यम् इत्युच्यते–योऽयमिति। अयं लोकप्रसिद्धोऽनन्तर–श्लोकोपक्षिप्तो यो रेतसः सप्तमशरीरधातोः, निषेकः सुरेषु नरेषु पशुषु पक्षिषु तत्सदृशेषु कीटेषु तत्तुल्येषु च चतुरशीतिलक्षयोनिषु दृश्यतेऽनुभूयते कल्प्यते च तद् एतत् निषेक्तृणां निषिच्यमानानां च सकलानामेव तनुभृतां शरीरिणाम् प्राक्कृतानाम्पूर्वजन्मसु सम्पादितानां कर्मणां शुभाशुभफलानां द्वारभूतं तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापार इति न्यायशास्त्रोक्तलक्षणम् अवान्तरं कारणम् भवति। पूर्वजन्मसम्पादितानां कर्मणामुद्भवन्ति फलानि स्वयमेव शुक्रक्षरणरूपम् मध्यस्थं कारणं कल्पयित्वाभोक्तृषु स्वयम्प्रभवन्तीत्यर्थः। इममर्थमवगच्छन्मुमुक्षुः प्रार्थयते, हरिगुरुकृपया भगवत्प्रयुक्तस्य भगवद्रूपस्य च सदाचार्यस्य करुणया प्रबुद्धः, तस्य रेतसो निषेक्ता मैथुनाभिलाषी, मा भूवम्, भोगप्रावण्ये संसारनिवृत्त्यसम्भवात्, ''यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यं चरन्ती'' ति मुमुक्षूणाम् मैथुनत्यागपूर्वकब्रह्मचर्यमयजीवनोपदेशात्, भूय एतच्छरीरपातानन्तरं, निषिक्तः केनाऽपि क्वचिद्गर्भे निवेशितश्च मा भूवम्, ज्ञानाग्निना प्लुष्टानि दग्धानि भस्मीभूतानि कर्माणि सञ्चितानि सर्वाणि यस्य स तथोक्तः सन् हरिजनानाम् भगवदनुभवप्रवणानाम्महात्मनां कृपया शुभाशंसाफलया दयया, जन्ममयं वार्धिं संसारसमुद्रं तरेयम् अतिक्रान्तो भवेयम् इति।।



भावार्थ – भगवद्गीता के सातवें अध्याय के अन्त में मुमुक्षुओं के जानने योग्य छः अर्थों का संकेत भगवान् ने किया है। आठवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन के पूछने पर प्रत्येक का विवरण भगवान् ने बतलाया हैं उक्त छः में एक अर्थ कर्म भी है। कर्म का विवरण भगवान् ने ''भूतभावोद्भवकरो विसर्गः'' कहकर किया है। इसका सीधा अर्थ है वह त्याग जिससे चेतन पञ्चभूतात्मक शरीर के रूप में प्रकट होता है और स्वयं को मानता भी है जिससे प्राचीन कर्मों के फल मिला करते हैं। देहाभिमान के बिना कर्मफलभोग नहीं हो पाता। सकाम कर्म अपने फल देने के लिये अज्ञान भी देते है। मुमुक्षु लोग त्याग के लिये ऐसे कर्मों को समझते हैं। शंकराचार्य ने वेदादिविहित सकाम कर्मों को यहाँ कर्म माना है किन्तु वास्तव में मोक्षमार्गी साधक कामनाओं का त्याग करते हैं। वे भी चित्तशुद्धि के लिये निष्काम भाव से काम्य कहलाने वाले कर्मों को भी अवसर मिलने पर करते हैं। यह संकेत भगवान् ने ''सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः'' अ. १८ श्लो. २६'' से किया है। तब मुमुक्षुओं के लिये कर्म स्वरूपतः त्याज्य नहीं हुए। यहाँ तो उस त्याज्य कर्म का संकेत है जिसे सीधे कहना भी अभद्रता हो। इसी से भगवान् ने उसे उक्त सांकेतिक भाषा में कहा है। यज्ञ रूप कर्म कहना होता तो, प्रसिद्ध यज्ञ शब्द से ही कह देते। यहाँ वह कर्म विवक्षित है जो किसी अज्ञात चेतन के पिछले हजारों कर्मों के फल पाने और आगे भी हजारों कर्म करने के माध्यम बनने वाले शरीर की उत्पत्ति में निमित्त होता है और कर्ता को अपनी उत्पत्ति से पहले और बाद भी चिरकाल तक असंख्य कर्मजाल में लिपटे रहने का प्रमाण होता है, असंख्य व्यक्तियों के आगे पीछे के अनन्त

कर्मों का निमित्त और लक्षण होने से जिसके लिये कर्म शब्द सबसे अधिक उपयुक्त है। धर्मग्रन्थों में उसे निषेक कहा है ''निषेकादिश्मशानान्तो०'' मनु. द्वि.अ.। इससे यहाँ विसर्ग शब्द से शुक्रत्याग यानी गर्भाधान अर्थ भगवद्रामानुजाचार्य ने लिया है। मुमुक्षु इस कर्मसे कोसों दूर रहता है। बचाव के लिये इसकी विस्तृत जानकारी भी रखता है, ''संग्रह त्याग न विनु पहिचाने.''। प्रस्तुत श्लोक में मुमुक्षु की भावना व्यक्त है कि मैं कभी भी मनसे भी यह काम न करूँ और स्वयं किसी के शुक्र कण में बैठकर किसी योनि में लम्बी संसार यात्रा के लिये शरीर धारण न करुँ। भगवान् की और उनके भक्तों की कृपा से अज्ञान के बन्धन से छूटकर जन्ममरणों के महासमुद्र संसार से पार लग जाऊँ।

**देही भोगेष्वसंख्येष्वभिलषति परं कांश्चिदन्तः प्ररूढान्,**
**सेयम्भोगांशलिप्सा प्रतिचिदनुगता भूतसूक्ष्मांशयोगः।**
**योगोऽयम्प्राक्कृतीनां सहजरुचिवहो भोगहेतुः फलात्मा,**
**शुद्धोऽप्येवं किलात्मा कृतपिहितमतिर्भ्रान्तिमान् कर्मवश्यः।।१३८।।**

कर्मबन्धतन्मोक्षोपायावधारणं शक्यमित्याह—देहीति। देही संसारी चेतनो, असंख्येषु मिथोभिन्ननानाशरीरानुभाव्येषु, भोगेषु शब्दादिषु, अन्तःकरणे, प्ररूढान् उद्बुद्धरागान्, कांश्चित् कतिपयानेव, परम् इतरव्यवच्छेदेन, अभिलषति लब्धुं यतते, सा उक्ता प्रतिचितम् प्रत्येकेषु चेतनेषु अनुगता दृश्यमाना इयम् भोगांशेषु विविच्य लिप्सा लाभेच्छा यत्नाश्च, भूतसूक्ष्मांशानां शब्दादिविशेषसधर्माणां योगः चेतसि वासनात्मा सम्बन्धविशेषो वेदितव्य इति शेषः। यन्मनसि भवति तदेव बहिर्दृश्यते, काम्यते, तदर्थम् प्रयत्यते चेति नियमात् ''गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो। कथमन्योन्यसन्त्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः'' श्रीमद्भा० ११/१३/१७ प्राचाम्पूर्वजन्मकृतानां कृतीनां कर्मणाम्, सहजाम् अनुरूपाम् रुचिम् इच्छाविशेषम् वहतीति तथा, भोगानां पूर्वकर्मफलानुभवानां, हेतुर्निमित्तभूतः, फलात्मा पूर्वकर्मफलरूपश्च, भवतीतिशेषः, एवं स्वभावेन शुद्धः कर्मफलसम्बन्धायोग्योऽपि, आत्मा चेतनः, कृतैः स्वयम्पूर्वसम्पादितैः फलदैः प्रारब्धाख्यैः कर्मभिः पिहिता निरुद्धा संकुचिता मतिर्यस्य स तथोक्तो, भ्रान्तिमान् भोग्यताभोक्तृतारूपमिथ्यामतिः अतएव स्वरूपस्वभावाभ्यां निरञ्जनोऽपि, ज्ञानसंकोचजनितभ्रमवशतया कर्मवश्यः कर्मनिर्वर्त्यसंसरणपरवशो भवतीति तात्पर्यम्।



भावार्थ — व्यक्ति अपनी इच्छाओं का अध्ययन करके यह जान सकता है कि इन विषयों और कृत्यों की प्राप्ति और कर्तव्य के लिये मुझे जीवन मिला है। वह चाहे तो इच्छाओं को सुधार और सवाँर सकता है। इच्छाओं के अनुरूप ही प्राचीन कर्म होते हैं। विषयों के प्रति होने वाले मन के संवेगों से अन्दाज लगाया जा सकता है कि इन संवेगों पर विवेक कितना काबू पा सकता है। काबू पाने का भरोसा होने से मनुष्य आदर्श जीवन पा सकता है, मोक्षमार्ग पर चल भी सकता है। चेतन जो भी कुछ चाहा करता है वह उसके चित्त में सूक्ष्म संसार के रूप में बना रहता है। वे सारे संसार उसके प्राचीन कर्मों से बने होते हैं। जैसे किसी को मध्य भारत में जन्म लेकर बम्बई में लाभ हानि जन्ममृत्युयश अपयश सुखदुःख पाना है तो वह अन्तःप्रेरणा से बम्बई जाना ही चाहेगा, कलकत्ते का प्रस्ताव वह नहीं सुनेगा, या बहुत चाहकर भी विघ्नों के मारे वहाँ नहीं जा पायेगा और बम्बई के लिये सुविधायें पा जायेगा। ऐसी घटनायें सबके जीवन में देखी जाती हैं। किसी भी देश के लिये इच्छा और वहाँ के लिये सुविधा प्राचीनकर्मों से ही होती है। वे कर्म उसके चित्त में बम्बई का एक नक्शा तैयार कर देते हैं जो दूसरे स्थानों के नक्शे से नहीं मिलता। यह सूक्ष्म तथ्य विशेष मनोयोग से कभी किसी को समझ में आता है। इस तरह हम देखते हैं कि आत्मा भले ही असंग और निर्लेप हो किन्तु पुराने कर्म उसे अपने फलों के लिये फलसंस्कारों से बान्धे रहते हैं। कहा जाता है कि संस्कार अन्तःकरण में होते हैं, आत्मा तो संसार अवस्था में भी शुद्ध ही रहता है, तो इस से क्या हुआ सुखदुःख तो आत्मा को ही होते हैं नकि जड़ अन्तःकरण को, वास्तव में संसार अवस्था में आत्मा का धर्मभूत ज्ञान वासनामय अन्तःकरण के माध्यम से ही विषयों से जुड़ता है। वासनायें विषयों को मिथ्या आकार प्रकार रूपगुण धर्मों से जोड़ती रहती हैं। इससे धर्मभूत ज्ञान भी जिसे सदा शुद्ध रहना चाहिये वह भी विकृत सा होता रहता है। यही संसार है जो संयमयुक्त तत्त्वबोध से वासनाओं का क्षय होने पर अदृश्य हो जाता है।

**देही कर्माणि नाना प्रकृतिपरवशो दृष्टहेतोर्विधत्ते,**
**तत्पाकान् भोगकालान् करणतनुजनुर्जात्यवस्था न वेत्ति।**
**अन्तर्यामी तु कर्तुर्मतिरुचिकृतिवित् कर्मपाकान् नियच्छन्,**
**काले देशे फलार्हे हरति पवनवत् तूलवत् तं सुहृत्त्वात्।।१३६।।**

अनादिकर्मबन्धवारणोपायभूतभगवदर्थकर्मश्रद्धावृद्धये कामक्रोधवशानां

संसारिणां शुभाशुभसर्वकर्मफलानां यथावदुपलम्भने सुहृद्भावेन परमात्मनोऽनादि– प्रवृत्तिधाराम्प्रथयन्नाह–देहीकर्माणीति। प्रकृतिः पूर्वकर्मप्रयुक्तानां देहधातूनां सत्त्वादिगुणानामनुपातविशेषो बुद्धिवाञ्छाप्रयत्ननियामकः, तस्याः परवशोऽधीन– स्थितिको देही जन्तुः दृष्टानां सद्योलभ्यानां सुवर्णरजतवसनवनिताऽन्नपानादीनां वाञ्छितार्थानां, हेतोः प्राप्तये, नाना विभिन्नरूपाणि, कर्माणि शरीरवाङ्मनोव्यापारान्, विधत्ते कुरुते, किन्तु तेषां कर्मणाम्, पाकान् अदृष्टपरिणामान् कालान्तरदेहान्तर– लभ्यशुभाशुभानुभवहेतून्, उक्तानुभवरूपभोगहेतुभूतान् कालान् समयविशेषान्, जन्मान्तरीयानि च करणानि इन्द्रियाणि तद्गोलकविशेषान्, तनूः शरीराणि तेषां जनुर्जन्मप्रकारं तस्य जातिम् भोगस्यावस्थाम् शारीरपरिणामविशेषं कालविशेषं च न वेत्ति किञ्चिदपि मनसाऽपि न कल्पयति। अन्तर्यामी सर्वजगन्नियन्ता परमात्मा तु कर्तुः शुभाशुभानुष्ठातु, र्मतिरुचिकृतीर्ज्ञानेच्छाप्रयत्नान् वेत्तीति तथा, तदनुरूपान् कर्मणां विहितनिषिद्धानुष्ठानानाम्, पाकान्, परिणामविशेषान्, नियच्छन् नियमयन्, फलार्हे फललाभयोग्ये देशे स्थानविशेषे, काले समयविशेषे च पवनवत् वायुरिवादृश्योऽपि सक्रियः तूलवत् अल्पं कार्पासांशमिव स्वैरं, तं कर्तारम् फलाय सुहृत्त्वात् नित्यसुहृद्भावात् हरति नयति। देशविशेषे कालविशेषे फलविशेषलाभायानुरूपोपायविशेषेणोपस्थापयतीत्यर्थः।

**भावार्थ – अज्ञान के वशीभूत संसारी चेतनों के सारे कर्म कामक्रोधों से होते हैं, इससे उनके दृष्टफलों के अतिरिक्त दूरभविष्यत् काल में या अगले जन्म में प्रायः कष्टमय फल होते हैं परमात्मा सारे चेतनों को उनके अतिशय मित्रभाव से सही रूप और मात्रा में शुभ अशुभ सारे फल देते रहते हैं। किसी का कुछ उधार रखना वे नहीं जानते। जिसे हम सुख मानते हैं वह भी परमार्थ दृष्टि में दुःख ही है। संसारी चेतन दुःखों में ही जीना जानते है। इससे हमारे प्रभु सुखदुःखात्मक सारे फल हमें यथा समय उपलब्ध कराते रहते हैं। भगवद्भक्तों की कृपा से संसार की असारता समझ में आती है तब चेतन स्वभाव से ही सारग्राही होने के कारण अपने को शुद्धबुद्धमुक्त नित्य एक आकार में बनाये रखना चाहता है किन्तु कर्मों का सम्बन्ध जब तक है तब तक जीवन में अवाञ्छित परिवर्तन होते ही रहते हैं। इससे कर्मों से छूटने की इच्छा होती है, तब कर्मों के सम्बन्ध में सही दृष्टि बनाने का प्रयास होता है। सारे पशुपक्षी विना शास्त्र समझे जो भी चेष्टायें करते हैं वह सब हमारे प्रभु के अजायब घर की शोभा है, उनकी चेष्टाओं से प्रभु को सन्तुष्टि होती है। मानव के भी अधिकांश कर्म पशुवत् होते हैं, कुछ कर्म शास्त्रनियन्त्रित भी**



**होते हैं। सारे कर्मों से प्रभु को सन्तुष्टि ही होती है। पशुपक्षियों में दिखाई पड़ने वाली छीनाझपटी भी उनकी सन्तुष्टि का एक छोटा सा माध्यम होता है। कर्म जितने अच्छे होते हैं प्रभु को उनसे उतनी ही सन्तुष्टि होती है। कर्म का प्रयोजक ज्ञान ही कर्म की शोभा होता है। मानव पशुओं से ज्यादा समझता है, विधिनिषेधात्मक शास्त्रों को समझ कर जीवन में उन्हें उतारने के प्रयत्न भी वह करता है, इससे प्रभु की सन्तुष्टि बढ़ जाती है। जब प्रभु देखते हैं कि अमुक चेतन तत्त्वज्ञान से सारी इच्छाओं के मिट चुकने पर भी केवल मेरी सन्तुष्टि को लक्ष्य बनाकर कर्म कर रहा है तब फलेच्छा न होने से उसे फल नहीं देते और अज्ञान मिट चुकने से पुराने कर्मों का फल मिलना असम्भव जानकर उनकर्मों का सम्बन्ध मिटा देते हैं, तब वह मोक्ष देहली के सामने पहुँच जाता है। तब चेतन में अपने प्रति भक्ति देखकर प्रभु उसकी सारी कर्मवासना और भोगवासना मिटाकर भवबन्धन से मुक्त कर देते हैं। संसारावस्था से मोक्ष अवस्था तक चेतना के असंख्य स्तर होते है। उन स्तरों को समझते हुए प्रभु मुमुक्षुओं को अन्तिम फल की ओर कृपा से ही चलाते रहते हैं। उनकी इस सर्वज्ञता का ध्यान रखते हुए उनकी सन्तुष्टि के निमित्त कर्म करते रहना जीवन और उज्जीवन का सही तरीका है।**

**आत्मा शुद्धोपि मायाविहितकुहनया कर्ममय्या विलुप्त–**
**प्रज्ञोऽविद्यासहायः पुनरपि तनुते बन्धनं कर्मजालम्।**
**कर्माण्येवाप्रलीनान्यथ जगदुदये स्वोचिता भूतमात्रा–**
**श्चेतो योग्यं खवर्गं नवतनुजनने योजयन्त्यप्रमादम्।।१४०।।**

संसरण इव सृष्टावपि कर्मणामेव मूलत्वम्, भगवतस्तु तन्निर्वाहकता– मात्रमित्याह–आत्मेति। आत्मा चेतनः, शुद्धः प्रकृतिसंसर्गयोग्यतारहितोऽपि, कर्ममय्या पूर्वकर्मकलापप्रयुक्तया, मायया पृथिव्यादिगन्धादिरूपया, विहितया रचितया, कुहनया वञ्चनया अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरूपया, विलुप्ता नष्टप्राया, प्रज्ञा स्वस्वरूपस्वभावावबोधो यस्यासौ तथोक्तः, अविद्या तत्त्वज्ञानविरोधिन्यो भूतेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिवृत्तयः सहायाः सकलप्रवृत्तिसहकारिण्यो यस्यासौ तथोक्तः, पुनरपि पूर्वजन्मस्विव, कर्मजालम्, अज्ञानप्रयुक्तं, कर्मसमूहं बन्धनं सुखदुःखमयसंसारबन्धहेतुं, तनुते कृत्वा विस्तारयति। अथ वस्तुतः, जगदुदये सृष्ट्यारम्भे, अप्रलीनानि स्थूलसूक्ष्मभूतेन्द्रियप्राणानां समेषां विनाशेऽपि स्वयमनष्टानि, कर्माणि अज्ञानप्रयुक्तानि विधिनिषेधविषय भूतानि सूक्ष्मावस्थयाऽऽत्मनि स्थितानि,

एव, स्वोचिताः स्वफलजननानुरूपा, भूतमात्राः सूक्ष्मावस्थान्यपि नानाजातीयानि तन्मात्रापदवाच्यानि गगनादिपञ्चभूतानि, योग्यं स्वफलानुरूपं, चेतोऽन्तःकरणं, खवर्गम् बहिरिन्द्रियसमूहञ्च, नवस्य पूर्वविलक्षणफलहेतोः तनोर्देहस्य, जनने जननावसरे, अप्रमादं सावधाना जना इव योजयन्ति कारणभावमापादयन्ति। हरेरिव कर्मणामपि, सृष्टौ प्राधान्यं श्रेयसे चिन्तनीयम्।

भावार्थ – कर्मों से छुटकारा पाने के लिये उनका बन्धन रूप बतलाते हुए कहते हैं कि यद्यपि आत्मा इतना स्वच्छ है कि इसमें कर्मबन्धन या फलभोग सम्भव नहीं है फिर भी यह अनादि काल से अपने कर्मों से छला गया है। इसके कर्म इसे रसहीन संसार में भोग्यता–बुद्धि देते रहते हैं, उन कर्मों के संस्कार बनते हैं, वे संस्कार फल बनते या बनाते या दोनों करते हैं। फलरूप में जन्म आयु और भोग प्राप्त होते हैं, पुनः कर्म होते हैं, पुनः संस्कार और अगले नानाजन्म होते रहते हैं। यह सब प्रकृति में प्रकृति से प्रकृति के लिये होता है, भोग प्रकृति को ही प्राप्त होता है। फिर भी साक्षी आत्मा को सब कुछ अपने में ही दीखता है। असङ्ग आत्मा ही अपने को संसारी मानता है। मुक्त अवस्था में वह सिंहावलोकन से संसार अवस्था को इन्द्रजाल मान सकता है किन्तु संसार अवस्था में अवर्जनीय प्रकृतिसंसर्गवश क्लेश होते ही हैं। इससे कल्याण के उपाय के रूप में तत्त्वदर्शन और तदनुकूल अनुष्ठान करने होते हैं। वह अनुष्ठान ही निष्काम कर्मयोग या भगवदर्थ कर्म कहा जाता है। तत्त्वनिष्ठा कर्मों में पूर्णविराम लगाती है किन्तु कर्मों का और जीवन का पूर्णविराम एक जैसा ही है।'' नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'' भ० गी० अ० ३ श्लोक. ५'' जीवन एक कर्म ही है। उसके अनुबन्धी सर्वेन्द्रियप्रवृत्तियों के रूप में बहुत से कर्म होते हैं। इससे जीवनत्याग को ही कर्मत्याग कहना चाहिये। शरीरत्याग और जीवनत्याग अलग अलग हैं। शरीरत्याग के बाद भी प्राण–व्यापार जारी रहते हैं। इसी से दूसरे शरीर बनते हैं। प्राणव्यापार ही वास्तव जीवन है। प्राणों के प्रयोजक अदृष्ट कर्म होते हैं। कर्मप्रवाह का अवरोध प्राणव्यापार का अवरोध होता है, तब कैवल्य और मोक्ष होते हैं। जीवन का अन्त और संसार का अन्त एक ही है, जिसे हम मृत्यु मानते हैं वह जीवन धारा का एक अल्प विराम है। हमारे जीवन को हमारे प्राचीन कर्म चलाते हैं, वे कर्म हमारे अज्ञान से, प्रकृति के संसर्ग से, हमारे द्वारा ही होते रहते हैं। कर्मों से अविद्या और अविद्या से कर्म होते रहते हैं। हमारा जीवन उन दोनों से बन्धा रहता है। इस श्रृंखला का अन्त श्रद्धापूर्ण



तत्त्वदर्शन और निष्ठा से शुरु होता है। प्रभु की कृपा कुछ देर से आती है तब यह श्रृंखला टूट जाती है, तब मुक्ति धाम की लम्बी यात्रा शुरू होकर पूरी हो जाती है।

**अन्त्यस्मृत्या परात्मा मिलति हरिरनादिः सखा ध्याननीतः,**
**पूर्वस्मृत्यर्थदोषान्वयमविगणयन्नाश्रितोद्धारशीलः।**
**सन्तश्चित्तादपास्याशुभविषयरसानीश्वरीयान् गुणौघान्,**
**भूयो भूयो मृशन्तोऽमृतजलधितरङ्गेष्वतः सम्प्लवन्ते।।१४१।।**

ज्ञानाज्ञाने चित्तकार्ये ज्ञाने तिष्ठन्ति साधवः। भगवद्गुणसन्दोहस्मरणं ज्ञानमुत्तमम्–इत्याहान्त्यस्मृत्येति। ध्यानेन चिराभ्यस्तेन, नीतः चित्तफलके दृश्यमानः, अनादिः शाश्वतः, सखा उपकारपरो मित्रम्, परः चेतनानामपि नियन्ता, आत्मा, हरिः स्वगुणैः सर्ववशीकरणशीलः, पूर्वस्मृत्यर्थानाम् भक्त्युत्पत्तिपूर्वावस्थागत–स्मृतिविषयभूतानां, दोषाणाम् स्वरूपोपायविरोधिमतिहेतूनाम्, अन्वयं सम्बन्धम्, अविगणयन् उपेक्षमाणः सन्, आश्रितानां, चेतनानाम्, उद्धारशीलः मायागर्तादुन्न–यनपरः अतएव, अन्त्यस्मृत्या देहत्यागपूर्वक्षणगतस्मरणेन, मिलति मोक्षप्रदानेन संसृज्यते, अत एतदवगच्छन्तः, सन्तः सदाचार्यदयालब्धात्मानः साधवः, चित्तात् मानसात् अशुभानाम् प्राकृतानां, विषयाणां शब्दादीनां, रसान् अनुरागविशेषान् अपास्य उपेक्षमाणा, ईश्वरीयान् भगवद्गतान्, गुणौघान् गुणसमूहान्, भूयोभूयः सन्ततं, मृशन्तश्चिन्तयन्तः अमृतस्य मोक्षस्य जलधेः समुद्रस्य, तरङ्गेषु लहरीषु (इव तेषु गुणौघेषु) सम्प्लवन्ते खेलन्त इव समयं नयन्ति।

भावार्थ – भगवान् अन्तिम समय में ध्यान में आकर मिलते हैं, मोक्षप्रदान करके सदा अपने साथ रखते हैं। वे पहले के सांसारिक चिन्तन रूपी अपराधों को महत्त्व नहीं देते। क्यों कि शरण में आये हुए चेतनों का उद्धार करना वे सदा चाहते हैं। सत्पुरूष इस तथ्य को जानते हैं इससे सदा उनके उन महान् गुणों का ध्यान करते रहते हैं, उससे आनन्दित रहते हैं, वे गुण आनन्दमय होते हैं, इससे वे मानो मोक्षसुखरूपी समुद्र की तरंगों में खेलते से रहते हैं।

**भोगं सर्वे, तदर्थं हरिपदरजसैश्वर्यमिच्छन्त्युदाराः,**
**पुण्यात्मानः स्वमन्ये गुणरसविगमात् केवलं कामयन्ते।**
**कैङ्कर्ये साभिलाषाः शुभगुणजलधेः शेषिणोऽनादिबन्धो–**
**र्वाञ्छन्तो नित्ययोगम् परिचरणपरा दुर्लभाः केऽपि सन्तः।।१४२।।**

मुमुक्षुत्वम् महान्तं दुर्लभं गुणमाह–भोगं सर्व इति। सर्वे चेतनाः शरीरसम्बन्धात्, भोगम् उत्कृष्टशब्दादिरूपम् इच्छन्ति, पुण्यात्मानः सुकृतशुभचेतसः अतएव उदाराः महान्तम् उपायं वाञ्छन्ति तदर्थम् भोगार्थं हरिपदरजसा भगवत्कृपया, ऐश्वर्यम् महाधिकारम् इच्छन्ति अन्ये अन्यादृशाः पुण्यात्मानस्तु गुणेषु सत्त्वादिपरिणामभूतेषु रसस्यानुरागस्य, स्वस्वरूपावबोधेन विगमात् विनाशात्, केवलम्प्रकृतिसंसर्गवर्जितं, स्वम् आत्मानं कामयन्ते, भगवत्सकाशात् कैवल्यं वाञ्छन्तीत्यर्थः। अथ नित्यबन्धोर्निसर्गसुहृद्भूतस्य शेषिणः सर्वात्मनियमनभोगपरस्य, शुभगुणजलधेः सुखैकहेतुगुणसमूहसमुद्रस्य, कैङ्कर्ये स्वामिमुखोल्लासहेतुकृत्यजाते, साभिलाषाः कामयमाना अत एव नित्ययोगम् अव्यवधानं सन्निधानं वाञ्छन्तः कामयमाना अतएव इहलोके नित्यमेव परिचरणपराः सेवैकान्तचेतसः केऽपिदुर्निरूपाः सन्तो लब्धस्वस्वरूपस्वभावधर्मकृत्यजाता महान्तो दुर्लभाः कदाचिदेव क्वचिदेव भाग्योदयेन केनापि धन्यतमेन जनेन लभ्यन्त इत्यर्थः। आर्ता अर्थाथिनो वा महान्तो भगवत एव सकाशात् सर्व वाञ्छन्ति, न पुनरन्यतः कुतश्चिदित्यर्थः।

**भावार्थ – मोक्ष की इच्छा एक महान् दुर्लभ गुण है। संसार में सभी लोग सुखभोग चाहते हैं। उनमें कुछ भाग्यशाली वह सुख भगवान् की ही कृपा से पाना चाहते हैं। दूसरे उस सुख को कुछ विशेषरूप से पाने के लिये महान् ऐश्वर्य चाहते हैं। वह ऐश्वर्य भी वे भगवान् से ही पाना चाहते हैं। दूसरे विलक्षण पुण्य वाले महापुरुष जान चुके होते हैं कि लौकिक सारे सुखभोग शुद्ध आत्मस्वरूप के विरुद्ध हैं और प्रकृति के बन्धन में रखते हुए ही मिलते हैं इससे वे कोई भी प्राकृतिक सुख न चाहते हुए शुद्ध आत्मा को ही यानी प्रकृति के संसर्ग से छूटा हुआ अपना स्वरूप ही चाहते है। किन्तु कुछ महापुरुष यह जान चुके होते हैं कि हमारे प्रभु नित्यशेषी हैं यानी हमसे कुछ न कुछ अपना उत्कर्ष पाते रहने में सदा सक्षम हैं और चेतनों को केवल आनन्द देने वाले अनन्त गुणों के समुद्र हैं। ऐसी स्थिति में उनका सन्निधान हो और वह सदा बना रहे, जिससे हम उनकी सेवायें देते हुए उनके हर्ष विशेष का लाभ प्राप्त करते हुए उनके अनन्त कल्याणमय गुणों का अनुभव भी करते रहें जो अनुभव स्वरूपानुभव की अपेक्षा अत्यन्त महान् है और जो अपने लिये स्वाभाविक भी है। ऐसी भावना और इच्छा वाले महापुरुष अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। किसी भाग्यशाली को ही किसी देश काल में उपलब्ध होते हैं।**

**मक्षिः स्वाहारतुष्टा निरवधिगगने वष्टि नैवोर्ध्वयानम्,**
**पन्थानः सन्त्वसंख्या उपरिविचरतामाशु किन्तेन तस्याः।**



**धूमाद्यं वाऽर्चिराद्यम्व्रजतु यतिवरो नीरसो दिव्यमार्गं,**
**का हानिः पानभूमेर्मदरसिकजनालापलुप्तान्यवाचः।।१४३।।**

संसारिजनस्वभावमाह–मक्षिरिति। मक्षिः पूतिविषयवर्तिनी मधुभोगिनी वा मक्षिका, स्वाहारेणाल्पेनामेध्येन, मेध्येन वा कुसुमरसेन तुष्टा कृतार्था सती, निरव धौ निःसीमे गगने, आकाशे, उर्ध्वम् उपरि, यानं सञ्चरणं नैव वष्टि, नो वाञ्छति, उपरि वाञ्छितार्थानवगमात् सामर्थ्याभावाच्च, उपरि गगनमार्गेषु आशु शीघ्रं, विचरतां गरुडादीनाम्, असंख्या अनन्ताः, पन्धानो मार्गाः, सन्तु भवन्तु, किन्तु तेन तस्या मक्षिकायाः किम् फलं स्यान्न किमपीत्यर्थः। एवम् एव धूमाद्यम् पितृलोकगम्, अर्चिराद्यं देवलोकगं वा, दिव्यम् अलौकिकम्, मार्गम् पन्थानं, नीरसो विषयानुरागशून्यो यतिवरः साधको मुमुक्षुर्वा, व्रजतु यातु। तेन मदरसिकानां सुरास्नेहवशानां, जनानाम् पुरुषाणाम्, आलापैर्विषयस्पृहा– वर्धकैर्गीतरागादिभि, र्लुप्ता तिरोहिता अप्रसक्ता, अन्याः कल्याणमय्यो, वाचः सच्छास्त्रसन्दर्भा, यस्यां सा तथोक्ता तस्याः, पानभूमेः सुरापानस्थानस्य का हानिर्न काऽपि क्षतिः। नहि पितृलोकं देवलोकम् मोक्षधामवाकेऽपियान्तीत्येतावता पानभूमिजनसंख्याहीयेत। संसारः सदेदृगेव स्यान्नास्यापकर्षः कदाऽपि सम्भवेत्। अत्र तु–

प्रेयःश्रेयोवाञ्छावद्भिः सच्चरितव्यं सतो नमद्भिः।
विषयवशानां वाञ्छाऽऽचरणं न स्पृहणीयं सद्यो मरणम्।।

**भावार्थ– संसारियों की प्रवृत्तियाँ सदा क्षुद्र होती हैं, उनका अनुकरण घातक होता है। मक्खी एक छोटा जन्तु हैं, उसे कोई थोड़ा सा आहार अपेक्षित होता है, वह उसे पास ही मिल जाता है, इससे वह ऊपर आकाश में उड़ना नहीं सोचती, न चाहती है। उसे यदि गरुड़ आदि महापक्षियों का मार्ग बतलाया जाये तो वह उदासीन रहेगी। उसे उन मार्गों में अपना छोटा अभीष्ट नहीं मिलता इससे उतना उड़ना वह नहीं चाहती। संसारी लोग संसार में ही रहना जीना पसन्द करते हैं, उन्हें पितृयान या देवयान मार्ग में कोई आकर्षण नहीं होता। कोई उधर जाता हो तो भी संसार तो संसारियों से भरा ही रहेगा। जैसे नशे में अर्थहीन आलाप करने वालों से भरी सुरापान की भूमि कभी खाली नहीं होती। वहाँ अच्छी चर्चा नहीं हो पाती।**

**हंसाद्या वैनतेया न बकमुखखगानन्वयन् क्वापि काले,**
**योगी ज्ञानीशभक्तो गुरुचरणरतो नैति लोकम्प्रपन्नः।**

धूमादेर्वाऽर्चिरादेर्व्रजति स तु पथा स्वर्महर्मुख्यलोकान्
रागादावर्त्य भूयोऽरमथ सितमतिर्ब्रह्मतामेति शान्तः।।१४४।।

उक्तमेवार्थम्भङ्ग्यन्तरेणाह–हंसाद्या इति। हंसाद्या महापक्षिणो, वैनतेया–स्तेष्वपि श्रेष्ठाः, क्वापि काले समये, बकमुखान् खगान् पक्षिणः, न अन्वयन्, नानुगतवन्तः, एवम् एव योगी, ध्यानाभ्यासपरः, ज्ञानी शास्त्रपरिशीलनरतः, ईशभक्तः साधनभक्तिं सम्पादयन्, प्रपन्नो भगवन्तमेवोपायोपेयभावेन स्वीकृत्य तदनुगमनपरो मुमुक्षुः, गुरुचरणरतो गुरुभक्तश्च श्रेयस्कामो जनो लोकं, सामान्यजनं, न एति नानुगच्छति। स तु लंघिताशेषलोक उपेक्षितजनसामान्यो धूमादेर्वा अर्चिरादेः पितॄणां देवानां वा पथो मार्गात् ब्रजति याति, ऊर्ध्वमेव गच्छति। उर्ध्व गत्वाऽपि, रागात् विषयाभिलाषलेशात्, आवर्त्य भूमौ पुनरागत्य अथ अनन्तरं सितमतिरुज्ज्वल– प्रज्ञो भूयः पुनर्यत्नैः अरं शीघ्रम् उज्झितकामादितरङ्गः, ब्रह्मताम् भगवद्गुणाविर्भावम् एति लभते, मुक्तिं लभत इति यावत्।

**भावार्थ – पूर्वोक्त अर्थ को ही दूसरे प्रकार से कहते हैं कि हंस आदि बड़े पक्षी और उनमें भी श्रेष्ठ गरुड़ आदि कभी भी बगुले जैसे क्षुद्र पक्षियों का अनुसरण नहीं करते, इसी तरह जो योगीजन ध्यान के अभ्यास से चित्तशुद्धि में लगे होते हैं या शास्त्रों का निष्कर्ष समझने में प्रयत्नशील होते हैं, अथवा जो लोग साध्यभक्ति के लिये नवधा साधन भक्ति में लगे होते हैं, या जो लोग तत्त्व बोध हो जाने से भगवान् के शरणागत होकर उन्हें ही मोक्ष का उपाय और उपेय भी मानते हुए चेतनस्वरूपानुरूप भगवत्कैकंर्य में लगे होते हैं, अथवा जो लोग गुरु की सेवा से ही मोक्ष तक सारी सिद्धियों का भरोसा रखते हैं वे सब कभी भी सामान्य लोगों का अनुकरण नहीं करते। वे तो शरीर त्याग के बाद धूमादि मार्ग से या अर्चिरादि मार्ग से ऊपर के ही लोकों को जाते हैं, वे सदा असामान्य अवस्था में ही रहते हैं। यदि ऊपर के लोकों तक पहुँच कर भी संसारवासना के कुछ बचे रहने से मृत्यु–भुवन में आजाते हैं तो भी वे सामान्य अवस्थामें नहीं जीते, न वे सामान्य लोगों का अनुकरण करते हैं, वे तो श्रद्धा से तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं, उससे उनका चित्त शुद्ध हो जाता है, वे ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं, उनमें सत्यसंकल्प तक ईश्वरीय गुण प्रकट होते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं।**

पन्थानः सन्त्यनेके विकटभववने सत्फलाः सत्प्रयाणा–
स्तद्विद्वांसोऽपि सन्तः खलबहुलजगत्यत्र सन्त्येव मान्याः।



यस्तून्मुक्तेर्निगूढः कतिपयसुधियामेव मृग्योऽस्ति मार्गो,
धूमादिर्वाऽर्चिरादिस्तदुभयधृतधीर्मुच्यते ध्वस्तमोहः।।१४५।।

मोक्षपथस्य दुर्ज्ञेयत्वमाह–पन्थान इति। विकटे अनिस्तारे, भवरूपे, वने कानने अनेके पन्थानः सत्प्रयाणाः सुगमाः, सत्फलाः सुखमयफलयुताः, सन्ति विद्यन्त एवं तद्विद्वांसः तत्पथबोधप्रसिद्धाः, खलबहुले दुर्मतिप्राये, अत्रजगति संसारे, मान्याः श्रद्धेयाः, सन्ति महापुरुषा अपि, सन्ति एव, नात्र संशयः। किन्तु उन्मुक्तेः सवासनसंसारबन्धध्वंसस्य, निगूढः शंकाशततिरोहितः, कतिपयेषां सुधियां शुद्धधियां विद्वत्तमानामेव, मृग्यो गवेषणीयो, धूमादिः अर्चिरादिः वा मार्ग उपायोऽस्ति तदुभये मार्गद्वयेऽपि, धृता अवस्थिता धीः प्रज्ञा यस्य स तथोक्तो, ध्वस्तस्तत्त्व–बोधवारितो मोहोऽज्ञानमूलं यस्य स तथोक्तः सन्, मुच्यते, मुक्तिं लभते।

**भावार्थ – तत्त्वज्ञानविरोधी असंख्य शंकाओं से भरे इस संसार में अच्छे माने हुए बहुत से मार्ग हैं, उन मार्गों के अनुभवीजन भी बहुत हैं जो अज्ञानी जनों के लिये सम्मानित सन्त हैं किन्तु वास्तव में मोक्ष, का जो मार्ग है, जिसे कुछ ही शुद्ध बुद्धि वाले मनीषी समझ पाते हैं, उसे समझकर सदा ध्यान में रखना चाहिये, वह मार्ग धूमादि और अर्चिरादि दो प्रकार माना गया है, एक से वापसी होती है, दूसरे से मुक्ति हो जाती है, उन दोनों का सदा ध्यान रखने से मोह नष्ट होता है और मुक्ति मिल जाती है। दोनों मार्गों में प्रगति कराने वाले बहुत से देवता हैं, उनका ध्यान स्मरण होते रहने से वे अन्त में मिलते हैं और योग्यता देखकर धूमादि वा अर्चिरादि मार्ग से ऊपर ले जाते हैं। उनका ध्यान सहज है फिर भी संसारियों को वह व्यर्थ समझ में आता है इससे उपेक्षा किये रहते हैं।**

८–अनन्यः श्रीधरं ध्यायन् अग्न्याद्यन्तत्पथं सदा।
तत्पदन्तत्पथो याति तच्चित्तस्य हि तद्गतिः।।१४६।।

अध्यायमुपसंहरति–अनन्य इति। अनन्यो भगवदेको पेयोपायो मुमुक्षुः, श्रीधरम्भगवन्तं, सदा ध्यायंश्चिन्तयन्, तथा तस्य प्राप्तेः पन्थानम् मार्गम्, च अग्न्याद्यम् ''अग्निर्ज्योतिरह०'' इत्याद्युक्तम्, ध्यायंश्चिन्तयन् अन्ते तेनैव पथा तमेव परमात्मानं, यात्युपैति। यतो हि ''यं यं वाऽपि स्मरन्०'' इति नियमेन ध्यानविषयमेव देहत्यागात्परम् आप्नोति।८

*इति अष्टमोऽध्यायः*

भावार्थ – आठवें अध्याय में बतलाया गया है कि केवल भगवान् को पाने की इच्छा हो और उन्हें पाने के लिये उनके सिवा दूसरा कोई उपाय न अपनाया गया हो तो उन तक जाने वाले अग्नि ज्योति आदि मार्ग से वह योगी भगवान् को ही पाता है, क्यों कि वह सदा भगवान् का और उनके मार्ग का ही चिन्तन करता रहता है और देहत्याग के बाद चिन्तन के अनुरूप ही गति होती है।

*आठवाँ अध्याय समाप्त*



# अथ नवमोऽध्यायः

**या विद्या सर्वविद्याफलमखिलवपुर्ब्रह्म लभ्यं ययाऽद्धा,**
**याऽऽयाता भक्तचित्तस्थितमखिलतमो मुक्तिविघ्नं निरुन्धे।**
**यस्या हेतोः परात्माऽवति भजनरतं वत्सकं वत्सलेव,**
**ताम्पार्थम्प्राह भूयःश्रुतिविशदधियं सङ्गरे शार्ङ्गधन्वा।।१४७।।**

अष्टमेऽध्याये भक्तिलभ्यस्य वैकुण्ठादिपदाभिधेयस्य परमपदस्य पन्थानमुक्त्वा इदानीं ताम्भक्तिं विद्यापदेन प्रस्तुवन् विवृणोति–या विद्येति। या प्रस्तूयमाना, विद्या भगवत्तत्त्वबोधहेतुर्ज्ञानं, सर्वासां श्रुतितदनुबन्धिविद्यानाम्, फलम् परिणामः, यया उक्तया विद्यया, अखिलवपुः सर्वप्रमेयजातशरीरकम्, ब्रह्म परमात्मतत्त्वम्, अद्धा अनायासं, लभ्यम् प्राप्यते, या प्रस्तुता, आयाता सिद्धा, मुक्तौ विघ्नम् बाधकम्, अखिलं तमोऽज्ञानम्पापञ्च, निरुन्धे वारयति, यस्या हेतोः प्राप्तये, परात्मा भगवान्, भजनरतम् भक्तम् वत्सकं शिशुम्, वत्सला धेनुरिव स्नेहातिशयेन, अवति रक्षति, ताम्प्रस्तुताम् भक्तिम्, भूयः श्रुतिभिर्नानामुनिवचनैर्वेदार्थावबोधेन पूर्वमेव विशदाऽऽत्मतत्त्वबोधोपयुक्ता धीर्यस्य स तथोक्तस्तम्पार्थम् अर्जुनं, संगरे युद्धे प्रसक्ते शार्ङ्गधन्वा विश्वविजयक्षमधनुर्धरोऽपि, अर्जुनाय विजयं सम्पादयितुं क्षमोऽपि, भगवानपि, तत्त्वबोधस्यैव सफलयुद्धहेतुतां जानन्, प्राह सर्वप्रश्न–समाधानपुरस्सरं निजगाद।

**भावार्थ – पिछले आठवें अध्याय में मोक्षमार्ग का वर्णन किया गया है। ध्यान रहने से वह मार्ग शरीरत्याग के बाद मिल जाता है। इस नववें अध्याय में मोक्ष के उपाय भक्ति का वर्णन करते हैं। भगवान् ने युद्ध के लिये दुविधा में पड़े अर्जुन को वह मोक्षमार्ग बतला दिया जिसे भक्ति कहते हैं और वह भक्ति भी ऐसी कि जो युद्ध जैसे कर्म से बनती बढ़ती और पुष्ट होती है। अर्जुन समझते थे कि जंगल में जाकर बैठने से ध्यान ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति होगी और युद्ध की हिंसा से वह नहीं मिलेगी। भगवान् ने समझा दिया कि भक्ति को सुनकर समझ लो और स्वधर्म युद्ध जैसे कर्म करते हुए उसे प्राप्त करो। यह ज्ञान सारे वेदादि–शास्त्रज्ञानों का परिणाम है, इसी से**

सर्वात्मा परमात्मा अनायास प्राप्त होते हैं। इस विद्या के सिद्ध हो जाने से हृदय के सारे अज्ञान और सारे वे पाप कट जाते है जो मोक्ष मार्ग में अवरोधक होते हैं, इस विद्या की सिद्धि के लिये ही भगवान् भक्तों की रक्षा ऐसे करते हैं जैसे शीघ्र व्यायी गाय अपने बछड़े की करती है।

भक्तिर्मुक्त्येकहेतुस्त्रिभुवनगुरुणा राजविद्येति गीता,
सद्धर्मोत्कर्षलभ्या महितसुमनसां सोदिता राजगुह्यम्।
सज्ज्ञानम्भक्त्यवस्थाम्ब्रजति सुकृतिनां क्षीरदध्यादिनीत्या,
तद्विप्रासादिवाक्यैर्भवतु मतिमताम्भक्तिरन्त्या विमुक्तिः।।१४८।।

भगवत्तत्त्वज्ञानमेव प्रीत्यवस्थापन्नम्भक्तिरित्युच्यत इत्याह—भक्तिरिति। मुक्तेः संसारबन्धस्य कर्मबन्धस्य वा निवृत्ते, हेंतुरुपाय, स्त्रिभुवनस्य विश्वस्य, गुरुणा ब्रह्मादीनामपि तत्त्वोपदेशकेन परब्रह्मणा श्रीकृष्णेन, राजविद्या इति, विद्यानां राजेति, गीता कथिता, महितानाम्प्रामाणिकानां, सुमनसां सद्बुद्धिशालिनां तत्त्वविदां सद्धर्मस्य भगवद्धर्मस्य स्वपर्यन्तसर्वार्पणफलस्य स्तुतिपूजातद्ध्यानरूपस्य, उत्कर्षेण तत्त्वनिष्ठाजननेन, लभ्या सा भक्तिरेव राजगुह्यम् इति गोपनीयानां संसारिजन—दुर्लभानाम् भावानां राजेति प्रधानमिति च उदिता भगवता तेनैव कथिता। सुकृतिनाम् पुण्यशालिनां, सज्जनानाम् भगवत्तत्त्वबोध एव, क्षीरदध्यादिनीत्या दुग्धस्य दधिभाव इव दध्नश्च शुक्तभाव इव च भक्त्यवस्थाम्प्रीतिरूपताम् व्रजति, लोकसिद्धम् एतत्, तद्विप्रासो विपन्यव इत्यादिभिर्मुक्त्यवस्थाप्रतिपादकैः श्रुतिवाक्यैर्मतिमतां तत्त्वविदाम् अन्त्या सघनप्रीत्यवस्थापन्ना भक्तिरेव विमुक्तिरस्तु, भावरूपेयं कर्मबन्धध्वंसरूपापेक्षया ज्यायसीति भावः।

भावार्थ — मुक्ति का एकमात्र कारण भक्ति है, उसे सारे विश्व के गुरु भगवान् श्रीकृष्ण ने राजविद्या कहा है, क्यों कि वह सभी विद्याओं में विषय और फल दोनों की दृष्टि से श्रेष्ठ है। वह उन्हें प्राप्त होती है जिनकी बुद्धि सात्त्विक होती है और जिन्हें शास्त्रों के उत्तम अभ्यास से तत्त्वबोध हो चुका होता है, वे जब भगवद्धर्म श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति का चिरकाल अनुष्ठान कर लेते है तब उन्हें पुण्यबृद्धि से यह भक्ति प्राप्त होती है। विषयी जीवों से भरे इस संसार में अति दुर्लभ होने से इसे भगवान् ने राजगुह्य यानी गुप्तविद्याओं से भी अति गुप्त कहा है। वास्तव में जब उत्तम अधिकारी को भगवत्तवत्त्वबोध होता है तो वह स्वयम् महान् प्रीति उत्पन्न करता है, वह प्रीति ही भक्ति कही जाती है। जैसे दूध स्वयं दही के रूप में बदल जाता है,



जामन उसे बदलने में थोड़ा सहायक होता है ऐसे ही तत्त्वबोध भक्ति का रूप स्वयं ले लेता है। मन्त्र पुष्पाञ्जलि में तद्विप्रासो विपन्यव इत्यादि श्रुति सन्दर्भ बोला जाता है, उसमें यह अर्थ होता है कि ज्ञानी लोग सदा स्तुति करते रहते हैं। स्तुति भक्ति का ही एक रूप है। इससे उत्तम ज्ञान वह माना जाता है जिससे भक्ति उत्पन्न हो जाये।

मुक्ताः पश्यन्ति शश्वत्परमपदमनन्ते यथा दृग्विलग्ना,
गायन्तस्तद्गुणौघन्तदनुभवमहानन्दनिघ्नात्मभासाः।
श्रुत्यैतद्गम्यते तत्खलु समरसता विद्यते ज्ञानभक्त्योः
किंवाऽभेदस्तयोःस्यादिति सुमतिजनास्तत्त्वमुद्घोषयन्ति।।१४९।।

उक्तमेवार्थं विशदयति—मुक्ता इति। तस्य परमपदाभिधानस्य परमात्मनः, स्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्यशीलादिविषयकस्यानुभवस्य सम्बन्धिनि, महति निरवधिके, आनन्दे, निघ्ना आयत्ता, आत्मभासः स्वयम्प्रकाशात्मानुभवा येषान्ते तथोक्तास्तद्गुणौघं सौशील्यवात्यल्यमार्दवार्जवशौर्यधैर्यादीननवधिकान् महागुणान्, गायन्तः श्रद्धाऽनुरागवशतया कीर्तयन्तो, मुक्ता नित्याश्च सूरयो, यथा अनन्ते गगने विलीना बद्धा, दृग् दृष्टिस्तथा परमम्पदम् भगवतः स्वरूपम्, पश्यन्ति साक्षात्कुर्वाणा भवन्ति। एतद् अयमर्थः, श्रुत्या सदापश्यन्तीति विपन्यवइति च वेदेन, गम्यते प्रतीयते, तत् तस्मात्, खलु निश्चयेन, ज्ञानभक्त्योः समरसता तुल्यविषयफलवत्ता, विद्यतेऽस्ति। किंवा तयोरभेद एव स्यात् ज्ञानमेव भक्तिरित्युच्यते भक्तिरेव वा ज्ञानमिति सुमतयो मोक्षतत्साधनस्वरूपावधारणकुशला आचार्यास्तत्त्वं याथार्थ्यम् उद्घोषयन्ति सविश्रम्भम्प्रतिपादयन्ति।

भावार्थ — श्रुतियों से जाना जाता है कि जैसे अनन्त आकाश में लगी हमारी दृष्टियाँ सब कुछ देखती रहती हैं फिर भी दर्शन कभी पूरे नहीं होते, क्यों कि दृश्य अनन्त हैं ऐसे ही अनन्त परमात्मा का दिव्य सूरि और मुक्त पुरुष सदा अनुभव करते ही रहते हैं और उनका गुणगान करते रहते हैं। देखना ज्ञान है और गुणगान भक्ति है, तो सूरिजन ज्ञान और भक्ति दोनों से युक्त होते हैं। वास्तव में वह दर्शन व्यर्थ है जिससे कुछ सुखमय भाव न बने और वह वाणी भी व्यर्थ है जो सही अनुभव के बिना निकलती हो। ऐसे ही संसारावस्था में जो लोग मुक्ति का कुछ उपाय कर रहे हो, वह उपाय ज्ञान ही हो सकता है जो भक्ति के रूप में परिणत हो रहा हो। ''सदापश्यन्ति०'' इत्यादि श्रुतिवचनों से ज्ञान और भक्ति का एक साथ होना या समानफल

होना या वास्तव में एक ही होना समझ में आता है। प्राचीन आचार्यों ने शास्त्रवचनों के परिशीलन से ज्ञान और भक्ति में अभेद ही माना है।

**तुल्ये यत्ने फलाप्तौ भवति विविधता कर्मणां दृष्टमेतत्,**
**लोके सङ्कल्पभेदादथ च गतिरियं शास्त्रगम्येऽपि नेया।**
**देवाद्युद्देश्ययागः फलति परिमितं किन्त्वसौ श्रीशतुष्ट्यै,**
**न्यस्तस्तत्रैव कृत्वा फलति परपदं शाश्वतम्भावशुद्धेः।।१५०।।**

सत्प्रज्ञाधीनसत्सङ्कल्पेन लौकिकानाम् अल्पफलानामेव कर्मणाम् महदपि फलमुदेतीति भावशुद्धये सत्प्रज्ञायै यतनीयमित्याह—तुल्यइति। यत्ने उद्यमे, तुल्ये समानेऽपि, कर्मणां विहितनिषिद्धानां लौकिकानाम्, फलाप्तौ संकल्पभेदात् विविधता नानारूपता भवति इत्येतल्लोके दृष्टं सर्वेर्ज्ञायते। जिघांसया प्रहारेण मरणे मृत्युदण्डस्तदभावेऽल्पो दण्डोऽदण्डो वा दृश्यते। एवमेव श्रद्धया माल्यार्पणे सद्भावो, लोभेन च कृते वैरस्यं दृश्यते। अथ च इयम् उक्ता, गतिः रीतिः शास्त्रगम्ये शास्त्रैकवेद्ये कर्मणि फले च, नेया अवधेया। तदेवाह—देवाद्युद्देश्यो देवान् यजाम इति सङ्कल्प्य विहितो यागो देवार्चनहवनादिरूपः, परिमितम् अल्पम्, फलति, किन्तु असौ यागः, श्रीशस्य परमात्मन, स्तुष्टयै सन्तोषाय, कृत्वा निर्वर्त्य, तत्र श्रीशे एव न्यस्तः समर्पितः स्वतुष्टयै परमात्मना स्वयमेव यज्ञो नानारूपतयाऽयम्मया कारित इति बुद्ध्या, परमात्मन्येव कर्तृत्वफलतद्भोक्तृत्वानि तत्त्वतो नानारूपतयाऽवधृतानि चेत् भावशुद्धेस्तत्त्वानुरूप—भावनया, शाश्वतं नित्यम् परपदं स्वरूपबोधम् भगवत्तत्त्वबोधं कर्मबन्धध्वंसद्वारा मोक्षञ्च भगवत्सायुज्यरूपम् फलति फलरुपेण परिणतो भवति।

**भावार्थ – कर्मों के सारे फल संकल्प से ही मिलते हैं, महान् बनने का संकल्प होने से छात्र उत्तम विद्या प्राप्त कर लेता है, वही संकल्प उसे महान् भी बना देता है, वह संकल्प ही उसे महानता की दिशा में चलाता है किन्तु भाग्य छोटा होने से संकल्प अधूरा होता है और वह अपने अधूरे संकल्प से भटकता रहता है एवं देशकाल समाज और अपने भाग्य को कोसता रहता है। हमें सदा तत्त्वनिष्ठा बनाये रहने का प्रयत्न करने चाहिये, वह तत्त्वज्ञान से ही होता है, सत्पुरुषों के सहयोग से शास्त्र हमें तत्त्वज्ञान और निष्ठा देते हैं, तब हमारे छोटे भी कर्म हमें उत्तम फल देते हैं, जैसे कोई प्रिय व्यक्ति यदि राजा को एक सुन्दर फल देता है तो राजा उसकी पुरानी श्रद्धा को नये रूप में परख कर कभी कोई राज्य भी दे देता है, ऐसे ही भावशुद्धि से प्रसन्न हमारे**



**प्रभु जो सारे विश्व के निरुपाधिक स्वामी हैं स्वेच्छा से कोई महान् फल भी किसी छोटी सी सेवा से दे देते हैं, किन्तु यदि भक्त का हृदय शुद्ध हो तो वह उस महान् फल में भी लिप्त नहीं होता, तब उसकी स्थायी निर्लेपता से सन्तुष्ट होकर उसे वह परमपद देते हैं जहाँ अज्ञान का कोई प्रभाव नहीं होता। भावशुद्धि से ही स्वर्ग जैसे विनाशी फल देने वाला याग मोक्ष दे देता है। यह सर्वान्तर्यामी प्रभु की सही परख के आधार पर होता है।**

**यत्नादाच्छिद्य चेतोऽमृतमतिपुरुषो विष्णुभोग्यार्थजातात्,**
**भोक्त्रे तस्मै परस्मै कुसुमदलफलाम्बूनि दत्ते निराशीः।**
**देवोऽसावेव भुङ्क्ते तदुपहृतमलं त्यागशुद्धार्थजातं,**
**सत्सङ्कल्पेन दत्तं कथमिव लभतां सत्यसङ्कल्पतोऽन्यः।।१५१।।**

उक्तमेवार्थं विशदयति—यत्नादिति। अमृते स्वाभाविकावस्थानरूपे मोक्षे मतिरन्यनिरपेक्षा बुद्धिर्यस्यासौ तथोक्तः पुरुषो मुमुक्षुः, यत्नान्मनोजयरूपात् चेतोऽन्तःकरणम्, भगवतः शेषभूतात्तदेकभोग्यादर्थजातात् सर्वस्मादपि शब्दादेः आच्छिद्य दृढसङ्कल्पबलाद् आकृष्य वशीकृत्य, निराशीर्भोगापेक्षारहितः सन्, क्वापि देशे काले, कुसुमदलफलाम्बूनि अयत्नलभ्यानि वस्तूनि, श्रीशाय परमात्मने, भक्त्या तदनुभवं विनाऽऽत्मधारणमलभमानः सन्, दत्ते समर्पयति। तदुपहृतम् त्यागभावनया शुद्धं कामकालुष्यशून्यम्, अर्थजातम्, असौ श्रीश एव, देवो भगवान्, अलं सादरम्, भुङ्क्ते भोग्यभावेनाङ्गी करोति। तदेव समर्थयति सत्संकल्पेन मुमुक्षुणा दत्तमुपहृतम् अर्थम्, सत्सङ्कल्पतः परमात्मनोऽन्यः अपरो देवादिः, कथम् इव लभतां स्वीक्रियताम्। सन् अपरिणामी सङ्कल्पोऽवधारणं यस्य स तथोक्तस्तेन दत्तम् अर्थम् परमात्मैव निष्कामतयाऽङ्गीकुर्यात्। नहि तदनुरूपम् फलं देवादिषु विद्यत इति भावः।

**भावार्थ – जब चेतन अपने स्वरूप और कर्तव्य जान लेता है तब केवल संसार बन्धन से जो कि वास्तव में अज्ञान का एक बन्धन है, छूटने का प्रयत्न करता है, तब वह समझता है कि यह संसार वास्तव में परमात्मा का एक भोग है, सारे चेतन तत्त्व भी परमात्मा के भोग ही हैं, फलतः मैं भी उनका एक भोग हूँ, भोक्ता नहीं, मुझमें लक्षित भोक्तृत्व उनके भोग का ही पूरक है, मुख्य भोक्ता वे ही हैं, ऐसा समझता हुआ वह सांसारिक सारे भोगों से अपना चित्त दृढ़ वैराग्य के बल से हटा लेता है और जहाँ भी रहता है वहाँ जो भी कुछ पत्र पुष्प फल अर्जित कर पाता है वह अपने स्वामी परमात्मा को अपना**

स्वरूपप्रयुक्त कर्तव्य मानकर अर्पित करता है। उसका हृदय अत्यन्त निष्काम होता है इससे उसकी पूजा परम पवित्र और भगवान् को अतिशय प्रिय होती है, वह पूजा परमात्मा को ही प्राप्त होती है। पूज्य और पूजक की प्रकृति मिलने से पूजा का महत्त्व और फल बढ़ जाता है, मुमुक्षु उत्तम संकल्प ही रखता है और भगवान् तो सत्यसंकल्प हैं ही, इससे वे मुमुक्षु की पूजा को स्वयम् बड़े आदर से स्वीकार करते हैं। यह कैसे सम्भव है कि किसी उत्तम पुरुष के द्वारा किसी महान् के लिये की हुई पूजा को कोई अधम क्षुद्र व्यक्ति प्राप्त कर ले। ऐसी पूजा सद्यः परम पुरुषार्थ देती है।

**भूर्भानुः शीतभानुर्बुधसितकुजगुर्वार्किराह्वादिखेटा,**
**एवं तारा अनन्ता निरवधिगगने येन सृष्ट्वा नियुक्ताः।**
**कक्षाकेन्द्रोच्चनीचप्रभृतिगतिभिदाभिन्नभावाः प्लवन्ते,**
**मन्ये तन्माययाऽद्धा प्रतिहतमतयः क्षुद्रदेवान् यजन्ते।।१५२।।**

चेतनानाम् पुरुषार्थलाभाय दोषनाशाय च कृता भगवत्सृष्टिर्ज्ञानदोषाद्दोष–वृद्धये जायत इत्याह–भूर्भानुरिति। भूरस्माकमाश्रयभूतेयं ससागरवनस्पतिपर्वत–वातचक्रचमत्कृता चतुरशीतिलक्षयोनिजीवातुभूता धरित्री, भानुः सूर्यः सकलगगनचरचङ्क्रमणकेन्द्रभूतो महान् ज्योतिष्पिण्डः, एवं शीतभानुश्चन्द्रो, बुधसितौ, सूर्यसंगिनौ ग्रहौ, कुजो भौमो, गुरुः सर्वजीवजीवन– हेतुर्वृहस्पतिः, आर्किःसूर्यपुत्रः श्रमक्लेशतपोमूर्तिः शनैश्चरो, राहुरपिण्डोऽपि चन्द्रविमण्डलगतः सचलस्थानविशेषो महाप्रभावो ग्रहः केतुश्च, एवम् एव रवेरपि महान्तोऽन्ता ज्योतिष्पिण्डास्तारकपदवाच्या असंख्याता, निरवधौ गगने येन परमात्मना सृष्ट्वा विरचय्य, गतिषु नियुक्ताः प्रवर्तिताः सन्तः, कक्षासु गतिपथेषु, केन्द्राणि शीघ्रफलमन्दफलहेतुभूतानि चलस्थानानि, उच्चनीचाख्यानि गतिविशेषजात–फलविशेषनियामकानि च चलस्थानानि, प्रभृतिपदेन वक्रमार्ग– गतिस्थानानि ग्राह्याणि, तैर्भिन्नाः परिवर्तिता भावा जातकशास्त्रोक्तास्तन्वादिभावा यैस्ते तथोक्ता अथवा दीप्तस्वस्थप्रमुदितादयो ग्रहावस्थाविशेषा अत्रभावपदेन विवक्षिताः, प्लवन्ते समेऽपि गगने मण्डूकादिवद् वानरादिवद्वा नवनवा गतीर्वहन्ति तस्य परमात्मन उक्तया अनन्तसृष्टिरूपया आश्चर्यभूतया मायया, अद्धा अनायासम्, प्रतिहतमतयो नष्टप्रज्ञाः क्षुद्रान् तस्यैव परमात्मनोऽल्पांशविशेषभूतान् देवान् रुद्रादित्यादीन् यजन्तेऽभीष्टलाभाय पूजयन्तीति मन्य इत्युत्प्रेक्षा।



भावार्थ – परमात्मा ने चेतनों के कल्याण के लिये अनन्त आश्चर्यमय विश्व की सृष्टि की है किन्तु अज्ञान के कारण चेतन उस परमात्मा को समझ भी नहीं पाते, तब सेवा क्या करेंगे। न समझ पाने के कारण अपने पुरुषार्थों से वंचित रहते हैं और अपने क्षुद्र पुरूषार्थों की प्राप्ति के लिये माया के वशीभूत सर्वथा असमर्थ मनुष्यों या अल्प सामर्थ्य वाले देवताओं की पूजा सेवा करते रहते हैं। यही बात प्रत्यक्ष दृष्टान्त से कह रहे हैं कि पृथिवी सूर्य चन्द्र बुध शुक्र मंगल गुरु शनि राहु आदि ग्रह और अनन्त गगन में अगणित महापरिमाण तारे बनाकर उनकी गतियों के लिये नियत दूरियों पर मार्ग निर्धारित कर उन्हें चलने को प्रेरित किया, तब से वे सारे ग्रह तारे नियमित चलते हुए अपनी कक्षाओं में कई केन्द्रविन्दुओं के माध्यम से अपनी गतियों में विविधता लाते हुए स्वयं दीप्त, स्वस्थ, प्रमुदित, शान्त, दीन, दुःखित, विकल, खल, कुपित जैसी अवस्थायें बनाते हैं और पृथिवीवासियों को भी अपनी अवस्थाओं से प्रभावित करते हैं, यही स्थिति अन्य देवताओं की भी होती है, इससे पृथिवीवासी मनुष्य मानने लगते हैं कि ये ग्रह और रुद्र आदित्य आदि ही हमारे देवता हैं और परमात्मा की पूजा छोड़कर उनकी ही पूजा करने लगते हैं। शास्त्रों से विदित है कि ये सारे ग्रह और देवगण परमात्मा की ही मूर्त्तियाँ हैं, अतः उन्हें परमात्मा मानकर पूजना चाहिये किन्तु जैसे बच्चे अपने माता पिता को केवल माता पिता मानते हैं, उन्हें परमात्मा नहीं मान पाते और उनकी अधूरी पूजायें करते और अल्प फल पाते हैं, ऐसे अन्य देवता ग्रहादि को परमात्मा न मानते हए उनका पूजा करते और अल्प ही फलों के भागी होते हैं। यही परमात्मा की माया का चमत्कार है।

**कट्वम्लक्षारभक्ष्याशनरचितरुचिः पायसैर्नैति तुष्टिं,**
**कृष्णः काको बको वा विमलजलमये मानसे नैति पुष्टिम्।**
**श्रीशं कारुण्यसिन्धुम्ब्रजति न शरणं निक्षिपन्नात्मभारम्,**
**निःसत्त्वः क्षुद्रसंगी त्यजति कपिमतिः स्फीतसन्मार्गचारम्।।१५३।।**

दुरदृष्टजनितः प्रकृतिसङ्गातिशयः श्रुद्राशाबन्धैर्मोक्षवाञ्छा निरुन्ध इत्याह–कट्वम्लेति। यथा कट्वम्लक्षाररसमयेषु भक्ष्येषु चर्वणीयेषु अशनेषु आहारेषु रचिता सम्पादिता रुचिः प्रीतिर्यस्य स तथोक्तो जनः पायसैः क्षीरप्रधानैराहारैस्तुष्टिन्तृप्तिं न एति न लभते, यथा वा कृष्णोऽधिककालवर्णो दीर्घशरीरः काको मीनलीनमानसो बको वा मानसे तन्नामसरोवरे पुष्टिं, स्वाहारलाभेन शरीरदार्ढ्यं न एति न लभते तथैव क्षुद्रेष्वर्थेषु जनेषु च सङ्गं

रोचयंस्तथोक्तो जनो निःसत्त्वः सत्त्वगुणाल्पतया, चंचलोऽत एव कपेरिव मतिर्यस्य स तथोक्तः सन् स्फीते सुखबोधे सन्मार्गे चारं स्वसञ्चरणं त्यजति, अतएव आत्मानं निक्षिपन्, कारुण्यसिन्धुं दयादिनानाशुभगुणसागरं, श्रीशम्भगवन्तं, शरणं न ब्रजति न स्वीकरोति। तस्मात् संसार एव जीवतीत्यर्थः।

**भावार्थ – हमारे निन्दित प्राचीन कर्म हमारी भावनाओं को क्षुद्रता से ऊपर उठकर उदार बनने में बाधक होते हैं, इससे कम लोग ही मोक्ष की इच्छा रखते और साधन अपनाते हैं, यही बात यहाँ दृष्टान्तों के साथ प्रस्तुत करते हैं कि चरपरा खट्टा नमकीन और चबाने योग्य कड़ा मोटा आहार पसन्द करने वाला व्यक्ति खीरान्नों से सन्तोष नहीं पाता, काला कौआ या बगुला उस मानस सरोवर में रहकर स्वस्थ नहीं रह सकता जहाँ उसके आहार के उपयुक्त गन्दगी न हो। इसी तरह सत्त्वगुण की कमी वाला व्यक्ति नीचों की संगति चाहता है और बन्दरों की भाँति चंचल होता है, वह उस कल्याणमय मार्ग पर चलना कभी नहीं चाहता जो सहज सुगम और सुलभ है, इसी से वह अनन्त दया आदि गुणों के सागर लक्ष्मीपति भगवान् नारायण पर अपना सब कुछ न्यौछावर करता हुआ उनकी शरण ग्रहण नहीं करता। क्षुद्र व्यक्ति यदि शरणागति करता पाया जाता है तो या तो वह वास्तव में उदार ही होता है या शरणागति का उपचार मात्र करता है। महान् धर्म का अंगीकार और पालन महान् लोग ही करते हैं।**

निष्पापाः श्रुत्यधीतप्रचुरसुकृतिनोऽप्यर्थकामेषु संगाद्,
यज्ञैर्मां तोषयन्तो हृदि दधति रुचिम्भूरिभोगेषु नाके।
सिद्धिं वाञ्छाऽनुरूपाम्प्रचुरसुखमयीम्प्राप्य भूयोऽपि भूमौ,
जातास्तत्सौख्यलोपादिव विहताधियः कुत्र कोऽहं रुदन्ति!।।१५४।।

ज्ञानाल्पतया चेतसि कामसंस्कारवशात् संकल्पशुद्ध्यभावात् सत्कर्मणामपि फलम् अल्पमेव भवति। संकल्पशुद्धये सत्फलाय तत्त्वज्ञानम्पोषणीयमित्याह– निष्पापा इति। निष्पापाः श्रुतिपथविश्रम्भरोधिपापरहिता अत एव श्रुत्यधीतानां श्रुत्येकावसेयानाम् प्रचुराणाम्बहूनां सुकृतानाम् अश्वमेघादिनानाप्रकृतिविकृतिरूपाणां यज्ञानां कर्तारो महान्त उक्तैर्यज्ञैर्मां सर्वयज्ञमूर्ति सर्वयज्ञभोक्तारञ्च तोषयन्तो मत्तोषान्मल्लाभम् मन्वाना अपि, हृदि सर्वसंस्काराश्रये मनसि, अर्थकामेषु विपुलभोगतत्साधनेषु संगात् अनिर्मूलिताद् रागात्, नाके स्वर्गैकलभ्येषु भूरिषु भुवि दुरापेषु भोगेषु ललितललनाऽऽलापालिङ्गनादिमयेषु, रुचिं प्रीतिं दधत्ति



धारयन्ति। तेन न संकल्पवचनानुरूपां नापि फलसम्बन्धिशास्त्रीय–यथार्थ–कल्पनाऽनुरूपाम् अपि तु कर्मसमये परस्तादपि चेतसि जाग्रत्या वाञ्छाया अनुरूपां प्रचुरसुखमयीं स्वर्ग एव सुलभां सिद्धिं कर्मपरिणामरूपम् फलम्, प्राप्यानुभूय, भूयः पुनरपि भूमौ भूलोके मनुष्यजातौ, जाता लब्धजन्मानः, तत्सौख्यस्य स्वर्गीयसुखराशेर्लोपात् सुचिरसम्यगनुभूतस्यापि सहसेव तिरोधानात्, विहतधियः स्वर्गसुखं स्वप्नदृष्टमिव मन्वाना, अहं कुत्रास्मि, कोऽहमस्मीतीव रुदन्ति, सुचिरपूर्वानुभूतप्रचुरसुखविलोपादिव क्रन्दन्ति।

**भावार्थ – जहाँ कार्य होता है वहीं उसका कारण भी रहता है, उस कारण के सर्वथा अनुरूप ही कार्य होता है। यह सर्वमान्य नियम है। इस नियम के अधीन ही संसारी चेतनों को चतुर्दश भुवनों में मिलने वाले सारे छोटे बड़े सुख और दुःख मिलते हैं। सभी कार्यो की निष्पत्ति में संकल्प प्रधान कारण होता है। सभी कर्मों की पहचान संकल्प से होती है न्यायालय में और राजदरबार में कर्ता के संकल्प की पूर्ण समीक्षा के बाद ही उसे दण्ड या पुरस्कार मिलता है। यही नियम परलोक के फलों में भी लागू होता है। माना जाता है कि क्षणध्वंसी कर्म ही अपने सर्वथा अनुरूप धर्म अधर्म नामक संस्कार कर्ता में उत्पन्न करता है जो फल मिलने तक रहता हुआ फल का कारण बनता है। लोभ मोह से तत्त्व–बोध ढकता है, उससे सङ्कल्प बिगड़ता है, उससे अपराध होते हैं और शुभ कर्म दूषित होकर अपने शुभ फलों में अवाच्छित परिवर्तन लाते हैं। इन तथ्यों को समझने वाले महापुरुष अपना तत्त्वबोध इतना जागरूक रखते हैं कि उसपर रागद्वेषों का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता और जो फल चाह कर कर्म करते हैं वही पाते हैं, अन्यथा फल में उलट फेर हो जाता है। यही बात प्रस्तुत श्लोक से कहते हैं कि जो निष्पाप महापुरूष वेदादिशास्त्रोक्त अनेक महान् यागों से भगवान् को सन्तुष्ट करते हुए भी हृदय में महान् उत्कट भोगों की लालसा रखते हैं वे अपनी लालसाओं के अनुरूप महान् स्वर्गादि सुख प्राप्त करते और पुण्य के क्षीण होने पर पृथिवी पर मनुष्य योनि में जन्म लेकर कहाँ–कहाँ की ध्वनि से रोते हुए मानो वे पूछते है कि मैं कहाँ आ गया और कौन हो गया हूँ। यदि उनका तत्त्वबोध सुदृढ होता तो यज्ञों का फल वास्तव भगवत्सन्तोष होता और वे मोक्षमार्ग में अग्रसर होकर फिर पृथिवी पर कभी नहीं लौटते।**

ये त्वाचार्यादिसङ्गाद् विषयविरसताम्ब्रह्मलोकेऽप्यगृह्णन्,
देहन्ते तत्त्वदृष्टिक्षपणचणमनर्थैकहेतुं व्यजानन्।

**श्रौतस्मार्तक्रियाभिर्नम इति वचसाऽऽराधयन्तो मुरारेः**
**पादद्वन्द्वम्पुमर्थम्परमसुखमयन्तत्प्रसादादवापुः।।१५५।।**

तदेव विशदयति–येत्वाचार्येति। ये तु पूर्वोक्तव्यतिरिक्ता अधिकारिणः आचार्यादीनां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तकल्याणपथानां सङ्गात् अनुरागाद् ब्रह्मलोकेऽपि स्वर्महर्जनस्तपःसंज्ञकेभ्यः क्रमादुत्तरोत्तररमणीयविषयेभ्यो देवानामपि स्पृहणीयेभ्य उपरि परमेष्ठिना सर्वज्ञानमयेनाधिष्ठितेऽपि विषयाणां शब्दादीनां विरसताम् दुष्परिणामताम्, अगृह्णन् अनुष्ठानपर्यन्तमवधारितवन्तः ते देहं शरीरम् आत्मनः परस्यापि तत्त्वदृष्टेर्यथार्थबोधस्य, क्षपणेन तिरोधानेन विदितम्, अनर्थानां निरयफलेषु कर्मसु क्षुद्रभोगेषु च प्रवृत्तीनां, हेतुं कारणं, विशेषेण अजानन् अगृहणन्, ते श्रौतस्मार्तक्रियाभिर्यज्ञदानतपोभिः नम इति वचसा मकारार्थस्य चेतनस्य मम इदं कर्म फलञ्च नैव भवति, सर्वान्तर्यामिणः परमात्मन एव तु सर्वमित्यर्थकेन, मुरारेः सकलासुरभावनिवारकस्य परमात्मनः परमसुखमयम् पुमर्थम् पुरुषैरभ्यर्थनीयम् पादद्वन्दम् चरणयुगलम्, तस्य मुरारेरेव प्रसादात् करुणया मुक्ताः सन्तोऽवापुः परमपदे निरतिशयानन्दमये परमप्रीतिविषयन्तत्साक्षादनुभवन्तः सन्तीत्यर्थः।

**भावार्थ – उक्त अर्थ का ही विस्तार करते हैं कि जो भाग्यशाली अधिकारी उत्तम आचार्यों के द्वारा श्रुतिस्मृतिपुराणों के रहस्य समझ चुके होते हैं वे जानते हैं कि पृथिवी से लेकर स्वर्ग तक और आगे ब्रह्मलोक तक भी जो भोग प्राप्त होते हैं वे सारे रसहीन है अर्थात् परिणाम में दुःखमय ही हैं, वे यह भी जानते हैं कि यह हमारा शरीर ज्ञान का कारण होता हुआ भी अपने स्वभाव से तत्त्वज्ञान को ढकता रहता है, दूसरे शरीर भी हमारा भ्रम बढाते रहते हैं, यह तथ्य ध्यान में रहने से वे कभी भी किसी भी विषय की ओर आकृष्ट नहीं होते और श्रुतिस्मृतिविदित यज्ञदानतपप्रभृति शुभ कर्मों से, नमः पद का उच्चारण करते हुए एवम् उस के तात्पर्य के रूप में अपना कर्तृत्व और फलसंग का त्याग करते हुए केवल परमात्मा के चरणयुगल का आराधन करते हुए परमात्मा की कृपा से ही उनके चरणयुगल मुक्तावस्था में प्राप्त कर लेते हैं।**

**ये नान्यत्प्रार्थयन्ते हरिचरणयुगाद् द्वन्द्वविश्रान्तिहेतोः,**
**स्वप्नेऽपि, श्रीधरन्तम्प्रणिपतनपराः श्रद्धयैवाऽर्चयन्ति।**
**तेषामन्यानपेक्षाविमलसुमनसाम्ब्रह्म चित्ते चकासत्,**
**प्रारब्धान्तेऽन्तरङ्गैः सखिभिरविषमैर्लभ्यते नाप्यपैति।।१५६।।**



तदेवपुनर्विशदयति–ये नान्यदिति। ये मुमुक्षवो द्वन्द्वानां सुखदुःखहेतु विषमदृष्टीनां विश्रान्तेस्तत्त्वबोधादपायस्य हेतोः कारणात् हरिचरणयुगात् भगवच्चरणयुगलात् अन्यत् स्वप्नेऽपि प्रमादाद्यवसरेष्वपि, उपायतया अन्यत्, न कामयन्ते न वाञ्छन्ति, प्रणिपतनं शरणवरणहेतुभूतं सर्वसमर्पणं, तत्परास्तन्निष्ठाः, तं श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं हृदि च विराजमानं, श्रीधरं श्रियःपतिम् परमात्मानं, श्रद्धया प्रीत्यतिशयेन, एव नतु यत्किञ्चित्फलाभिलाषेण, अर्चयन्ति सर्वोपचारैः सेवन्ते, तेषाम् उक्तानाम्, अन्यानपेक्षया भगवच्चरणयुगलातिरिक्तार्थकामनाऽभावेन, विमलं रागादिदोषरहितं, शोभनम् भक्तिविलसितम्, मनोऽन्तरङ्गं येषान्ते तथोक्तास्तेषां देवानामिव चित्ते हृदये, चकासत् प्रकाशमानम्, अन्तरङ्गैः सर्वहार्दानुभवपरैः अविषमैः अभिन्नसङ्कल्पैः सखिभिः सहायैः सहितम्, ब्रह्म परमात्मतत्त्वम्, प्रारब्धान्ते सर्वकर्मक्षयानन्तरम्, मिलति दृग्गोचरो भवति, न अपैति अपि समुचितसाम्येन नित्यं सन्निहितञ्चं भवति।

**भावार्थ – उक्त अर्थ का ही विस्तार करते हुए कहते हैं कि जो लोग मिथ्या सुखदुःखरूपी द्वन्द्व और उनके कारणभूत अज्ञान की निवृत्ति के लिये भगवान् के चरणकमलयुगल के सिवा दूसरा कुछ उपाय स्वप्न में भी नहीं चाहते और शास्त्रों के तथा शास्त्रज्ञों के हृदय में स्थित प्रसिद्ध परमात्मा लक्ष्मीपति नारायण की सेवा पूजा केवल श्रद्धा से करते हैं, कोई दूसरा फल हृदय से नहीं चाहते उनके उस पूर्ण वैराग्य से शुद्ध हृदय में सदा प्रकाशमान ब्रह्मतत्त्व अपने तुल्य सखा सूरियों के साथ प्रारब्ध के अन्त में मिलता है और फिर कभी भी अलग नहीं होता। सायुज्य मुक्ति हो जाती है।**

**भूरापश्चैव तेजांस्यथ सततगतिर्मातरिश्वाऽन्तरिक्षम्,**
**भूतादिर्यन्महत्तत्प्रकृतिरपि परा सर्वमेतद् दशघ्नम्।**
**पूर्वस्माद्यत्परन्तत्सकलमविकलं कोटिशो ब्रह्मगोलं,**
**कुर्वन्, क्रीडत्यजस्रं स तु सहजसखा नस्ततः का नु भीतिः।।१५७।।**

शरणवरणप्रवृत्तये भगवतोऽनन्तवैभवं नित्यसखित्वञ्चाह–भूरापइति। पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशतामसाहङ्कारमहत्तत्त्वमूलप्रकृतयः प्रकृतिविकृतिरूपा अष्टौ पदार्था उत्तरोत्तरदशगुणिता उत्तरोत्तरावरणभूताश्च ब्रह्माण्डगोलत्वेन परिणमन्ते। चतुरशीतिलक्षयेनिषु संसरद्भिः सकलजीवनिकायैः सचमत्कारमिदम्ब्रह्याण्ड– गोलकमसंख्यातम्। संकल्पमात्रेण परमात्मना किमपि सृज्यते किमपि पाल्यते

किमपि चोपसंहियते। एवं कोटिशो ब्रह्माण्डगोलं रचयन् उपसंहरंश्च सततं यः परमात्मा क्रीडन्नास्ते स नः समेषां संसारिणां चेतनानां सहजः स्वभावेनैव न तूपाधिना केनापि सखा शुभेच्छुरस्तीति का नु भीतिर्नरकादेरनिर्मोक्षस्य वा ऋते स्वप्रमादादित्याशयः।

भावार्थ – भगवान् के अनन्त वैभव के साथ चेतनों के प्रति सुहृद्भाव का ध्यान होने से शरणागति की प्रवृत्ति होती है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि पृथिवी जल तेज वायु आकाश तामस अहंकार महत्तत्त्व और मूल प्रकृति इन आठ तत्त्वों से ब्रह्माण्ड बनता है। इनमें पृथिवी से दस गुनी मात्रा जल की उससे दस गुनी तेज की उससे दसगुनी वायु की इसी क्रम से उत्तरोत्तर दसगुनी मात्रायें हैं जो पूर्व पूर्व को उत्तर उत्तर घेरे हैं। इस ब्रह्माण्ड में ही जीव चौरासी लाख योनियों में संसरण करते रहते हैं। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड़ों की सृष्टि रक्षा और लय करते हुए वह परमात्मा हमारे माध्यम से क्रीड़ा कर रहे हैं जो हम सारे चेतनों के स्वाभाविक सुहृद हैं, ऐसी स्थिति में जब कि सुहृद् होने से वे हमारा उद्धार चाहते ही हैं तो शरणागति करने यानी उनसे ही केवल अपनी रक्षा की प्रार्थना करने में कोई भय क्यों रह सकता है। भूल अपनी ही है कि हम अपने को और उस महान् परम सुहृद् को समझ नहीं पा रहे।

**तस्मिन् सख्यौ परस्मिन् यदि भवति सताम्प्रीतिरन्यानपेक्षा,**
**धैर्यम्प्राक्कर्मभोगे जडविषयगणोपस्थितौ चाप्रकम्प्यम्।**
**विश्रम्भश्चेभराजोद्धृतिविदितभजत्तत्परत्वेऽपि शश्वत्,**
**का शंकाऽशेषदोषक्षपणहरिगुणोदन्वदन्तः प्रवेशे।।१५८।।**

भगवद्गुणानुभवप्रवणतया शरणवरणप्रवृत्तिर्भवति रक्षा चात्यन्तिकी जायते इत्याह–तस्मिन्निति। तस्मिन्नुक्ते, परस्मिन् सर्वोत्कृष्टे, सख्यौ सर्वचेतनसुहृद्भूते, परमात्मनि यदि सताम् अवबुद्धस्वस्वरूपहितपुरुषार्थानाम्, अन्यानपेक्षा भगवदितरफलस्पृहां विना, प्रीतिरनुरागो भवति, प्राक्कर्मफलभोगे सुखदुःखमये समुपस्थिते एवं जड़े विषयगणे रागद्वेषहेतावपि समुपस्थिते, अप्रकम्प्यं निश्चलं धैर्यं स्वस्वरूपनिष्ठा च यदि भवति, इभराजस्य प्रसिद्धभक्तगजेन्द्रस्य, उद्धृत्या संकटवारणेन पुराणप्रथितेन, विदितम्प्रमाणितं यद् भजन्तम्प्रति हरेः शश्वत्तत्परत्वं तस्मिन् विश्रम्भो दृढविश्वासश्च यदि भवति तदा अशेषाणाम् मुमुक्षाविरोधिनां दोषाणाम् अपराधानां क्षपणे निवारके हरिगुणोदन्वति भगवद्गुणगणसमुद्रे



अन्तस्तत्त्वपर्यन्तम् प्रवेशेऽनुभवसातत्ये का शंका ? उक्तानान्त्रयाणाम्भावानां सत्त्वे भगवद्गुणानुभवधारया परमपुरुषार्थसिद्धिरबाधेत्यर्थः।

**भावार्थ – भगवान् के गुणों के अनुभव में विशेष रुचि और प्रवृत्तियों से चेतन के स्वभावसिद्ध शरणागति धर्म में प्रवृत्ति होती है, शरणागति पूरी भी होती है और अन्तिम रक्षा मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है, यही तथ्य सूचित करते हुए कहते हैं कि उस श्रुतिस्मृतिप्रसिद्ध अपने परम मित्र परमात्मा के प्रति यदि अन्य पुरुषार्थों की अपेक्षा के बिना अनुराग बना रहे, पूर्व कर्मों के फलस्वरूप होने वाले सुखदुःखमय घटनाओं पर तथा उपस्थित जड़ पदार्थों के प्रति नित्य उदासीनता बनी रहे एवम् अपने स्वरूप स्वभाव और कर्तव्य प्राप्तव्यों की स्मृति बनी रहे, तथा गजेन्द्रमोक्ष की घटना से प्रमाणित हो चुकी भगवान् की अपने भक्तों की रक्षा के प्रति नित्य तत्परता पर विश्वास बना रहे तो कोई कारण नहीं है कि भगवान् के उस महान् गुण–समुद्र के तल पर्यन्त अवगाहन में प्रवृत्ति न हो और उससे सारी संसार वासना रूपी पापों का अन्त न हो जाये और जिससे परमपुरुषार्थ सायुज्यमोक्ष की प्राप्ति न हो सके।**

**प्रीतिः क्षुद्रार्थजाते तदनुगुणविधिव्यूहमध्येऽपि लोके,**
**मोहान्धे दृश्यते तन्न खलु भवफलम् प्रोज्ज्वलं वष्टि जन्तुः।**
**जात्या सत्त्वोत्तरात्मा जगदिदमखिलं नीरसं नाशि पश्य–**
**न्नात्मोद्धाराय सन्तं कमपि गुरुगुणम्प्राप्य विन्दत्युपायम्।।१५६।।**

तर्हि कथं सर्वे न मुमुक्षन्तीत्याह–प्रीतिरिति। मोहेन अविवेकसिद्धेन विषयेषु मिथ्याऽनुरागेण, अन्धे तत्त्वदृष्टिविरहिते लोके सर्वजने, क्षुद्रे स्वल्पसुखे अर्थजाते शब्दादिविषये, तदनुगुणानां विधीनामुपायानां व्यूहस्य समूहस्य मध्येऽन्तरनिस्तारे, प्रीतिर्वाच्छा, दृश्यते व्यवहारैरनुभूयते, तत् तस्माद्हेतोर्जन्तुर्देही, प्रोज्ज्वलं निर्दोषम्, भवस्य स्वजन्मनः फलम् परिणामं न वष्टि नैवेच्छति। यस्तु जात्या जन्मनैव, सत्त्वोत्तरात्मा, प्रचुरसत्त्वगुणमयमना महापुरुष, इदंदृश्यमानम्, अखिलं सर्वमपि, जगत् संसारं, नीरसं वास्तवसुखशून्यं, नाशि नश्वरञ्च पश्यन् सततमवधारयन्, आत्मोद्धाराय मोक्षाय कमपि नवपरिचयं, गुरुगुणं गुरुभावोपयुक्तगुणराशिशुभ्रं, सन्तं तत्त्वहितपुरुषार्थविदम्, प्राप्य वृत्वा, तत उपायम् मुक्तिसाधनं, विन्दति लभते, मुच्यते चेतिभावः।

**भावार्थ – संसार सब को सताता है इससे संसार से छूटने की इच्छा सबको होनी चाहिये किन्तु ऐसा नहीं है। कारण यह है ज्यादातर लोग**

मोहवश क्षुद्रविषयों को ही सबसे ऊँचा स्थान दिये होते हैं, उनकी प्राप्ति के क्षुद्र उपायों में ही लगे रहते हैं, उनका चित्त जीवन के सर्वोपरि निर्दोष महान् फल मोक्ष का चिन्तन नहीं कर पाता। मोक्ष की चिन्ता तो वही कर पाता है जो जन्म से ही शुद्ध सत्त्वगुण की अधिकता से क्षुद्र विषयों को महत्त्व नहीं दे पाता और निरन्तर आत्मकल्याण के उपाय ही सोचता रहता है, उसे यह सारा संसार सुखहीन और नाशवान् दीखता है, वह सदा ऐसे किसी महान् आत्मा की तलाश करता रहता है जो उसे मोक्ष के सही उपाय से जोड़ दे। अपनी भावना के अनुसार प्रभुकृपा से वह ऐसा सन्त पा जाता है जिनसे स्वस्वरूप, परस्वरूप, फलस्वरूप, उपायस्वरूप और विरोधी स्वरूप इन पाँच अर्थों को ठीक से समझ कर उस महान् उपाय को अपना कर जीवन व्यतीत करने लगता है जो शरणागति नाम से जाना जाता है, जो सकलशास्त्रों का निष्कर्ष और वेदान्तों का मर्म है। उक्त उपाय से वह वर्तमान जन्म में ही कृतकृत्य हो जाता है।

**यज्जातं यत्कृतं यत्फलमशुभमयं यच्छुभं वाऽनुभूतं,**
**तस्मिन् सर्वत्र कृत्ये हरिरखिलवपुर्मुख्यकर्ता परात्मा।**
**तत्कर्तृत्वम्परस्मिन्नखिलमपि हरौ न्यस्य नष्टाभिमानो,**
**मुक्तेर्हर्म्यस्य मुख्यम्प्रविशति कृतधीर्द्वारमाचार्यनिघ्नः।।१६०।।**

प्रपत्त्यङ्गं स्वकर्तृत्वापनयमुपन्यस्यति—यज्जातमिति। स्वेन परेण वा सम्बद्धं शुभमशुभं वा यत्किमपि जातं, यद् वा स्वेन परेण वा कृतं, यत् कर्मफलम् अशुभमयं शुभं वाऽनुभूतं तस्मिन् सर्वत्र क्रियारूपे बोधरूपे वा कृत्ये कर्मणि अखिलवपुः सकलकारणकार्यशरीरः पर आत्मा ईश्वरो मुख्यः प्रधानभूतः कर्ता भवति। अन्येऽस्मदायस्तु प्रयोज्यभूताः शकटगावइव कर्तारो भवन्ति। तत् तस्माद् हेतोः अखिलम् अपि कर्तृत्वम् परस्मिन् सकलकारणकार्यनियामके हरौ परमात्मनि न्यस्य वस्तुतः स्थितं जानानोऽत एव नष्टस्वकर्तृत्वाभिमानदोषः कृतधीः सदाचार्यसम्पादितसन्मतिः आचार्यनिघ्नस्तद्दिष्टप्रज्ञापथो मुमुक्षुः, मुक्तेर्हर्म्यस्ये—वावस्थानविशेषस्य, मुख्यम् प्रधानभूतं द्वारमिवावस्थाविशेषम् प्रविशति। तेन मुक्तिस्तस्य लब्धैव भवतीति भावः।

भावार्थ — शरणागति का भाव तभी बन पाता है जब अपने में कर्तापन का भाव नहीं रह जाता। वास्तव में संसार में जो भी कुछ कार्य हो रहा है, हो चुका है या होने वाला है वह सब केवल परमात्मा के सत्य संकल्प के



अधीन है। कहावत प्रसिद्ध है कि उनकी इच्छा के बिना कोई पत्ता भी नहीं हिलता। इस स्थिति में उस प्रधान कर्ता को भूलकर परिस्थितियाँ बन चुकने पर एक क्षण के लिये, उस सर्वनियन्ता के संकल्प से आये हुए औपाधिक कर्तृत्व से अपने को कुछ कुछ माने रहना अज्ञान का ही प्रभाव है। इस अज्ञान को उक्त यथार्थ ज्ञान से दबाकर स्वयं को अन्य कुछ न मानते हुए केवल प्रभु का एक छोटा सा माध्यम मात्र माने रहना उचित है। तब मुक्ति के उपाय कौन करेगा ? इस प्रश्न पर उत्तर यही होगा कि किसी चेतन की मुक्ति एक महान् कार्य हैं, उसे तो वह महान् तत्त्व परमात्मा ही कर सकते हैं। फिर भी उपाय तो करने ही होंगे ? इस प्रश्न का भी वही उत्तर है कि यदि कोई उपायनिष्ठ मिलता हो तो मानना चाहिये कि परमात्मा उससे उपाय करा रहे हैं। उपाय कराना मोक्षमार्ग में आगे बढाना है। उच्छृंखल प्रवृत्तियों से भरे इस असार संसार में संयमी जितेन्द्रिय यदि कोई मिलता है तो वह प्रभु की विशेष कृपा का ही फल है। इस प्रकार अपने में कर्तापन का भाव कभी न हो पाना और परमात्मा को ही सर्वकर्ता माने रहना मोक्ष रूपी अभेद्य किला के मुख्यद्वार में प्रवेश के तुल्य होता है। आगे मुक्ति सुलभ होती है।

**वित्ताद्यर्थम्प्रयस्यन्फलमपि कलयन्नन्नमुख्यं किलाश्नन्,**
**होमं दानन्तपो वा फलरुचिसहितं यच्च कुर्वन् विरागम्।**
**कृत्ये सर्वत्र तस्मिन् क्वचिदपि न वहंश्चेतसा कर्तृभावं,**
**साक्षीवावस्थितोऽसौ दुरितजलनिधिं हेलया तर्तुमीष्टे।।१६१।।**

उक्तमेवार्थं विशदयति—वित्ताद्यर्थमिति। वित्तार्थं सुखार्थं यशोऽर्थं वा प्रयस्यन् यतमानः फलमपि प्रयासस्य अन्नं वसनं सुवर्णं वा कलयन् लभमानः, अश्नन् भुञ्जानो वाऽन्नादिकम्, अपि च फलेच्छया निष्कामं वा होमं दानं तपो वा कुर्वन् उक्ते सर्वत्र कृत्ये क्वचिदपि स्वस्य कर्तृभावम् मनसा न वहन्, अहंकरोमीति धियम् अकुर्वन्, साक्षीव द्रष्टेव अवस्थितोऽविचलः क्वचिदपि रागं रोषं वाऽवहन् असौ मुमुक्षुः दुरितजलनिधिम् अज्ञानहेतुपापसमुद्रम्, हेलयैव अनायासमेव तर्तुम् लङ्घितुम् ईष्टे समर्थो भवति।

भावार्थ — उक्त अर्थ को ही स्पष्ट करते हैं कि मुमुक्षु अधिकारी धन मान यश के लिये धर्म के लिये या परोपकार के लिये कोई भी प्रयत्न करता है और फल प्राप्त करता है, फलों का उपभोग या रक्षा करता है, दान तप होम आदि धर्मकृत्य फल की इच्छा से या निष्कामभाव से करता है तो उन

सारे कृत्यों में कहीं भी यदि अपने को कर्ता न माना करे, केवल अपने द्वारा श्वास प्रश्वास की तरह उन्हें होता हुआ समझे तो वह अज्ञानकारी पाप समुद्र को खेल खेल में ही पार कर सकता है।

**मुख्यः कर्ता परात्मा स्ववशचिदचितौ योजयन् कृत्यजाते।**
**जीवास्तस्य प्रयोज्या अपि फलमखिलम्बुद्ध्ययोगाल्लभन्ते।**
**बुद्ध्या तत्त्वार्थवत्या सुनियतकरणः कर्म कुर्वंस्तदर्थं,**
**निर्मुक्तः कर्मजालात् प्रियसुहृदमरं श्रीधरं शं श्रयेत।।१६२।।**

तदेवाह–मुख्यःकर्तेति। स्वस्य वशौ अधीनस्थितिगतिप्रवृत्ती, चिदचित्तौ देहिनो जडार्थांश्च, कृत्यजाते विहितनिषिद्धेषु वाञ्छितेषु च सर्वेष्वेव कर्मसु, योजयन् ''सर्वस्य चाहं हृदि'' इत्युक्त्या तत्तत्सङ्कल्पवाञ्छायत्नानि जनयन्, परात्मा ब्रह्मैव मुख्यो निजेच्छैकाधीनसकलप्रवृत्तिनिवृत्तिः, कर्ता तत्तदुपादान– गोचरापरोक्षज्ञान– चिकीर्षाकृतिमान् भवति। फलमपि स्ववाञ्छितं स एवानुभवति। जीवास्तु तस्य ब्रह्मणः, प्रयोज्यास्तत्सङ्कल्पाधीनप्रवृत्तिनिवृत्तयोऽतः फलभागिनोऽपि बुद्ध्ययोगात् स्वस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिनिवृत्तिषु भगवत्सङ्कल्पैका– धीनत्वबोधाभावेन स्वस्य मुख्यकर्तृत्वभ्रमात्, अखिलं शुभमशुभञ्च फलं स्वप्नतुल्याबोधदशावशतया लभन्ते प्राप्नुवन्ति। अथ च तत्त्वार्थवत्या सन्मात्रस्वस्वरूपविषयया बुद्ध्याऽनु– वर्तमानया, सुनियकरणो वशीकृतसकलेन्द्रियः सन्, तदर्थम् भगवदेकसन्तोषाय तदीयैरेव करणैस्तत्प्रयुक्तैः, कर्म नित्यनैमित्तिकोपासनारूपं, कुर्वन् विदधान एव कर्मजालात् प्राचीनाज्ञान– जनितविद्याविरोधिशुभाशुभकर्मसमूहात् अरं शीघ्रमेव, निर्मुक्तो निवृत्तसम्बन्धः सन्, प्रियं सुहृदम् अनादिशुभेच्छुं, श्रीधरम् भगवन्तं, शं कल्याणस्वरूपं, श्रयेत शाश्वतशेषत्वसम्बन्धानुरूपमुक्तैकसाध्याविच्छिन्नकैङ्कर्याय परिपूर्णोत्सा– हश्रद्धावशतया वृणीत।

**भावार्थ – विश्व में जो कुछ शुभाशुभ इष्ट अनिष्ट घटनायें छोटी या बड़ी हो रही हैं, उन सबका प्रधान कर्ता परमात्मा हैं, जीव उनके प्रयोज्य कर्ता हैं। प्रयोज्य कर्ता वह होता है जो दूसरे किसी के द्वारा बनायी परिस्थितियों के अनुसार कोई क्रिया करता या छोड़ता है। जैसे मानव के अधीन पशु या नौकर या शिशु। मानव अपनी इस ईश्वराधीनता को सदा वैसे ही भूला रहता है जैसे चरवाहे के इशारे पर कहीं चर रहे पशु। विधाता ने आत्मकल्याण के लिये मानव को शास्त्र दिये हैं जिनसे वह अपनी उन्नति कर सके। किन्तु पशु**



**प्रवृत्ति वाले मानव ऐसा नहीं कर पाते। कुछ संस्कारी जन ही शास्त्रों की सरणि पर मन देते और चलते हैं। जो महापुरुष शास्त्रों से अपनी ईश्वराधीनता पर जितना ही ध्यान दे पाते हैं उतना ही उनके कष्ट घटते और शान्ति प्राप्त होती है। शान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने पर मोक्ष भी मिल जाता है। जब तक शास्त्रों का सहारा न लिया जाता और अज्ञान बना रहता है तब तक स्वयम् अपने को स्वतन्त्र कर्ता मानने के फलस्वरूप शुभाशुभ कर्मों के फल मिलते ही रहते हैं, संसार बना ही रहता है। अपनी ईश्वराधीनता जान चुकने पर अशुभ कर्म स्वतः रुक जाते हैं, परिस्थिति वश कुछ अशुभ हो चुकने पर भी भावना के शुद्ध रहने के कारण अशुभ फल नहीं मिलते। शुभ फल भी इच्छा न होने से प्राप्त नहीं होते और कर्मों का उपर्युक्त रहस्य सदा ध्यान में रहने से विषयवासनाओं का स्वतः क्षय होता रहता है और मोक्ष का मार्ग स्पष्ट हो जाता है, प्रगति होती है और अन्तिम सफलता मिल जाती है।**

**कर्तृत्वम्मुख्यमीशे सकलतनुभृताम्भोक्तृभावोऽपि तद्व–**
**ज्जीवानां हर्षशोकात्मकविविधभिदाः सर्वभोगाः परस्मिन्।**
**आनन्दं वर्धयन्तीत्यनुदिनमविदन् प्रीणयन्नात्मनाथं,**
**हृष्यन् क्लिश्यंश्च जीवो यदि भजति गुरुं विद्यया याति पारम्।।१६३।।**

चेतनानाम्प्रतीयमानं कर्तृत्वमिव भोगा अपि परस्येशितुरानन्दवर्धकतया प्राधान्यं तस्यैवेति विदन् स्वसुखदुःखतद्धेतुषूदासीनतया सदा शान्त एव सन् सदाचार्यलब्धयाऽऽत्मविद्यया मुमुक्षुर्भवसागरस्य पारं गच्छतीत्याह– कर्तृत्वम्मुख्यमिति। मुख्यं कर्तृत्वम् ईश इति पूर्वोक्तम्, अथ सकलतनुभृताम् भोक्तृभावोऽपि तद्वद् इति वेद्यम्, कथमिति चेदुच्यते, जीवानां हर्षशोकात्म– कासंख्यभेदयुताः सर्वेपि भोगाः सुखदुःखानुभवा, लीलाविभूतौ प्रधानार्थतया परस्मिन् ब्रह्मणि आनन्दं वर्धयन्ति, इत्यमुमर्थम् अविदन्नजानानो जीवोऽनुदिनं हृष्यन् प्रसीदन् क्लिश्यंन् दुःखान्यनुभवंश्च, फलतयाऽऽत्मनः स्वस्य नाथं स्वामिनम्पर– मात्मानम् प्रीणयन् तत्सन्तोषफलकान्येव कर्माणि ज्ञानीव कुर्वन्, ज्ञानोत्तरं करणीयम् पूर्वमपि कुर्वन् इति भावः। स यदि गुरुम् भजति सेवते, शुश्रूषते शास्त्राणि, तदा तदनुग्रहलब्धया आत्मनो विद्यया तत्त्वबोधेन पारम् कर्तव्यानाम् अन्तम् परमम्फलं याति लभत इत्यर्थः।

**भावार्थ – तत्त्वदर्शी साधक यदि आजीवन केवल भगवान् की प्रीति के लिये कर्म करता है तो वह कर्मबन्धन से छूटकर मुक्त हो जाता है यह**

सर्वसम्मत सिद्धान्त हैं। किन्तु अज्ञान अवस्था में हम जो कर्म करते हैं और उनसे आनुषंगिक प्रासंगिक या मुख्य जो भी शुभ अशुभ फल पाते हुए सुखी दुःखी होते हैं, हमारा वह सुखदुःख भी भगवान् को उत्तम सन्तोष ही देता है, क्योंकि उनकी इस लीलाविभूति में हमारे सुखदुःखों से अधिक महत्त्व की कोई बात नहीं है। इससे यदि उन्हें सन्तोष न होता होगा तो यह जगत् उनकी विभूति नहीं मानी जायेगी। इससे हम यह मानते हैं कि तत्त्वबोध प्राप्त करके हम जो भी कर्म ईश्वरार्पण भाव से करेंगे वह आज भी उक्त भाव के बिना कर ही रहे हैं, हम भले अपनी ओर से उन्हें अर्पित न करें पर उन्हें वह सुख तो ''सर्वदेवनमस्कारः केशवम्प्रति गच्छति'' इस नीति से प्राप्त होता ही रहता है। ऐसी स्थिति में जबकि हमारे सुखदुःखानुभव और उनके उपायरूप कर्मों से भगवान् सन्तुष्ट हो ही रहे हैं, तो तत्त्वबोध होने के बाद उन्हें अगली सन्तुष्टि अनायास ही हो जायेगी। मोक्ष के लिये हमारी ओर से जो जो कुछ होना चाहिये उसमें आधा हो रहा है और आधा उनकी ही कृपा से सदाचार्य की प्राप्ति और सदाचार्य की कृपा से, वास्वत में सदाचार्य का वेश धारण किये परमात्मा की कृपा से संसार का पार भी मिल जायेगा। इस तरह भगवान् से अपनी अत्यन्त निकटता का अनुभव भी परमपुरुषार्थ में सहायक होता है।

**सम्यङ् न्यस्यन् परस्मिन् गुरुगदितदिशा कर्तृभोक्त्रादिभावान्,**
**विद्याशुद्धान्तरङ्गो यदि भवति जगत्यत्र कश्चिद्विपश्चित्।**
**तत्सम्बन्धाज्जनानाम्ब्रजति किल लयं सत्वरम्पापवार्धिः,**
**सृष्टाविष्टस्य सद्यो भवति भगवतश्चाञ्जसा तेन सिद्धिः।।१६४।।**

उक्तम् भगवति कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यर्पणं न्यासविद्यया गुरुमुखलब्धया यदि कश्चितत्त्वज्ञः कुर्वन् भवति तदा तत्संसर्गाद् अन्येषामपि पापानि नश्यन्ति, तत्पापानान्तु का कथेत्याह–सम्यगिति। अत्र जगति विद्ययाऽऽत्मविषयिण्या शुद्धान्तरखः कामादिदोषापमेन निर्मलचेताः कश्चिदपि विपश्चित् स्थितप्रज्ञो मुमुक्षुर्यदि गुरुणा शास्त्ररहस्यविदाऽऽचार्येण गदितयोपदिष्टया दिशा रीत्या भावनाविशेषेण कर्तृभोक्त्रादिभावान् शारीरवाचिकमानसकर्मकलापं, सम्यग् दृष्टतत्त्वानुसारमप्रमादम्परस्मिन् ब्रह्मणि न्यस्यन् तत्रैव प्राधान्येनावस्थिम्मनसेक्षमाणो, भवति समुपलभ्यते, तदा तस्य सम्बन्धात् गुरुशिष्यसेवकसुहृदादिभावात् जनानामज्ञानिनामपि, पापबार्धिर्दुरितसमुद्रो लयं समूलविनाशम्, व्रजति किलेति प्रसिद्धम्। अथ च भगवतः परमात्मनो जगत्सृष्टौ संसाररचने, इष्टस्य वाञ्छितस्य



महार्थस्य चेतनोद्धाररूपस्य, तेनैवाधिकारिणा अञ्जसाऽनायासं सद्योऽविलम्बं सिद्धिः उपलब्धिश्च भवतीत्यन्वयः।

अनर्घरत्नं जगदम्बुराशेः क्षीराम्बुधेः कौस्तुभवन्मनोज्ञः।।
विष्णोस्त्रिलोक्यां क्वचिदेव लभ्यः सर्वोपमोत्तीर्णगुणो मुमुक्षुः।।

**भावार्थ – परमात्मा में सकल कर्तृत्वभोक्तृत्व भावों का सदाचार्य के निर्देशन में उनकी कृपा से प्राप्त न्यासविद्या से विधिवत् न्यास कर रहा, शुद्ध हृदय वाला कोई स्थितप्रज्ञ मुमुक्षु यदि संसार में कहीं मिलता है तो उससे सम्बन्ध रखने वाले औरों की भी पापराशि नष्ट हो जाती है। एवम् उस अधिकारी के द्वारा शीघ्र ही परमात्मा का वह चेतनोद्धाररूप महान् उद्देश्य भी पूरा हो जाता है जो सृष्टि रचने के पीछे रहता है। इस तरह वास्तव मुमुक्षु इस संसाररूपी समुद्र का एक महान् रत्न होता है।**

**नार्याः कांश्चिद्विशेषानवगतवति या दृश्यते सङ्गधारा,**
**द्यूतादौ या प्रवृत्तिः प्रभवति नितरां स्वर्णसंकल्पमात्रात्।**
**कीर्त्यर्थं यो हिमाद्रेः सितशिखरशिरोरोहरागो बहूनां,**
**तद्रागांशं च विष्णौ न दिशति कुधियां हन्त ! वेदान्तचिन्ता।।१६५।।**

ननूक्तं सर्वार्पणम्भक्तेरेवाऽस्ति काऽपि विधा। साऽस्तु नाम, किन्तु मोक्षस्तु तत्त्वज्ञानादेव केवलाद् भवति। भक्तिस्तत्त्वज्ञानप्रतिबन्धकचित्तदोषापनये हेतुर्भवत्विति प्रतिजानतः प्रत्याहनार्या इति। नार्या रमण्याः, कॉँश्चिद् रूपलावण्यादीन्, अवगतवति कामिनि, या सङ्गस्यानुरागस्य, धारा सातत्यं, दृश्यतेऽनुभूयते, किं वा स्वर्णलाभसङ्कल्पमात्रात् न तु तत्प्रमितेः, द्यूतादौ स्वर्णलाभहेतौ, या प्रवृत्तिः प्रयत्नो नितराम् अबाधम्, प्रभवति प्रथते, अथवा केवलं कीर्तिलाभार्थं, केषाञ्चित् हिमाद्रेः क्लेशमयस्य तुहिनपर्वतस्य, सितशिखरे हिमैकवेष्टित ऊर्ध्वभागे, रोहे आरोहणे, रागस्तज्जाऽञ्जसा प्रवृत्तिश्च या दृश्यते, तस्य रागस्य, अंश लेशम् अपि, हन्त ! खेदोऽयं यत् कुधियां विषयैकनिष्ठानां, नृणां वेदान्तवाक्यानां चिन्ताऽनुशीलनं, न दिशति न जनयति। भगवत्तत्त्वबोधकं वेदान्तशास्त्रम् भक्त्योधवर्धकमपि कुमतिचेतसि भक्तिलेशमपि न तनोतीति महान् खेद आश्चर्यं चेतिभावः। नहि वेदान्तादपरम्भगवत्तत्त्वबोधकम्प्रमाणमस्ति, नापि तत्त्वबोधात्प्राग् भक्त्युदय इति वेदान्तविदो भक्ता एव स्युरभक्ताश्चेन्न वेदान्तिन इत्याशयः।

भावार्थ – भगवद्भक्ति से चित्तशुद्धि होती है तब तत्त्वबोध होता है, उससे अज्ञान का नाश होता है। यह निर्विवाद हैं किन्तु उस अज्ञान–नाश से भगवान् के प्रति अचल भक्ति उत्पन्न होती है तभी उक्त सर्वसमर्पण होता है। जो लोग तत्त्वज्ञ माने जाते हैं उनमें यदि भक्ति लक्षित न हो तो समझना चाहिये कि उनका तत्त्वबोध केवल वाणी में रहता है, हृदय को नहीं छूता, इससे उनमें समर्पण का भाव नहीं होता और वे मुक्ति से बहुत दूर होते हैं यही तथ्य सूचित करते हुए कहते हैं कि युवक को स्त्री की कुछ ही विशेषतायें ज्ञात होती हैं, वह उसका मर्मज्ञ नहीं होता, फिर भी उसमें उसका अनुराग जारी रहता है, इसी तरह जुवाड़ी धनलाभ की कल्पना मात्र रखता है जीतने का कोई निर्णय उसे नहीं होता, फिर भी सर्वस्वनाश तक वह जुआ खेलता रहता है, ऐसे ही कोई पर्वतारोही केवल यह मानकर कि चोटी पर पहुँचने से नाम हो जायेगा, चोटी तक पहुँचने में देरतक श्रम करता रहता है इस प्रकार लौकिक अल्प फलों के सम्बन्ध में अल्पज्ञान रहने पर भी स्थायी इच्छा और प्रयत्न देखा जाता है, ऐसी स्थिति में जो लोग वेदान्ततत्त्वचिन्तन में लगे रहते हैं उन्हें भगवद्भक्ति क्यों नहीं होगी, भक्ति के बिना समर्पण कैसे होगा और समर्पण के बिना भवबन्धन कैसे छूटेगा। वास्तव में विषय–विदूषित चित्त में तत्त्वबोध ठहरता नहीं, फिर भी उस अवस्था में तत्त्वकथन यदि देखा जाता है तो वह स्वप्नकालिक प्रलाप के तुल्य निद्रित तत्त्वकथन हो सकता है।

**साधुत्वं साधु भक्तिर्भगवति गदिताऽसाधुता तद्विहानं,**
**भक्तिस्तत्त्वार्थनिष्ठा भगवदभिमताऽतत्त्वनिष्ठस्त्वसाधुः।**
**तत्त्वज्ञाने यतन्तो भुवि हि सुमतयो यत्स्थिरन्तत्त्वमापु–**
**स्तन्निष्ठैकप्रचारप्रयतनयशसा तेऽनु जीवन्ति शुभ्रम्।।१६६।।**

भगवद्भक्तिरेव लोके साधुत्वमित्याह–साधुत्वमिति। भगवति साधु भक्तिः साधुत्वम् इत्युच्यत इति शेषः। अथ तद्विहानम् भक्तित्यागः, असाधुता गदिता सद्भिरुक्ता। अथ भक्तिः केति चेत् भगवदभिमता तत्त्वार्थनिष्ठा सा, अतोऽतत्त्वनिष्ठस्तु पुरूषोऽसाधुर्ज्ञेयः। भगवता वेदाद्युपनिषत्सु जगन्मूलन्तत्त्वं यथा प्रतिपादितन्तथा प्रतिपत्तिर्भगवदाज्ञापालनतया भक्तिरुच्यते। यस्तु श्रुत्वापि तथा प्रतिपत्तिं न करोति स भगवतोप्युपदेशमुपेक्षमाणोऽभक्तो ज्ञेय इत्यर्थः। तन्मूलतत्त्वम्परमप्रेमास्पदतयैव प्रतिपाद्यत इत्याह–तत्त्वज्ञाने यतन्तइति। हि यतो जगन्मूलभूतस्थिरतत्त्वबोधाय कर्मज्ञानध्यानाद्युपायैः प्रयतमानाः सुमतय ऋपयो



यत् स्थिरं विनश्यत्स्वविनश्यत् तत्त्वम् आपुः प्रमितवन्तः, तन्निष्ठायां तदेकोपायोपेयभावे एकस्मिन् प्रधानभूते प्रचारे प्रयत्नम् उद्यमो यद्यशस्तेन ते शुभ्रम् उज्ज्वलं यथा स्यात्तथा अनुजीवन्ति आजीवनम्भगवद्भक्तिप्रचारैकप्रयोजना व्यासपराशरशुकादयोऽद्यापि निगमाननुयान्तो शुभ्रयशःशरीरा जीवन्तीत्यर्थः। तेषां यश एवास्माकं शोधितः पन्थाइति भावः।

भावार्थ – अच्छी स्थिति वाला व्यक्ति या कोई वस्तु या कर्म साधु कहा जाता है। चेतन की सबसे अच्छी स्थिति उसका अपने नित्य सखा स्वामी नियामक परमात्मा के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा होती है। सारी घटनाओं के प्रधान कर्ता और उनके प्रथम दूसरे तीसरे आदि परिणामों के भोक्ता के रूप में परमात्मा को स्वीकार करना उनके प्रति सम्पूर्ण निष्ठा है। इससे वैराग्य, सत्संग, सत्कर्म, मुक्ति के उपाय समझना, उपाय करना, उपायों का फल मोक्ष, और उसका फल नित्य आनन्द की उपलब्धि और उससे पूर्ण सन्तुष्टि यह सब परमात्मा की कृपा संकल्प और उनके ही प्रयत्नों से उनकी ही सन्तुष्टि के लिये होता है, ऐसी मान्यता बनती है। मुक्त पुरुष को मिलने वाला सहज आनन्द परमात्मा के आनन्द की वृद्धि करता है, वैसे ही जैसे उत्तरायण में सूर्य की रश्मियों में वृद्धि होती है। इस प्रकार जैसे अपरा प्रकृति की सारी अवस्थायें परमात्मा की विभूति के अन्दर हैं वैसे ही परा प्रकृति चेतन तत्त्व, जिसे भगवान् ने गीता में जीवभूताम् कहा है, उसकी भी सारी अवस्थायें उनकी विभूति के ही अंश हैं। सारा विश्व और इसमें घटने वाली जड़चेतन तत्त्वों की सारी स्थूल सूक्ष्म अवस्थायें भी परमात्मा के संकल्प के अधीन हैं। यह उक्त सम्पूर्ण निष्ठा का आधारभूत भाव है। आगे परमात्मा के करुणा क्षमा सौहार्द सौशील्य वात्सल्य आदि कल्याणमय अनन्तगुणों का अनुभव उक्त भाव को भक्ति का रूप दे देता है। अनुभव की प्रचुरता से भक्ति दृढ होती है। परमात्मा अपनी कृपा के लक्ष्यभूत चेतनों को उक्त दृढभक्ति प्रदान करने के लिये पराशर व्यास शुक आदि रूप लेकर वेदादिशास्त्रों के रहस्यभूत अर्थों का उपदेश देते हैं। उन उपदेशों को समझकर निष्ठावान् होना साधुता है, निष्ठा न पा सकना असाधुता है। जगत् के मूलभूत तत्त्व परमात्मा को अनन्त कल्याणगुणसागर के रूप में प्रथित करते हुए सारा जीवन व्यतीत करके अपनी धवल कीर्ति से उक्तपराशर व्यासशुकादि असंख्य ऋषि मुनि आज भी श्रुतिपथ में अमर हैं। उनकी कीर्ति के प्रकाश में ही हम अपना कल्याणमय मार्ग प्राप्तकर सकते हैं।

**तत्त्वं जग्राह कश्चिद्यदि गुरुवचसा सत्त्ववृद्ध्या सुपुण्यैः,**
**सत्संगात्सत्प्रसादादथ हरिदयया तस्य दुर्वृत्तभंगः।**
**भक्तिस्तस्मिन्नबाधा वहति सुरसरित्तेन बन्धे प्रलीने,**
**ज्ञानानन्दाब्धिभावं हरिरिव भजते युज्यते तेन शश्वत्।।१६७।।**

तत्त्वबोधमहिमानमाह—तत्त्वमिति। यदि कश्चित् पुमान् सुपुण्यैर्भवबन्धध्वंस हेतुसुकृतैः, सत्त्वगुणस्यान्तःकरणे वृद्ध्याऽतिरेकेण, सत्तत्त्वजिज्ञासया सतां लब्धात्मस्वरूपबोधानां, सङ्गाद् अनुरागश्रद्धासेवाभिः, सतां तेषाम्, प्रसादात् आनुकूल्यविशेषात्, अथानन्तरं हरेरन्तर्यामिणः परमात्मनो, दययाऽसामान्यकरुणया, गुरुवचसा अनादेर्गुरोः परमात्मन उपनिषद्रूपया सदाचार्यलब्धया गुरुभूतया वचसा मन्त्ररूपया, तत्त्वम् अपरिणामि जगन्मूलभूतं तत्त्वं जग्राह भ्रमसंशयविपर्ययराहित्येन यथाशास्त्रमवगतवान् स्यात्, तदा तस्य दुर्वृत्तानां विषयैकप्रावण्यरूपाणां—दुश्चरितानाम् भङ्गोऽवरोधो जायते। अथ तस्मिन् अन्तःकरणे अबाधा बाह्यार्थराहित्येन, भक्तिः सुरसरिद्इव प्रवहति तेन कर्मबन्धे, प्रलीने विनाशमुपगते, हरिरिव परम्ब्रह्मेव, ज्ञानानन्दयोः, अब्धिभावम् अक्षयनिधित्वम्, भजते लभते, तेन हेतुनैव परमात्मना शश्वद् युज्यते साम्यम् आपद्यते। भगवत्सायुज्यरूपम् मुख्यम् मोक्षम् आप्नोतीत्यर्थः।

**भावार्थ — तत्त्वज्ञान की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि पूर्वजन्म के किसी उत्तम पुण्य के प्रभाव से अन्तःकरण में सत्त्वगुण का विकास होता है जिससे कल्याणकारी तत्त्वों की जानकारी होती है। तब सत्पुरुषों के प्रति श्रद्धा और अनुराग प्राप्त होता है, उनकी कृपा से तत्त्वबोध होता है, तब भगवान् की कृपा होती है और सदाचार्य की एवम् उनकी कृपा की प्राप्ति होती है तब बन्ध मोक्ष तत्त्व का बोध और मोक्षोपाय का बोध और अनुष्ठान होता है। तब उसकी प्रवृत्तियाँ सुधर जाती हैं और क्षुद्रविषयों की स्पृहा से होने वाली चेष्टायें रुक जाती हैं। तब हृदय में भगवद्भक्ति की गंगा बहने लगती हैं, इससे कर्मबन्धन नष्ट होता है, तब परमात्मा के समान ही जीव भी ज्ञान और आनन्द का समुद्र हो जाता है, फिर समता से समानअनुभव प्राप्त होता है। यही सायुज्य मोक्ष कहा जाता है।**

**भाक्तिर्भव्यान्तरंगे क्व च यदुदयते दीप्यते तत्र देवो,**
**निर्दोषो दीप्रनानागुणगणविभवः सर्ववित्सत्यकामः।**



**विश्वसृष्ट्यादिहेतुः सुरसरसि लसत्पुण्डरीकाभनेत्रो,**
**नित्यन्निर्हेतुदीव्यत्सजलजलधरस्पर्धिदिव्यांगसेव्यः।।१६८।।**

भक्तिरेव भगवत्साक्षात्कार इत्याह—भक्तिरिति। यद् यदि क्व च दिव्ये शुभसंस्कारमये अन्तरङ्गे चेतसि, भक्तिर्भगवति प्रीतिरुदयते प्रादुर्भवति, तत्र चेतसि, निर्दोषः प्रकृतिसंसर्गजावद्यरहितो, दीप्राः प्रकाशमानाः प्रत्यक्षतयेवानुभूयमाना, नाना गुणानां दयाक्षमावात्सल्यादीनां विभवो विस्तारो यस्य स तथोक्तः, सर्वं विन्दति सर्वहेतुतयासर्वमयोभवतीति तथा, सत्याः कामा मनोरथा यस्य स तथा, विश्वस्याखिलब्रह्माण्डानां, सृष्ट्यादेः सृष्टिरक्षासंहाराणां, हेतुरभिन्ननिमित्तोपादानं, सुराणां देवानां सरसि स्वर्गीयमहातडागे, लसतो विकसितस्य, पुण्डरीकस्य रक्तपद्मस्य, आभेव आभा ययोस्ते तथा नेत्रे नयने यस्य स, निर्हेतु यथा स्यात्तथा दीव्यच्छोभमानं, सजलजलधरस्य वर्षुकमेघस्य स्पर्धिना समानाकार—रूपशालिना, दिव्येनाप्राकृतेन, अङ्गेन मंगलविग्रहेण माध्यमेन सेव्यः स्तुतिपूजा—नमस्कारादिभिरुपचरणीयो देवः सर्वलोकाभिरामः सेव्यः परमात्मा, नित्यम् अनवरतं, दीप्यते प्रकाशमान एव भवतीत्यन्वयः।

**भावार्थ — भगवद्भक्ति ही भगवत्साक्षात्कार होता है, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि यदि कभी किसी उत्तम संस्कारों वाले हृदय में भक्ति उत्पन्न हो जाती है तो वहाँ नित्य निर्दोष अनन्त कल्याणमय गुणों के सागर, सर्वस्वरूप, सर्वकर्ता, सत्यसंकल्प परमात्मा जो कि विश्व की सृष्टि रक्षा संहार करते रहते हैं, जो स्वर्गीय दिव्य सरोवर में विकसित कमल के तुल्य नेत्रवाले और नीलमेघ की कान्तिवाले दिव्य मंगलविग्रह से युक्त होकर अत्यन्त स्नेह श्रद्धापूर्वक सेवा के योग्य अवस्था में सदा दर्शन देते रहते हैं।**

**एकत्रादित्यसाहस्रसदृशविसरत्तेजसा दीप्यमानो,**
**लावण्याब्धिः प्रपन्नाभिमतफलदताचुञ्चुदोर्भिश्चतुर्भिः।**
**प्रेक्ष्यः पीताम्बरश्रीसुविमलमसृणासङ्ख्यभूषाऽभिरामः,**
**सर्वैर्भक्त्याऽभिगम्यः श्रितदुरितहरो नित्यमुक्तात्मभोग्यः।।१६९।।**

ध्येयम्भगवतः स्वरूपं विशिनष्टि—एकत्रेति। सहस्रमेव साहस्रम्, आदित्यानां सूर्याणां साहस्रं, तेन सदृशम् गतिप्रकाशनोष्मभिस्तुल्यं, विशेषेण प्रकाशान्तरातिशयेन, सरता व्याप्नुवता, तेजसा ज्योतिषा, दीप्यमानः प्रकाशमानः, लावण्यस्य व्यापि विग्रहसौन्दर्यस्य, अब्धिः समुद्र इवाक्षय आश्रयः, प्रपन्नानां कृतशरणवरणानाम्,

अभिमतफलदतया वाञ्छितपुरुषार्थवितरणेन, विदितै, श्चतुर्भिर्दोभिर्बाहुभिः, प्रेक्ष्यः, सर्वापेक्षापूर्तिमूर्तिः सादरं दर्शनीयः, पीताम्बरस्यासाधारणपरिधानस्य, श्रिया शोभया, सुविमलाभिरुज्ज्वलाभि, र्मसृणाभिरकठिनाभिरसङ्ख्याभिश्च, भूषाभिरलङ्कारै, रभिरामो हृद्यः, अत एव सर्वैरसुरराक्षसैरपि, भक्त्याऽनुभवजनितया, अभिगम्यः, सेव्यः, श्रितानां कृतशरणवरणानां, दुरितानाम् भक्तिविरोधिपापानां, हरश्चौर इव, विनाशकस्तेन मुक्तिं दत्त्वा नित्यैरिव मुक्तैरपि आत्मभिश्चेतनैः, भोग्यो निरतिशय–श्रद्धाऽनुरागविषयतयाऽनुभाव्य इतिभावः।

**भावार्थ – भगवान् के ध्यान योग्य स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे एक हजार सूर्यों के एक साथ आकाश में उगने से जितना तेज और प्रकाश फैल सकता है उतने प्रकाश से युक्त होकर दर्शन देते हैं। जैसे अर्जुन को विश्वरूप दर्शन के समय दिया था। अन्य भक्तों को भी दिया है। वे अनन्त रूपसौन्दर्य के समुद्र हैं। उनके सुन्दर चारभुज शरणागतों के सारे मनोरथ पूर्ण करने से भक्तों को अतिशय प्रिय लगते हैं। पीताम्बर की शोभा और सुन्दर सुखस्पर्श असंख्य आभूषणों से वे ज्यादा ही प्रिय लगते हैं। इसी से उनके प्रति सारा विश्व भक्ति करता और उन्हें पाने का प्रयत्न करता है। जो उन्हें पाना चाहते हुए उनकी शरणमें जाते हैं, अपने कल्याण के लिये उनके प्रति पूर्णरूप से समर्पित हो जाते हैं उनके सारे पापों का हरण कर लेते हैं। वे सदा नित्य सूरियों और मुक्त आत्माओं के द्वारा घिरे और उनकी भक्ति स्तुति प्रणामादि प्राप्त करते रहते हैं।**

**ध्यायन्ध्यायन्तमीशम्परिहृतसकलान्यार्थजातम्प्रपन्नः,**
**प्रीत्याधिक्यादजस्रम्परिचरतितराम् पत्रपुष्पान्नपानैः।**
**भूयो भूयो गुणौघस्मृतिपुलकलसत्सर्वगात्रो नमस्य–**
**न्नीशम्पश्यन्नतृप्त्या पुनरपि नतिमान् बन्धकालेऽपि मुक्तः।।१७०।।**

ध्यानप्रयुक्तावस्थाभिर्जीवतोऽपि मोक्षमाह–ध्यायमिति। परिहृतानि वर्जितानि, सकलानि अन्यानि भगवदितराण्यर्थजातानि पुरुषार्था यत्र तत्तथेति ध्यानक्रिया विशेषणम्, ध्यायं ध्यायम् अभीक्ष्णम् प्रीतिकृतध्यानपरः, प्रपन्नःशरणागतो मुमुक्षुः, प्रीतेः स्नेहस्या, धिक्याद् अतिरेकात्, पत्रैस्तुलस्यादिभिः, पुष्पैर्जात्यादिभिः, अन्नैर्भक्तादिभिः, परिचरतितराम् अतिशयेन सेवते, भगवदीयगुणौघानां गुणसमूहानां, स्मृत्या यः पुलको रोमाञ्चस्तेन लसत्सर्वगात्रः आनन्दातिरेककृतशोभासम्पन्नो, भूयोभूयः नमस्यन् प्रणमन्, अतृप्त्या दर्शनजनिततुष्टिराहित्येन पुनरपि नतिमान्



प्रणमन्, बन्धकाले कर्मसत्त्वेऽपि मुक्तपुरुषतुल्यशीलतया मुक्त एवेत्यर्थः।

**भावार्थ – ध्यान से भावना बदलती हुई मुक्तपुरुष जैसी बन जाती है तब जीवनकाल में ही मुक्ति का आनन्द मिलने लगता है। तत्त्वबोध होने पर संसार से वैराग्य हो जाता है तब मन विषयों की ओर नहीं जाता और भगवान् के प्रति अनुराग बढ़ता ही जाता है, भगवान् के गुण भूलते नहीं इससे ध्यान होता ही रहता है, श्रद्धा बढ़ती है तब बार–बार पत्रं, पुष्प, अन्न, पान आदि से पूजा करने का क्रम चलता है, दर्शन की प्रवृत्ति बढ़ती है, दर्शन से सन्तुष्टि नहीं होती, बार–बार प्रणाम होते हैं। इस तरह नित्य ही दर्शन प्रणाम पूजा के कई क्रम चलते रहते हैं और पुरुष मुक्त जैसा आनन्द लेता रहता है।**

**६–भगवद्रूपमखिलं न ततोऽन्यदिहेष्यते।**
**वर्जनीयाऽन्यथा दृष्टिरेष्टव्या भगवद्गतिः।।१७१।।**

अध्यायमुपसंहति–भगवद्रूपेति। अखिलमपि धीविषयो भगवत एव रूपम्, इह धीविषयेषु ततो भगवतोऽन्यन्नेष्यते सुधीभिर्नाङ्गीक्रियते, अतोऽन्यथा दृष्टिर्वर्जनीया, भगवद्गतिस्तदेकानुभवसन्तानम्, एष्टव्या वाञ्छनीया, तदर्थं चेतसा यतनीयमिति भावः।

*इति नवमोऽध्यायः*

**भावार्थ – दृश्य और कल्पित सारा जगत्, भगवान् का ही रूप है, यहाँ ऐसा कुछ नहीं है जो भगवान् से भिन्न हो। हम जो देखते हैं वह हमारी दृष्टि अधूरी होती है, प्रधानभूत परमात्मतत्त्व दृष्टि का विषय नहीं होता किन्तु वही दृश्य जगत के रूप में अब स्थित है, इससे हम दृश्य को परमात्मा ही माना करें। अज्ञानमयी अधूरी दृष्टि का त्याग कर सर्वत्र भगवद्दृष्टि बनाने का प्रयत्न होता रहे। उक्त प्रयत्न की सफलता पर जीवन की सफलता निर्भर होती है।**

***नौवाँ अध्याय समाप्त***

# अथ दशमोऽध्यायः

**सृष्ट्यादौ जीववर्गे करणविरहिते भूतजाते स्वलीने,**
**काले सङ्ख्यानशून्येऽनवधिकरचनाकौतुकी भूरिमायः।**
**यश्चैतन्यप्रकाशं करणसुषिरतोऽदीपयद्देवदेवो,**
**देवादीनामजस्रं यमयति स नृणाम्बुद्धिवाञ्छाप्रयत्नान्।।१७२।।**

भगवद्गीतायां दशमेऽध्याये भगवता बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोह इत्यादिना स्वस्य प्रतिपादितं सर्वान्तर्यामित्वमिह सर्वासत्त्वमयप्रलयावस्थायामपि निर्बाधम्भवतीति सृष्टिकालेऽपि तथैव भवतीति च प्रतिपाद्यते–सृष्टयादाविति। सृष्टेरादौ प्रलयसमयसमाप्तौ, जीववर्गे चेतनसमूहे, करणैरेकादशेन्द्रियैर्विरहितेऽहङ्कारतत्त्वस्य स्वकारणे महत्तत्त्वे लीनतया तस्य च मूलप्रकृतौ तद्विकारभूतानामिन्द्रियाणां नाशादिन्द्रियरहिते, ज्ञानप्रसराभावाज्जडतत्त्वसमत्त्वे स्थिते पृथित्यापस्ते–जोवाय्वाकाशरूपे भूतसमूहे, स्वकीयकारणे तामसाऽहङ्कारे, लीने तिरोहिते, सूर्यादेरभावात् कालगणनोपायाभावेन काले समये, संख्यानशून्ये गणनारहिते, सति, अनवधिकरचनाकौतुकी अनन्तब्रह्माण्डसृष्टिसङ्कल्पवान्, भूरिमायः कर्तुमकर्तुमन्यथा च कर्तुं समर्थो यो देवानां सृज्यानाम्परमेष्ठिरुद्रेन्द्रादीनां देवः सेव्यः श्रद्धेयः पूज्यश्च, करणसुषिरतोऽभिनवचक्षुरादिकरणरूपच्छिद्रतः, देवादीनामुक्तानां चैतन्यं नाम प्रकाशम् अदीपयत् विषयग्रहणयोग्यमकरोत्, स एवाऽद्य सृष्टिसमयेऽपि नृणां सर्वचेतनानाम् बुद्धिवाञ्छाप्रयत्नान्, ज्ञानेच्छोद्यमान्, अजस्रं सततं यमयति स्वसंकल्पानुरूपमेवावस्थापयति।

**भावार्थ – प्रलय के समय कुछ भी नहीं रह जाता । जीवों की इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकने से उनका ज्ञान निष्फल रहता हैं, वे काठ पत्थरों की भाँति चेतनाशून्य रहते हैं, प्रलय में पृथिवी जल तेज, वायु और यह आकाश भी जो कि शब्दों के सञ्चरण आदि का माध्यम होता है, नहीं रह जाता, तब उस समय सूर्य आदि माध्यमों के न रह जाने से कालगणना भी नहीं हो पाती, ऐसी स्थिति में जब कि सृष्टि का कोई साधन नहीं रहता, जो देवाधिदेव परमात्मा अनन्तसृष्टि का सङ्कल्प लेकर अपनी अनन्त शक्तियों से देवताओं को इन्द्रियाँ देकर उनके माध्यम से ही उनके ज्ञान को विषयग्रहणयोग्य बनाते और अनन्त सृष्टि रचते हैं वे ही परमात्मा आज भी सारे चेतनों की बुद्धियों इच्छाओं और प्रयत्नो को अपने सत्य संकल्प के अधीन चला रहे हैं।**



**सृष्टो निर्दिष्टवर्त्मा सुविनियतमतिप्रीतिवृत्तिर्विधात्रा,**
**ब्रह्मादिः सादिजन्तुः कथमिव तमजं वेत्त्वमेयं स्वतन्त्रम्।**
**ज्ञानार्थं यम्वृणीते सततपरिचितं यञ्च भक्त्यर्थमीशः,**
**स त्वेवाप्नोति वृत्तिं विशदगुणगुरूणां सुपंक्तौ शुभाशः।।१७३।।**

परमात्मनो विषयान्तरवदप्रमेयत्वन्तत्सङ्कल्पेनैव केनापि किञ्चिदधिकं वा ज्ञेयत्वञ्चाह–सृष्ट इति। विधात्रा विश्वरचनानिपुणेन भगवता, निर्दिष्टवर्त्मा विषयविशेषबद्धधीप्रकृतिः, अत एव सुविनियता अन्यार्थव्यावृत्ता मतिप्रीतिवृत्तयो ज्ञानेच्छाप्रयत्ना यस्य स तथोक्तः, सन् सृष्टः प्रकृतिविशेषेण योजितो, ब्रह्मादिः कमलासनप्रभृतिस्तृणान्तो जीववर्गः, स एव सादिः कदाचिदेवात्मानम्प्रकृति–विशेषविशिष्टरूपमुपलब्धचरः, जन्तुर्देही, तं श्रुत्येकगम्यम्, अजम् प्रकृतिसंसर्गनिरपेक्षसर्वसामर्थ्यम्, परमात्मानं कथम् इव वेत्तु केनोपायेनावगच्छतु, नहि सीमितधीरसीमार्थमवगाहेत। किन्तु ईशः स परमात्मा, सततपरिचितम् अनादेः कालात् सञ्चितप्रारब्धोभयविधकर्मतत्फलतद्देशकालविशेष–सहितसाक्षात्कारविषयं यं चेतनं ज्ञानार्थं स्वावगमयोग्यत्वेन, यञ्च भक्त्यर्थं स्वविषयप्रीतिविशेषयोग्यत्वेन च वृणीते ज्ञानभक्तिपथे प्रवर्तयति, स एव तु नान्यः, शुभाशः कल्योपायबद्धमतिः, विशदगुणानाम् भगवदनुभवयोग्यसर्वधीवृत्तीनां, गुरूणां सदाचार्याणाम्, सुपंक्तौ कृत्स्नशास्त्रार्थावगाहिज्ञानानुष्ठान–सम्पन्नगुरुशिष्यशृङ्खलायाम् वृत्तिं गुरुभावेन शिष्यभावेन चावस्थानम्, आप्नोति, लभते, नान्य इत्यर्थः।

**भावार्थ – प्रमाणों से प्रमेयों की परीक्षा होती है यह सामान्य नियम है। चेतन प्रमेय यदि अपने को छिपा पाता है तो उसकी परीक्षा नहीं होती। परमात्मा परम प्रमेय हैं और परम चेतन भी। संसारी चेतनों से छिपे रहने के उनके पास अनन्त साधन हैं। प्रत्येक चेतन संसारवृक्ष का एक महत्त्वपूर्ण बीज होता है। परमात्मा को जान लेने पर वह चेतन संसार वृक्ष को जन्म देने योग्य नहीं रह जाता। इससे संसार में थोड़ी न्यूनता आ जाती है। इसीसे ऊँचे पद अधिकार योग्यता आदि के होने पर भी ब्रह्मा आदि देवता भी उन्हें अपनी योग्यता मात्र से ही नहीं जान पाते किन्तु जीव पर विशेष दया होने से**

भगवान् इस न्यूनता को सह लेते हैं। एवम् अपने असाधारण संकल्प से उसे चित्त की वर्त्तमान अवस्था के अनुरूप ज्ञानरूपी माध्यम से या भक्तिरूपी माध्यम से धीरे–धीरे अपनी ओर ऐसे खींचते हैं जैसे जाल में फंसी मछली को कोई खींचता हो। आगे चलकर उसे स्वयम् ऐसा बना लेते हैं जिससे वह एक सदाचार्य या ब्रह्मनिष्ठ या स्थितप्रज्ञ या जीवन्मुक्त रूप में समाज में जाना जाता है। इस उत्कृष्ट अवस्था की प्राप्ति के बाद वह स्वयम् अपने स्वरूप और कर्तव्य समझता हुए सारे परिग्रहों को परमात्मा के चरणों में सदा सदा के लिये समर्पित करता हुआ आत्मकल्याण की चिन्ता से छूट जाता है। जब वह द्रौपदी की भाँति या गजेन्द्र की भाँति अपनी रक्षा का समस्त भार प्रभु को सौंप चुका होता है तब भगवान् संसार समुद्र में अनादि काल से रह रहे अहं ग्राह के मुँह से उबारने के लिये तीक्ष्ण ज्ञानरूपी चक्र से उसे मारकर अपने नित्य सखाभाव का अनुभव कराने के लिये अपने पास ही सदा सदा को रख लेते हैं। वही मुक्त कहा जाता है।

**दृष्टाकारस्वभावानलसमतिजनोऽदृष्टतत्त्वेऽपि युञ्जन्,**
**जानात्यज्ञानमेतज्जनयति भगवत्तत्त्वबोधेऽपि बाधाम्।**
**सम्यक्श्रद्धातपोभिःसुविमलधिषणो वेत्ति चेद्विश्वबन्धुम्,**
**मुक्तो मोहात्स पापान्मिलति तमसमाऽहंग्रहग्राहवक्त्रात्।।१७४।।**

भगवतः शरणागतरक्षकतायां सन्दिहानान्प्रत्याह–दृष्टाकारेति। अलसमतिः लोकोत्तीर्णतत्त्वग्रहोत्साहाभावे प्राकृततत्त्वैकनिष्ठधीर्जनोऽदृष्टतत्त्वेऽपि दृष्टाकारस्वभावान् युञ्जन् जानाति, कृष्णादिरूपम् भगवन्तमपि तद्दिव्य–देहरहस्यमजानन् कर्मबद्धान संसारिचेतनानिव जानाति। तस्यैतदज्ञानम् भगवत्तत्त्वबोधेऽपि बाधां जनयति। अपिना ब्रह्मप्रजापतिमनुमहर्षिमुनिप्रभृतिसङ्ग्रहः। शास्त्रैकगम्योऽर्थः शास्त्रेणैवावसेयः, तत्र लौकिकोऽनुभूतोऽर्थो न योज्यः। दृष्टसाम्येन ब्रह्मप्रजापत्यादीन् जानतां तदुद्देश्यकयागादिफलमल्पयति। तथैव भगवत्तत्त्वमपि प्राकृततौल्येन पश्यताम् भगवदुद्देश्यकर्मणाम् फलम् प्राकृतार्थपर्यन्तमेव भवति। शरणवरणं नाम सुमहत्तमो योगस्तत्फलमपि भवबन्धध्वंसरूपं सर्वातिशायि भवति। तदेवाह–सम्यगिति, सम्यग्भिः मोक्षहेतुकृत्स्नज्ञानप्रयुक्तैः, श्रद्धातपोभिः भगवद्रक्षकतानिष्ठारूपश्रद्धाप्रयुक्तै र्नित्यनैमित्तिककर्मकलापैर्यज्ञदानतपोरूपैः कर्मभिः, सुविमलधिषणः क्षालित संसारवासनशास्त्रीयैकार्थनिष्ठबुद्धिः, मुमुक्षुश्चेद् यदि भगवन्तम् विश्वबन्धुं वेत्ति, शरणवरणमात्रेण यस्य कस्यापि चेतनस्य



कृत्स्नरक्षणप्रवणं जानाति, तदा असमाद् अनन्यसामान्याद् बन्धात्, देहादिषु अहंग्रहरूपाद् ग्राहस्य वक्त्रादिव, पापाद् अत्यन्ताशुभान्मोहात्, मुक्तस्तम् भगवन्तम्मिलति। तदीयं वस्तु तेन शुद्धावस्थायां लभ्यते, तेन तस्यानन्दो वर्धत आनन्दमहावारिधेः।

भावार्थ – भगवान् शरणागत की रक्षा करते हैं। सर्वोत्तमरक्षा मोक्ष है। इस तथ्य पर प्रायः होने वाले सन्देह का वारण करते हुए कहते हैं कि संसारी लोग शास्त्रों पर आस्था न होने से शास्त्रीय अर्थों को भी दृष्ट अर्थों की ही श्रेणी में रखना चाहते हैं, वे परमात्मा के विश्वनियमनसामर्थ्य, शरणागतवात्सल्य और मोक्षप्रदत्व आदि महान् विशेषताओं पर आस्था नहीं रख पाते इससे वे जो भी कर्म करते हैं उनका फल अल्प ही होता है, अल्प ज्ञान से संकल्प अल्प होता है, उससे कर्मफल भी अल्प ही होता है। दुर्बल बुद्धि महान् अर्थों को पकड़ नहीं पाती। विशद ज्ञान प्राप्त होने पर श्रद्धा शुद्ध होती है तब कर्मफल अच्छे होते हैं, तभी प्रज्ञा के वे दोष दूर होते हैं जो मोक्ष के चिन्तन में प्रतिबन्धक होते हैं, तब समझ में आता है कि भगवान् किसी भी शरणागत की रक्षा करने को तत्पर रहते हैं, तभी शरणागति बनती है, तब विकट अहंकार रूपी ग्राह के मुख से संसारी जीवरूपी गजराज की मुक्ति होती है। और वह भगवान् को मिलता है।

**बुद्धिर्ज्ञानं विवेकः शमदमसहितं सत्त्यवाक्सक्षमत्वं,**
**सौख्यं दुःखम्भवो वाऽभव उत भयसंचारहारावहिंसा।**
**साम्यन्तुष्टिस्तपस्या सुविपुलविभवोदारता कीर्त्त्यकीर्त्ती,**
**यत्तः सिद्ध्यन्ति देवं तमगणितगुणो नैति सम्मुग्धजन्तुः।।१७५।।**

चेतनसामान्यस्य सर्वा हिताहितप्रवृत्तयो मत्सत्यसङ्कल्पैकाधीना इति प्रतिपादयन् भगवान् गीतायाम् ''बुद्धिर्ज्ञानम्'' इत्याद्याह। तदेवेहानूद्यते– बुद्धिर्ज्ञानमित्यादि। अत्र बुद्ध्यादयो विंशतिश्चित्तावस्था वर्णिताः, सर्वा अपि श्रेयःप्रेयःफलप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतवः। दुःखाभिभूतः कल्याणपथमवलम्बते, भयेनापि तथा, अपयशोधिक्कृतः श्रेयसि प्रवर्तते, एवं सद्गुणाभावं दोषान् जानन् गुणेभ्यो यतते। अमङ्गलहेतवोऽपि चित्तावस्था भवन्ति बहवः पूर्वाशुभप्रयुक्ताः। तासु भगवतो निग्रहस्य प्राधान्यम्। उक्तासु त्वनुग्रहस्येति विशेषः। कल्याणपथे प्रवर्तयन् भगवान् स्वानुग्रहचिह्नानि सूचयन् देहिनां स्वसंकल्पैकाधीनसकलावस्थावत्त्वम्, मोक्षस्यापि मङ्गलमयचित्तावस्थाविशेषस्य स्वसङ्कल्पैकाधीनत्वमसूसुचत्। अत्र

बुद्धिस्तत्त्वनिरुपणसामर्थ्यम्, ज्ञानञ्च मोक्षहेतुतत्त्वग्रहणम्, क्षमा विकार–हेतावप्यविक्रियत्वम्, भवस्तत्त्वबोधप्रयुक्तम्मनसः स्वाथ्यम्.। अभावः अज्ञानप्रयुक्तश्चित्तस्यावसादः, यशःशुभपथ प्रगति हेतुः, अयशः, चित्तसंयमहेतुः। अन्ये सुबोधाः सकलभुवनेषु महदादिपृथिव्यन्तभूतेषु नानासजातीयविजातीया–वस्थोदयलयहेतवस्तत्तच्चेतनसङ्कल्पविशेषाः, तद्धेतुश्च परमात्मनो नित्य एकः सङ्कल्प, इत्येषा भगवतो महती विभूतिः, सर्वकारणतत्त्वेष्वन्तर्यामि–तयाऽवस्थितिर्योगः, एतद्द्वयं योऽसंशयं वेद स भक्तिपथान्न निवर्ततेऽन्यस्तु दोलायमानमनाः संसरन्नेव भवतीत्याह भगवांस्तत्रैव "एतां विभूतिं योगञ्चे०" त्यादि। तदेवात्राप्युक्तम् "तमगणितगुण" इत्यादि। भगवद्गुणानुपेक्षमाणो मोहाभिभूतस्तं नैवाप्नोतीत्यर्थः।

**भावार्थ – बुद्धि ज्ञान विवेक आदि बीस प्रकार की कल्याणकारी चित्तवृत्तियाँ किसी को भी भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होती हैं यानी कल्याणपथ पर चलने की शुरुआत भी भगवान् की कृपा के बिना नहीं होती। यों तो सारी चित्तवृत्तियाँ पूर्व पुण्यपापों से बनती हैं किन्तु उनमें जो भगवान् की ओर अग्रसर करती हैं उनमें भगवान् की कृपा को कारण माना जाता है। और जो भगवान् से विपरीत दिशा को ले जाती हैं उनमें भगवान् की उदासीनता या कोप को कारण माना जाता है। हमारे कर्मों से भगवान् को सन्तोष या असन्तोष होता ही है। गीता दसवें अध्याय में भगवान् ने बतलाया हैं कि चेतनों के सारे शुभ मनोभाव मेरे संकल्प से ही होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मुक्तिदायी शुभ भाव भगवान् की कृपा के बिना सम्भव नहीं होता। यह तथ्य जानने वाले सन्त कभी भी प्रमाद न करते हुए सदा अविचल भाव से भजन में लगे रहते हैं, इससे वे शीघ्र कल्याण के भागी बन जाते हैं। भगवान् के उक्त अन्तर्यामित्व पर आस्था न होने से लोग भजन में लग नहीं पाते और संसार में ही रह जाते हैं।**

**स्रष्टा विश्वप्रवृत्त्यै सृजति हृदयतः प्राङ् निवृत्तान् कुमारान्,**
**पश्चात्सप्तर्षिमुख्यान् ऋषिमनुनृपतीन् कर्मशीलान् द्विजाग्र्यान्।**
**सेवन्ते ज्ञानशीलाः सकलकरणतः सन्निवृत्तान्प्रवृत्ता–**
**स्तस्मान्मन्ये परात्मा सृजति जगदिदं नेतुमुच्चैर्निवृत्तान्।।१७६।।**

प्रवृत्तिफलं निवृत्तिस्ततो मोक्षस्तदर्थं च जगदित्याह–स्रष्टा इति। स्रष्टा ब्रह्मा, विश्वस्य जगतः, प्रवृत्त्यै सृष्टिक्रमनिर्वाहाय, हृदयतः सङ्कल्पेन, प्राक् प्रथमं, निवृत्तान् कर्मविमुखान् अनुभवैकलीनान्, कुमारान् सनकादीन्



अन्यांश्चनारदहर्यश्वशबलाश्वादीन्, सृजति जनयति। तांश्च सृष्टिकर्मादिशति, ते च स्वभावानुसारं न तत्स्वीकुर्वन्ति। अनन्तरं कर्मशीलान् सृष्टयादिकर्मरुचीन् सप्तर्षीन् अन्यांश्च मन्त्रद्रष्टॄन् मनून् राजर्षीन्, द्विजाग्र्यान्, ब्रह्मदर्शिनः सृजति। एवं सृष्टौ जातायाम् इदं दृश्यते यत् कर्मसु प्रवृत्ताः सर्वेऽपि निवृत्तानाम् महत्त्वं जानन्तस्तान् मनोवचनकर्मभिरनुवर्तन्ते। तेनेदं विज्ञायते यत्परात्मा भगवान् निवृत्तान् जनयितुं तांश्चोच्चैः पदेषु नेतुं गमयितुम्, मोक्षपर्यन्ताः सिद्धीर्लम्भयितुम्, इदं जगत् सृजति जनयतीति चेतनानाम्मुक्तिरेव विश्वसृष्टिप्रयोजनम् मुख्यमिति मन्तव्यम्।

**भावार्थ – संसारी चेतनों को त्रिवर्ग पर आस्था होती है, इसीसे वे फललाभ के लिये कर्म करते हैं, तत्त्वज्ञान से त्रिवर्ग पर से आस्था घटती हुई नष्ट हो जाती है, तब भी तत्त्वदर्शियों के जीवन में कर्म देखे जाते हैं, वे कर्म पूर्वाभ्यास मात्र से या भगवत्कैङ्कर्यबुद्धि से होते हैं और त्रिवर्गवासना के नाश में कारण बनते हैं। फलेच्छापूर्वक कर्म प्रवृत्ति मार्ग और तत्त्वदर्शनोत्तर कर्म निवृत्तिमार्ग कहे जाते हैं। निवृत्तिनिष्ठा से मोक्ष होता है, विश्वसृष्टि का यही मुख्य प्रयोजन है। यही अर्थ सूचित करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा यद्यपि विश्वकी सृष्टि चाहते हैं, फिर भी उनके द्वारा पहले ऐसी सन्तान आती है जो सृष्टि नहीं चाहती और सृष्टि के अन्त तक रहती है, बाद में कर्मनिष्ठ ऋषि मुनि मनु राजर्षि ब्रह्मर्षि आदि उत्पन्न होते हैं, वे सबके सब पूर्व उत्पन्न निवृत्तिमार्गियों का सर्वथा अनुगमन करने के प्रयास करते हैं, ऐसा देखा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा निवृत्ति को ही वरीयता देते हुए निवृत्तिनिष्ठों को ऊपर रखना और बढ़ाना चाहते हैं और इस महान् उद्देश्य के लिये ही विश्वसृष्टि में वे ब्रह्मा से पहले के कार्य करते हैं एवम् अन्तर्यामी रूप से सृष्टि के अन्ततक और प्रलय में भी सारे परिणामों का निर्वाह करते रहते हैं।**

**शब्दाद्यर्था प्रवृत्तिर्मुनिभिरभिमता लौकिकानाम्प्रवृत्ति,**
**स्तत्त्यागोऽधोक्षजश्रीचरणरतिरनन्ता मता सन्निवृत्तिः।**
**यावन्नोदेति वृत्तिर्मनसि सुकृतिनस्त्यागरूपाऽनिरुद्धा,**
**तावत्त्यागप्रधाना ऋषिमुनिसरणिश्चिन्तनीया सुधीभिः।।१७७।।**

उक्तार्थं विशदयति–शब्दाद्यर्थेति। लौकिकानां संसारिणां, शब्दाद्यर्था वाञ्छित शब्दादिविषयलाभाय जायमाना, प्रवृत्तिश्चेष्टा यज्ञदानादिरूपा, मुनिभिः–

शास्त्रार्थमननशीलैः, प्रवृत्तिरितिपदाभिधेया, अभिमता स्वीकृता, अथ अनन्ताऽनौपाधिकी अघोऽक्षजस्य विष्णोः श्रीचरणयो रतिः प्रीतिस्तत्कृतस्तस्याः प्रवृत्तेस्त्यागः प्रहाणं, सती निवृत्तिः अभिमता अंगीकृता। अतः यावत्कालं, सुकृतिनो निष्कामकर्मपरायणस्य मुमुक्षोः, मनसि स्वैकावसेये चित्ते, त्यागरूपा चित्तवृत्तिनिरोधरूपसमाधि–पूर्वावस्थारूपा, अनिरूद्धा वृत्त्यन्तरान्तरायशून्या वृत्तिश्चित्तावस्था, न उदेति नोत्पद्यते, तावत्कालपर्यन्तं, सुधीभिः सात्त्विकैर्मुमुक्षुभिः त्यागप्रधाना सकामताविरुद्धा, ऋषीणां श्रुतिशिरःसाक्षात्कारप्रथितानाम्, मुनीनां शास्त्ररहस्यानुशीलनपराणाम् पराशरव्यासशुकादीनां, सरणिस्तत्प्रदर्शितः श्रेयोमार्गः, चिन्तनीयाऽविस्मरणम् मनसाऽवधेया। सन्मार्गविस्मृतौ सत्पदलाभासम्भवादिति भावः।

**भावार्थ – पूर्व श्लोक के अर्थ का विस्तार करते हुए कहते हैं कि संसारी लोग शब्द आदि विषयों की उपलब्धि के लिये जो लौकिक अलौकिक कर्म करते हैं उसे ही ऋषिमुनियों ने प्रवृत्ति या प्रवृत्तिमार्ग कहा है और प्रभु के गुणों से प्रभावित होने से जो अनवरत प्रेम बढ़ते रहने से कर्मों का त्याग हो जाता है उसे निवृत्ति कहते हैं। निवृत्ति अवस्था साधक को देर से प्राप्त होती है। उससे पूर्व ऋषि–मुनियों के द्वारा निर्दिष्ट निवृत्तिप्रधान निष्काम कर्मयोग में लगे रहना चाहिये और निवृत्ति की महत्ता का सदा ध्यान रखे रहना चाहिये। ध्यान से ही लक्ष्य मिलता है।**

**जानाना ब्रह्मणस्तद्बहुभवनबलं सर्वरूपाश्रयत्वं,**
**यन्तृत्वञ्चेतनानां सकलकृतिफलोत्पादयोगावहत्वम्।**
**स्वाम्यन्द्वेधाप्रकृत्योः प्रथितचिदचितोर्हेतुताम्बन्धमुक्त्योः,**
**सन्त्यक्तान्यव्यपेक्षा भवविलयकरीन्तत्पदे यान्ति भक्तिम्।।१७८।।**

भक्त्युत्पत्तिहेत्वर्थबोधषट्कमाह–जानाना इति। ब्रह्मणः परमात्मनस्तद् "एकोऽहम्बहुस्यामि" त्यादि श्रुतिप्रसिद्धम्, बहुभवनबलम्, सर्वशून्यताऽवस्थातोऽनन्त विस्तारमहदहङ्कारतन्मात्रभूतपञ्चकैकादशेन्द्रियसंयोगपरिणामभूतसुरन–रतिर्यग्भेदभिन्नानन्तकोटिप्राणिसमुदायरूपेण द्रष्टृदृश्यभोक्तृभोग्यघातकबध्य–रक्षकरक्ष्यादिमिथोविरुद्धनानावस्थावत्त्वेन चावस्थानसामर्थ्यम्, (१) सर्वेषां क्षणपरिणामिनाम्भौतिकानामाध्यात्मिकानाञ्च रूपाणामवस्थानामाश्रयत्वं सङ्कल्प–मात्रेण निर्वाहकत्वम्, (२) चेतनानां देहिनां यन्तृत्वम् प्रारब्धबद्धभावितत्तदव–स्थाऽऽनुरूप्येण श्रेयःप्रेयश्चिन्तास्वातन्त्र्येण चाविरुद्धेन ज्ञानेच्छाकृतीनां नियमनम्,



(३) सकलानां स्थूलसूक्ष्माणां जाग्रत्स्वप्नावस्थानुभाव्यानां, कृतिफलानाम्प्राचीन–कर्मपरिणामानां शुभाशुभानाम्, उत्पादस्यानुभाव्यतावस्थाऽऽपादनस्य ये स्थूलसूक्ष्मा अचिन्त्या योगा उपायास्तेषामावहत्वं (४) सङ्कल्पेनाश्रयत्वम्, प्रथितयोरापामर–प्रसिद्धयोश्चिदचितोर्जडचेतनयोः, द्वेधाविभक्तयोः प्रकृत्योर्गीताशास्त्रोक्त–योर्जगदुपादानयोः, स्वाम्यं स्वसङ्कल्पाधीनतत्सकलविनियोगपरत्वम्, (५) बन्धोऽनादिः कर्मफलसम्बन्धः, मुक्तिस्तद्विरामः, तयोर्निर्वाहकतया, हेतुत्वं कारणत्वम्, (६) इति षडर्थान् जानाना अविस्मरणम् अनुभवन्तः सन्तः, सन्त्यक्ता मनसोऽवतारिता, अन्येषु भगवदतिरिक्तेषु जड़चेतनेषु, व्यपेक्षा सहायताऽपेक्षा यैस्ते तथोक्ता मुमुक्षवो, भवस्य संसारबन्धस्य, विलयकरीम् नाशिनीम्, तस्य भगवतः पदे चरणयुगलेऽभीष्टतमे स्वरूपे, परमपदे च, भक्तिम् प्रीतिसन्तानं यान्ति निवृत्ताज्ञानतया लभन्ते। अबाधे प्रस्तुतषडर्थबोधे भक्तिरबाधा स्यादेवेति भावः।

**भावार्थ – संसारी चेतन मिथ्या अहंकार और ममता से प्रस्तुत छः तथ्य भूले रहते हैं, इससे भगवान् के प्रति भक्ति नहीं होती, चित्त दूषित रहता है, अपराध होते रहते हैं और संसार छूटता नहीं। किन्तु जो महापुरूष सदा यह जानते रहते हैं कि (१) प्रलय में कुछ नहीं था और अब जो भी कुछ है वह परमात्मा के ही नाना रूप हैं, दूसरा कुछ नहीं है, वे समझते रहते हैं कि नाना रूपों से प्रभु मुझे सदा देख रहे हैं और वे दूर नहीं हैं, नित्य ही अनन्त स्थूल सूक्ष्म रूपों में उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में भक्ति विरोधी रागद्वेष आदि भाव कहीं भी बन नहीं पाते बल्कि सदा अनुशासित रहने और प्रणाम करते रहने की प्रवृत्ति जारी रहती है। (२) वे नहीं भूलते कि जब प्रभु ही नानारूप बनाकर स्वयम् प्रस्तुत हैं तो दिखाई पड़ने वाले प्रिय अप्रिय स्थूल सूक्ष्म हित अहित सारे रूप प्रभु के ही हैं। इससे वे कहीं भी श्रद्धा भक्ति के अलावा कोई दूसरा भाव नहीं बना पाते। (३) वे सदा यह जानते हैं कि कोई भी चेतन शुभ अशुभ जो भी कर्म करता है उसमें प्रभु का ही मुख्य हाथ रहता हैं, इससे किसी घटना से वे न तो क्षुब्ध होते हैं न विशेष प्रसन्न होते हैं, इससे उनकी भक्ति की अन्तर्धारा बहती ही रहती है। (४) वे यह भी जानते रहते हैं कि पूर्वजन्मों के सबके सारे शुभाशुभ कर्मफल प्रस्तुत करते रहने के सारे उपाय प्रभु के हाथों रहते हैं, इससे किसी को भी मिलने वाला शुभ अशुभ प्रिय अप्रिय फल प्रभु के ही द्वारा मिला होता है। उसमें दूसरा कोई मनुष्य आदि प्राणी माध्यम हो सकता है किन्तु कर्ता नहीं होता। इससे वे किसी अन्य के प्रति न तो कृतज्ञ होते हैं न द्वेष आक्रोश आदि का भाव रखते हैं। फलतः वे सभी**

अवस्थाओं में एक से शान्त और भगवान् का ध्यान बने रहने से प्रसन्न रहते हैं। (५) वे यह भी जानते हैं कि प्रभु दिन रात कुछ न कुछ बनाते बिगाड़ते रहते हैं, इसके लिये जड़ चेतन दोनों प्रकार की प्रकृतियों का वे स्वेच्छा से उपयोग करते हैं। यह सारा संसार उनका ही है, वे विना किसी की परवाह किये, केवल अपने संकल्प से कार्य करते हैं। इससे उन्हें कभी हर्ष शोक नहीं होते और न वे किसी के प्रति राग या द्वेष करते हैं। (६) वे यह भी सदा जानते रहते हैं कि आजतक जो मेरा संसारबन्धन बना हुआ है वह प्रभु के संकल्प से है और यदि कभी मोक्ष होगा तो उनके अनुग्रहमय उदार सङ्कल्प से होगा, न कि मेरे किसी प्रयत्न से होगा। अवश्य वे स्वेच्छा से मुझसे वाञ्छित उपाय करा लेंगे। चूंकि आजतक की मेरी सारी चेष्टायें उनके संकल्प से ही हुई हैं तो महान् फलवाली असामान्य चेष्टा तो उनके संकल्प के बिना हो ही नहीं सकती। इस भावना के फलस्वरूप उनमें सर्वसमर्पण का भाव सुदृढ़ हो जाता है। यही बौद्धों की सर्वशून्यता है और यही मायावादियों का सर्वमिथ्यात्व है जो उन उन के विचारों से निर्वाण का हेतु है। सर्वसमर्पण का भाव बनने से अपने में किसी भी विशेष की प्रतीति शेष नहीं रह जाती। फलतः सर्वशून्यता या निर्विशेषता सिद्ध हो जाती है। इस अवस्था में श्री वैष्णव आचार्यों का अभिमत आकारत्रय सम्पन्नत्व यानी अनन्यशेषत्व, अनन्यभोग्यत्व और अनन्यशरणत्व विशदरूप से अनुभव में आने लगता है, यही भक्ति की पराकाष्ठा है यही मोक्षदायक तत्त्वज्ञान भी है। इस अवस्था में शब्दों से कुछ अन्तर अवश्य प्रतीत होता है किन्तु अर्थ वही रहता है जिसे बौद्ध और मायावादी अपनी अपनी भाषा से चिह्नित करना चाहते हैं। वास्तव में यह वह अवस्था है जो भक्ति के विना स्पष्ट समझ में नहीं आ सकती। ''तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये। चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति''। श्रीमद्भा० १/२/१६

भक्तिः सर्वस्य दायो भुवि भजनवतस्त्यक्तशब्दादिसक्ते–
स्तामन्तर्याम्यधीशो दिशति हृदि वसन्वेत्ति चेद्यत्नशीलम्।
लोकेऽपि द्रव्यरक्षाक्षममधिगतवान्पुत्रपौत्रादिहस्ते,
वित्तं दत्ते पिता स्वं तदिव हरिरनादिः पिता भक्तिरत्नम्।।१७६।।

भक्तौ भजनवतामेवाधिकारो न वर्णजातिकुलशीलावस्थादेरित्याह– भक्तिरिति। त्यक्तशब्दादिसक्तेर्विषयसामान्येऽनुरागशून्यस्य, भजनवतः श्रवणादिसाधनभक्तितत्परस्य, भक्तिः साध्यभूता तैलधारावदविच्छिन्नानुराग–



रूपा, भुविलब्धजन्मनः, सर्वस्य प्रणिजातस्य, दायो जगत्पितुःपरमात्मन उत्तराधिकारविषयभूताऽस्ति, न तत्र भजनातिरिक्ताधिकारव्यवस्था कृताऽस्ति परमात्मना। ताम् भक्तिं, हृदि चेतसि नियामकतया, वसन् अवतिष्ठमानः, अन्तर्यामी सर्वजगन्नियन्ता, अधीशः सर्वस्य साधनजातस्यापि स्वामी, चेद् यदि, यत्नशीलं वेत्ति विषयस्पृहां विनैवाविच्छिन्नम्प्रयतनं साक्षात्करोति तदा, दिशति सम्पादयति। तत्र दृष्टान्तमाहलोकेऽपीति, लौकिकः कर्मौपाधिकोऽपि, पिता, द्रव्यरक्षाक्षमं तद्दुरुपयोगशंकाराहित्येन तत्सदुपयोगयोग्यताशालिनम्, अधिगतवान् जानानः सन्, पुत्रपौत्रादिहस्ते सविश्रम्भं, स्वमात्मीयं, वित्तम् महार्घं धनं दत्ते निक्षिपति, तदिव तथैव, जन्तुमात्रस्यानौपाधिकोऽनादिः पिता जनको रक्षको, हरिः सर्वशेषी श्रीशः, भक्तिरूपम् महार्घं सांसारिक– सकलतिमिराणामचिरेण निवारकं रत्नम् महाप्रकाशं दत्ते निवृत्तमायामालिन्ये चेतसि सम्पादयति।

भावार्थ – भक्ति में भजन करने वालों का ही अधिकार है, इसमें वर्णजाति कुलशील अवस्था आदि की अपेक्षा नहीं है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि लौकिक शब्दादि भोगों के प्रति आसक्ति छोड़कर भजन करने वाले किसी भी अधिकारी को भक्ति वैसे ही प्राप्त हो जाती है जैसे उत्तराधिकारी को पैतृक सम्पदा प्राप्त होती है। उसमें भजन से अतिरिक्त किसी उपाधि को आधार, नहीं माना गया है। सर्वान्तर्यामी परमात्मा सबके हृदय में विराजते हुए विषयराग और भक्ति की स्पृहा की परीक्षा करते रहते हैं। उन्हें धोखा नहीं होता। विषयों की स्पृहा वासनासहित समाप्त हो चुकने और भक्ति प्राप्त करने के लिये प्रयत्नों में लगे रहने की स्थिति में हृदय में विराजमान परमात्मा ही भक्ति उत्पन्न कर देते हैं। भक्ति एक महान् रत्न है, इसके प्रकाश में माया के सारे अन्धकार मिट जाते और परमपद का मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। कोई महान् पुरुष ही इसे सम्हाल कर रख पाता है। योग्यता पूरी होने पर भगवान् इसे देते हैं। वैसे ही जैसे कोई लौकिक पिता अपने पुत्र को कोई अपना बहुमूल्य रत्न तब देता है जब जान लेता है कि यह इसे सम्हाल कर रखेगा और इसका दुरुपयोग नहीं करेगा।

अज्ञानं हन्ति रूढं दिशति च सुमतिन्तत्पदाब्जेऽनुरागं,
श्रीशस्यैका दयाऽन्यो न हि भवतरणे भात्युपायः स्वतन्त्रः।
तद्व्यापारस्तु यत्ने प्रचलति बहुशः क्षीयमाणे निराशा–
ध्वान्तेऽन्तर्भास्कराभः स्फुरति गजवरोद्धारवद् ध्वस्तबन्धः।।१८०।।

पूर्वम् भगवानेवान्तःस्थितो यत्नपरम् पश्यन्भक्तिं सम्पादयतीत्याह, इदानीं तद्दया सर्वं सम्पादयतीति तस्याः प्राधान्यं दिशन् तदर्थं यतनीयमिति व्यनक्ति–अज्ञानमिति। श्रीशस्य विष्णोरेका केवला सहायान्तरनिरपेक्षा, दया स्वाभाविकी करुणा, रूढम् अशक्योच्छेदम्, अज्ञानम् हन्ति निवारयति, सुमतिं संसारासारतावगाहिनीं धियं दिशति जनयति, तस्य श्रीशस्य पदाब्जे कैकर्ये, अनुरागम्प्रीतिधाराञ्च दिशति। भवस्य कर्मकृताज्ञानप्रयुक्तसुरनरतिर्यगादि–नानावस्थावत्वस्य, तरणेऽतिक्रमणे, लक्ष्यभूते अन्यो दयाभिन्नः, स्वतन्त्र उपायान्तरनिरपेक्ष उपायो नहि भाति न प्रतीयते। कर्मज्ञानाद्युपाया दयाद्वारैव हि फलन्तीति न ते स्वतन्त्रोपायाः स्युरितिभावः। नित्या भगवद्दयाऽन्यनिरपेक्षैव फलतीति चेदिदानीं कथं न फलतीति चेदाहतद्व्यापारस्त्विति। तस्या दयाया व्यापारः फलौन्मुख्यन्तु, यत्ने भक्तिप्रपत्त्याद्युपायरूपे, प्रचलति मुमुक्षुणाऽनुष्ठीयमानेऽपि बहुशः प्रायेण, क्षीयमाणे फलोत्पत्तेः पूर्वमेवाशक्त्या विनश्यति सति, गजवरोद्धारो गजेन्द्रमोक्षावसर इव, ध्वस्तबन्धः छिन्नग्राहशिर इवोच्छिन्नाज्ञानाहंकारबन्धः सन्, निराशाध्वान्ते स्वानुष्ठानभ्रंशेनानु–भूयमानचिरेप्सितफलालाभकृतदुःखमयेऽन्धकारे, ऽन्तर्मध्ये, भास्कराभः सूर्य इव, स्फुरति विशदमनुभूयते। क्षीणोपायस्य महाफलं गजेन्द्रस्येव भगवद्दया विशदयतीति भावः।

**भावार्थ – मोक्ष के सारे उपाय भगवान् के शुद्ध संकल्प के अधीन होते हैं, वास्तव में वे भगवान् की दया के अधीन होते हैं, इससे उनकी दया का पात्र बनने का प्रयत्न होना चाहिये, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि भगवान् की केवल दया ही दृढ़मूल अज्ञान का नाश, असाधारण तत्त्वबोध एवम् उनके चरणकमलों में अनुराग उत्पन्न करती है। दया जैसे दूसरे उपायों के बिना ही सारे पुरुषार्थ सिद्ध करती एवं संसार समुद्र का पार भी उतार देती है वैसा और कोई स्वतन्त्र उपाय नहीं है। भक्ति और प्रपत्ति दया के द्वारा अपना फल देती है किन्तु दया दूसरे किसी भी उपाय का सहारा नहीं लेती। यह दया तब सफल होती है जब कोई मुमुक्षु अज्ञान जनित मोह के चंगुल से अपनी इन्द्रियों को उबारने के लिये चिरकाल से गजराज की तरह प्रयत्न करता हुआ थक जाता है और मोह की प्रबलता बढ़ती ही जाती है, अपने सारे उपाय विफल होते हैं, निराशा बढ़ती हुई घोर दुःख का अन्धकार बन जाती है, तब अपने को अपने उद्धार में हृदय से असमर्थ मानता हुआ रक्षा के लिये प्रभु को पुकारता है, तब वास्तव शरणागति होती है और दया घने अन्धकार में सूर्य**



**की भाँति प्रत्यक्ष विष्णु बनकर प्रकट हो जाती है और क्षणभर में मुमुक्षु का संसारबन्धन कट जाता है। वास्तव में भगवान् की दया ही अपने अवतार की सारी भूमिका तैयार कर लेती है।**

**ध्येयो भावेष्वधीशः सततयतनतो ध्यानयोग्येष्वनन्तः,**
**सर्वात्मा मूर्तरूपेष्वविशदधिषणो व्यापि तत्त्वं न धत्ते।**
**विद्यैषैवोपदिष्टाऽर्जुनमुखयमिनां श्रेयसे विश्वयन्त्रा,**
**योऽभूत्स्नेहातिरेकादिव समरमुखे फाल्गुनस्याश्वयन्ता।।१८१।।**

मुमुक्षुर्दयामयम्भगवन्तं विश्वव्यापिनमज्ञानकर्मसंकुचितधीः कथं ध्यायेदित्याह–ध्येयइति। सर्वात्मा दृष्टानुश्रविकसकलार्थस्वरूपः, अत एवानन्त इयत्तया ध्यातुमशक्यः, अधीशो नियामकतया, ध्यानयोग्येषु भगवद्विभूतित्वेन महर्षिभिरुल्लिखितेषु बुद्धिग्राह्येषु, भूतेषु गगनादिविजातीयतया परिच्छिन्नेषु रूपेषु आकारजात्यादिविशिष्टेषु, सततयतनतः सर्वात्मत्वानन्तत्वसर्वस्वामित्वादि–भगवत्स्वभावाविस्मरणेन भगवत्पर्यन्तग्रहणं विनाऽविरमता च, ध्येयश्चेतसा द्रष्टव्यः। अविशदधिषणः अवरोधककर्मपरिच्छिन्नज्ञानश्चेतनो, व्यापि अनन्तं, तत्त्वं गगनाहङ्कारमहदाद्यपि न धत्ते कात्स्न्र्येन नालम्बते किमुत परमात्मानं, तेन यावद्बुद्धिबलं विश्वात्मा भक्तये ध्येय इत्यर्थः। एषा उक्ता, एव विद्या हितोपदेशः, अर्जुनमुखानां श्रेयोऽर्थिनां, योगिनां चेतो युञ्जतां श्रेयसे कल्याणाय विश्वयन्त्रा सर्वार्थस्वभावविदा भगवता, उपदिष्टा सस्नेहं विज्ञापिता, तस्मात्सविश्रम्भमुपादेयेति भावः। उक्तं विश्वयन्तार विशिनष्टि–योऽसाविति। यो भगवान्, स्नेहस्य प्रेम्णोऽतिरेकात्, सेवादिकृतवृद्धेरिव, समरमुखे युद्धारम्भे, फाल्गुनस्यार्जुनस्य अश्वानां घोटकानां, यन्ता रथचालकः, अभूत् बभूव। सर्वजगन्नियन्तुरश्वनियन्तृत्वं स्नेहदया–प्रयुक्तमेव स्यात्। स्निग्धम्प्रत्युपदिष्टं शास्त्रं सुबोधमशङ्कनीयञ्च भवेदिति भावः।

**भावार्थ – दयामय भगवान् का ध्यान करते रहना चाहिये, तभी भक्ति प्रपत्ति के भाव बनेंगे और उनकी दया सफल भी होगी यह बतलाते हुए कहते हैं कि यद्यपि परमात्मा दृष्ट अदृष्ट सकल अनन्त पदार्थों के रूप में हैं, उन सारे रूपों से उनका ध्यान सीमित बुद्धिवाला कोई भी संसारी चेतन नहीं कर सकता फिर भी जो जो रूप ध्यान के लिये ऋषि–मुनियों ने बतलाये हैं, जो भगवान् की विभूति के रूप में माने गये हैं उन मूर्तरूपों का ध्यान सदा सावधानी से करना चाहिये। यही उपदेश भगवान् ने अर्जुन जैसे योगनिष्ठों को बड़ी आत्मीयता से दिया है। अर्जुन का सारथी बन जाना भगवान् की**

अतिशय दया प्रेम और आत्मीयता का सूचक है। जो सारे विश्व के नियन्ता हैं वे किसी रथ के घोड़ों का लगाम थामे रहें यह उनकी कितनी आत्मीयता है यह कोई सहृदय समझ सकता है।

**ब्रह्मैतद्व्योममुख्यम्भवति जगदमेयन्तदेकाश्रयस्थ–**
**न्तन्नेयन्तद्विलेयम्बहुलकृतमयानन्तचिद्भासमानम्।**
**चिन्मात्रन्तेन विश्वं कतिचन मुनयो मुख्यभावात्किलाहुः,**
**कृष्णोऽप्यात्मानमादौ प्रथमविभवमाहार्जुनं युद्ध्यमानम्।।१८२।।**

ध्यानसौविध्याय सर्वजगद् आत्मैव ब्रह्मैव वेत्याह–ब्रह्मैतदिति। एतद् व्योममुख्यम् दृश्यमानमाकाशादि पृथिव्यन्तम्, अमेयं संसारिचेतनधियाऽशक्य–परिच्छेदम्, जगत् संसारः, तस्मिन् एकस्मिन् अन्यनिरपेक्षधारणे ब्रह्मणि, आश्रये तिष्ठतीति तथोक्तम्, तेन ब्रह्मणैव, नेयं नानावस्थाभिर्योज्यमानं, तद्विलेयन्तस्मिन्नेव समये लीयमानं लयार्हञ्चास्ति तेन, नानासम्बन्धैर्ब्रह्मैव लक्षणयोच्यते, अपि च बहुलानि नानाशाखाप्रशाखामयानन्तफलानि यानि कृतानि प्रारब्धादिकर्माणि तन्मयास्तत्प्रचुरा अनन्ताः संख्यातीता ये चितो देहिनस्तेषु दर्पणेष्विव भासमानमनुभूयमानम् इदं जगदस्ति, तेनचेतनानामेव मुख्यभावात्, कतिचन मुनयः पराशरादयो, विश्वं जगत्, चिन्मात्रम् विज्ञानमयम्, आहुः किल। कृष्णस्तत्त्वोपदेष्टा भगवानपि, युध्यमानम् प्रहरणोद्यतम्, अर्जुनम्पार्थम् प्रति, आदौ प्रहरणारम्भात् प्राग्, आत्मानं चेतनतत्त्वम्, प्रथम विभवम् आह, ''अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित'' इति विभूतिषूपदिश्यमानासु प्राथम्येनात्मानमेवाह, तेन प्रधानविभूतित्वेनात्माऽवसीयत इतिभावः।

**भावार्थ – जड़ता में चैतन्य देखना कल्याणकारी ध्यान की पहली कक्षा है, चैतन्य में परमचैतन्य का नियन्त्रण देखना दूसरी कक्षा है, परमचैतन्य में कल्याणमय गुणसमूह देखना तीसरी कक्षा है, गुण समूह में परमकल्याण मोक्षलाभतक श्रद्धा और अनुराग बढ़ता जाना अन्तिम कक्षा है। उक्त पहली और दूसरी कक्षा में चित्त को उतारने के लिये श्रुति प्रसिद्ध जगत का ब्रह्मभाव प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि दिखलाई पड़ने वाला पञ्चभूतात्मक यह अनन्त जगत्, चूंकि ब्रह्म में स्थित है, उसी के द्वारा सञ्चालित है और उससे उत्पन्न होकर उसमें ही लीन हो जाता है इससे मुख्य रूप से यह ब्रह्म ही है, फिर यह कर्मबद्ध संसारी चेतनों के अनुकूल प्रतिकूल अनुभव मात्र के लिये है, चेतनों के चित्त में प्रतिबिम्बित रहने के सिवा इसका दूसरा कोई फल नहीं**



**है, इससे इसे केवल चैतन्यमय भी कहा जाता है। भगवान् कृष्ण ने भी अपनी विभूतियों को गिनाते समय सबसे पहले ''अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः'' कहते हुए विभूति के अन्दर आत्मा को ही प्रधानता दी है। इससे इस जगत् के क्षुद्र जड अंश से ध्यान हटाकर सदा चैतन्यमय या ब्रह्ममय देखते रहना उचित है। इससे बहुत से अनर्थ रुकते हैं, कर्म अच्छे ही होते हैं, जीवन में प्रगति होती है और ब्रह्मभाव मुमुक्षु के निकट हो जाता है।**

**आत्मैवेदं समस्तं जगदिति निगमो वक्ति तन्मुख्यभावात्,**
**कर्माविद्यासहायानवधिफलभुजामात्मनां हीश आत्मा।**
**आत्मत्वम्ब्रह्मभावो द्वयमपि जगतो यज्जडऽत्वेऽपि मेने,**
**चित्तग्रन्थेश्चितान्तद्भगवदभिमतेश्चानुरूप्यानुरोधात्।।१८३।।**

भेददृष्ट्याऽपि अज्ञानावस्थायामपि, तदानुरूप्येण परस्य ब्रह्मणः सत्यसङ्कल्पानुरूप्येण च जगतो ब्रह्मभाव आत्मभावश्च सुग्राह्य इत्याह–आत्मैवेदमिति। निगमः मुख्यभावाद् ब्रह्मण इदं समस्तं जगद् आत्मा एवेति वक्ति तन्मुख्यभावादेव, मुख्यार्थबाधाभावेन नात्र लक्षणाप्रसंगइति भावः। आत्मनाम्बहुत्वादेकत्वं कथं घटत इत्यत्राह–कर्माविद्यासहायानामनादेः कालादज्ञानकृतानां कर्मणाम् फलभुजाम्, अज्ञानप्राधान्याज्जडार्थतुल्यानाम् आत्मनां देहिनामपि ईशो भगवान् आत्मा धारको नियामको भोक्ताऽपृथग्भावसम्बन्धी च भवति हीति निश्चयः। असंकुचितज्ञानतया पर एव मुख्य आत्मा, देहिनस्तु स्वप्नवदज्ञानावस्थायामेव देहेन्द्रियप्राणान् धरन्ति। तेन जननमरणसमयादि न विदन्ति, अत एक एव जगतामात्मा परम इति एकत्वं संगतम्। ननु जडार्थाः सर्वप्रमाणोपलब्धा आत्मत्वविरुद्धाः श्रुतिवचोभिरपि कथमात्मानःस्युरिति–शङ्कायामाहजडत्वेऽपि जगत आत्मत्वम् ब्रह्मभावश्च, द्वयमपि यत् श्रुत्यादिभिर्मेने स्वीचक्रे तत् चितां चेतनानां, चित्तग्रन्थेर्जडेषुदेहेन्द्रियप्राणेषु अहम्ममभावस्य, भगवतःपरमात्मनोऽभिमतेरहमेवेदं सर्वमित्यभिमानस्य च आनुरूप्यस्य अविरोधस्य, अनुरोधात् अनुपेक्षणीयत्वादिति भावः। न हि सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेरभिप्रायोऽवहेलनार्हो भवति। नापि बहूनां चेतनानामनादेः कालादनुवर्तमानोऽज्ञानादपि जडार्थेषु अहमित्याभिमानो निह्नोतुं युक्त इति मत्यैव जडेष्वप्यात्मभावो ब्रह्मभावश्चाङ्गींकृत इत्यर्थः।

**भावार्थ – आत्मा अनात्मा का भेद प्रसिद्ध है। चैतन्य का आश्रय या चैतन्य आत्मा माना जाता है, पंचभूतों में चैतन्य उपलब्ध नहीं है, इस स्थिति**

में उन्हें यदि श्रुति भी आत्मा या ब्रह्म कहती है तो उनमें चैतन्य नहीं आ जाता ऐसी स्थिति में जड़जगत् को आत्मा या ब्रह्म मानना विवेकसङ्गत नहीं मालुम होता। इस प्रश्न पर कहते हैं कि सारे संसारी चेतन बिना किसी आदेश के स्वेच्छा से ही जड़शरीर को आत्मा मानते आ रहे हैं। वृक्ष पर्वतादि भी शरीर हैं, नदी समुद्र आदि में भी अहम् बुद्धि रखने वाले चेतन माने जाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि श्रुति आदि द्वारा दृश्य जगत् को चेतन या चैतन्यमय कहा जाता है तो वह चेतन सामान्य की मान्यता का अनुवाद होगा और इसका विरोध कोई तत्त्वदर्शी भी इसलिये नहीं करेगा कि उससे उसकी अपनी भावना का विरोध होगा। यदि कहें कि जड़पदार्थों में अहम् बुद्धि प्रकृति संसर्ग जनित अज्ञान से होती है तो यह भी उतना ठीक नहीं है, क्यों कि परब्रह्म परमात्मा भी ''अहमेवासमेवाग्रे०'' इत्यादि अनेक वचनों से जड़जगत् को अहम् कहते हैं जब कि उन्हें कोई अज्ञान नहीं है, ऐसी स्थिति में जडजगत् के ब्रह्मभाव का विरोध कौन करेगा। व्यवहार में यह पाया जाता है कि जिस पिण्ड को अतिशय सन्निकर्ष और अतिशयप्रीति से अपना शरीर मान लिया जाता है उसमें अहम् भाव होता है। किसी प्रिय वस्तु या व्यक्ति का नाश होने पर सम्बन्धित व्यक्ति चिल्लाता है कि मैं मर गया। और कभी वह मर भी जाता है। अतिशय प्रीति अहन्ता बन जाती है। परमात्मा को यह दृश्य जगत् लीलोपकरण होने से स्थूल सूक्ष्म दोनों अवस्थाओं में अनादिकाल से बहुत प्यारा है। उनके निरतिशय तुल्य और प्रिय चेतनों का भोग भोगोपकरण और भोगस्थान होने से भी यह उन्हें ज्यादा प्यारा है। इसीसे उनकी इसमें, अनादि अहम् बुद्धि चली आ रही है। अब हम परमात्मा से अधिक समझदार न बनते हुए इस जगत् को ईमानदारी से ब्रह्म मान लें, तभी अपने को भी ब्रह्म मान पायेंगे, तभी कल्याणपथ पर अग्रसर हो पायेंगे, अन्यथा ब्रह्म की तलाश में बहुत भटकना, सातवें आसमान तक निहारना और तत्त्वदर्शियों के उपहास का पात्र बनना पड़ेगा।

*विशेषं – अनात्मभूत देह इन्द्रियमनप्राणों में ममता और अहम्भाव संसारबन्धन का कारण होने से चेतनों के लिये महान् दोष है किन्तु परमात्मा का ज्ञान कभी संकुचित नहीं होता, इससे जडजगत् के प्रति उनकी ममता और अहम्भाव उनका कोई अहित नहीं करता बल्कि उससे ही चेतनों के सारे पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं और उनकी आनन्दमयी लीलायें चलती रहती हैं, इससे यह उनका महान् गुण है। उनका व्यापक अहम्भाव कण–कण में हमें प्रभु के दर्शन की प्रेरणा देता है। इससे हम सदा ही अपराधों के मूल रागद्वेषों से बचे रहते हैं।*



**ये भौताः षड्विकाराः कृतिभिरभिमतास्तेऽहमेवेति कृष्णो,**
**व्याकुर्वन् स्वा विभूतीरगणितगणनापाटवेनाह सर्वम्।**
**आदित्यज्योतिरादिष्वतिशयगणनामुक्तधीस्थैर्यहेतोः,**
**कुर्वन्भक्तस्य रक्षां स्वपरमतिपरे संगरे साध्वकार्षीत्।।१८४।।**

स्थूलं सूक्ष्मं सन्निकृष्टं दूरं वा सदसच्च यत्। मद्रूपत्वेन तत्सर्वं ध्येयमित्याह केशवः। –ये भौता इति। भौताः पृथिव्यादिभूतेषु जायमाना, ये षड्विकारा जन्मसत्तावृद्धिपरिणामक्षयलयरूपाः, कृतिभिरर्थनिर्धारणप्रवीणै, रभिमताः स्वीकृता, स्ते सर्वेऽहमेवेति, अगणितगणनापाटवेन सङ्ख्यातीतार्थान् आदिमध्यान्तरूपा–वस्थात्रयान्तर्गतषड्विकारवत्त्वेनैकेनैव धर्मेण संगृह्णन्, व्याकुर्वन् एकैकश्येन च यथार्हमुल्लिखन्, कृष्णः पार्थसारथिः, सर्वं वस्तुजातं, स्वा विभूतीराह। सुप्रथितभेदेषु सामानाधिकरण्येन स्वाभिन्नत्वङ्कथयन् निरतिशयप्रीत्यास्पदत्वञ्च प्रथयामास। किञ्च उक्तायाः सर्वस्यवस्तुजातस्य भगवद्विभूतित्वधियः, स्थैर्यहेतोः स्थायित्वसम्पादनाय आदित्येषु विष्णोः, ज्योतिषामंशुमतो रवेः एवमेवान्येषामपि, अतिशयस्य प्राधान्यस्य कथनं, स्पष्टवर्णनं कुर्वन्, स्वपरमतिपरे भेददर्शनैकसाध्ये, संगरे युद्धे, भक्तस्यार्जुनस्य तथाविधानामन्येषाञ्च, साधु सुबोधार्थप्रतिपादनेन रक्षाम् अज्ञाननिवारणम् अकार्षीद् भगवान्। सर्वस्यार्थजातस्य प्राणिसमूहस्य च भगवदीयत्वबुद्धौ अनुवर्तमानायां रागद्वेषोदयासम्भवेन भगवदाज्ञानुपालनमात्रधिया कृतं घोरमपि युद्धकर्म मोक्षहेतुतां गच्छेदिति भावः।

भावार्थ – पञ्चभूत सृष्टि अनन्त आकार प्रकार विस्तारों में फैली है, उनके ध्यान से बुद्धि भ्रमित होती है किन्तु यदि हम उन्हें भगवान् की विभूति या उनका शरीर मान लें तो उससे कल्याणपथ में प्रगति होती है। हमारे कल्याण के लिये भगवान् ने समझाया है कि पंचभूतों की आदि मध्य और अन्तकी सारी अवस्थायें मैं ही हूँ। छः भावविकार उक्त तीन अवस्थाओं के अन्दर होते हैं। वे सब भगवान् ही हैं। इस वाक्य से भगवान् ने सारे अनन्त भावों के बारे बतला दिया, फिर भी आदित्यों में विष्णु और ज्योतियों में सूर्य मैं ही हूँ ऐसे विशेष वचनों से उक्त भावना की दृढता सम्पादित की और इस प्रकार अपना परायों के भावों पर चलने वाले संग्राम की अवस्था में भी अर्जुन को सर्वत्र परमार्थ दृष्टि बनाये रखने में सहायता की और अज्ञान में गिरने से उन्हें कुशलता पूर्वक बचा लिया।

**आदिर्मध्यन्तथान्तोऽहमखिलपरिणामेष्विति प्राह देवो,**
**हेतुत्वं सर्वभावान्प्रति गदितमतोऽन्यस्य वेद्यं निषिद्धम्।**
**हेतुत्वाधानहेतुर्भवति किल सतां जन्मिनां काऽप्यवस्था,**
**साऽभिन्ना श्रीसहायाद्यदि कथमपरत्रास्तु हेतुत्ववार्ता।।१८५।।**

''अहमादिश्च मध्यञ्च भूतानामन्त एव चे'' ति सामानाधिकरण्येन कार्यसामान्यस्य भगवच्छरीरत्वन्तद्रूपत्वञ्चोक्तम्। इदानीन्तेनैव वाक्येन कार्यसामान्यम्प्रति भगवत एवासाधारणकारणत्वमन्यस्यकस्याप्यर्थस्य स्वतन्त्रकारणत्वाभावश्च सिध्यतीत्याह—आदिर्मध्यन्तथाऽन्त इति। देवः श्रीकृष्णः अहं सर्वभूतान्तरात्मा, अखिलपरिणामेषु महदादिपृथिव्यन्तासु प्रकृतेर—वस्थान्तरापत्तिषु, आदिः कल्पिता पूर्वावस्था, मध्यन्तथोक्ता वाञ्छिता परिणामा वस्था, तथैव अन्तो नाशावस्था च, अहं नारायण एवेति प्रकर्षेण स्पष्टमाह गदितवान्, अतः उक्त्या सर्वभावान् जन्मिनः प्रति, हेतुत्वं स्वस्य कारणत्वम्, उक्तम् अतः उक्त्या एव अन्यस्य भगवदितरतत्त्वस्य हेतुत्वं कारणत्वं निषिद्धम् फलितार्थतया वर्जितं, वेद्यंज्ञेयम्। नन्वस्तु परमात्मनः सर्वहेतुत्वन्तथाऽपि भावान्तराणाम्प्रमाणप्रतिपन्नं हेतुत्वं कथम्प्रतिक्षिप्यत इत्यत्राह—जन्मिनाम् उत्पत्तिमतां,सतां कारणानां काऽपि सूक्ष्मा अवस्था बीजानामिव, हेतुत्वाधाने हेतुः कारणम्भवति। यदि साऽवस्था, श्रीसहायात् परमात्मनः, अभिन्ना अनतिरिक्ताऽस्ति तदा, अपरत्र भावान्तरे, हेतुत्ववार्ता कारणताकथा कथं कया युक्त्याऽस्तु, न कथमपीति भावः। अवस्था कृतं हेतुत्वमभेदाद् भगवत्कृतमेवेति चेन्मुख्यं हेतुत्वम् भगवत एव नान्यस्येति फलितार्थः।

**भावार्थ — भगवान् सभी कारणों के कारण कहे गये हैं। वे सारी कारणताओं के निर्वाहक तो हैं ही, वे सभी कारणों के रूप में स्वयं सदा अवस्थित रहते हैं इससे वे दोनों तरह से सारे कार्यों के कारण माने जाते हैं और दूसरे जो पदार्थ कारण माने जाते हैं वे भगवान् के ही रूप होने से स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखते, उनमें स्वगत कारणता के निर्वाह की क्षमता भी नहीं होती इससे दूसरे पदार्थों को कारण मानना विवेकसङ्गत नहीं है। जब पदार्थों की सारी अवस्थायें भगवान् के ही रूप हैं और कारणता की पूर्ति किसी अवस्था विशेष में ही होती है तो भगवान् से भिन्न कोई अवस्था न होने से दूसरे पदार्थों में कारणता की कल्पना स्वतः ही रुक जाती है।**



**विष्टभ्याहं समस्तं जगदिति दयया भूतिषूक्तासु दृश्यं,**
**निह्नोतुम्भेदजातम्प्रथयितुमखिलव्याप्तिमात्मैकबुद्धिम्।**
**कर्तुं कृष्णोऽभिरक्षन् समरशिरसि चाहाऽथ कः स्वित्तदन्यं,**
**रक्षार्थं स्वस्य यायाद्, युधि भजनधियं को नु कस्मै दिदेश।।१८६।।**

अध्यायान्ते भगवतो निरतिशयदयाप्रावण्यं निर्दिशति—विष्टभ्याहमिति। कृष्णः पार्थसारथिर्भगवांश्चतुर्भुजः, दयया सहजकरुणया, समरशिरसि च क्रोधप्रधाने—युद्धारम्भसमयेऽपि, (रथिनम्पार्थं) रक्षन् क्रोधसमयेऽपि तस्य प्रज्ञां कल्याणमये तत्त्वेऽवस्थापयन्, उक्तासु निगदितपूर्वासु, भूतिषु स्वासाधारणवैभवेषु, दृश्यम् प्रत्यक्षभूतमपि, भेदजातम् प्राकृतद्रव्यजातिगुणक्रियासमूहम्, निह्नोतुं तिरस्कर्तुम्, अखिलव्याप्तिम् सकलैश्वर्यमयभगवत्तत्त्वस्य सर्वत्र प्राधान्यम्, प्रथयितुं ख्यापयितुम्, आत्मैकबुद्धिम् एकाबुद्धिरेकबुद्धिः, आत्मनि एकबुद्धिरात्मैकबुद्धिस्ताम् प्राकृत—भेदभिन्नेष्वपि सर्वार्थेषु परमात्मतत्त्वस्यैव प्रधानतया सर्वत्र परमात्मबुद्धिं कर्तुं जनयितुं, विष्टभ्याहं समस्तं जगदिति ''विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगदि'' ति गीतायाम् आह। अथ पृच्छ्यते, कः स्वित्, जनः तदन्यं श्रीकृष्णव्यतिरिक्तम्, स्वस्यात्मनो रक्षार्थं संसारादुद्धारार्थम्, यायात् आश्रयेत। किञ्च युधि संग्रामेऽपि, भजनधियम् भगवत्कैङ्कर्यबुद्धिं, को नु श्रीकृष्णव्यतिरिक्तः, कस्मै पार्थातिरिक्तांय, दिदेश लम्भितवान्।

**भावार्थ — अध्याय के अन्त में भगवान् की सतत दयामयता का निर्देश करते हुए कहते हैं कि गीताचार्य भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को शुरु से ही तत्त्वोपदेश देते हुए अज्ञान से उसकी रक्षा करते आ रहे थे। युद्ध के आरम्भ के समय भी जब कि उस समय तत्त्वबोध के विरुद्ध क्रोध की प्रधानता होती है, उस समय भी अज्ञान से बचाते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी विभूतियों का निर्देश जो किया वह केवल तुम्हारी बुद्धि को तत्त्व में उतारने के लिये किया है, वास्तव तो यह है कि इस सारे विश्व को मैं अपने नियन्त्रण में शुरु से रखता आ रहा हूँ, इससे सारे कार्य और कारण मेरे संकल्प के ही अधीन रहते हैं। युद्ध होना, रुकना, किसी के हाथ किसी का मारा जाना और किसी का चिरकाल तक खतरे से बचा रहना, यह सब मेरे संकल्प के अधीन होता है। अर्थात् मैं युद्ध के लिये तुमसे कह रहा हूँ इससे मेरे वचन से ही तुम युद्ध करोगे ऐसा नहीं है, ''प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति'' इस सुझाव के अनुसार यह समझो कि तुम्हारे चित्त की बनावट पहले से ही ऐसी है जिससे तुम युद्ध**

करोगे ही। वह बनावट मेरे संकल्प से ही है। फिर भी मेरे वचन का आदर करने से तुम्हारा कुछ उत्तम लाभ होगा। युद्ध के प्रति जो मैं कर्तव्यबुद्धि या सेवाबुद्धि दे रहा हूँ उसका पालन होने से युद्ध का फल तुम्हें मोक्षदायी होगा, अन्यथा स्वर्ग या भोग तक ही सीमित रह जायेगा। ''विष्टभ्याहम्०'' से तुम्हें यह भी जान लेना चाहिये कि इस जगत् में मुझ सर्वान्तर्यामी की ही प्रधानता है, वास्तव में यह सारा जगत् मेरा ही रूप है, नानाऽऽकार जगत् के रूप में परमतत्त्व परमात्मा ही उपलब्ध हो रहा है, इससे सभी कर्तव्य कालों में, सर्वत्र भगवद्बुद्धि बनाये रखो। यहाँ विचारणीय है कि गीताचार्य के सिवा अन्य किस देवता ने युद्ध के समय भी तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया है, किसने युद्ध को भी परमात्मा की सेवा मानने का सुझाव दिया है, इतनी दयालुता अन्यत्र कहाँ देखी गयी है ? अपनी रक्षा के लिये अन्य किस देवता का सहारा लेना उचित है ?

**१०—विभूतिरेषा श्रीशस्य त्रिलोकी तद्वपुस्ततः।**
**तदहंकारविषयो न ततः किञ्च भिद्यते।।१८७।।**

अध्यायमुपसंहरति—विभूतिरेषेति। एषा दृश्यमाना दृष्टाधीनकल्पनाविषयश्च, त्रिलोकी जगत्, श्रीशस्य विष्णोर्भगवतो, विभूतिर्विस्तारो, न किञ्चिदन्यदित्यर्थः। दृश्यादृश्ययोरभेदमुपपादयति—तद्वपुरिति। तस्य षडिन्द्रियविषयबहिर्भूतस्य परमात्मनो वपुः शरीरभूतं, देवदत्ताद्यदृश्यचेतनदेहपिण्डवदिति भावः। तेन तस्य परमात्मनोऽहंकारविषय इदं जगत्, यथा देवदत्तादिशरीराभिमानी नित्योऽदृश्यश्चेतनःशरीरम्, अहम् इति मन्यते तथैवेदं सकलं जगत् अनादिः परमात्माऽनादेः कालाद् अहमिति मन्यते। तत्र संसारि— चेतनस्याहम्बुद्धि—र्निषेकोत्क्रान्तिमध्यकालावच्छिन्ना, परमात्मनस्तु सर्वपरिणामेष्वपि समानाऽनवच्छिन्ना नित्या च। तेन ततः परमात्मनो न किञ्च किमपि, भिद्यतेऽन्यद् भवति, सर्वम्पदार्थजातम्परमात्मैवेत्यर्थः। सर्वत्र भगवद्दृष्टया मिथ्या भेददृष्टिर्निवर्तते, भक्तिवर्धते, मुक्तिः सन्निधत्तेऽवाप्यते च।१०

*इति दशमोऽध्यायः*

**भावार्थ — विभूतियोगनामक दसवें अध्याय में भगवान् ने विश्व के महत्वपूर्ण वस्तुओं को क्रम से अमुक मैं हूँ, अमुक मैं हूँ, ऐसा कहते हुए अन्त में कहा कि इस सारे जगत् को मैं अपनी अति सीमित शक्ति से धारण किये हूँ। इसका भाव यह हुआ कि यह सारा विश्व मेरा ऐसा शरीर है जिसे सम्हालने में मुझे वृद्धों और रोगियों की तरह शक्ति लगानी नहीं पड़ती बल्कि**



स्वस्थ बालकों की भाँति केवल प्रसन्नता से यानी आनन्दमय संकल्प से धारण किये हूँ। उस सन्दर्भ में शरीरशरीरी भाव के सिवा दूसरा ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है जिससे सारे जड़चेतनों के साथ परमात्मा का अभेद बन सके और वे कह सकें कि वृक्षों में पीपल मैं हूँ इत्यादि। आत्मा को सुखदुःख पहुँचाने के लिये शरीर पर ही कुछ कुछ करना पड़ता है, तब उस क्रिया का अनुकूल प्रतिकूल प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। ऐसे ही जगत् के प्रति अज्ञानमय हमारे कतिपय व्यवहार प्रभु को खलते हैं और शास्त्रविहित कतिपय व्यवहार उन्हें अच्छे लगते हैं, तब वे व्यवहारों से हमें अच्छा मान कर अच्छी स्थितियों से जोड़ते हैं। यदि हम सदा अच्छे ही रहें, गलती की ओर कभी न जायें तो हमें कुछ ज्यादा ही अच्छी स्थिति मिलेगी। सबसे अच्छी अवस्था से कभी मुक्ति भी हमे मिलेगी। सर्वत्र भगवबुद्धि रखते हुए प्रणाम करते रहना भक्ति की उत्तम अवस्था है। वही मुक्ति का निकटतम साधन है। ऐसी प्रवृत्ति देते हैं दसवें अध्याय के सन्दर्भ।

*दसवाँ अध्याय समाप्त*

## अथ एकादशोऽध्यायः

**श्रुत्वा देवर्षिसङ्घान्निरवधिगुणवद् ब्रह्म नित्यानुसेव्यं,**
**श्रीकृष्णादप्यवेदीद्धितपरशुभवाग्वैभवेनाचिरेण।**
**द्रष्टुं तांस्तान्विशेषान् श्रवणसमधृतान्भक्तिवृद्ध्येकहेतून्,**
**उत्कः पार्थः प्रपन्नः सुविनतवचसा स्वां दिदृक्षां न्यवेदीत्।।१८८।।**

एकादशाध्यायमवतारयति–श्रुत्वेति। पार्थो भक्तिप्रथितायाः पृथायाः कुन्त्या आत्मजोऽर्जुनः, देवानामृषीणां च नारदादीनां सङ्घात् समूहात्, निरवधिगुणवत् सङ्ख्याप्रभावानुभावसंसर्गसीमारहितानां गुणानाम् आश्रयभूतम्, अतएव नित्यानुसेव्यं निरतिशयस्पृहाविषयभूतम्, ब्रह्म परमात्मतत्त्वं, श्रुत्वा अवधार्य, श्रीकृष्णात् स्नेहातिशयेन रथचालननिरतात् अपि हितपरेण हितभावसम्पादनयोग्येन, शुभेन प्रीतिमयेन वाचां वैभवेन तात्पर्यार्थप्रतिपादनकौशलेन, द्वारा (तदेव) अवेदीत् अवदधार। (अथ) श्रवणसमधृततान् मननादिनिरपेक्षेण श्रवणेनैव समकालं धृतान् निःशंकमवगतान्, भक्तिवृद्धेरेकहेतून् तदेकफलान्, तान् तान् तत्तदृर्षिवचन–विषयभूतान्, विशेषान् कल्याणमयभगवद्गुणान्, द्रष्टुम् रूपाकारादिदर्शनद्वारा प्रत्यक्षवदवधारयितुम्, उत्कः सोत्कण्ठः (स) पार्थः प्रपन्नः, कृतशरणवरणः सन्, सुविनतवचसा सन्त्यक्तौद्धत्यया गिरा स्वामात्मीयां, दिदृक्षां दर्शनेच्छां, न्यवेदीत् भगवते प्रास्तौषीत्।

**भावार्थ – भक्तिमती कुन्ती के पुत्र अर्जुन भगवान् के परम भक्त थे। भक्ति से ही गुणों पर आस्था होती है। उन्हें यथासमय देवताओं और नारदादि ऋषियों ने परमात्मा को अनन्त कल्याणमय गुणों के आश्रय के रूप में प्रस्तुत किया था। गुणवान् की सेवा होती है, गुणों की अधिकता से सेवाभाव बढ़ता है। महान् गुणों से ही परमात्मा देवताओं की श्रद्धाप्रीति के पात्र हैं। उक्त रहस्य अर्जुन को पहले से ही विंदित था। वही अर्थ भगवान् ने बड़ी कुशलता से अर्जुन को हृदयङ्गम कराया। इससे भगवान् के गुणों के प्रति अर्जुन की उत्कण्ठा और ही बढ़ गयी भक्तों को ऐसा होता है। तब अर्जुन ने कथित गुणों को देखना चाहा। रूप आकार आदि के दर्शनों से गुणों**



**का प्रत्यक्ष जैसा अनुभव पाना चाहा। तब उसने भगवान् के समक्ष अतिशय नम्र भाव से शरणागत होकर अपनी श्रद्धापूर्ण इच्छा व्यक्त की।**

**इच्छाम्प्रेयान्प्रियस्यानुभवरतिकृताम्पूरयिष्यन् परात्मा,**
**दिव्यार्थालोकहेतुं निरवधिमहिमाऽऽपादयद् दिव्यचक्षुः।**
**तेनाद्राक्षीददृश्यं श्रुतिसमधिगतम्ब्रह्मणः सार्वरूप्य–**
**न्तस्माद्वायुं यमं तं हुतवहवरुणेन्द्वादिरूपं जगाद।।१८६।।**

पार्थाय भगवदनुग्रहविशेषम्प्रस्तौति–इच्छामिति। प्रियस्यानुवृत्ति–परस्यार्जुनस्य अनुभवरतिकृतां श्रवणमननकृतप्रीतिजनिताम् इच्छां दिदृक्षाम्, पूरयिष्यन् सम्पादयितुकामः परात्मा भगवान् कृष्णो निरवधिमहिमा अचिन्त्यकर्मक्षमः अतएव निरवधिमहिम अचिन्त्यदृक्सामर्थ्यं, दिव्यचक्षुर्दूरविप्रकृष्टतिरोहिता–नन्तारूपिसर्वार्थदर्शनहेतुभूतं नयनविशेषम् प्राक्तननयनयोरेव आऽपादयत् जनयामास। निवधिमहिमेति श्लेषेण प्रथमान्तं द्वितीयान्तञ्चोभयत्रान्वेति तन्त्रेण। तेन नवनयनविशेषेण श्रुतिसमधिगतं शास्त्रमात्रगम्यम् ब्रह्मणः परमात्मनः सार्वरूप्यम् सर्वविश्वरूपत्वम् अदृश्यं सामान्यदृशाऽशक्यदर्शनम् अपि अद्राक्षीत् अध्यक्षयामास। तस्माद् अत एव दर्शनजनितानुभवविशेषेण तं सारथिभूतं श्रीकृष्णं वायुं यमं हुतवहवरुणेन्द्वादिरूपं "वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांक" इत्यादि जगाद घोषयामास।

**भावार्थ – अर्जुन को दिव्यरूप प्रदर्शन के लिये भगवान् के अनुग्रह का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अनुवृत्तिपरायण प्रिय अर्जुन को अपने विषय में बहुतों से और अपने द्वारा भी समान वर्णन सुनने से श्रद्धा भक्ति और दर्शन लाभ की प्रबल उत्कण्ठा हो गयी जिसे अर्जुन ने बड़ी नम्रता से प्रकट किया। तब प्रियभक्त की इच्छा पूरी करने के लिये दर्शन देना आवश्यक हुआ। तब भगवान् ने वह दिव्य नेत्र प्रदान किया जिससे सामान्य लोगों की कल्पना से भी परे सूक्ष्म वेदान्तार्थ भगवान् की सर्वात्मकता का साक्षात्कार अर्जुन को प्राप्त हुआ। तब अर्जुन ने अपने दर्शन के अनुरूप वर्णन किया कि हे प्रभो ! मैं देख रहा हूँ कि आप वायु हैं, आप ही यम और अग्नि हैं, आप ही वरुण चन्द्रमा आदि हैं। भगवान् की सर्वात्मकता जो केवल श्रुतिप्रमाण का विषय है उसे अर्जुन ने साक्षात् देखा।**

**ब्रह्माण्डानाम्बहूनामुदयचयलयाः सर्वतो यत्र शश्वद्,**
**येषु ब्रह्मादिदेवा नृपशुतरुतृणान्ता असङ्ख्यातजीवाः।**

**आस्ते योऽणुष्वणीयानपि दधदखिला हेतिभूतीर्दयावान्,**
**दृष्टः पार्थेन सङ्ख्ये धृतहयरशनोऽसौ सखा ब्रह्म कृष्णः।।१६०।।**

अर्जुनस्य विश्वरूपदर्शनं विशदयति–ब्रह्माण्डानामिति। येषु ब्रह्माण्डेषु ब्रह्मादयो देवा नरः पशवस्तरवस्तृणान्ताश्च शैवालादयः क्षुद्रा असंख्याता अशक्यगणना जीवाश्चेतनाश्चरन्ति तेषाम् बहूनाम्ब्रह्माण्डानां यत्र ब्रह्मणि शश्वत् निरन्तरम् उदयचयलया जन्मर्धिनाशाः सर्वतः शरीरेषु रोमाणीव भवन्ति। अथ यो दयावान् भगवान् अणुषु ''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य'' इत्युक्तेषु चेतनेषु अणीयान् तेभ्योऽप्यणुरपि अखिला हेतिभूतीः स्वसङ्ल्पबलेन दधद् आस्तेऽवतिष्ठतेऽसौ धृतहयरशनो रथघोटकवल्गाग्राही सखा सखिभावेन चिरानुभूतः कृष्णो वासुदेवः पार्थेनार्जुनेन सङ्ख्ये संग्रामभूमौ नत्वेकान्तशान्तयो–गिप्रवरपर्णकुट्याम् ब्रह्म निरतिशयबृहत्त्वशालिजगन्मूलतत्त्वभावेन दृष्टश्चक्षुरगोचरोऽपि तद्गोचरीभूत आसीत्।

**भावार्थ – अर्जुन को विश्वरूप दर्शन प्राप्त हुआ। दर्शन के अनुसार उन्होंने भगवान् का वर्णन किया। उस वर्णन से दर्शन का वह प्रधान अंश भी समझ में आता है जो अर्जुन के वर्णन में खुल कर नहीं आया, उसी का निर्देश प्रस्तुत पद्य में करते हुए कहते हैं कि यह जो प्रसिद्धि है कि भगवान् के रोम रोम में ब्रह्माण्ड प्रतिक्षण उत्पन्न होते और लीन होते रहते हैं जिन ब्रह्माण्डों में कि असंख्य ब्रह्मा आदि देव नर, पशु, वृक्ष, तृण और शैवाल आदि क्षुद्र तृण उत्पन्न होते पलते और लीन होते रहते हैं, वह तथ्य अर्जुन को अदृश्य होता हुआ भी दृश्य रूप में उपलब्ध हुआ। इतना ही नहीं, अर्जुन को यह भी उपलब्ध हुआ कि अतिसूक्ष्म चेतन तत्त्व जीवात्मा के भी अन्दर, अनन्त कल्याणमयगुण सागर अनन्त अस्त्रशस्त्रों और अनन्त वैभवों से युक्त, विग्रह विशेष विशिष्ट रूप में हमारे ये सखा रथसारथी कृष्ण विराजमान हैं। ये वास्तव में परमतत्त्व परब्रह्म परमात्मा हैं और सबकुछ इनके ही अधीन है, इनसे बाहर कुछ नहीं है।**

*विशेष : इस सन्दर्भ में ''तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नम्प्रविभक्तमनेकधा'' और ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'' ये दो पद्यांश मननीय है।*

**निर्यन्तश्चापियन्तः क्वचिदपि विधृता ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुख्या**
**देवाः कालो महाँश्चानवधृतगतयो यत्र यन्त्रे भ्रमन्तः।**
**दृष्टाः पार्थेन युद्धोद्यमविदितबलाः सेनयोर्भक्ष्यमाणा**
**योधा दंष्ट्रासु लग्नाः श्रुतिविषयपरब्रह्म तत्केन मेयम्।।१६१।।**



विश्वरूपतया दृष्टस्य परस्य ब्रह्मणो महिमातिशयमाह–निर्यन्त इति। अनवधृतगतयो रविशशिमुखखेटा इवानिश्चितदैनिकादिचाराः, क्वचिद् देशे काले निर्यन्तः प्रादुर्भवन्तः, क्वचिद् देशे काले अपियन्तस्तिरोभवन्तश्च, क्वचिदपि देशे काले, विधृताः स्थिरा इव, ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुख्या देवा, महान् असीमपरिणामदेशः सजातीयविजातीयनानाद्रव्यपरिणामकलेवरो जन्यकालश्च, यत्रउद्दिष्टे यन्त्रे द्रव्यान्तरपरिणामहेतुतया यन्त्रपदलक्षणीये परमात्मनि, पार्थेनार्जुनेन, भ्रमन्तः परिक्रामन्तो, दृष्टाः साक्षात्कृताः, अपिच सेनयोः कौरवपाण्डवपक्षीययोः, युद्धोद्यमैः प्रहरणरक्षणोपायसहस्रैः विदितानि सुप्रथितानि, बलानि सामर्थ्यविशेषा येषान्ते तथोक्ता, योधा युद्धजीविनः सेनाप्रमुखा, भक्ष्यमाणाः सकलकलनपरेण कालात्मना परमात्मना फलमूलादिवच्चर्व्यमाणा, दंष्ट्रासु चर्वणदन्तेषु, लग्ना नश्यन्तो दृष्टाः, श्रुत्येकविषयस्तत्परम्ब्रह्म, केन प्रमाणान्तरेण, भगवदनुग्रहविशेषविधुरेण प्रमान्तरेण वा, मेयम्मांतु शक्यंस्यान्नतत्स्वैरेण द्रव्यान्तरवत् प्रमाणपरिच्छेदमर्हतीति भावः।

**भावार्थ – अर्जुन ने भगवान् से दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उन्हें जिस अनन्त रूप में देखा उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे सूर्य आदि ग्रहों की गति सामान्य रूप से ज्ञात रहती है ऐसे सामान्यरूप से भी जिनकी गति ज्ञात नहीं है ऐसे ब्रह्मा रुद्र इन्द्र आदि देवता जिस किसी देश और काल में उपलब्ध होते हुए, जहाँ कहीं भी लीन होते हुए वास्तव में जिस यन्त्रतुल्य केन्द्र की परिक्रमा करते हैं, ऐसे ही महत्तत्त्व और जन्यकाल भी जिसकी परिक्रमा करता रहता है, एवं युद्ध में जिनकी ख्याति फैली है ऐसे दोनों कौरव–पाण्डव पक्षों के वीर जिस महान् तत्त्व के द्वारा चबाये जाते हुए दाढ़ों में फँसे दीख पड़े उस केवल वेदों के द्वारा जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा को कौन अपनी बुद्धि से पकड़ सकता है। परमात्मा ने कृपा कर अर्जुन को अपना दर्शन दिया इससे वे जान पाये, कृपा के बिना दूसरा कोई जान नहीं सकता।**

**यत्सङ्कल्पान्नृणां स्यात्किमपि परिणमद् दूरगं सन्निकृष्टं,**
**यच्चातीतम्भविष्यत्सपदि भवति तद्रूपवद् हस्तलग्नम्।**
**यस्य ब्रह्माण्डराशिर्भवति न भवति स्वेच्छया कालयन्तु–,**
**स्तत्सत्केनाप्तुमर्हं यदि न सकरुणं स्यात्प्रपन्ने भवेऽस्मिन्।।१६२।।**

सकलम्प्रमेयन्तत्परिणामास्तत्प्रमाश्च भगवत्सङ्कल्पैकाधीना इत्याह–यत्सङ्कल्पादिति। यस्योद्दिष्टस्य परमात्मनः सङ्कल्पाद् एव नृणां चेतनानाम्, परिणमद् अवस्थान्तरम् भजत् किमपि द्रव्यं दूरगं सत् सन्निकृष्टम् अन्तिकस्थं

स्यात्, यच्च द्रव्यम् अतीतं विनष्टम् भविष्यद् अनुत्पन्नं, तत् सपदि शीघ्रमेव, रूपवत् वर्तमानस्येव रूपाकारपरिमाणादिविशिष्टं सद् हस्ते लग्नं स्पृश्यमानं स्यात्। यस्य च कालयन्तुः कालनियामकस्य, स्वेच्छया संकल्पविशेषेण ब्रह्माण्डानां राशिः समूहो भवति उत्पद्यते, न च भवति नश्यति च तत् सत् सदैकरूपावस्थन्त–त्त्वम्, अस्मिन् भवे संसारे, प्रपन्ने शरणागते, यदि सकरुणं, दयावशं न स्यात्, तदा केन ब्रह्मादिनाऽपि, आप्तुम् प्रमातुम्, अर्हं शक्यं स्यान्न केनापीति भावः।

**भावार्थ – सारे प्रमेय उनकी अवस्थायें और उनका ज्ञान परमात्मा के एकमात्र सत्य संकल्प के अधीन हैं यह सूचित करते हुए कहते हैं कि कोई भी द्रव्य जो भी अवस्था प्राप्त कर रहा हो वह चाहे कितना भी दूर हो वह परमात्मा के संकल्प से निकट हो जाता है, एवं जो नष्ट हो चुका हो वह या जो उत्पन्न भी न हुआ हो वह वर्तमान जैसा रूप आकार आदि के साथ हाथ में आ जाता है। परमात्मा सारे काल के नियामक हैं उनके संकल्पमात्र से ब्रह्माण्डों का समूह उत्पन्न होता है और क्षणभर में नष्ट भी हो जाता है। वास्तव सत् तत्त्व वहीं है जिसका ज्ञान भी नहीं बदलता। उस परम तत्त्व को तो वही इस जगत् में जान या प्राप्त कर सकता है जो प्रपन्न होने से उनकी कृपा प्राप्त कर सके, अन्यथा उसे जानना या पाना असम्भव है।**

**दिव्यांल्लोकाननन्तांस्तदुदरविचरद्देवसङ्घान्सुदीप्तान्,**
**नक्षत्राणां ग्रहाणां निजनिजपथगानामनन्तांश्च राशीन्।**
**जीवैः सेव्या अनन्तैर्नगजलधिसरित्स्नेहभूमीश्च भूमी–**
**र्बिभ्रद्देहैकदेशे हरिरिह ददृशे पाण्डुपुत्रेण सङ्ख्ये।।१६३।।**

अर्जुनेन दृष्टार्थान् संक्षिपन्नाह–दिव्यांल्लोकानिति। पाण्डुपुत्रेणार्जुनेन, सङ्ख्ये युद्धक्षेत्रे हरिः बाल्यात् सम्बद्धः सखा, स्नेहेन सारथ्यं निर्वहन् भगवान्, अनन्तान् गणनानर्हान्, दिव्यान् नृचक्षुरगोचरान्, लोकान् देशविशेषान्, सुदीप्तान्भ्राजमानान्, तदुदरेषु लोकानाम्मध्येषु विचरतां व्यापृतानां देवानाममराणां, संघान्, समूहान्, निज–निज–पथगानाम् असन्त्यक्तप्रकृतिनियम–स्वस्वमार्गाणां, नक्षत्राणां कृत्तिकादीनां, खेटानां ग्रहाणाम्, अनन्तान् संख्यातीतान्, राशीन् समूहान्, अनन्तैरसंख्यातैर्जीवैश्चेतनैः, सेव्या अवस्थानभोगलाभादिर्भिरुप–युज्यमाना, नगानाम्पर्वतानां, जलधीनां समुद्राणां, सरितां नदीनाञ्च स्नेहभूमीर्नित्यालिंगिता, भूमीर्धरित्रीश्च, देहैकदेशे चिन्मयानन्तस्वस्वरूप–स्याल्पतमेशे, बिभ्रद् धारयमाणो, ददृशेऽवलोकितः।



**भावार्थ – अर्जुन ने दिव्यचक्षु से भगवान् के विराट् रूप में जो जो देखा उसे संक्षेप में सूचित करते हुए कहते हैं कि अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को सखा तो मानते ही थे किन्तु जब राजनैतिक अच्छे सुझाव उनसे मिलने लगे तो उत्तम नीतिज्ञ माना और जब योगसिद्धियाँ देखी तो महान् योगी माना और जब अध्यात्मशास्त्र में प्रवीणता देखी तब शास्त्रज्ञ समझा किन्तु जब दिव्यचक्षु प्राप्त करके उनका अनन्तआश्चर्यमय विश्वरूप देखा तब प्रत्यक्ष परमात्मा माना। जो कृपा अर्जुन पर उन्होंने की वह और किसी पर नहीं की इससे और लोग उन्हें वैसा नहीं समझ सके। अर्जुन ने भगवान् के दिव्य विग्रह के एकदेश में अनन्त प्रकाशमान लोक देखे, उन लोकों में विचरणशील प्रकाशमय अनन्त देवता देखे, अपने अपने निर्धारित मार्ग पर चलते हुए नक्षत्रों और ग्रहों को देखा अनन्त जीवों से सेवित और असंख्य पर्वत वननदियों से आलिङ्गित बहुत सी पृथिवियाँ भी देखीं। महान् आश्चर्य है कि यह सब रथपर विराजमान सारथि श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह के एक देश में ही अर्जुन ने देख लिया।**

**नादिम्मध्यं न चान्तम्परिकलितसुदिव्याक्षिवीर्योऽपि पार्थः,**
**प्राप प्रत्यक्षदृष्टेऽखिलभुवनमये ब्रह्मणो विश्वरूपे।**
**तस्मिंल्लोका अनन्ताः सुविशदवपुषि क्वापि कोणे निलीना,**
**रूपाकारैर्विभिन्नाः सपदि ददृशिरे दिव्यचक्षुःप्रयत्नैः।।१६४।।**

परस्य ब्रह्मण इव तद्विभूतेरप्यानन्त्यम्पार्थेन प्रत्यक्षदृष्टमाह– नादिम्मध्यमिति। परिकलितम् भगवत्प्रसादेन स्वायत्तीकृतं, सुदिव्यं देवादिभिरपि चिन्तयितुमशक्यम् अक्षि दृग्विशेषस्तदेव वीर्यम् असामान्यं सामर्थ्यं यस्य सोऽपि पार्थोऽर्जुनो, ऽखिलभुवनमये निलीनोदयमानोदितानन्तब्रह्माण्डराशिकोषभूते, ब्रह्मणः श्रीकृष्णाख्यस्य परमात्मनो, विश्वरूपे सर्वद्रव्यान्तर्यामिणि सारथितयाऽव–लोक्यमानेऽपि दिव्यमङ्गलविग्रहे, न आदिं न मध्यं, न चान्तम् प्राप लब्धवान्, सुविशदवपुषि गगनवदनाद्यनन्ते, तस्मिन् उक्ते भगवतो विश्वरूपे, क्वाऽपि दुर्लभ्ये, कोणे कोण इव संकीर्णे भागे, रूपैः संस्थानैः, आकारैः परिमाणै, र्विभिन्ना मिथोविलक्षणा, अनन्ताः संख्यातीता, लोका ब्रह्माण्डानि, दिव्यस्य भगवत्प्रदत्तस्य चक्षुषो नेत्रविशेषस्य प्रयत्नैर्व्यापारविशेषै, र्ददृशिरेऽवलोकिता अर्जुनेनेति शेषः।

**भावार्थ – परब्रह्म परमात्मा को अनन्त कहा माना जाता है किन्तु अर्जुन ने उनकी स्थूल सूक्ष्म अनन्त विभूतियों को भी अनन्त रूपों में ही अपने दिव्य नेत्रों से अनायास सहसा देख लिया, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि**

अर्जुन को सबकुछ देखने में सहायक दिव्य नेत्र मिला था। किन्तु उस नेत्र से भी उसे भगवान् के अनन्त विश्वरूप में न कहीं आदि मिला न कुछ मध्य ही समझ में आया न अन्त मिला। उस दिव्य अनन्त रूप के अन्दर तो किसी थोड़े से भाग में अर्जुन को अनन्त ब्रह्माण्ड एक दूसरे से विलक्षण दीखते ही गये, उनका कहीं अन्त नहीं मिला।

**यद्वेदान्तावसेयञ्चिरयतनपरैर्योगिभिर्यच्च मेय–**
**न्ध्येयं यद्भिन्नमार्गागमगणनिपुणैस्तर्कणाभिश्च गम्यम्।**
**यद्वृत्तं वर्त्स्यमानम्प्रविततभुवने वर्तमानञ्च कृत्यं,**
**देवादीनां समस्तं युगपदथ हरौ विश्वरूपे परस्मिन्।।१६५।।**

**ऐक्षिष्टादः समस्तन्त दधिकमपि यच्चित्रमासीत्सुराणाम्,**
**पार्थः संग्रामभूमिस्थितमुभयदलं स्वेदविन्दूपमानम्।**
**पश्यंस्तद्देशकालौ नियमयति मृषा मन्यमानः समस्तं,**
**दृश्यं कृष्णं सखायं श्रुतिविदिततनुं सत्यसत्यं जगाम।।१६६।।**

विश्वरूपदर्शनफलम्परमतत्त्वभूतपरमात्मनिष्ठा, तदितरार्थानान्तदपेक्षयाऽतत्त्वभावो नाम मिथ्यात्वम्, परमात्मन एव नित्योपादेयत्वन्ध्येयत्वन्नित्या–नौपाधिकसखित्वं, सर्वेषां सत्यभूतार्थानामपि सत्यत्वनिर्वाहकत्वेन सत्यस्य सत्यत्वञ्च साक्षाद् दृष्ट्याऽर्जुनेनावधारितमित्याह–यद्वेदान्तेत्यादियुग्मकेन। अत्र पञ्चानामपि यत्पदार्थानान्तद्रूपमिति तत्पदार्थेन, अग्रे ऐक्षिष्टेति क्रियया चान्वयो बोध्यः। वेदान्तैः श्रुतिशिरोभागै रहस्यभूतार्थैः, यद् अवसेयं निर्धारण– विषयः, चिरयतनपरैश्चित्तवृत्तिनिरोधोपायव्यापृतैर्योगिभिर्मुमुक्षुभिर्यत् तत्त्वं योगविशुद्धचेतसा मेयम्प्रमीयते, यच्च भिन्नमार्गाणामागमानां गणेषु समूहेषु निपुणैरुपलब्ध–सामञ्जस्यैर्मनीषिभिर्ध्येयं शास्त्ररहस्यार्थतयाऽवधारणीयम् परमात्मतत्त्वम्, अथ यद्, वृत्तम् अतीतं, वर्त्स्यमानं भावि, वर्तमानञ्च देवादीनां समस्तं कृत्यं तदधिकमपि यत् कृत्यं सुराणां चित्रम् आश्चर्यम् आसीत् अदः समस्तं, परस्मिन् सर्वातिशयिनि, देवादीनामपि दुर्दर्शेऽर्जुनेन साक्षात्कृते, विश्वरूपेऽनन्ताश्चर्यमयविभूतिप्रधाने, हरौ सर्वाधारे, ब्रह्मणि पार्थोऽर्जुन ऐक्षिष्ट, (अपि च) संग्रामभूमि स्थितम् उभयं कौरवपाण्डवीयं, दलं सैन्यविभागं, स्वेदविन्दूपमानं सद्यः पतनायैवजायमानम्, पश्यन् अवेक्षमाणः (पार्थः) समस्तं दृश्यम् प्रमेयं, तद्देशकालौ नियमयति भगवति कृष्णे, मृषा तत्संकल्पबहिर्भूत– सत्तारहितम् मन्यमानो जानानः श्रुतिविदिततनुं



सखायं कृष्णं, सत्यसत्यं सर्वेषां सत्यभूतार्थानामपि सत्यत्वाधायकं जगाम निश्चितवान्। सर्वभूतसुहृद्भूतं सर्वाधारम्परात्परं। विज्ञाय सारथिम्पार्थस्तदेकोपायतां दधे।

**भावार्थ – परमात्मा श्रीकृष्ण ने दिव्य दृष्टि प्रदान कर अर्जुन को अपना विश्वरूप प्रदर्शित किया। उससे वेदान्त आदि उपायों से दूर से क्लेश से समझ में आने योग्य महान् अर्थ शीघ्र अनायास प्रत्यक्ष दीख गया। इससे अर्जुन की मोक्षोपायभूत भक्ति पुष्ट हो गयी, यह अर्थ बतलाते हुए कहते हैं कि परमात्मा को वेदान्तों के द्वारा समझा जाता है, योगी लोग निरन्तर ध्यान से उन्हें समझते हैं, नाना आगमग्रन्थों से भी उन्हें समझा जाता है, तर्कों और अनुमानों से भी लोग समझते हैं। वह सब प्रकारों का ज्ञान अर्जुन को हो गया। साथ ही, देवादि द्वारा होने वाला भूत भविष्यद् वर्तमान क्रिया कलाप एवं देवताओं के लिये भी आश्चर्य भूत बहुत से परिवर्तन अर्जुन ने देखे। उस देखने के क्रम में कौरव पाण्डव पक्षों के सैनिक तो ऐसे लगे जैसे पसीने की बून्दें निकलती झड़ती जा रही हों। अर्जुन ने यह भी समझा कि किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति स्थिति और ध्वंस का स्थान और समय परमात्मा के संकल्प के अधीन है ऐसी स्थिति में उनका मौलिक अस्तित्व नहीं है, वे मिथ्या हैं इससे भरोसे के योग्य नहीं हैं। भरोसा तो निरुपाधिक नित्य सखा परमात्मा श्रीकृष्ण का ही करना उचित है। वे ही उपाय मानने योग्य अनेक अर्थों के अस्तित्त्व के नियामक हैं। वे सभी सत्यों के सत्य हैं।**

**भक्तिम्पार्थः प्रपन्नो भगवति परमां चेतसाऽभूद्दधान–**
**स्तां सर्वात्मा व्यजानात्कृषक इव शुभां वल्लरीं सत्फलार्हाम्।**
**तद्वृद्ध्यै विश्वरूपं स्वमसममहिमाऽदर्शयन्नूत्नभक्त्या,**
**गङ्गाम्भोधारयेवासमरसभरया यात्विति व्योम दिव्यम्।।१६७।।**

विश्वरूपप्रदर्शनस्य मुख्यम्प्रयोजनमाह–भक्तिमिति। प्रपन्नो भगवन्त–मेवोपायोपेयभावेन विजानन्, पार्थश्चेतसा शुद्धमनसा, भगवति परमात्मनि श्रीकृष्णे, परमाम् भक्तिम् प्रीतिविशेषं, दधानो धारयमाणोऽभूत्, ताम् भक्तिं सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी भगवान् स्वयं साक्षात्कुर्वाणः कृषकः सत्फलार्हाम् उत्तमफलोत्पादयोग्यां स्वयमपि शुभां रमणीयां वल्लरीम् इव व्यजानात्। असममहिमा स भगवान्, तस्या भक्तेर्वृद्धये उत्कटावस्थालाभाय, स्वम् असाधारणं विश्वरूपम् अदर्शयत् प्रदर्शयामास। तत्र हेतुमाह–असमरसभरया मोक्षोपायभूतहरिभक्तिहेतुभूतया, गंगाऽम्भोधारया इव,

नूत्नभक्त्या, दिव्यं शुद्धसत्त्वमयं वैकुण्ठाख्यं लोकम्परमपदं यातु लभतामिति संकल्प्येति भावः। अत्रोपमा उत्प्रेक्षा च।

**भावार्थ – भगवान् ने अर्जुन को विश्वरूप दर्शन इस लिये कराया कि वे उसकी अपने प्रति शुद्ध भक्ति को जानते थे, उस भक्ति से वे सन्तुष्ट होकर मानने लगे थे कि यह परमपद का अधिकारी बन गया है। तब उसे उससे भी उत्तम भक्ति प्राप्त कराने के लिये विश्वरूपदर्शन दिया। इससे उसे गंगा की वैकुण्ठ से आने वाली धारा की तरह निर्मल भक्ति प्राप्त हो गयी। संसारवासनायें धुल गयीं, तत्त्वदर्शन स्थिर हो गया। भक्ति का व्यवधान समाप्त हो गया। मुक्तिलाभपर्यन्त सारी व्यवस्थायें भगवान् ही करते हैं।**

**११–श्रीशोऽनन्तः स्वरूपेण शक्त्या विभवतस्तथा।**
**अनन्तसत्यसङ्कल्पे ब्रह्मणां गणनाऽत्र का।।१९८।।**

श्रीशो भगवान् विष्णुः, स्वरूपेण आत्मना, शक्त्या ज्ञानेच्छायत्नविशेषै, स्तथा विभवतो मायातत्कार्यविस्तारतोऽनन्तः, न तदवगमः साकल्येन कस्यापि शक्यः। तथा च अनन्तसत्यसंकल्पेऽत्र परमात्मनि, ब्रह्मणाम्परमेष्ठिनां, गणना संख्या, का स्यान्न काऽपीति भावः। अर्जुनस्य प्रार्थनयैव भगवान् आत्मनो विश्वरूपम्प्रदर्शयामास। युद्धोत्साहो भक्तिवृद्धिश्च तत्फलम्।
शास्त्रीयसीमितधियैव हरौ सुभक्तिः, साध्या न कृत्स्नमवगन्तुमलं जनोऽयम्।।
इत्येव धीरुदयते खलु विश्वरूपं दृष्ट्वाऽवधार्य च तथैव बुधा वदन्ति।।

इत्येकादशोऽध्यायः

**भावार्थ – दसवें अध्याय में भगवान् की बहुत सी विभूतियाँ सुनकर उन सारी विभूतियों के साथ भगवान् का दर्शन करने की इच्छा अर्जुन की हुई। अर्जुन ने कही गयी विभूतियों को सीमित ही समझा था। ''नान्तोऽस्ति विभूतीनाम्०'' इत्यादि भगवान् के वचनों का भाव वे नहीं पकड़ पाते थे। असीम का दर्शन उन्हें हुआ ही नहीं था। तब भगवान् ने विश्वरूप दर्शन कराया। उससे भगवान् के स्वरूप के समान ही उनकी शक्तियों और विभूतियों को भी अर्जुन ने अनन्त मान लिया। तब सीमित शास्त्रीय ज्ञान से ही भगवान् की भक्ति बढ़ाने की उन्होंने ठानी और पहले जैसे मनुष्यरूप के ही दर्शन की इच्छा प्रकट की। अनन्त के अन्त की तलाश में समय गवाँना छोड़कर प्रसिद्ध उपायों से भक्ति बढ़ाने का निर्णय इस अध्याय का निष्कर्ष है।**

*ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त*



# *अथ द्वादशोऽध्यायः*

**भक्तिम्मुक्तेरुपायम्प्रपदनपरमां श्रीपतिः प्राह भूयः,**
**प्रत्यक्तत्त्वस्वरूपस्थितिमपि बहुशो विद्यते चैष पन्थाः।**
**तस्मात्स्निग्धं सखायं हरिमरिदरशार्ङ्गायुधम्प्रब्रुवाणं,**
**विश्रब्धम्पृष्टवांस्तत्सरणियुगभिदामर्जुनः पूर्णतुष्ट्यै।।१९९।।**

द्वादशाध्यायार्थमवतारयति–भक्तिमिति। श्रीपतिः सारथ्यं निर्वहन् सर्वतत्त्वोपदेशप्रथितः परब्रह्मभूतः श्रीमन्नारायणः, प्रपदनम्परमाऽवस्था यस्याः सा तथोक्ता ताम् भक्तिम् भूयः पौनःपुन्येन, प्रत्यक्तत्त्वस्वरूपस्थितिमपि स्वस्वरूपमात्रनिष्ठामपि, बहुशो बहुवारम्, मुक्तेरुपायम् प्रकर्षेण प्रभावमहिमोपन्यासपुरस्सरम्, आह अनन्तरग्रन्थपर्यन्तमबोधयत्। एष पन्था मोक्षसाधनम्भक्तिः स्वरूपध्यानञ्च विद्यत उपलभ्यते च शास्त्रेषु। तस्माद् भक्तिः स्वरूपनिष्ठा वा मुक्तये श्रेयसीति संशयोत्थानात्, अर्जुनः अरिः सुदर्शनञ्चक्रम्, दरः पाञ्चजन्यः शंखः, शार्ङ्गं धनुश्च सर्वायुधप्रतिनिधय आयुधानि प्रहरणानि यस्य स तथोक्तस्तं सखायञ्चिरसुहृदं, हरिं सलक्षणं विष्णुम्, प्रब्रुवाणन्तत्त्वोपदेशपरं, विश्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात्तथा, पूर्णतुष्ट्यै प्रज्ञादाढर्यफलाय, सरण्योर्भक्तिज्ञान–योरुपाययोर्युगेद्वयेभिदाम् फलसमयस्वरूपतारतम्यम्, पृष्टवान् ''एवं सततयुक्ता ये०'' इत्यादि ग्रन्थेन जिज्ञासामकार्षीत्।

**भावार्थ – भक्ति और ज्ञान में भेद के प्रश्न से बारहवाँ अध्याय शुरु करते हैं। उक्त प्रश्न का विवरण प्रस्तुत करते हैं। भगवान् ने पिछले अध्याय तक बहुत बार भक्ति को मुक्ति का उपाय बतलाया किन्तु स्वरूप ज्ञान से शास्त्र का आरम्भ किया और बहुत बार उसकी भी उपयोगिता बतलायी। अन्य अध्यात्मविद्या के ग्रन्थों में भी दोनों की उपयोगिता वर्णित है इससे अर्जुन को जिज्ञासा हुई कि दोनों उपायों में किस उपाय को अपनाने वाला मुमुक्षु अधिक सफल होता है। उत्तर साक्षात् नारायण से मिलना है जो समस्त विद्याओं के प्रवर्तक हैं, आज वे स्वयम् अनुग्रहपूर्वक उक्त विषय का ही प्रस्ताव पिछले अध्याय के अन्त में कर चुके हैं, सुहृद् हैं सही उत्तर ही देंगे यह मानते हुए अर्जुन ने पूर्ण विश्वास के साथ उक्त प्रश्न पूछा।**

**अत्रानेके मुमुक्षाधृतमतिकृतयो नैकधा तत्त्वनिष्ठा–**
**कर्तव्याप्तव्यभिन्नाः क्व नु तनुविलये यान्ति तत्को नु वेद।**
**तत्सर्वेषान्द्विधात्वम्प्रपदननिकषेणैव संकल्प्य पार्थः,**
**साफल्यस्योत्तमत्वत्वरितगतिभिदे पृष्टवान् पूर्णतुष्टयै।।२००।।**

प्रश्नस्योत्तरम्भक्तिज्ञानाभ्यां संक्षिपता भगवता यदुक्तन्तदेवात्रावान्तर मान्यताभिर्विव्रियते–अत्रानेक इति। अत्र मोक्षसाधनविषये मुमुक्षया मोक्षेच्छया धृता नियता मतयः सिद्धान्ता गतयोऽनुष्ठानानि, येषान्ते तथोक्ताश्चित्तशुद्धौ यतमानास्तत्त्वनिष्ठया नास्तिकास्तिकनानाभेदभिन्नदेशिकसम्पादितया श्रद्धाविशेषसम्पादितया तत्त्वविषयिण्या आस्थया, तदधीनैर्यज्ञदानादिभेदभिन्नैः कर्तव्यैस्तत्फलभूतैराप्तव्यैः परिणामैश्च नैकधा मनोवृत्तिभेदैरसङ्ख्यैः प्रकारैर्भिन्ना यतयस्तनुविलये शरीरपातानन्तरं क्व नु अचिन्त्ये देशे यान्ति तत् को नु प्रामाणिकोऽपि वेद जानाति, स्वर्गनरकादिपदैर्गन्तव्यं योजयन्नपि मनोवृत्त्यनुसारित्वात्फलानां वृत्तीनाञ्चानन्त्यात् स्पष्टतया ज्ञातुमशक्यतया वस्तुतो नैव कोऽपि जानातीति भावः। अथ परोक्षैकफलानां नानोपायानां तत्तदागमादिधृतफलानुरूप्यातिशयाधीनातिशयतया फलभूतस्य मोक्षस्य च सवासनसकलविषयत्यागपूर्वकतया त्यक्तव्येषु च सकलानर्थहेतुतयाऽऽत्मन एव प्रधानतया तस्य च कर्कशतर्कानुमानशतेनाप्यसत्त्वापादनस्याद्यापि दुःशकतया तत्त्यागस्य प्रमितपरकीयताधीसन्तानैकरूपतया तस्यैव च प्रपदनपदार्थतया तस्यैव च सकलमोक्षोपायनिकषता सत्सम्मतेति सङ्कल्प्यावधारयन् पार्थो मोक्षोपायानान्तारतम्यम्प्रदनधीयोग्यतातारतम्याधीनमिति निश्चिन्वन् स्वनिश्चयस्य भगवद्वचनसंवादेन दार्ढ्यं स्यादिति मन्वानः पूर्णतुष्टयै मोक्षोपायानां साफल्यस्य वाञ्छितपरिणामस्य, उत्तमत्वस्य चरमोत्कर्षस्य, त्वरितगतेः शीघ्रफलस्य च भिदे इतरोपायोत्कर्षद्वयम् पृष्टवानित्यन्वितार्थः।

**भावार्थ – मोक्षमार्ग में अनन्त विचार हैं मान्यतायें है, सिद्धान्त हैं, उनके अनुसार कर्तव्य हैं, मोक्ष की परस्पर विरोधी बहुत सी परिभाषायें हैं, जो आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते वे भी मोक्ष की कल्पना करते हैं, जो निर्गुण, सगुण, एक या अनन्त, परमात्मा से भिन्न, अभिन्न औपाधिक भेद या स्वाभाविक भेद मानते हैं। वे भी अपनी अपनी मान्यता के अनुसार मुक्ति के अनेक रूप मानते हैं। ये नाना मान्यतायें अनादि हैं, सबके पीछे कठिन तर्क, और प्रमाण हैं।**



**वेदव्यास जी सब जानते थे, उनका उन्होंने संक्षेप एवं विस्तार से निरूपण किया है। अर्जुन को भी ऋषिमुनियों की संगति से बहुत कुछ ज्ञात था, भगवान् श्रीकृष्ण से पिछले अध्याय तक बहुत कुछ सुनने से एवं शुरू से ही भगवान् के प्रति प्रपन्न होने से महत्त्वपूर्ण निर्णय तक पहुँच भी चुके थे, ऐसी स्थिति में उन्होंने ''एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वाम् पर्युपासते'' इत्यादि प्रश्न पूछा था। भगवान् ने भी प्रश्न के अनुरूप उत्तर दिया है जो मूलग्रन्थ से ही समझा जा सकता है।**

**प्रस्तुत श्लोक से यह बतलाते हैं कि अर्जुन ने प्रपन्न होने से प्रपत्ति की कसौटी से ही सभी मोक्षोपायों को तौला था, इससे भक्ति और ज्ञान इन दो उपायों का अन्तर भी वे प्रपत्ति की प्रधानता और अप्रधानता इन दो भेदों से समझते थे। भगवान् ने उत्तर में जो कहा है कि ज्ञानमार्गी भी भक्तिमार्गी की तरह मुझे ही प्राप्त करते हैं, उसमें ''सर्वभूतहिते रताः'' इस विशेषण से प्रपत्ति का अंश प्रदर्शित करते हुए उसे कारण रूप से इंगित किया है। अर्जुन भक्त थे, उनमें भूत मैत्री भी थी, प्रभु का भाव पहले ही से समझते थे, उस समझ के अनुरूप ही अर्जुन को उत्तर मिला और वे पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो गये। आगे कृपा पूर्वक भगवान् ने अविस्मरणीय अर्थों का उपदेश स्वयं किया है।**

**अस्त्यात्मा नास्ति किञ्चित्स्थिरमितिभिदया भिद्यमानो विमुक्तेः,**
**पन्था द्वेधा मुमुक्षून्विभजति न भिदा विद्यते सा तु भक्तौ।**
**यद्यत्स्मृत्यास्पदन्तत्सकलमपि हरौ वेदवेद्ये परस्मिन्–**
**आत्मान्तं न्यस्य तस्मै गमयति समयं शिष्यते को नु बन्धः।।२०१।।**

भक्तिः सर्वमोक्षोपायसंग्रहरूपेति प्रतिपादयन्नाह–अस्त्यात्मेति। आत्माऽस्ति इति आत्मवादिनो वदन्ति, स्थिरं किञ्चिद् अपि वस्तु नास्तीति चार्वाका बौद्धाश्च नास्तिका वदन्ति। उभयेऽपि मुमुक्षवो भवन्ति। तथाऽपि अस्तित्त्वनास्तित्वाभ्याम् भिद्यन्ते। तदेवाह–इतिभिदया भिद्यमानो विमुक्तेः पन्था मार्ग उपाय इति यावत्, मुमुक्षून् अपि मिथो विरुद्धाभ्याम् पक्षाभ्यां द्वेधा विभजति। सा तु भिदा भक्तौ न विद्यते,। कथम् इत्यत्राह–यद्यदिति, ''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम्पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्'' इत्यात्मनिवेदनान्ता हि भक्तिः प्रथते। तत्रार्चनवन्दनदास्येषु स्वीयसदसत्काम्यद्वेष्यसर्वार्थार्पणम्पर्यवस्यति, तत्र देहेन्द्रियमनःप्राणानामप्यर्पणमन्तर्भवति, दास्यं हि नाम स्वस्य स्वीयानाञ्च शश्वद् भगवदेक शेषत्वावधारणम्। तेन भगवदनन्यता सन्निधीयते। सख्यभावपूर्त्या

विधिनिषेधबन्धः श्लथते। स्वीयसर्वसमर्पणेन सर्वविस्मरणे सम्पन्नेऽपि आत्मनोऽविस्मरणीयस्य क्वापि समर्पणाभावेन भवबन्धहेतुममाहम्भावाश्रयः स्वयमेवावशिष्यते। तन्निवारणायात्मनिवेदनं नाम भक्तेरन्त्यः परिणामो मोक्षाव्यवहितं कारणं कल्प्यते। तच्चात्मनिवेदनं स्वस्वरूपगतानाम् अशेषाणाम् औपनिषदविशेषाणाम् असंशयनिश्चयपूर्वकसदनुष्ठानसातत्येन सूक्ष्मत्रिगुणमाया–संसर्गजनिताज्ञानकृतदुरनुष्ठाननिवृत्तेर्भगवते सद्गुरवे सच्छिष्येणेव प्रदर्शनम्। ते च विशेषा भगवदेकशेषत्वम्, भगवदेकधार्यत्वम्, भगवदेकभोग्यत्वम्, एतदाका–रत्रयनियतं नित्यस्वप्रकाशज्ञानानन्दमयत्वञ्च। एतदेव चेतनानाम्ब्रह्मात्मकत्वं, शुद्धाद्वैतधियाऽचेतनानामपि। बाह्यार्थेषु ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धाने रागद्वेषा निवर्तन्ते। स्वस्मिन् ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धाने स्वातन्त्र्यं निवर्तते, तदेकशेत्वाद्याकारत्रयञ्च परमपुरुषार्थसुखमयम्प्रकाशते। एतेन स्वविषयभूतैर्लौकिकार्थैः सह रागद्वेषास्तदाश्रयः स्वतन्त्रात्मा च निवर्तते, नावशिष्यते कोऽपि बन्धहेतुरतत्त्ववादिनाञ्च। अवशिष्यते तु सर्वशेषी सर्वाश्रयः सर्वभुक् सत्यसङ्कल्पः सकलकल्याणगुणाश्रयः परब्रह्म परमात्मा। स एव मायिनामशेषासदर्थारोपाधिष्ठानं रज्जुरिव सर्पादेः। स एव शून्यं शून्यवादिनां विज्ञानं वा विज्ञानवादिनाम् बन्धमोक्षमध्यावस्थावताम्। स कः कीदृग् वा स्यादिति निर्णयस्तु चित्तशुद्धेःपूर्वमाप्तवचोभिः, शुद्धेःपरं चेतसा, चेतोलये तु स्वात्मनैव भवेदिति चित्तशुद्धय एव यतनीयं केनापि सुचिरेण ध्यानेन। ध्यानयोग्यश्चार्थो भगवानेव, गीतायाम् बहुधा तदुक्तेः। इदं सर्वं विमृश्यैवात्रोच्यते– यद्यदिति। स्मृत्यास्पदं चित्तारूढं, यद्यत् प्रमेयं कल्पनाविषयो वा आत्मान्तं सकलमपि तद् वेदवेद्ये प्रमाणान्तरस्पर्शानर्हे परस्मिन् स्वावधिकोत्कृष्टशून्ये हरौ सकलप्रमेयाकर्षणप्रवणे, न्यस्य सदाचार्यगिरा तदेकाश्रितत्वं शास्त्रार्थमवधार्य, तस्मै तदेकलाभमहासुखस्पृहया, समयं जीवनशेषं, गमयति प्रारब्धक्षयप्रतीक्षया नयति मुमुक्षौ कोनु बन्धः संसारबन्धहेतुः शिष्यतेऽवतिष्ठत इति भावः।

**भावार्थ – भक्तिमार्ग दूसरे सारे मार्गों को एक करता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि अतत्त्ववादी मुमुक्षु अपने माने हुए मोक्ष के लिये प्रयत्न करते हैं, तत्त्ववादी वेदान्ती भी वेदान्त विदित मोक्षकी प्राप्ति हेतु साधनाओं में लगे रहते हैं। इस तरह मार्गभेद से मुमुक्षु दो प्रमुख भेदों में बँटते दीखते हैं किन्तु सोचा जाये तो भक्तिमार्गी मोक्ष के लिये वही चाहते हैं जो नास्तिक चाहते हैं। रागद्वेषों की निवृत्ति के लिये बौद्ध साधक सांवृतिक अर्थों को तर्कों से मिथ्या मानकर संवृति के वारण के लिये ध्यान करते हैं किन्तु भक्तजन**



**लौकिक अर्थों को केवल ईश्वराधीन मानते हुए उस मान्यता की पुष्टि के लिये अखिल–जगदाश्रय प्रभु का ध्यान करते हैं। दोनों के रागद्वेष उनकी मान्यता से नहीं बल्कि ध्यान से छूटते हैं। जब विषयों की वासनाओं के साथ रागद्वेष छूट जाते हैं तब चित्त आत्मा को भी नहीं पकड़ता। यही माध्यमिकों की मुक्ति है जो भक्तों को भी प्राप्त होती है। भक्तिमार्ग में मुक्ति कोई और ही है जो बहुत देर से मिलती है। इस तरह मुक्ति तक साथ चलते हैं माध्यमिक और भक्त। अन्य मार्ग इन दो के अन्दर ही ठहरते हैं। जो जो अर्थ स्मृति पटल पर चढ़ते हैं वे प्रिय अप्रिय यथार्थ या कल्पित जैसे भी हों उन्हें उस परमात्मा में समर्पित कर, (स्थित मान कर) जो केवल वेदों के द्वारा जाना जाता है उसकी कृपा से सम्पूर्ण अज्ञान–निवृत्ति और उसके परमकल्याणमय दर्शन की ललक में शेष जीवन व्यतीत कर रहे मुमुक्षु का कौन सा बन्धन शेष रह जाता है ? कोई भी नहीं।**

**नास्त्यात्मा तस्य दत्तो जगदिदमखिलन्तद्गतन्तेन नेयं,**
**किञ्चिन्नास्थाऽऽस्पदन्तं श्रुतिसमधिगतं श्रीधरं वर्जयित्वा।**
**तत्सत्यत्वम्मृषात्वं श्रुतिहृदयगतं शुद्धधीमात्रगम्य–**
**म्बुद्धेः शुद्ध्यै तु सद्भिः शुचिपरपुरुषे न्यास एवावलम्ब्यः।।२०२।।**

भक्तिमतां शून्यवादिनाम् माध्यमिकानाञ्च चित्तवृत्तिसाम्यमाह– नास्त्यात्मेति। तस्य भक्तिचरमावस्थाप्रपत्तिनिष्ठस्य कृतात्मनिवेदनस्य मुमुक्षोः सर्वाधाराय सर्वनियामकाय सर्वभोक्त्रे सर्वस्वामिने परमात्मने दत्त आत्मा नास्ति। एतेन माध्यमिकानाम् आत्मनास्तित्वम्प्रदर्शितम्। इदं दृश्यमानं गगनादि पृथिवीतत्परिणा–मान्तम्, अखिलं सर्वम् अपि, जगत् तद्गतं जगदाधारे श्रुतिसमधिगतेऽवस्थितं, तेनादृश्येन परमात्मनैव, नेयं निर्वहणीयं, तत्सत्यत्वमृषात्वादिव्यवस्था तेनैवं सततं सम्पाद्यते नत्वस्माभिरज्ञानिभिरिति तात्पर्यम्। मृषात्वेऽपि जगति तेनैव किमप्युद्दिशता सत्यत्वमिव, तदाश्रितत्वेऽपि स्वतन्त्रत्वमिव, तदेकभोग्यत्वेऽपि अस्मदादिभिः–स्वयम्भोग्यत्वमिव सम्पाद्यतइति भावः। भगवत इयं नित्यलीला माध्यमिकैर्मृषाभूतायां संवृत्यां कल्प्यते। श्रुतिसमाधिगतं न तु सांवृतिकं, तम्प्रसिद्धं श्रीधरम् अशेषकल्याणगुणाकरम्, वर्जयित्वा अन्यत् किमपि, आस्थाऽऽस्पदं विश्वासस्थानं, नास्ति। तस्योक्तस्य श्रीधरस्य परमात्मनः सत्यत्वम् मृषात्वं वा श्रुतिहृदयगतम् अस्ति, नास्माकं लौकिकानां ज्ञानास्पदन्तदितिभावः। किञ्च शुद्धधीमात्रगम्यन्तत् रागद्वेषहेतुविषयवासनानां स्थिरध्यानयोगाग्निना विनाशेन शुद्धे चेतसि एव स्फुरति

सत् तत्त्वम्। शून्यवादिनामपीदम्मतम्। बुद्धेः शुद्ध्यै तु सद्भिर्लब्धात्मभिर्महद्भिः शुचौ प्रकृतिसंसर्गजदोषशून्ये परस्मिन् लोकनियमानुबन्धशून्ये पुरुषे भगवदाख्ये न्यासः स्वात्मान्तं सर्वसमर्पणम् एव, अवलम्व्यः स्वीकरणीय उपायः नहि सदोषेण ध्यानेन दोषा अपगच्छेयुरिति भावः।

**भावार्थ – शून्यवादियों द्वारा कल्पित फल तत्त्ववादी भक्तों को भी अवश्य मिलता है यह सूचित करते हुए उनकी मान्यता के अनुरूप कहते हैं कि जैसे शून्यवादी तर्कों से आत्मा को मिथ्या मानकर उसे भूल चुके होते हैं ऐसे ही भक्तजन तत्त्वबोधपूर्वक आत्मा को प्रभु के चरणों में समर्पित करके परायी वस्तु मानते हुए उसे भूल जाते हैं, ऐसे ही दृश्य जगत् को भी धर्मिभूत परमात्मा में, वस्त्रादि में रूप आदि की तरह अपृथक् सिद्ध एवम् उनके द्वारा ही सञ्चालित, अपनी पकड़ से दूर मानते हुए भूल चुके होते हैं, तब उनके ध्यान में केवल परमात्मा रह जाते हैं जो वेदोक्त होने से मानवी बुद्धि से परे हैं। जैसे प्रत्यक्षव्यवहारविरुद्ध बौद्ध तर्क ध्यान से शुद्ध हुए चित्त पर ही जमते हैं ऐसे मानवी बुद्धि से परे श्रौत अर्थ भी शुद्ध चित्त की ही पकड़ में आते हैं। चित्तशुद्धि का उपाय सब के मत में ध्यान ही है। ध्यान का विषय है प्रभु के प्रति किया गया सर्वसमर्पण। समर्पण न भूले तो चित्तशुद्ध हो जाये । यह सत्पुरुषों का अनुभव है।**

**रत्नं राज्ञो गृहीत्वा चरति यदि यतिर्निर्जने काननान्ते,**
**लब्धाऽसौ घोरदण्डम्भजतु स धिषणान्तत्परीक्षासु गाढाम्।**
**आत्मा मिथ्याऽऽथ वा सन् भवतु न विशयः कर्ममोहावृतात्मा,**
**दुःखद्वन्द्वानुबद्धश्चरति भववने यद्वशस्तस्य देयः।।२०३।।**

राजरत्नदृष्टान्तेन सर्वेषाम् भगवच्छरणागतिरनिवार्येत्याह–रत्नं राज्ञ इति। यदि कश्चिद् यतिरसङ्गः सन् मोक्षोपायेषु यतमानो, राज्ञश्चक्रवर्तिनोऽविहत–शासनस्य रत्नम् महार्थं कमपि मणिविशेषं, गृहीत्वा तेनाप्रदत्तमुपादाय, निर्जनेऽसंगतया जनसञ्चारशून्ये काननान्ते वनप्रान्ते गृहीतस्य, मणेर्द्रष्टुमर्हे क्षेत्रे, चरति स्वापराधम् अजानन् निःशंकः सञ्चरति (तदा) असौ घोरम् मृत्युपर्यन्तमपि दण्डं लब्धा लभेत, स यतिस्तत्परीक्षासु रत्नपरीक्षासु गाढाम् तलस्पर्शिनीम् अनितरसाधारणीम् धिषणाम् प्रज्ञाम् भजतु रक्षतु नाम, तथाऽपि दण्डं लभेतैवेत्यर्थः। दार्ष्टान्तिकमाह–(तथैव) आत्मा मिथ्यावादिनाम् मिथ्या, सत्त्ववादिनां सन् सत्यभूतो भवतु नाम, पक्षद्वयेऽपि विशयः संशयो मा भूत्



तथापि कर्ममोहावृतात्मा अज्ञानकृतकर्मजनितेन मोहेन आवृतः पिहितः, आत्मा स्वरूपं यस्य स तथोक्तो दुःखमयैर्द्वन्द्वैः प्रियाप्रियभावनामयैः अनुबद्धः सदैव युक्तो (आत्मा) यस्य वशोऽधीनः सन् भवरूपे वने कानने नष्टमार्गः चरति भ्राम्यति तस्य स्वामिनो देय एव दण्डनिपातभयात्। आत्मा जगत् तत्स्वामी च तर्कनिपुणानाम्मिथ्या भवन्तु सत्यभूता वा भवन्तु, उभयथाऽपि मतद्वयेऽपि सत्यभूतस्य मिथ्याभूतस्य वा दण्डस्य भयात् आत्मसमर्पणम् आवश्यकमेवेतिभावः।

**भावार्थ – भगवान् की शरणागति संसार के सारे लोगों के लिये समान रूप से अनिवार्य हैं, दुःखों से बचने का एक मात्र उपाय यही है, यह बात रत्नदृष्टान्त से समझा रहे हैं। माना कि कोई योगी जंगल के पास अकेला रहता है, कोई परिग्रह नहीं करता। उसे क्या भय होगा ? दैववश उसके झोले में सम्राट का मूल्यवान् रत्न पड़ा है। योगी रत्न का पारखी है। उसका मूल्य समझता है, फिर भी वीतराग होने से उसका कोई उपयोग नहीं सोचता। राजा को स्वयं या किसी के माध्यम से पहुँचा देना भी वह आवश्यक नहीं मानता। वह व्यवहार से सदा दूर रहता है। ऐसी स्थिति में जब राजा के गुप्तचर योगी के पास रत्न पा जायेंगे तो योगी को मृत्युदण्ड भी हो जायेगा। उस समय उसका जौहरीपना उसकी रक्षा नहीं कर पायेगा बल्कि उससे उसका दण्ड बढ़ेगा। इस दृष्टान्त में योगी है बिना शरणागति के मोक्षोपायों में लगा मुमुक्षु, रत्न है उसका स्वयम्प्रकाश आत्मा उसकी झोली रूपी ह्रदय में उसका रत्न तुल्य आत्मा सदा चमक रहा है जिसे वह मालिक का पता न होने से अपना मान रहा है। बिना मालिक वाला कोई भी मूल्यवान् धन राजा का होता है, उसे उपलब्ध कराना प्रजा का कर्तव्य होता है, योगी भी एक प्रजा ही होता है। योगी यदि देर तक अपना कर्तव्य भूला रहेगा तो पता चलने पर योगी को मृत्युदण्ड भी मिल सकता है। योगी का व्यवहार से दूर रहना मोक्षोपायों की अनदेखी करना है। यहाँ सम्राट हैं परमात्मा, वे ही चेतनतत्त्वरूपी मूल्यवान् रत्न को अनुराग पूर्वक धारण में रुचि रखते हैं। रत्न को न सौंपने से जो दण्ड मिल सकता है वह प्रत्येक संसारी को अनादि काल से मिल रहा है। संसार कारागार में उसके दुःखों की सीमा नहीं है। आत्मा के बारे बहुत सी अच्छी जानकारी उस योगी की तरह बहुत लोग रखते हैं किन्तु वह एक ईश्वरीय विभूति है जो शीघ्र समर्पित करने योग्य है, अन्यथा दण्ड होगा, होता होगा, पहले भी हो चुका होगा, ऐसी जानकारी कम ही लोग पाते हैं जिससे आत्मा की चोरी का दण्ड अनादिकाल से पा रहे हैं।**

**संवृत्या सत्यता चेत्तनुधनजगतामात्मनोऽपि प्रतीतेः,**
**सत्यस्य न्यास एष्यः सकलभवरुजामेकवैद्यस्य हस्ते।**
**संवृत्या श्रुत्यधीतोत्तमपुरुषपदद्वन्द्वचिन्ताधुतान्त–**
**श्चित्ते शुद्धे यथार्थम्प्रतिफलतु सतां सम्मतन्तत्त्वजातम्।।२०४।।**

दृश्यं सर्वम्मिथ्येति प्रलपताम्प्रच्छन्नानाम्प्रकटानाञ्च बौद्धानामन्येषामपि मुमुक्षूणाम्भगवच्छरणागतिरेव निःसंशयोपाय इत्याह–संवृत्येति। "द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना। लोकसंवृतिसत्यञ्च सत्यञ्च परमार्थतः।" इति प्रकटानाम्प्रच्छन्नानाञ्च बौद्धानाम्मर्यादा प्रथते। तद्दृष्ट्या प्रस्तूयते यत् तनुधनजगतां शरीरवित्तसंसारव्यवहाराणां सत्यता चेत् संवृत्या सत्यावरणरूपया प्रतीत्या (मन्यते तदा) प्रतीतेर्व्यावहारिकज्ञानविषयत्वाद् हेतोः सत्यस्य व्यावहारिकसत्यस्य आत्मनस्तर्कैरापादितासत्त्वस्य, सकलभवरुजाम् एकवैद्यस्य सकलक्लेश प्रशमनप्रवणस्य परमात्मनो हस्ते तदेकाधीनतया न्यासः समर्पणम्, एष्यो वाञ्छनीयः। अथ बौद्धदृष्ट्या संवृत्या अज्ञानरूपया श्रुत्यां वेदे अधीतोऽवधारितो य उत्तमपुरुषः श्रीशः, तस्य पदद्वन्द्वचिन्तया भक्त्या धुतम् अन्तः सकलविषयवासनारूपं यस्य तत् तथोक्तं तस्मिन् चित्ते शुद्धे उक्तचरणनखमणिव्रातमयूखराशिप्रक्षालिते सतां सज्जनानां समस्तं तत्त्वजातम् प्रतिफलतु प्रतिभासताम्, शून्यं वा विज्ञानधारा वा निर्विशेषम्ब्रह्म वा दिव्यम्परमम्पदं वा यथासत्त्वम् अबाधितप्रतीतिगोचरम् भवतु। तदर्थं ध्यानन्तु करणीयमेव। ध्येयश्च गुणातीत एवाक्षरः पदार्थः।

"मा मुक्तये भ्रमपदानि बुधा व्रजन्तु, ध्येयम्पदन्तु कमलाकरकञ्जमुग्धम्।
सम्पुष्टिहेतुमवयन्ति समेऽपि बालाः स्वस्वोचितम्पलललेशमथाापि दुग्धम्"

**भावार्थ – दार्शनिकमान्यतायें चाहे जो भी हों, भगवान् के प्रति शरणागति सबके लिये समानरूप से मोक्ष का साधन है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि जो लोग दृश्य जगत् को अपने परम्परागत तर्कों से मिथ्या मानते हैं इससे इसके रचयिता को भी नहीं मानते उन्हें भी चूंकि व्यावहारिक सारी बातें व्यवहारपर्यन्त माननी पड़ती हैं इससे व्यावहारिक परमात्मा के चरणों में अपने व्यावहारिक आत्मा को व्यावहारिक रूप से अर्पित इसलिये कर देना चाहिये कि सारे क्लेशों रोगों के एकमात्र वैद्य भगवान् ही माने गये हैं। यह बात भले ही व्यावहारिक हो, परमार्थ कुछ और ही हो किन्तु व्यवहारकाल में व्यवहार पर आस्था न रखना अपराध होता है, किसी से धन लेकर उस आदान प्रदान को मिथ्या कहना केवल बेईमानी माना जाता है इसलिये व्यावहारिक जीवन**



**में निष्ठापूर्वक ही आत्मसमर्पण करना चाहिये। पूर्णशुद्ध चित्त में ही प्रतीत होने वाले किसी परमार्थ की कल्पना से व्यावहारिक चित्त से हुए व्यवहार को मनसे भी झुठलाना उस व्यावहारिक समर्पण का व्यावहारिक विरोध होगा जो समर्पण के व्यावहारिकफल को रोककर विपरीत व्यवहार की दिशा में ले जायेगा। वह समर्पण के विपरीत फल सांसारिक व्यावहारिक क्लेशों का सृजन करेगा। तब परमार्थपथ ढक जायेगा और संसार जारी ही रहेगा। आत्मसमर्पण–पूर्वक ध्यान से शुद्ध हुए चित्त में परमार्थ तत्त्व सबको समानरूप से ही उपलब्ध होता है। चित्तशुद्धि के बाद सारे भेद जड़ से मिट जाते हैं।**

**नास्तीशो नास्ति चात्मा न च जगदखिलं नास्ति पुण्यं न पापं,**
**चेत्येवं कोऽपि कामं रटतु परमसावात्मनो द्वन्द्वदुःखम्।**
**नैवास्तीत्युक्तिमात्राद्यदि हरतितमान्तर्हि बन्धश्च मोक्षो,**
**मिथ्या, मिथ्या प्रयत्नाः फलमपि सकलम्मन्यतां साधु मिथ्या।।२०५।।**

पूर्वम्मिथ्यावादमनुरुन्धता प्रपत्तेः सर्वोपयोगित्वमुक्तम्। इदानीं वस्तुतो मिथ्यावादो व्यवहारविरुद्धतया केनाऽप्यङ्गीकरणानर्ह इत्याह–नास्तीश इति। ईश आत्मा इदमखिलं जगत् अदृष्टम् पुण्यम् पापञ्च नास्तीत्येवं कोऽपि कुतर्काभ्यासनष्टमतिः कामं यथेच्छं रटतु, विफलं जल्पतु, परं किन्तु असौ कुतर्की आत्मनो द्वन्द्वजं प्रियाप्रियहिताहितस्वपरभेददर्शनजनितं दुःखं स्वीयं नैवास्तीति स्ववचनमात्रेण यदि हरतितमाम् अत्यन्तमुच्छिनत्ति, स्ववचनमात्रेणैव यदि तदीयानि द्वन्द्वदर्शनानि तत्फलानि दुःखानि च यदि निवृत्तचराणि स्युस्तदा तु बन्धमोक्षतत्प्रयत्नतत्फलानि मिथ्या मन्यन्ताम्। अन्यथा तु वालविप्रलम्भ–मात्रफलमिदमखिलम् प्रलपितमिति मन्तव्यम्।

**भावार्थ – विचार के बिना मिथ्यावाद में बहुमत का ध्यान रखकर पहले कहा गया कि मिथ्यावाद पक्ष में भी शरणागति की उतनी ही उपयोगिता है जितनी तत्त्ववाद में। अब कहते हैं कि मिथ्यावाद एक ऐसा दुर्बाद है कि व्यवहार विरोधी होने से उसे कोई भी हृदय से स्वीकार नहीं करता। कहते हैं कि ईश्वर, आत्मा, यह सारा संसार और अदृष्ट पुण्य पाप यह सब कुछ भी नहीं हैं। ऐसा कहने वाले अपनी भेद दृष्टि और उससे होने वाले दुःखों को भी यदि कह दें कि यह सब कुछ नहीं है और उनका दुःख यदि छूट चुका हो तब तो हम यह भी मान लेंगे कि बन्ध मोक्ष उसके उपाय और फल यह सब कुछ मिथ्या है। किन्तु यदि वचनमात्र से, कुतर्काधीन चिन्तन मात्र से**

दुःख दूर नहीं होते और चित्तशुद्धि के लिये ध्यान की आवश्यकता रहती हैं, शुद्धचित्त में ही तत्त्वदर्शन होता है तो कुतर्को का त्याग कर तत्त्ववाद स्वीकार करते हुए ध्यान करें, वाद में शुद्धचित्त में स्वंय ही शून्यवाद या मायावाद या तत्त्ववाद स्पष्ट झलकने लगेगा।

**मिथ्यैवैषा त्रिलोकी विषयरतिमता चेतसा या गृहीता,**
**शास्त्रार्थाश्चापि सत्या अपि कुमतिकृतारोपरक्ता मृषैव।**
**हन्तुं सर्वम्मृषात्वं कलयितुममलं साधु सत्तत्वजातं,**
**सन्तः श्रीशं श्रयन्ते श्रितदुरितहरं सर्वलोकाधिवासम्।।२०६।।**

इदानीन्तत्त्ववादिसम्मतम्मिथ्यात्वमुपस्थापयति–मिथ्यैवैषेति। या प्रस्तुता, विषयेषु शब्दादिषु, रतिमता, सानुरागेण, चेतसाऽन्तःकरणेन, गृहीता अनुभूयमानाऽस्ति, सा इयं त्रिलोकी जगत्, उदासीनाऽपि विषयरागप्रयुक्तराग–द्वेषोपरागेण हेतुना मिथ्या गृह्यमाणरूपरहिता एव अस्तीति शेषः। अथ प्रमाणभूतवेदादिशास्त्रकृतविधिनिषेधविषयभूता अर्थाः कथम् मिथ्या स्युरित्य त्राह–शास्त्रार्थाश्चापीति, सत्या अपि, प्रमाणभूतशास्त्रगम्यत्वेन अमृषा अपि, कुमत्या वितथहेयोपादेयभावरूपया देहादिष्वहम्ममताप्रयुक्तया, कृतः सम्पादितो य आरोपो हानोपादानोपेक्षाविषयतारूपस्तेन रक्ताः पटादय इव वाह्यवर्णाकारयुक्ता, अत एव सत्या अप्युपाधियोगान्मृषा एव, कुपथसमसुपथ इवान्धस्य विषयदोषाभा वेऽपि दृग्दोषवशान्मिथ्या मन्तव्या इति भावः। एवम् मिथ्यादृष्टिकृतं सकलानर्थमूलं सर्वम् अपि मृषात्वं विषयगतं, हन्तुम् अपवारयितुम्, अमलं निर्दोषं सत्तत्वजातं भ्रमप्रमादराहित्येन कल्याणमूलतत्त्वसमूहं, कलयितुं साक्षात् कर्तुं सन्तः सत्सङ्गेन लब्धात्मानो महान्तः, श्रितदुरितहरं, शरणागतानाम् भवबन्धहेतुपातकनाशननिरतं, सर्वलोकाधिवासम् सर्वाश्रयत्वेन सर्वम् अर्थजातं सङ्कल्पमात्रेण विनिमयितुं क्षमम्, श्रीशं दयामूर्तिलक्ष्म्या समेतं श्रीमन्नारायणं श्रयन्ते रक्षकतया श्रद्धया वृणन्ति।

**भावार्थ – अज्ञान से सारे अर्थ हमें अस्त व्यस्त दीखते हैं। सीधे चलते हुए ग्रह भी लौटते से दीखते हैं, प्रेमी शत्रु मालूम होता है, शत्रु प्रेमी लगता है, अपथ्य भोजन पथ्य लगता है, पथ्य से द्वेष होता है, आकाश नीला लगता है, लाल पीला भी लगता है जब कि वह सदा एक सा है। दुष्कर्म प्रिय लगते हैं, सत्कर्म खलते हैं। यह सारी अस्तव्यस्ततायें कर्मों से बन्धी हमारी बुद्धि का खेल है। विषय तो अपने आप में सदा ही सही हैं। कर्मों से हमें राग द्वेष होते हैं, इससे लौकिक पदार्थ प्रिय और अप्रिय लगते हैं, उससे अनेक शुभाशुभ**



**कर्म होते हैं, उनके फलों के लिये हम जन्म लेते रहते हैं, यही संसार है। सारी भ्रान्तियाँ दूर हों और विषय मृषारूप में नहीं बल्कि अपने वास्तव रूप में ही उपलब्ध हों, इसके लिये सन्तजन उन लक्ष्मीपति भगवान् की शरणागति करते हैं जो सारे लोकों के एकमात्र आश्रय होने से अपने संकल्पमात्र से आश्रितों के पापों का हरण करके पूर्ण यथार्थ ज्ञान प्रदान करते हैं।**

**संवृत्यां यत्र सत्यां जगदिदमभितः शक्रचापोपमानम्,**
**भात्यादातुर्दुरापम्पुनरपि सुषमं दूरगानां स्पृहाऽर्हम्।**
**सा भानोर्यस्य माया गुणघनगरुचेः, साध्वसौ वेदितव्यो,**
**ध्येयः सेव्यश्च यत्नादनवहितधियं संवृतिः संवृणोति।।२०७।।**

मायासम्बन्धजमज्ञानम् परे संवृतिमाहुस्तद्भाषया भगवदुपासनावश्यकता प्रस्तूयते–संवृत्यां यत्रेति। यत्र प्रसिद्धायां, संवृत्याम् अज्ञानरूपायाम् इदं जगत्, दृश्यजातम्, अभितः पुरस्तात्, शक्रचापोपमानम् इन्द्रधनुस्तुल्यम्, आदातुः लब्धुं यतमानस्य, दुरापं दुर्लभम् भवति, पुनरपि दूरगानां दूरात् पश्यतां, सुषमं रमणीयतमम्, अत एव स्पृहार्हं वाञ्छनीयम् भाति अनुभूयते। सा विचित्राऽनुभूतिः, गुणघनगरुचेः सत्त्वादिगुणरूपमेघसंक्रान्तरश्मेः, यस्य भानोः सूर्यस्य इव परमात्मनो माया आश्चर्यकरी शक्तिरस्ति असौ मायापतिः, साधु निपुणं, वेदितव्यः श्रुत्यादिविद्यावित्तेभ्यः सच्छीलवद्भ्यो महद्भ्यः सप्रश्रयप्रश्नसेवादिभिरवगन्तव्यः, स च ध्येयोऽनुभवानुरूपं चिन्तनीयो यत्नात् सेव्योऽर्चनप्रणतिस्तुत्यादिभिरधिकाधिक–मनुसन्धेयश्च। कथमित्याह–अनवहितधियं विषयानुरागचञ्चलम् पुरूषं संवृतिः तत्त्वावरणशक्तिरज्ञानम् संवृणोति परितोऽवतिष्ठतेज्ञानालम्बनीभावेनेत्यर्थः।

**भावार्थ – अज्ञान को बौद्धों ने संवृति कहा है। संवृति के रहते विफल और दुर्लभ पदार्थ उपयोगी और सुलभ लगते हैं जैसे इन्द्रधनुष कुछ दूरी पर मिलने वाला मालुम पड़ता है किन्तु दूर जाने पर वह और ही दूर लगता है। दूर से वह सुन्दर जरूर लगता है किन्तु मिलता कभी नहीं। मेघ पर इकट्ठी हुई सूर्य की किरणें इन्द्रधनुष बनती हैं। ऐसे ही त्रिगुण माया पर आनन्दघन परमात्मा का कोई अचिन्त्य प्रभाव पड़ता रहता है। इसी से सब कुछ अच्छा ही लगता है जब कि वास्तव में कुछ अच्छा नहीं होता। इसे ही प्रभु की माया कहते हैं। प्रभु को समझने ध्यान करने और यत्नपूर्वक स्तुति पूजा प्रणामादि करते रहने से माया हटती है और प्रमाद में रहने से माया या संवृति बनी रहती है। मुमुक्षु सावधान ही रहते हैं।**

**प्राग्भूयोलालसाभिर्बहुसितशबलश्यामकर्माणि देही,**
**कृत्वा त्यक्त्वा शरीरं वहति नवनवम्प्राप्तये तत्फलानाम्।**
**कर्माण्येव प्रमादं स्वफलयुतिहितं सम्प्रयच्छन्ति जन्तो–**
**स्तम्मायां संवृतिं वा निजगुरुवचनाभ्यासयोगाद्वदन्ति।।२०८।।**

पूर्वकर्मभिः स्वफलहेतुरुत्पादितः प्रमाद एव मायेति संवृतिरिति वोच्यत इत्याह–प्राग् भूयो लालसाभिरिति। प्राक् पूर्वजन्मनि, लालसाभि विषयस्पृहातिरेकेण, बहूनि गणनाऽनर्हाणि, सितानि सत्त्वगुणप्रयुक्तानि सुखहेतुभूतानि, शबलानि रजोगुणप्रयुक्तानि दुःखहेतुभूतानि, श्यामानि तमोगुणप्रयुक्तानि प्रमादालस्यनिद्रा–जननानि कर्माणि जनानां तात्कालिकसुखदुःखमोहादिफलकानि स्वस्य च कीर्तिनिन्दाफलकानि कृत्यजातानि कृत्वा निर्वर्त्य कर्मजननं शरीरं त्यक्त्वा मरणोत्तरं, तत्फलानाम्प्राप्तये सुखदुःखमोहानामनुभवाय, नवनवं शरीरं वहति धारयति। पूर्वकर्माण्येव स्वफलाय अज्ञानमयं शरीरं जनयन्ति। तदेवाह–जन्तोर्देहिनः कर्माण्येव स्वफलवितरणाय प्रमादं सकलसुखदुःखनिमित्तभूतं स्वरूपविस्मृतिमयं विषयानुभवजं हर्षविशेषम्, प्रयच्छन्ति जनयन्ति। तमेव प्रमादं केचित् स्वगुरु–वचनाभ्यासरूपाद् योगात् कारणात् माया इति, परे संवृतिः इति वदन्ति।

**भावार्थ – पिछले जन्मों में किये गये कर्म अपने शुभ अशुभ फल देने के लिये चेतन में प्रमाद उत्पन्न करते रहते हैं, यह प्रमाद ही सारे सुखदुःखों का मूल होता है, इसे ही कुछ लोग माया कहते है और दूसरे लोग संवृति कहते हैं, यही इस श्लोक का भाव है। पूर्वजन्मों में विषयों के प्रति प्रबल लालसा से सात्त्विक राजस तामस कर्म हो चुके होते हैं, शरीर छूटने पर भी वे कर्म लगे रहते हैं, प्रमाद के विना सुख भी नहीं होता, दुःख तो होता ही नहीं, इससे पुराने कर्म अपने अपने फल जारी रखने के लिये प्रमाद बनाये रहते हैं। प्रमाद विषयों के प्रति अज्ञान बढ़ाता है। जितने जन्मों तक पिछले कर्मों के फल पूरे नहीं होते उतने जन्म होते रहते हैं। आगे और कर्म होते हैं इससे जन्म होते ही रहते हैं। इस प्रकार कर्मों से प्रमाद, उससे भोग और अज्ञान की वृद्धि, उससे नये कर्म और उनसे अगले जन्म का चक्र चलता रहता है। उसमें प्रमाद को ही माया या संवृति कहा जाता है।**

**यावत्कर्माणि देही वहति निजकृतान्यात्मना सुप्रमत्त–**
**स्तावत्संसारबन्धप्रशिथिलनकथा दूरतो याति तस्मात्।**



**सत्कर्माभ्यासयोगात्सुजनसहकृतात्सन्मतेस्तत्प्रभावा–**
**न्मोहध्वंसप्रमादक्षयसमयमिलत्सद्गुरोर्याति पारम्।।२०६।।**

कर्मबन्धशैथिल्यसमय एव सद्गुरूपलब्धिस्तेन च मुक्तिरित्याह– यावदिति। देही चेतनो, यावत्कालं, सुप्रमत्तः विषयाभिनिविष्टधीः, निजकृतानि स्वयमेवारभ्य पूरितानि कर्माणि प्रारब्धसञ्चितक्रियमाणरूपाणि, आत्मना स्वयमेव तेष्वभिनिविष्टः सन्, वहति धारयति त्यक्तुम् मनसाऽपि नेच्छति, तावत् संसारबन्धस्य चित्तारोहिनानासुखदुःखोपनिपातसातत्यस्य, प्रशिथिलने तत्त्वावबोधेन तस्य तुच्छत्वापादने या कथा तत्त्वविषयिणी, सा तस्माद्देहिनः सकाशात्, दूरतो याति न प्रवर्तते। (अथ) सुजनैः सच्छीलबुद्धिकर्मरहस्यवेदिभिः, सहकृतात् कर्मतत्त्वश्रद्धाबृद्धेः, सन्मतेः सत्तत्वविषयज्ञानसातत्यात्, तत्प्रभावाद् बुद्धिशुद्धेः, विषयेषु मोहस्य रागातिरेकस्य, ध्वंसस्तेन प्रमादस्यात्मवैमुख्यस्य, क्षयोऽल्पीभावश्च, एतयोः मोहप्रमादनाशयोः समये मिलतो दैवाद् हरिकृपातो वा सङ्गतात्, सद्गुरोर्हेतोस्तदुपदेशप्रभावात्, पारं याति, संसारसागरमुत्तरति।

**भावार्थ – कर्मबन्धन के शिथिल होने पर सत्पुरुषों की उत्तम प्रेरणा से शुभकर्मों का अभ्यास होता है तब बुद्धि शुद्ध होती है और मोह तथा प्रमाद नष्ट होता है, उस समय सौभाग्य से या हरिकृपा से सद्गुरु की प्राप्ति होती है और उनके दयापूर्ण उपदेशों से मोक्ष मिलता है, इसी आशय से कहते हैं कि चेतन जबतक अपने किये अज्ञानमय कर्मों को स्वयं ढोता चलता है तब तक संसारबंधन को शिथिल करने वाली चर्चा उससे दूर ही रहती है किन्तु जब वह महापुरुषों की संगति से सत्कर्मों में लग जाता है तब धीरे–धीरे तत्त्वबोध होता है जिससे बुद्धि शुद्ध होती है, तब मोह और प्रमाद हटते हैं, उस समय दैववश या ईश्वर की कृपा से सद्गुरु मिलते हैं, उनके दयापूर्ण उपदेश प्राप्त होते हैं, तब संसार–सागर से कोई पार जाता है।**

**आस्तां विश्वम्मृषैतद् भवतु च नृमतिस्तत्त्वतोऽतीव दूरे,**
**लोके सद्रत्नतुल्यो मिलतु यतनवत्कोटिमध्ये मुमुक्षुः।**
**तस्यैव श्रेयसे श्रीसुललितहृदयम्ब्रह्म नित्यं दयावद्,**
**विद्यामाध्यात्मिकीं सन्दिशति सुचरिताभ्यासलभ्यां सुहृत्त्वात्।।२१०।।**

विश्वसृष्टेर्मुख्यमुद्देश्यम्मुमुक्षूद्धार एवेत्याह–आस्तामिति। एतद् विश्वम् मृषा आस्ताम्, मृषावादिनां व्यवहारविरोधी मृषावादोऽङ्गीक्रियतां तदनुयायिभिस्तेन

बन्धमोक्षतदुपायव्यवस्था अपि मृषोच्यन्तां तथापि व्यावहारिकतत्सत्ताऽभ्युपगमेन व्यावहारिकमोक्षतदुपायाः स्युरिति भावः। अथ जनानां सामान्येन तत्त्ववैमुख्यं दृश्यते, ततः कः कं किमुपदिशेदिति वादिनम्प्रत्याह भवतु च नृणाम्मतिः तत्त्वतो यथार्थतोऽतीव दूरे, ''त्यागविरुद्धा संग्रहवृत्तिर्मोक्षविरुद्धाबन्धश्रद्धा, शीलविरुद्धं दुःशीलत्वं यस्य स धत्तां कः खलु तत्त्वम्'' इत्यवस्थायाम् मोक्षस्य कथैव विफलेति चिन्ता मा भूत्, मुमुक्षायाः सदैव दुर्लभत्वादिति भावः। तदेवाह– लोकेसद्रत्नतुल्यो महार्थमणिसमो, यतनवताम् मोक्षोपायसंलग्नानां या कोट्यः संख्यास्तन्मध्ये कश्चिदेको मुमुक्षुरकम्पमुमुक्षावशः पुमान् मिलतु अतिदुर्लभो भवतु नाम मुमुक्षुरिति भावः। तथाऽपि तस्य दुर्लभतरस्य मुमुक्षोरेव, श्रेयसे परम– कल्याणमोक्षसम्पादनाय, श्रिया लक्ष्म्या वक्षःस्थितया, सुललितं सविश्रम्भं वरणीयं हृदयं वक्षः श्रितदुरितहरणमहासङ्कल्पश्च यस्य तत्तथोक्तं, दयावत् सर्वचेतनेषु सामान्येन, गुणवत्सु विशेषेण च तद्दुःखविरोधितद्दोषदर्शनविरोधिमहागुणं दधद्, ब्रह्म परमात्मा, सुहृत्त्वात् सर्वेषां कल्याणोपाययोजनाभिलाषेण, सुचरितानां निष्कामहरिप्रीत्येकहेतुकर्मणाम्, अभ्यासेन सातत्येन, लभ्याम् अनुभवनीयाम्, आध्यात्मिकीम् मोक्षोपायसन्दर्शिनीं, विद्याम् उपनिषदर्थबोधहेतुगीतादिरूपां सन्दिशति मन्वादिमुखेन चिरेण जनेभ्यो वितरति। सत्पथप्रदर्शनपर एव परमकल्याणं सम्पादयेदिति भावः।

**भावार्थ – विश्वसृष्टि का मुख्य उद्देश्य मुमुक्षुओं का उद्धार ही है ऐसा सूचित करते हुए कहते हैं कि व्यवहार में जीते हुए भी व्यवहार को झुठलाने वाले मिथ्यावादी इस जगत् को मिथ्या मानते हैं, उनकी बात मान भी ली जाये तो हम उनकी मान्यता के अनुसार व्यवहार में बन्ध मोक्ष और उसके उपायों को सत्य मानते हुए उनका विचार कर सकते हैं। तब दूसरे लोग कहेंगे कि देखा जाता है कि मानव सच्चाई तक सोचना या उसे पकड़ना नहीं चाहता, उसे मोक्ष कैसे समझ में आयेगा, और मिलेगा। उनकी बात भी मानने योग्य है, मुमुक्षु सदा ही विरले होते हैं, फिर भी उनका सर्वोपरि महत्त्व है, उत्तम रत्न की भाँति। मोक्ष के लिये उद्यम करने वाले करोड़ों में कोई एक सही मुमुक्षु होता है। फिर भी उस अति दुर्लभ मुमुक्षु के परमकल्याण मोक्ष के लिये ही वह परब्रह्म परमात्मा जिनका हृदय लक्ष्मी के योग से अति उत्तम है और जो प्राणिमात्र के प्रति दया और सौहार्द रखते हैं, उस अध्यात्मविद्या का उत्तम ऋषि मुनि मनुओं के माध्यम से जनसामान्य में सन्देश भेजते रहते हैं**



**जो वास्तव में निष्काम भाव से चिरकाल तक शुभकर्म करते रहने पर ही समझ में आती हैं।**

**मिथ्यात्वं वक्ति विष्वक् क्षरदखिलजगत् स्वञ्च नित्यप्रभासम्,**
**पश्यन् पुष्णाति कामान् श्रयति हतमतिः संवृतिं नाम मायाम्।**
**प्राक्पापैः पापवृद्धिं जगति वितनुते विस्तृणानः कुतर्कान्,**
**प्रच्छन्नो वा प्रकाशो न भवति भगवद्भक्तिहीनो मुमुक्षुः।।२११।।**

भक्तिविरोधिकुतर्कमयसिद्धान्तावलम्बी वास्तवमोक्षेच्छामेव नाप्नुयात्, का कथा तस्य मुक्तेरित्याह–मिथ्यात्वं वक्तीति। प्रकटप्रच्छन्नबौद्धानभिलक्ष्याह, (यो) विष्वक् सर्वतोऽपि, क्षरद् विविधम् परिणमद्, अखिलम् अपि जगत् संसारं, नित्योऽनादिः प्रकृष्टो भासः प्रकाशोऽनुभवो यस्य तं स्वम् आत्मानञ्च पश्यन् अनुभवन्, मिथ्यात्वम् अनुभूयमानार्थानाम्, अनुभवसमकालमेव तत्तदधिकरणेषु व्यापकमसत्त्वं, वक्ति जल्पति, अनुभवविरुद्धार्थकथनमेव जल्पत्यर्थः। (अथापि कुसंस्कारैः) कामान् वाञ्छितार्थान्, पुष्णाति दृढयति। हतमतिः पूर्वदुष्कृतवारितसद्बुद्धिः, संवृतिं नाम स्वगोष्ठ्यां संवृतिपदाभिलप्याम्, मायां त्रिगुणमयीम्, श्रयति आद्रियते, ध्यानार्हपरमतत्त्वव्यावृत्तमतिर्मायाकार्येष्वेव सज्जत इति भावः। किञ्च प्राक्पापैर्हेतुभिः कुतर्कान् अशास्त्रीयान् विचारान्, विस्तृणानो वर्धयन्, जगति, पापवृद्धिम् अमंगलविचारप्रचारं, वितनुते विस्तारयति, (स एवम्भूतो जनः) प्रच्छन्नो वेदादिसच्छास्त्रश्रद्धाप्रदर्शनतिरस्कृतकुभावः, प्रकाशो वा प्रकटकुतर्की वा भवतु, भगवद्भक्तिहीनो भगवतः सत्तामेव निषेधन्, मुमुक्षुर्न भवति। चेतनस्य भवबन्धमोक्षयोरेकान्तहेतुर्भगवानेवेति तत्त्वम् मनसाऽप्यजानतो या काऽपीच्छा स्यान्न सा तात्त्विकी मोक्षेच्छा भवेदिति भावः।

**भावार्थ – जो व्यक्ति भक्तिविरोधी कुतर्कों का सहारा, लिये सिद्धान्त मान रहा हो उसे मोक्ष की इच्छा ही नहीं होती, मोक्ष उसे क्या होगा, यह बतलाने के लिये कहते हैं कि जो लोग असंख्य पुरुषार्थों के रूप में परिणत होते हुए प्राकृतिक जगत देख रहे हैं और उनके भोक्ता स्वयम्प्रकाश आत्मा का भी सदा स्वयम् वह अनुभव कर रहे हैं जो मानवों के अतिरिक्त तिर्यग् योनियों को भी समानरूप से मिल रहा है, फिर भी जगत् और चेतनतत्त्व को अपने कुतर्कों से मिथ्या कहा करते हैं साथ ही ईश्वरीय सत्ता के विरोध से बुद्धि के मारी जाने के फलस्वरूप त्रिगुण माया के विकाररूप भोगों को जुटाने और सुदृढ़ करने में लगे रहते हैं एवम् पूर्वपापों के फल स्वरूप सत्य के विरुद्ध**

कुतर्कों के द्वारा समाज में दुर्भावना रूपी पापों की वृद्धि करते रहते हैं वे वेदादिशास्त्रों को दुहाई दें या खुला विरोध करें परमसत्ता के प्रति आस्था न होने से उन्हें मोक्ष की इच्छा ही नहीं होती फिर मोक्ष तो उन्हें क्या होगा।

**नाजानादीश्वरं यः स्वमपि कृतवशं नापि मायां विधातु–**
**र्न क्लेशानात्मनीनान्न च जगदखिलं दुःखलीनम्प्रमत्तः।**
**अज्ञानं स्वस्य नावैत्तदपहृतिकृते यस्य नैवास चिन्ता,**
**चिन्ताशोकापहर्ता निवसतु हृदये तेन कस्तस्य लाभः।।२१२।।**

तत्त्वविद एव कल्याणान्युपतिष्ठन्ते नान्यस्येत्याह–नाजानादिति। यः प्रमत्तः क्षुद्रविषयसुखलीनो जनः, ईश्वरं सामान्येन सर्वजननियमननिरतम्परमात्मानं, स्वम् आत्मानं स्वयम्प्रकाशमानमपि, कृतवशम् पूर्वकर्मानुरुद्धसकलशुभाशुभ–प्रवृत्तिनिवृत्तिकं, विधातुर्जगत्कर्तुः, मायां जीवस्वरूपस्वभावपुरुषार्थतिरोधानकरीं त्रिगुणमयीम्प्रकृतिम्, आत्मनीनान् आत्मनाऽनादेःकालादनुबद्धान्, क्लेशान् अविद्याऽस्मिता– रागद्वेषाभिनिवेशान्, अखिलं सर्वमपि जगत्, स्वमिव दुःखेषु त्रिविधेषु, लीनं स्वमपि महान्तं विस्मृत्योक्तक्षुद्रदुःखानुभवपरम्, (विज्ञेयान् एवं पञ्चार्थान्) न अजानात् ज्ञातुं कदाऽपि न प्रायतिष्ट, किञ्च स्वस्य मायाकृतम् अज्ञानं न अवैत्, तस्याज्ञानस्य अपहृतेः अपनयनस्य कृते हेतोर्यस्य चिन्ता नैव आस नोत्पन्ना, तस्य हृदये चिन्ताशोकादिसर्वदुःखापहर्ता भगवान् सर्वात्मा निवसतु अपि तेन तस्य को लाभो न कोऽपि सर्वनियामकवेषेणावस्थितो भगवान्नोपकरोति, भक्तानुग्रहमूर्तिस्तूपकरोतीत्यर्थः।

**भावार्थ – तत्त्वदर्शी को ही सारे पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं, विपरीत ज्ञान वाले को नहीं, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि जिसने इस संसार में रहते हुए इस के नियन्ता ईश्वर को नहीं जाना, अपने आप को जिसने पुराने कर्मों के अधीन नहीं समझा, न ईश्वर की माया को जाना अपने अविद्या आदि पाँच क्लेशों को नहीं समझा, सारा संसार दुःखों में डूबा है, उस पर दया की आवश्यकता है, यह भी नहीं समझा, केवल क्षुद्र विषयसुखों में ही भूला रहा, अपने स्वरूप स्वभाव कर्तव्य आदि के अज्ञान को नही समझा, न उस अज्ञान से अपने को उबारने की चिन्ता की, उसके हृदय में भले सर्वान्तर्यामी सर्वसुहृद् भगवान् विराजमान हों किन्तु उसकी कोई अपेक्षा न होने से वे भी कुछ नहीं करते। तत्त्वज्ञान की इच्छा आत्मकल्याण की प्रथम भूमिका होती है।**



**नाज्ञानाद्विश्वसृष्टिर्भवति भगवतस्तत्त्वसंकल्पतः सा,**
**प्रोद्धृत्याज्ञानगर्तादतिविशदरुचेश्चिन्मणेर्धारणार्था।**
**तत्त्वश्रद्धाऽऽत्मभासा स्फुरति यदि महार्घं क्वचित्तत्सुरत्नम्,**
**प्रक्षाल्य श्रीकरैः श्रीपतिरद उदितानन्द आदाय धत्ते।।२१३।।**

विश्वसृष्टौ मुख्यो हेतुर्नाज्ञानम् अपितु तत्त्वज्ञानोत्तमो भगवत्संकल्प एव, स च संकल्पश्चेतनोद्वार एवेत्याह–नाज्ञानादिति। विश्वसृष्टिः अज्ञानात् न (अपि तु) सा भगवतस्तत्त्वभूतात् संकल्पतः, महदहंकारादितत्त्वोत्पत्ति–विषयकसंकल्पत इत्यप्यर्थः। (सेयं सृष्टिः) अज्ञानरूपाद् गर्तात् अतिनिम्नावस्थातः प्रोद्धृत्य अतिविशदा रुचिः ज्ञानप्रकाशो यस्य स तथोक्तस्तस्य चिदाख्यस्य मणेर्धारणम् अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा तथोक्ता (ज्ञेया) मणिं कौस्तुभम् इव मुक्तात्मानम् भगवान् धारयतीति भावः। (अत एव) यदि तत्त्वश्रद्धारूपया आत्मभासा महार्घम् अमूल्यं, तत् सुरत्नं चिद्रूपं, क्वचित् स्फुरति प्रकाशते (तदा) श्रीकरैः स्वयमेव प्रक्षाल्य, दोषानपनीय उदितानन्दो अदो रत्नं नवरत्नलाभानन्दमुग्धः सन् आदाय गृहीत्वा श्रीपतिरनन्तरत्नोद्धरणधारणनिपुणो भगवान्, घत्ते स्वयं धारयति।

**भावार्थ – कुछ लोग विश्वसृष्टि का मुख्य कारण अज्ञान मानते हैं किन्तु महान् लोग चेतनोद्धारफलक भगवत्संकल्प को कारण मानते हैं। उनका मानना है कि भगवान् विश्वसृष्टि करके चेतनों को सुकृतपरम्परा में कभी उद्धारयोग्य अवस्था में पाना चाहते हैं, इसीसे बार–बार सृष्टि रचते रहते हैं। जब चेतन तत्त्वों पर यानी सृष्टि के मूलभूत तत्त्वों पर श्रद्धापूर्ण जिज्ञासा रखता है तब भगवान् उसकी श्रद्धा को अपने दृढ़ संकल्प से और भी बढ़ाते एवं स्थिर कर देते हैं, इसी क्रम से उसे धीरे–धीरे ऐसे उठाते हैं जैसे नीचे गिरी किसी वस्तु को उठाया जाये। फिर उसे पापों से अलग करके शुद्ध अवस्था में, पूर्ण विकसित ज्ञानप्रभा से मूल्यवान् रत्न की तरह स्पृहणीय और सदा धारणयोग्य अवस्था में पाते हैं तो बड़ी प्रसन्नता से सदा के लिये धारण कर लेते हैं। यही वास्तव मोक्ष है। जीव कभी भी स्वतन्त्र नहीं होता, न ज्ञानशून्य रहता है, न निद्रा जैसी अवस्था उसके लिये कभी वाञ्छित होती है। ना ही वह कभी पानी में पानी की तरह अपना अस्तित्त्व खोकर परमात्मा में मिलता और विकार उत्पन्न करता है।**

श्रीशो लिप्सुर्मुमुक्षून् कथयति सकलं कर्म कुर्या मदर्थम्,
मत्तोऽन्यत्राभिलाषं त्यज भज रुचिमान् मामनादिं स्वबन्धुम्।
व्युष्टिम्पूर्वं कृतानामनुभव न वृथा क्वापि रागं न रोषं,
दध्या मत्स्मेरवक्त्रसृतरुचिललिते मामके स्वान्तरंगे।।२१४।।

अथ सताम्मुमुक्षूणां चिन्तनसरणिमाह—श्रीश इति। मुमुक्षून् लिप्सुरुद्दिधीर्षुः, श्रीशो भगवान्, कथयति द्वादशे ''अद्वेष्टा०'' इत्यादिभिः सकलं कर्म नित्यं नैमित्तिकं सांसर्गिकमाभ्यासिकं ज्ञातमज्ञातञ्च, मदर्थम् मदेकतोषावहतया जानानः कुरु। ज्ञाताज्ञातैः समेषां सर्वैरपि कर्मभिर्भगवत्तोष एव भवति, तत्संकल्पैकाधीनत्वात्सर्वकर्मणाम्। मत्तः अन्यत्र मद्भिन्नेऽर्थे कुत्रापि अभिलाषं त्यज। रुचिमान् सुदृढदर्शनेच्छावशो माम् अनादि स्वबन्धुम्, भज सेवस्व, श्रवणादिव्यापारैः। इष्टानिष्टोपनिपातान् सर्वानपि, पूर्वं कृतानां कर्मणां व्युष्टिम् परिणामम् मन्वानोऽनुभव भुंक्ष्व। अतएव वृथा मिथ्या रागं रोषं वा कस्मिन्नपि कर्तरि रागं रोषं वा न दध्या न धारयेः। कुत्र? स्वान्तरंगे स्वचित्ते, कथम्भूते? ध्यानविषयो यन्मदीयं स्मेरं स्मितशोभनं वक्त्रं वदनं तस्मात् सृताः प्रसृता या रुचयः कान्तयस्ताभिः, ललिते स्पृहार्हे, मामके मदेकाधिष्ठानयोग्ये। भगवत्सिंहासनतुल्ये स्वचित्ते श्वसृगालतुल्यानां रागद्वेषाणाम्प्राप्तिचिन्ताऽपि निन्दनीया भवति हि।

भावार्थ – गलत सही सोच से ही बन्धन और मोक्ष होता है। मोक्ष के इच्छुकों को भगवान् ने बारहवें अध्याय में ''अद्वेष्टा०'' इत्यादि श्लोकों से सही सोच बनाने का सुझाव दिया है कि वर्जित कर्मों का त्याग और विहितों का अनुष्ठान करते हुए नित्य नैमित्तिक सांसर्गिक आभ्यासिक ज्ञात अज्ञात जो भी कर्म बन पडें उन्हें केवल मेरे संकल्प से होने से मेरी ही सन्तुष्टि का साधन माना करो। शुभ कर्मानुष्ठान से पूर्व में अवश्य ही ''भगवत्सन्तुष्टये'' कह लिया करो। किन्तु अपने पराये सारे कर्मों को भगवत्सन्तुष्टि का साधन अवश्य माना करो। इससे समभाव बनेगा। मुझसे दूसरा कुछ भी न चाहो। मुझे पाने के लिये अनादि सुहृद मानते हुए पूरी श्रद्धा और प्रेम से मेरा स्मरण कीर्तन आदि भजन करते रहो। पूर्व जन्मों के कर्मों के ही फल शुभ और अशुभ संयोग वियोग होते हैं। इससे कुछ भी मिलने या विछुड़ने में निमित्त बने किसी व्यक्ति आदि से राग या द्वेष न बढाओ। क्यों कि रागद्वेष कहाँ रहेंगे ? जहाँ तुम मुझे बिठाना चाहते हो उस मनमन्दिर में। तो क्या यह



उचित होगा कि जिसे मेरा सिंहासन बना चुके हो वहाँ क्षुद्र जीवों के तुल्य रागद्वेषों को बसाओ ?

भक्तिः श्रीशे पुमर्थो भगवदभिमतः सा विमुक्तिर्द्रढिष्ठा,
तल्लाभो ध्यानयोगाद्भगवति नियतादात्मबोधात्स चाप्यः।
निष्कामैरीशनिष्ठारुचिरुचिरचिराभ्यस्तसत्कर्मयोगै–
र्भान्तं स्वं स्वेन नित्यं कलयति सकलन्तेन विन्देत्पुरोक्तम्।।२१५।।

इदानीं ज्ञानभक्तिमुक्तीनां सामञ्जस्यमुपन्यस्यति—भक्तिरिति। श्रीशे भगवति, भक्तिः स्थिरोऽनुरागो, भगवदमिमतः पुमर्थो मन्तव्यो गीतोक्तिभिः, द्रढिष्ठा स्थिरैकरूपा सा एव मुक्तिरुच्यते, मुक्तावपि तस्यास्तथैव सत्त्वात्, तथोक्तायास्तस्या लाभो, भगवति श्रीमन्नारायणे, ध्यानयोगात् अविच्छिन्नचिन्तासन्तानात् स्यात्। स ध्यानयोगश्च, नित्यैकरूपात्मबोधात् भवति। आत्मन एकस्वरूपत्वावबोधो नित्योऽपि बाह्यवृत्त्या न लक्ष्यते, तद्वारणोपायमाह—निष्कामैरित्यादिना। निष्कामैः लौकिकार्थकामनारहितैः, ईशे परमात्मनि निष्ठया तत्सौहार्दे विश्रम्भभूयस्त्वेन, रुच्या प्रीत्या च, रूचिरैर्भगवत्प्रीतिवर्धकैः, चिराभ्यस्तैराजीवनमनुष्ठितैः सद्भिर्भगवत्प्रीत्येकोद्देश्यकैः कर्मयोगैः स्वस्ववर्णाश्रमानुसारिभिः कर्मभिरुपायैः, स्वेन नित्यमनवरतम् भान्तम् प्रकाशमानं, स्वम् आत्मानं, कलयति अवधत्ते, तेन अवधानेन पुरोक्तं सकलम् मुक्त्यवस्थापर्यन्ता भक्त्यवस्था, विन्देद् आप्नुयात्।

भावार्थ – ज्ञान से भक्ति होती है, भक्ति ही मुक्ति का रूप लेती है, यह बतलाते हैं। भगवान् के बार बार के उपदेशों से यह निश्चित होता है कि पुरुष का बड़ा पुरुषार्थ है उनके प्रति भक्ति। वह भक्ति ही जब सुदृढ़ हो जाती है तब मुक्ति का रूप ले लेती है, वह भक्ति भगवान् के प्रति निरन्तर ध्यान योग से होती है। वह ध्यान योग स्थिर आत्मदर्शन से होता है। आत्मा सदा स्वयम्प्रकाश है, उसका दर्शन होता ही रहता है, फिर भी बाह्यवृत्तियों से वह दर्शन बाधित सा रहता है। भगवान् के प्रति निष्ठा प्रेम और सामान्य भक्ति के साथ निष्काम भाव से चिरकाल भगवत्प्रीति के लिये किये कर्मों से बाह्यवृत्तियाँ दबती हैं, तब आत्मदर्शन लक्षित होता है, तब भक्ति मुक्ति अवस्था तक बनी रहती है और परम पुरूषार्थ सिद्ध हो जाता है।

यावद्देहात्मबुद्धिं श्लथयति न पुमान् सत्प्रसङ्गेन नित्यं,
कल्याणाय स्थितं न श्रयति मधुरिपुं चित्तरङ्गे चरन्तम्।

**तावत्कः कर्मयोगो भवति मतिमतां कश्च धीभक्तियोगः,**
**केऽन्ये मुक्तेरुपाया भुवि बुधगदिताः को विभानुः प्रकाशः।।२१६।।**

देहेऽहम्बुद्धिः सर्वसदुपायप्रतिबन्धो भवतीत्याह– यावदिति। यावत्कालम् पुमान् नित्यं सतां लब्धात्मबोधानाम्, प्रकृष्टेन श्रद्धाप्रीतियुतेन सङ्गेन सान्निध्येन, देहात्मबुद्धिं देहाभिमानं, न श्लथयति देहतदनुबन्धिषु रागं नाल्पीकरोति, यावच्च कल्याणाय स्थितं देवान्तरवत्स्वभोगेषु स्पृहां बिना केवलं चेतनानां कल्याणस्यावसरमेव प्रतीक्षमाणं, चित्तरूपे रंगे, नानाऽभिरूपाभिनयस्थानतुल्ये मनसि, चरन्तम् ''मत्तः स्मृतिर्ज्ञान'' मिति गीतोक्त्या १५।१५ सकलपुरुषार्थोपाय–व्यवस्थाप्रवणम्, मधुरिपुं सकलकामनाकदनप्रवणम् भगवन्तं श्रीमन्नारायणं, न श्रयति मोक्षौपयिकसकलोपायत्वेन नालम्बते, तावत् कालम् मतिमतां कर्माद्युपाय स्वरूपावधारणनिपुणानां, कर्मयोगः को भवति, धीभक्तियोगश्च को,भुवि जगति क्वापि बुधैर्विद्वद्भिर्गदिता उदिता मुक्तेरन्येऽप्युपाया जपव्रतदानादयः के कथं निर्वर्तेरन्, विभानुः सूर्यं बिना, प्रकाशः कः ? देहात्मैक्यनिशावसान एव ज्ञानभानूदयो नान्यथेतिभावः।

**भावार्थ – देह में अहंकार सारे अच्छे उपायों को रोकता है, उसके रहते भगवान् की शरणागति भी नहीं होती जिससे कोई भी उपाय सफल हो सके, यह कहते हैं। जब तक पुरुष श्रद्धापूर्वक महापुरुषों की चिरकाल सेवा और संगति से देहाभिमान को शिथिल नहीं कर लेता और चेतन के केवल कल्याण के लिये उपाय की तलाश में चित्तरूपी रंगमंचपर रहते हुए भावनाओं का नियन्त्रण कर रहे, सारी कामनाओं का शमन करने वाले प्रभु की शरणागति नहीं कर लेता, तब तक कर्मयोग ज्ञानयोग भक्तियोग या ज्ञानियों द्वारा बतलाये प्रसिद्ध जप दान व्रत आदि उपाय क्या हो पायेंगे और कैसे सिद्ध होंगे, सूर्योदय के बिना कौन सा प्रकाश होता है। दीपादि प्रकाश सूर्य का ही माना जाता है।**

**सर्वेषां सद्गुणानां निधिरधिवसति स्वान्तरङ्गम्परात्मा,**
**सूते सद्बुद्धिरन्ध्रादनुगतमनसां चेतनानां गुणांशान्।**
**यावद्बुद्धिर्हितार्थानभिसरति सती सत्क्रियाध्वस्तदोषा,**
**तावत्सद्भक्तिभास्वान् परमपदपथे हन्त्यमन्दान्धकारम्।।२१७।।**

शरणागतिरेवान्तर्यामिणमुत्तम्भयन्ती परमकल्याणपर्यन्तं त्वरया



व्यापारयतीत्याह–सर्वेषामिति। सर्वेषाम् मुक्तिहेतूनां, सताम् अनश्वराणां, गुणानां निधिः कन्दभूतः, परात्मा भगवान्, स्वस्यात्मीयस्य शरणागतस्य, अन्तरङ्गं चित्तम्, अधिवसति नियमयन्नास्ते, सोऽनुगतमनसामाश्रितानां चेतनानां देहिनाम्, सद्बुद्धे रन्ध्रात् अंकुरस्थानीयाच्छिद्रात्, गुणानाम्मुक्तिहेतूनाम् भावानाम् अंशान् अंकुरवदल्पान् सूते, करुणया जनयति, ततः सत्क्रियाध्वस्तदोषा अत एव सती बुद्धिः यावत् हितभूतान् अर्थान् विषयान्, अभिसरति श्लिष्यति, तावति एव काले, परमपदस्य मोक्षस्य पथि मार्गे अमन्दं संसारिचित्तावरोधभूतम् अन्धकारम् अज्ञानं, हन्तिवारयति, तेन प्रकाशमयेनपथा मुमुक्षवः– परमपदमयन्त इति भावः।

**भावार्थ – शरणागति मोक्ष के नियामक अन्तर्यामी भगवान् को इतना प्रेरित करती है कि उससे वे प्रपन्न को मोक्ष की अवस्था तक पहुँचा देते हैं, यह बतलाते हुए कहते हैं कि भगवान् सारे कल्याणमय गुणों के निधि के रूप में अपने आश्रितों के ह्रदय में निवास करते हैं, वे जबभी आश्रित के ह्रदय में कोई ऐसी अच्छी बुद्धि पाते हैं जो मोक्षमार्ग में बढ़ सके तो उसमें कुछ अच्छे गुण अंकुरित कर देते हैं। उत्तम कर्मों से पापनाश होने पर ज्यों ही बुद्धि परम हित मोक्ष के अनुरूप अर्थों का बार–बार स्पर्श करने लगती है त्यों ही उसके ह्रदय में स्थायी भक्ति का सूर्य चमकने लगता है और अज्ञानमय अन्धकार के नष्ट होने से परमपद तक का मार्ग साफ दीख पड़ता है जिससे प्रगति निर्बाध हो जाती है।**

**ध्येयन्नित्यन्निषेव्यं किमथ सुमनसा किन्नु सम्प्राप्तुमेष्यम्,**
**प्राप्तेः के न्वभ्युपायाः कथमसुखततिः सर्वथा याति शान्तिम्।**
**कः स्विद्भव्यः पुमर्थः किमु तदनुगुणं वृत्तमित्याद्यशेषं,**
**तच्चित्ते भाति यस्मिन् मधुमथनपदम्मार्दवेनानुषक्तम्।।२१८।।**

मार्दवं नाम महान् गुणस्तस्मिन् सत्येव भगवदनुग्रहस्तेन च सर्वार्थसिद्धिरित्याह–ध्येयमिति। ध्येयं ध्यानयोग्यं, नित्यं सदा निषेव्यम् अनुभवयोग्यं किम् अथ सुमनसा विवेकिना किन्नु सम्प्राप्तुं लब्धुम्, एष्यं वाञ्छनीयं, वाञ्छितार्थस्य प्राप्तेः के नु अभ्युपायाः, असुखस्य ततिः धारा, सर्वथा निःशेषं, कथं शान्तिं याति। कः स्विद् भव्यः कल्याणमयः पुमर्थः पुम्भिरेष्यः, किम् उ तस्य पुमर्थस्य, अनुगुणम् प्रापकम्, वृत्तं व्यापारः स्याद् इत्यादि अशेषं जिज्ञासनीयं, तत्र चित्ते ह्रदये भाति प्रकाशते, यस्मिन् मधुमथनस्य सर्वकामप्रशमनपटोः परमेश्वरस्य, पदं चरणयुगलम्, मार्दवेन कौटिल्यकोपविरोधिना सौहार्दफलभूतेन सर्वप्राणिषु

भावविशेषेण, अनुषक्तम् मनागपि त्यागं विना सुखम् अवस्थितम् अस्ति। ''अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करुण एव च.'' त्युक्तगुणमये हृदये सर्वार्थजिज्ञासाः पूर्यन्त इति भावः।

**भावार्थ – गुणहीन हृदयों में बहुत से प्रश्न तो होते हैं, किन्तु उनका समाधान नहीं हो पाता, किन्तु सरलता मृदुता आदि गुणों वाले हृदयों में ज्यादातर समाधान ही बसते हैं, वहाँ प्रश्न नहीं उठते। यही बात यहाँ बतला रहे हैं कि क्या ध्यान योग्य है, क्या सदा सेवन योग्य है, और विवेकी को क्या प्राप्त करने योग्य है, प्राप्ति के कौन से उपाय हैं, दुःखों का सिलसिला कैसे रुके, मङ्गलमय पुरूषार्थ क्या है, उसके अनुरूप आचरण क्या होता है, इत्यादि प्रश्नों के उत्तर उस हृदय में प्रकाशित होते हैं, जिसमें मृदुतारूपी कोमलगुण से आकृष्ट मधुसूदन भगवान् के चरण सदा बने रहते हैं।**

**१२–सन्दृष्टभगवत्तत्त्वस्तद्भक्तिक्षालितान्तरः।**
**धूतप्रियाप्रियः श्रीशप्रियाणाम्प्रथमो नरः।।२१६।।**

अध्यायमुपसंहरति–सन्दृष्टेति। सन्दृष्टन्ध्यानसाक्षात्कृतम्भगवत्तत्त्वन्तत्स्वरूपं येन स तथोक्त, स्तद्भक्त्या सर्वोत्कृष्टानुरागेण, क्षालितं शोधितम् अन्तरं चित्तं यस्य स तथोक्तो, धूतप्रियाप्रियो भगवदेकदृष्ट्या लौकिकरागद्वेषरहितो मुमुक्षुर्विष्णोर्भगवतः प्रियाणां समीपावस्थानयोग्यानाम् प्रथमः प्रधानतया गणनीयो, भवेत्। सन्निहितमोक्षोऽसौ स्यादिति भावः।१२

*इति द्वादशोध्यायः*

**भावार्थ – छठे अध्याय के ध्यान और आगे के अध्यायों के ज्ञान से जिसे भगवत्तत्त्व का साक्षात्कार सा हो गया है एवम् भक्ति से जिसके चित्तके सारे विकार धुल चुके हैं जिससे कहीं भी राग या द्वेष नहीं रह गया है वह अधिकारी भगवान् के प्रिय जनों में प्रथम गणना के योग्य होता है। उक्त गुणों से भक्ति पूरी होती है, यही बारहवें अध्याय का सारांश है।**

*बारहवाँ अध्याय समाप्त*



# *अथ त्रयोदशोऽध्यायः*

**देहः क्षेत्रं किलोक्तश्चिरकृतसदसत्कर्मबीजोप्तिभूमिः,**
**स्थूलः सूक्ष्मोऽतिसूक्ष्मो भवति भववने भ्राम्यतो भोगहेतुः।**
**हेतुर्मोक्षस्य चायम्भवति सुकृतसत्संगसद्भक्तिधारा–**
**ऽऽधारः सत्त्वोतरान्तर्धृतहरिचरणालम्बिपादाश्रितानाम्।।२२०।।**

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगनामत्रयोदशाध्याये देहदेहिनोर्भेदान् सामान्यविशेषैरुक्त्वा ध्यानोपकारिभिर्देहिनो विशेषैरध्यायोपसंहारः कृतोऽस्ति भगवद्गीतायाम्। त एवार्थाः संक्षेपविस्ताराभ्यामत्र सन्ति प्रस्तुताः। तत्र सामान्येन भोगहेतोर्देहस्य सत्संगशुद्धचेतसाम् मोक्षहेतुत्वम् अपि भवतीत्याह–देहः क्षेत्रमिति। चिरेण पूर्वजन्मसु, कृतानां सतां शुभफलानाम्, असतान्तद्विपरीतानाञ्च, कर्मरूपबीजानाम् उप्तिः फलमुखेन प्ररोहः, तस्या भूमिः स्थानम् अयं देहः क्षेत्रम् इति उक्तः शास्त्रेषु कथितोऽस्ति किल। भवः संसारः पुनः पुनः शरीरग्रहत्यागरूपः, स एवालक्षितनिर्गममार्गतया वनमिव, तत्र भ्राम्यतश्चक्रवात इव कर्मफलक्रमरूपे चक्रे संसरतः देहिनः, भोगहेतुः स्वकृतकर्मफलोपलम्भनहेतुः (स देहः) स्थूलः सूक्ष्मः, अतिसूक्ष्मश्च कारणरूपः शास्त्रान्तरावसेयो, भवति प्रथते। अयन्देहः मोक्षस्य च हेतुर्भवति, कथम्भूतः? सुकृतसत्सङ्गसद्भक्तिधाराऽऽधारः सन् यदा पुण्योत्कर्षेण भगवदाश्रितान् सतो महापुरुषान् लभते, तद्गुणेषु च रज्यते, तेन सती फलेच्छारूपव्यवधानरहिता भगवति भक्तिर्जायते, सातत्येन धारारूपा सा भवति तस्या आधारः सन् मोक्षहेतुर्भवति। तदेवाग्रे विशदीक्रियते, केषां? सत्त्वोत्तरे अन्तश्चेतसि धृतौ यौ हरेर्भगवतश्चरणौ, तौ आलम्बन्त इति तदालम्बिनः सन्तः तेषाम् पादौ चरणौ आश्रितानां, हरिभक्तभक्तिभासुराणामित्यर्थः।

**भावार्थ – भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में शरीर और आत्मा के भेद स्पष्ट करके आत्मा के ध्यानयोग्य लक्षणों का विस्तार से वर्णन हुआ है। वे ही अर्थ यहाँ कुछ संक्षेप और कुछ विस्तार करते हुए अपने शब्दों से प्रस्तुत हैं। प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि सामान्य रूप से प्राचीन कर्मों के फल उत्पन्न करने वाला यह शरीर कभी पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप महापुरुषों की**

संगति पाता और उनके गुणों में राग बढ़ाता हुआ उनका वैसा भक्त हो जाता है जैसा कोई भगवान् का आदर्श भक्त हों, तब वह शरीर आत्मा को मुक्त भी कर देता है। संसार रूपी जंगल में भटकते हुए जीव को समयानुसार उसके पूर्वकृत कर्मों के शुभ अशुभ फल प्रस्तुत करने वाला यह शरीर स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप से रहता है। पूर्व कर्म इसी में ऐसे उगते और अपने फल प्रस्तुत करते हैं जैसे धरती पर बीज। इसी से इसे शास्त्रों में क्षेत्र कहा गया है। आत्मा इसे अपना रूप मानता है इससे वह क्षेत्रज्ञ कहा जाता है।

**क्षेत्रं सूक्ष्मातिसूक्ष्मम्भवति चिरचलत्कर्मणां सूक्ष्मरूपं,**
**देहादौ येन मोहं त्यजति न पुरुषस्तत्त्वबोधेऽप्यबाधे।**
**नित्यानन्दात्मभासो हरिरिव भुवनव्यापिशुभ्रप्रकाशो,**
**यद्बद्धोऽतीव दीनः सरति कुतनुभिर्दीर्घपक्षोऽपि हंसः।।२२१।।**

स्थूलसूक्ष्मकारणत्वेन त्रिधोक्तेषु शरीरेषु इह क्षेत्रपदवाच्येषु कारणशरीरम् अतिसूक्ष्मं क्षेत्रमिति मत्वा तस्य लक्षणं कार्यञ्चोच्यते–क्षेत्रमिति। चिरेणानादेः कालात् चलतां देहिनमनुसरतां कर्मणाम् प्रारब्धसञ्चितक्रियमाणानां, सूक्ष्मं योगिभिरेव ध्यातुं शक्यं रूपं, सूक्ष्मादपि अतिसूक्ष्मं क्षेत्रम् भवति। लक्षितस्यास्य कार्यमुच्यते–देहादाविति। येनानुगतेन हेतुनाऽतिसूक्ष्मेणक्षेत्रेण, पुरुषश्चेतनः, अबाधेऽपि निःसंशयेऽलुप्तेऽपि, तत्त्वबोधे यथावस्थितज्ञानैकाकारात्मस्वरूप–निश्चयसत्त्वेऽपि, देहादौशरीरेन्द्रियतदनुबन्धिभोगहेतुषु, , मोहं विश्लेषक्लेशा–सहिष्णुत्वं, न त्यजति। (अपि च) नित्यानन्दात्मभासः स्वयम्प्रकाश–ज्ञानानन्दैकरूपः, हरिरिव ब्रह्मेव, भुवनव्यापिशुभ्रप्रकाशः सततसर्वार्थ–साक्षात्कारक्षमः, दीर्घपक्षो जागतिकसकलानर्थात्ययसक्षमज्ञानेच्छायत्नयोग्यः, अपि हंसः प्रत्यगात्मा देही, यद्बद्धो येनातिसूक्ष्मेण कर्मवासनाख्येन क्षेत्रेण सम्बद्धः सन्, अतीव सर्वशक्तिलोपेन, दीनः अक्षम इव, सरति संसरति जगतीति भावः।

**भावार्थ – स्थूल सूक्ष्म और कारण ये तीन प्रकार के शरीर होते हैं। शरीर को क्षेत्र कहा गया है। कारण शरीर अतिसूक्ष्म क्षेत्र होता है। उसका लक्षण है कर्मों का अतिसूक्ष्मरूप। जो प्रारब्ध सञ्चित और क्रियमाण कर्म हमारे साथ अपने फल देने के लिये हम से जुड़े होते हैं उनकी अति सूक्ष्म अवस्था को कारण शरीर या अति सूक्ष्म क्षेत्र कहते हैं। उस अतिसूक्ष्म क्षेत्र से चेतन का सम्बन्ध समाप्त नहीं होता। पूर्व के कर्मफलों का वही नियामक होता है। इसी से कोई महान् तत्त्वदर्शी भी देह आदि में कुछ न कुछ मोह**



रखता ही है। शरीर छूटने की कल्पना से उसे भी कष्ट होता है। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षेत्र के सम्बन्ध का ही यह महान् प्रभाव होता है कि नित्य स्वयम्प्रकाश ज्ञानानन्दस्वरूप एवम् परमात्मा की तरह सर्वज्ञ सर्वसमर्थ चेतन तत्त्व बहुत दीन होकर छोटी छोटी योनियों में जन्म लेता हुआ संसार में आगे आगे विवश बढ़ता रहता है।

**सूक्ष्मं क्षेत्रं विकार्यम्प्रकृतिमहदहम्भूतसूक्ष्मांशजन्यं,**
**चेतःस्यूतेन्द्रियाढ्यम्भवति पुनरिदं सूक्ष्मपञ्चार्थनद्धम्।**
**येनात्माऽर्थान्वृणीते हरिकपिमृगवत्स्वोचितानेव लोके,**
**मानुष्येऽन्नम्फलं वा पललमलमथोऽस्त्राणि पुष्पाणि यत्नैः।।२२२।।**

सूक्ष्मं क्षेत्रमाह–सूक्ष्ममिति। सूक्ष्मं क्षेत्रं विकार्यं नवनवावस्थाश्रयो भवति। तत् मूलप्रकृतेर्महत्तत्त्वस्य त्रिविधाहङ्काराणाम् पञ्चभूतसूक्ष्मांशानाञ्च संयोगैर्जन्यम् उत्पन्नम्भवति। किञ्च चेतसि सूक्ष्मावस्थापन्नेऽन्तःकरणे स्यूतैः सूक्ष्मतयाऽवस्थितैरिन्द्रियैश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणत्वग्रसनाख्यावद्भिराढयं युक्तम्, पुनश्च सूक्ष्मैः पञ्चभिरिन्द्रियार्थैर्नद्धं सम्बद्धञ्च भवति। येन हेतुना आत्मा असङ्गोऽपि लोके जगति हरिवत् सिंहवत् मांसादि, कपिवत् फलादि, मृगवत् तृणादि स्वाहारतया स्वोचितान् अनुरूपानर्थान् वृणीते प्रकृतेः सकाशात् आददाति। तथैव मानुष्ये मनुष्यभावे सति सत्त्वादिगुणतारतम्यवशात् अन्नम्, फलं वा अलम्पर्याप्तम् पललम् मासं वृणीते, तथैव रजः प्रधानत्वे स्वरक्षारिपुनाशचिन्तया अस्त्राणि प्रहरणानि, सत्त्वप्रधानत्वे देवार्चनाय, रजोऽनुवेधे स्वालङ्करणाय पुष्पाणि च यत्नैर्दूरगमनमूल्य– दानादिभिर्वृणीते आददाति। प्रवृत्तिभेदात् सूक्ष्मशरीरतदवस्थाभेदोऽनुमेय इति भावः।

**भावार्थ – सूक्ष्म क्षेत्र परिणामी होता है, वह मूल प्रकृति महत्तत्त्व त्रिविध अहंकार और आकाशादि भूतपञ्चतन्मात्राओं से बना होता है, इसमें चित्त में सूक्ष्मरूपों से अवस्थित ज्ञानेन्द्रियों और उनके पाँच विषय भी रहते हैं। इसी से असंग भी आत्मा शरीर की प्रथम चेष्टाओं के साथ ही सिंह बन्दर और मृग शरीर के अनुरूप मांस, फल और तृण का चुनाव करता है, इसी प्रकार मानव शरीर मिलने पर सत्त्व आदि गुणों के तारतम्य से अन्न, फल या मांसादि अपनी तृप्ति के योग्य मात्रा में यत्नपूर्वक चुनाव व संग्रह करता है।**

**स्थूलं क्षेत्रन्तु देहो हरिगरुडगजाश्वादिरूपो नृरूपः,**
**कीटादिर्वौषधादिर्भजति कृतफलान्यात्मना यत्र जन्तुः।**

**राज्येप्सुः कोऽपिकाराम्प्रविशति, विजने सञ्चरन् कोऽपि राज्यं,**
**सर्वो वाञ्छन्नवाञ्छन्कृतफलमशुभं सद् विमिश्रञ्च भुङ्क्ते।।२२३।।**

स्थूलशरीराण्याह–स्थूलमिति। स्थूलं नाम क्षेत्रन्तु सिंहगरुडगजाश्वादिरूपः नृरूपः कीटादिः औषधादिर्वा देह (उच्यते) यत्र जन्तुः शरीरी चेतनः, कृतानां कर्मणाम् फलानि आत्मना स्वयमेव भुङ्क्ते। तदेवोदाहरणैः स्थाप्यते, राज्येप्सुः राज्यं वाञ्छन् कोऽपि पूर्वपापैः शत्रुभिरास्कन्दितोऽभियुक्तश्च कारां यातनागृहम् प्रविशति, तत्र दण्डैर्युज्यते, एवम् एव कोऽपि राज्यशासनक्षमोऽपि रागाभावाद्, विजने सञ्चरन् अपि परिचितैः कैश्चिद् अनुरूद्धः सन् अनिच्छयाऽपि राज्यं लभते। एवमुदाहरणानि भूयांसि दृश्यन्ते, तेनेदम्मन्यते यत् सर्वः अपि जनः वाञ्छन् न वाञ्छन् वा स्वेन कृतानां कर्मणाम् फलं सत् शुभम् अशुभम् विमिश्रञ्च भुङ्क्त एवेति ध्येयम्।

**भावार्थ – स्थूल शरीर या क्षेत्र सबको दिखाई पड़ता है, जैसे शेर, गरुड़, हाथी, घोड़ा या मनुष्य या कीड़ा या वृक्ष पौधे घास आदि। इन्हीं शरीरों में देही पूर्व में किये हुए अपने शुभ अशुभ और मिश्रित कर्मों के फल चाहता हुआ, बिना चाहे, जानबूझकर या अनजाने पाता रहता है। जैसे कोई राज्य पाने के प्रयत्न में लगा रहता है किन्तु उसे अपने प्रयत्न के विपरीत फल जेल मिल जाता है। ऐसे ही यह भी देखा जाता है कि कोई उदासीन भाव से एकान्त में विचरण करता हुआ भी दूसरों से सम्पर्क और अनुरोध होने पर राज्य पा जाता है। इन दृष्टान्तों से यह मानना पड़ता है कि ये सारे शरीर पूर्व कर्मों के फल पाने के लिये ही बने होते हैं। इस बात का ध्यान होने से चित्त शुभ कर्मों की ओर बढ़ता है और कल्याण प्राप्त होता है।**

**देहोऽयम्प्राक्कृतानामशुभशुभविमिश्रात्मिकानां कृतीनां,**
**सम्फुल्लानान्तरूणामिव बहुलफलोत्पादनद्धात्मकानाम्।**
**निर्यातानां सुसूक्ष्मात्सकलकृतनिधेः क्षेत्रतः स्याद्वनात्मा,**
**आरामात्मा समूहः किमुत तुलसिकावृन्दरूपोऽपि वेद्यः।।२२४।।**

उक्तार्थमुपसंहरति–देहोऽयमिति। क्षेत्रत्वेनोक्तोऽयं स्थूलदेहः प्राक् पूर्वजन्मनि कृतानाम् अशुभशुभविमिश्रात्मिकानां कृतीनां विहितनिषिद्धानां कर्मणां सम्फुल्लानां तरुणाम् इव बहुलफलोत्पादैर्नद्धः प्रतिबद्ध आत्मा स्वरूपं येषान्ते तथोक्तास्तेषां तरूणां वृक्षाणाम् इव सकलानां कृतानां कर्मणां निधेः मूलस्थानतः सुसूक्ष्मात् क्षेत्रतः कारणशरीरतयोक्तात्, निर्यातानाम्फलैशविर्भूतानामिव वनात्मा प्रकृत्यैव



स्वस्थः आरामात्मा सलिलादिसेकैः स्वस्थः, समूहो ज्ञेयः, किमुत तुलसिकावृन्दरूपः अपि वेद्यः। दृष्टान्तत्रयेण तामसराजससात्त्विकभेदा दर्शिताः। पूर्वकर्मफलत्वेन स्वीकृता देहा वस्तुतः पूर्वकर्माण्येव स्थूलरूपेण स्वस्वफलायावतिष्ठन्ते इति मन्तव्यं, हेतुहेतुमतोरभेदाध्यवसायात्। एतेन देहानुबद्धा वाञ्छाः सर्वाअपि पूर्वकर्मणामेव पारम्परिकाः परिणामास्तेन न जनस्य कस्यापि स्वतो ऽस्तित्वमिति मन्तव्यम्।

**भावार्थ – उक्त अर्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि ये सारे शरीर पूर्वजन्म में किये गये सात्त्विक राजस तामस कर्मों के केवल पुञ्ज हैं। इनका कर्मों से बाहर कोई स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं है। ये कर्म कारण शरीर में ऐसे सोये रहते हैं जैसे धरती में बीज। ऋतु में जलादि पाकर उसी धरती से बीज उगकर वृक्ष बनते और अपने सारे फल देने लगते हैं, ऐसे ही अनुकूल समय पर कर्म ही कारण शरीर से उगकर स्थूल शरीर बन जाते हैं। स्थूल शरीर एक मालूम होता है, उसकी एकता जंगल या उद्यान की एकता जैसी होती है। अनेक शुभ अशुभ मिश्र फल देने के कारण वह वास्तव में अनेकात्मक होता है।**

*विशेष – यहाँ प्रश्न होगा कि शरीर नये कर्म भी कराता है, इसे केवल फल भोग का हेतु मानना उचित नहीं हैं, इससे तो कर्मों के प्रति श्रद्धा और लगन नहीं हो पायेगी। उत्तर है कि हम वही कर्म करते हैं जो हमें किन्हीं कारणों से अच्छे लगते हैं। कर्म पूरे होने पर हमें अनेक प्रकार की सन्तुष्टि होती है। बीच में भी कर्म हमारा मनोरंजन करते हैं। नये कर्म पिछले कर्मों के फल प्रस्तुत करने में निमित्त भी बनते हैं। जैसे कोई बाग लगाता है, फल बेचकर धनवान् हो जाता है जबकि वहीं दूसरे लोग चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाते। इस प्रकार नये कर्म प्रायः आदि से अन्त तक शुभाशुभ फलरूप ही ठहरते हैं। वास्तव में जैसे हम अपनी सन्तान को जल्दी से पूर्व जन्म की कमाई मान लेते हैं वैसे ही नये कर्म भी पूर्व जन्म की कमाई होते हैं। इसीसे कोई गाड़ी चलाता है, कोई राज्य चलाता है।*

**स्थूलं देहं दधानः स्वकृतकृतमिदं सर्वदेहेष्वभिन्नो,**
**मन्वानः स्वं शरीरं स्मरति न मनसा दीप्तमप्यात्मरूपम्।**
**आत्मा नित्यं सखायं सततसहचरं चालयन्तं धिया स्वं,**
**किं जानीयाद्वराकः कतिपयसुकृतैर्नैति चेत्कोऽपि मन्त्री।।२२५।।**

"देहयोगादात्मनोऽयं स्वयमात्मा तिरोदधे। का कथा तेन सक्तस्य सख्युः शास्त्रैकवर्त्मनः। सत्कर्माप्तसदाचार्यवाग्भातं स्वं सुहृद्वशं। लब्ध्वा कृतार्थो भवती त्येवात्र प्रतिबोध्यते स्थूलंदेहमिति। स्वेन कृतैः कर्मभिः कृतं निर्मितम्, इदं दृश्यतैकस्वभावम्, स्थूलम् अनात्मगुणगणाश्रयं, देहम् उपचयापचयैरस्थिरं शरीरं दधानो धारयमाणः सर्वदेहेषु क्रमेण सन्नपि, अभिन्नो नित्यैकाकार, आत्मा चेतनः स्वम् आत्मानं शरीरं तदभिन्नम्, मन्वानो मनसा कलयन्, दीप्तं सततं स्वयम् प्रकाशमानम्, अपि मनसाऽपि न स्मरति, नित्यस्वप्रकाशज्ञानानन्दात्मकतया सदा शान्तेना– रागद्वेषिणा निष्क्रियेणावस्थाने प्राप्तेऽपि स्वस्मृतिमपि वर्जयन्नास्त इत्याश्चर्यम्। (एवं सति) धिया स्वेन नित्यसङ्कल्पेन, स्वम् आत्मानं, चालयन्तं ज्ञानेच्छाप्रयत्नान् नियमयन्तं, सततसहचरम् अत्यक्तनियन्त्रणं, नित्यं सखायम् अनुपेक्षितसौहार्दम्, भगवन्तं, वराको दयनीयोऽयं चेतनः, किं जानीयाज्ज्ञातुं कथमेव प्रभवेत्, चेद् यदि कतिपयैरल्पैरपि सुकृतैः शुभकर्मप्रभावैः कोऽपि मन्त्री श्रुत्यर्थसारसङ्ग्रह– भूतमन्त्रनिष्ठः सदाचार्यः सुहृत् न एति न मिलति। सुकृतशतैकलभ्यः सदाचार्य एव सयुजौ सखायौ मेलयित्वा उभौ कृतार्थयतीति भावः।

**भावार्थ – यह स्थूल शरीर ऐसा चमत्कारी है कि इसे पाकर सदा स्वयम्प्रकाश ज्ञानानन्दमय आत्मा अपने आपको भूलकर शरीर मानने लगता है, जब कि अनेक शरीर धारण कर चुका है, सबमें समान भाव से ही रहता है, शरीर के धर्मों से कभी लिप्त नहीं होता, फिर भी अपने को शरीर मानता चलता है। ऐसी स्थिति में जब कि अपने को ही भूला बैठा है तो अपने नित्य सहचर सखा सुहृद् परमात्मा को वह कैसे समझ पायेगा। उस नित्य सखा को तो तभी समझ सकता है जब कोई वेदवेदान्तसार सर्वस्व भूत मन्त्र का निष्ठावान् आचार्य पूर्वपुण्यों के फलस्वरूप सुहृद् भाव से मिल जायें।**

**आत्मा सृष्ट्यादिहेतुः स्वविविधचरितैरीशसङ्कल्पबन्धाद्,**
**ईशोऽप्यस्मै सखित्वं वहति रसमयं कौस्तुभाभं विजानन्।**
**तस्मिन् हृद्यातिहृद्ये स्फुरति सततमप्यस्तिनास्तित्वमुख्या,**
**भ्रान्तिर्नॄणां स्वदोषैर्भवति सुमतयस्तन्तु पश्यन्ति शश्वत्।।२२६।।**

भगवच्छेषत्वेनात्मनोऽनुदर्शनं कल्याणहेतुरिति प्रतिपादयन्नाह–आत्मेति। आत्मा चेतन, ईशसंकल्पबन्धात् भगवदीयसत्यसंकल्पनियन्त्रितफलावस्था– देशकालरूपमुख्यहेतोः, स्वैरज्ञाननिर्वर्तितैर्विविधैः सत्त्वादिगुणावस्थाभेद–



पूर्वकैश्चरितैः कर्मभिर्विश्वस्य सृष्टौ रक्षायामुपसंहारे च हेतुः कारणम्भवति। एतेन महाकार्यहेतुतया भगवत्प्रीतिविषयता सूचिता। ईशोऽपि अस्मै चेतनाय कौस्तुभाभमतिस्वच्छं विजानन् संसारावस्थायामपि शुद्धस्वरूपोत्कर्षम् पश्यन्, रसमयम् फलोत्कर्षस्वरूपोत्कर्षदर्शनकृतप्रीत्यतिशयमयं, सखित्वम् असाधारणसम्बन्धम्, बहति धारयति। तस्मिन् उक्ते, हृद्येभ्यो रमणीयार्थेभ्योऽपि अतितरां हृद्ये सकलरमणीयताकन्दभूते विस्मरणानर्हे, सततं निरन्तरं, स्फुरति नानामहत्कार्यैरनुमीयमाने तत्तदर्थाकारैः क्वचिदसामान्यफलैर्दृश्यमानेऽपि परमात्मनि नृणां संसारिचेतनानाम्, अस्तित्वमुख्या नास्तित्वमुख्या च भ्रान्तिरन्यथाज्ञानं, स्वैरसाधारणैर्दोषैः कुसंस्कारैर्भवति। एकस्मिन् निर्विशेषेऽर्थे भ्रान्तिशतोदयस्य भ्रान्तिसमानाधिकरणैरेव दोषैः सम्भवात्। अत्र भ्रान्तिरिति जातावेकवचनम्, अस्तित्वनास्तित्वरूपपक्षद्वयेऽपि कल्पित तत्तद्विशेषानादाय भूयो भ्रान्तीनां दर्शनात्। अथ सुमतयो भ्रान्तिहेतुदोषरहिता भावुकास्तु, सन्तस्तम्परमात्मानं नित्यं सखायं, शश्वत् सदैव पश्यन्ति शुद्धचेतसा साक्षात्कुर्वन्ति।

**भावार्थ – अपने को भगवान् के शेष के रूप में देखने की प्रवृत्ति कल्याणकारी होती है, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि परमात्मा चेतनों के द्वारा ही विश्व की सृष्टि रक्षा और संहार करते हैं, चेतनों के त्रिगुणमय नाना कर्म उन्हें अपने फल देते हैं, उन फलों पर परमात्मा का नियन्त्रण होता है। महान् विश्व के अस्तित्व में चेतन अपने कर्मों द्वारा बड़ी भूमिका निभाते हैं, चेतन तत्त्व भगवान् के कौस्तुभ मणि की तरह अतिशय स्वच्छ और नित्य एकाकार होता है, इस तरह उपयोगिता से एवं स्वरूप से भी यह भगवान् का अति प्रिय है। इसी से वे इसके प्रति नित्य मैत्री भाव रखते हैं। भगवान् सारी प्रिय वस्तुओं से बढ़कर प्रिय हैं और शुद्ध हृदय में प्रकाशित भी होते हैं फिर भी कुसंस्कारों से उनके सम्बन्ध में अस्तित्व नास्तित्व लेकर असंख्य भ्रान्तियाँ हुआ करती हैं जब कि शुद्धचित्त और बुद्धि में वे सदा प्रकाशमान ही रहते हैं।**

**आत्मैवोद्धारहेतुर्गुणमयप्रकृतेर्गर्ततश्चेद्वितन्द्रो,**
**जानातीदं वपुर्मे विमलमथ गलद् रोगि जीर्णं विनश्यत्।**
**त्यक्तासङ्गं विदुःखं हरिपुरुषजुषोऽनादितन्द्रावसाने,**
**स्यादिद्धा भेदबुद्धिर्मवभयतरणे मानदम्मादिहाने।।२२७।।**

अप्रमादेन क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेददर्शनं कल्याणहेतुरित्याह–आत्मैवेति। आत्मा स्वयमेव, गुणमय्याः प्रकृतेः, महतो गर्तवद् दुरुद्धरस्थानरूपायाः स्वस्य उद्धारहेतुर्भवति।

कदा ? चेद् वितन्द्रोऽनलसः सन् इदम्मे वपुः विमलं वातादिदोषरहितम्, अथवा गलत् वार्धक्येन क्षीयमाणं, रोगि, जीर्णं विगतयौवनं, विनश्यत् निष्प्राणतासन्निहितम् इति स्वात्मनो भेदेन जानाति दर्शनवद् विशदम् अनुसन्धत्ते। इदम्भेदज्ञानं कथमृद्धं दृढं स्यादित्यत्राह–हरिपुरुषम् भगवद्भक्तम् उपेतस्य ततो लब्धविद्यस्य, तत्प्रसादेन तन्द्राया आलस्यस्य अवसाने समाप्तौ, मानदम्भादीनां विंशतिदोषाणां हानेऽल्पीभावे त्यक्तासङ्गं लौकिकार्थेष्वासक्तित्यागपूर्वकम्, अतएव विदुःखं संयोगवियोग प्रयुक्तदुःखरहितम्, भवभयतरणे उपयुक्ता भेदबुद्धिः क्षेत्रात्क्षेत्रज्ञस्य पृथग्भाव इद्धा प्रवृद्धा स्यात्। ततो भक्त्युदयदाढर्यस्थेमपूर्वकपरिपूर्णात्म–निवेदनरूपप्रपत्त्या भगवत्कृपया मोक्षप्रक्रियाऽऽरम्भःस्यादिति भावः।

**भावार्थ – शरीरसम्बन्ध से आत्मा के सारे अनर्थों का मूल प्रमाद जारी रहता है। सत्संग के बल से उसे दूर कर क्षेत्र से अपने क्षेत्रज्ञ स्वरूप के स्पष्ट भेद का चिन्तन जारी रहने से मोक्षमार्ग में प्रगति होती है, यह बात समझाते हुए कहते हैं कि आत्मा प्रकृति के गड्ढे से अपने को स्वयम् उबार सकता है। इसके लिये प्रमाद छोड़कर सत्पुरुषों की कृपा से शरीर और आत्मा के स्पष्ट भेद का ध्यान जारी रखना चाहिये। भेद ज्ञान तो सबको रहता ही है, सभी लोग शरीर को अपना मानते हैं, आप नहीं मानते। हर आत्मा शरीर की सारी अवस्थाओं और अवस्था के विकारों का साक्षी होता है। इसी साक्ष्य को सत्संग और शास्त्र वचनों के द्वारा बढ़ाकर भेद बुद्धि को दृढ किया जा सकता है। तब आगे आत्मकल्याण के द्वार खुलते जाते हैं।**

**सृष्ट्यारम्भे विधिं यः सुचरिततपसम्ब्रह्मविद्योपपत्त्या,**
**स्रष्टव्यार्थेषु दक्षं व्यधित स भगवान् मायया यादवोऽभूत्।**
**दत्वाऽऽचार्यस्य पुत्रान्यमसदनगतान्दक्षिणात्वेन तस्य,**
**प्रीत्या विख्यातविद्योऽहरदरममलान् हंसकान् देहनीडात्।।२२८।।**

एतत्क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगमूला ब्रह्मविद्या न निवृत्तिनिरतानां केवलम्मुमुक्षूणांकृतेऽपेक्षिता अपितु प्रवृत्तिमार्गिणामपि कर्मकौशलाय तुल्यमपेक्षितेति सूचयन्नाहसृष्ट्यारम्भइति। सृष्टे र्विश्वोत्पत्तेरारम्भे ब्रह्मणो नाभिकमलादुत्पत्तेः परं यो भगवान् स्वनिर्देशानुसारं सुचरिततपसम् ब्रह्मविद्योत्पत्तिपर्यन्तानुष्ठित–सविद्यध्यानं, विधिम् परमेष्ठिनम्, ब्रह्मविद्योपपत्त्या सम्प्राप्तब्रह्मज्ञानत्वेन, स्रष्टव्येषु अर्थेषु चतुरशीतिलक्षयोनिजननेषु, दक्षं कुशलं, व्यधित कृतवान्, स भगवान्, मायया सङ्कल्पेन, यादवो यदुवंशजो वासुदेवः, अभूत् आसीत्, स एव भगवानपि



मनुष्यमर्यादया गुरुमुखाद् विद्याअधीत्य, यमसदनगतान् पुत्रान् आचार्यस्य दक्षिणात्वेन दत्त्वा, लब्धदक्षिणस्य तस्य प्रीत्या विख्यातविद्यः सन्, अमलान् सदुपदेशबलविनष्टसंसारदोषान्, हंसकान् प्रसिद्धान् मुमुक्षून् देहरूपात् नीडान्मोहस्थानाद् अरं शीघ्रम्, अहरत् स्वीचकार।

**भावार्थ – क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागदर्शनमूलक ब्रह्मविद्या निवृत्तिमार्ग की तरह प्रवृत्तिमार्ग में भी विशेष उपयोगी है, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि विश्वसृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी को समुचित तपस्या के द्वारा ब्रह्मविद्या प्राप्त होने पर उन्हें सृष्टिकार्य में भगवान् ने प्रशिक्षित किया, ऐसा श्रुतिस्मृति इतिहास पुराणों के वचनों से सिद्ध है, वे ही भगवान् अपने सत्य संकल्प से यदुवंशी मानव बने और विधिवत् गुरुमुख से विद्यायें प्राप्त कर, गुरु के मृतपुत्रों को यमलोक से लाकर दक्षिणा के रूप में दिया। उससे गुरु प्रसन्न हुए और विद्या की प्रसिद्धि का वरदान दिया जिससे उन्होंने अनेक सक्षम अधिकारियों को सदुपदेशों से शीघ्र मोक्ष प्रदान किया।**

**नो वाचाऽन्यत्वबुद्धिर्भवति तनुभृतां देहतोऽभेदबुद्धेः,**
**प्राबल्यात्कर्मभोगप्रतिहतिनियता मानमोहादियोगात्।**
**तच्छैथिल्ये सहाया हरिमुखगदिता विंशतिः सन्त्युपाया,**
**मानं दम्भं जिघांसामसहनमनृजुत्वादि हित्वाऽत्मवित् स्यात्।।२२९।।**

क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेददर्शनं न वचनमात्रेण सम्पद्यते, सदाचार्यसन्निर्देशसहकृतैः साधनैः सुसंस्कृते तु चेतसि तज्जायते, तदर्थं यतनीयमित्याह–नो वाचेति। तनुभृतां देहिनां, वाचा केवलया, कर्मभोगप्रतिहतिनियता कर्मफलभोगप्रति–घातकारिणी, देहतो देहिनोऽन्यत्वबुद्धिः, भेददर्शनं, नो भवति, नैव जायते। कथम् ? मानमोहादिदोषाणां योगात् अवश्यसत्त्वात्, सर्वेऽपि हि देहिनो मानिनो मोहग्रस्ताश्च भवन्ति, अतएव अभेदबुद्धे र्मिथ्याभूताया अपि प्राबल्याद् अनुच्छेद्यत्वात्। तर्हि शास्त्राणि वृथा स्युरित्याशङ्कामपनुदति–तच्छैथिल्ये तस्या अभेदबुद्धेः शैथिल्ये मीमांसनीयत्वापादने, हरिमुखेन साक्षाद् भगवता श्रीकृष्णेन, गदिता व्यक्तम्प्रतिपादिता, विंशतिः अमानित्वादय उपायाः सन्ति। तानेव संक्षेपेणाह–मानं दम्भं जिघांसाम् असहनम् अनृजुत्वादींश्च च षोडश दोषान्मनोगतान् उपायैर्हित्वा उज्झित्वा आत्मवित् देहभेदेन दृश्यमानात्मतत्त्वः स्यात्, मुमुक्षुरिति शेषः। देहभेदेन दृष्टात्मतत्त्व एव भगवत्स्वरूपध्यान– रूपभक्तिसाधनप्रवीणः स्यात् तत एव च आत्मनिवेदनरूपा प्रपत्तिस्ततो भगवत्कृपया मुक्तिरिति भावः।

भावार्थ – क्षेत्र से क्षेत्रज्ञ आत्मा का भेद उपदेश मात्र से नहीं दीख जाता, उसके लिये विधिवत् उपायों से चित्त की शुद्धि की जाती है, तब वह धीरे–धीरे समझ में आता है, क्यों कि देह से आत्मा में अभेद बुद्धि मान मोह आदि दोषों के कारण हट नहीं पाती, विरोधी ज्ञान के रहते अनुकूल ज्ञान हो नहीं पाता। चित्तशुद्धि के बीस उपाय अमानित्व अदम्भित्व आदि भगवान् ने बतलाये हैं, उनका प्रयोग सावधान मन से सदाचार्य के निर्देश में धीरे–धीरे हो पाता है। उन बीस उपायों का पूरा व्यौरा गीतागंगा की द्रुतविलम्बिता धारा में तेरहवें अध्याय में है। यहाँ उनका संकेत मान के निरूपण मात्र से प्रस्तुत है। उपायों से चित्त के सोलह दोषों के हटने पर देह से अलग ज्ञानानन्दमय आत्मा दीखने लगता है। तब परमात्मा का सादृश्यमूलक ध्यान हो पाता है जो भक्ति का रूप लेकर चरम उपाय प्रपत्ति की मानसिक दशा लाकर भगवान् को ''अहं त्वा सर्वपापेभ्य०'' इस वचन के पालन का अवसर प्रदान करता है।

मानो नामात्मनीनो भवति तनुभृतां सर्वदोषैकहेतुः,  
प्राक्कर्माप्ताभिजात्याभिजनमतिबलैर्मन्यते स्वम्महत्त्वम्।  
जन्तुस्तेनावमानं जगति वहति सत्पूज्यवर्गेष्वजानं–  
स्तेषां सत्कारहेतूनभिजनजनधीशक्तिसत्कर्मकीर्तीः।।२३०।।

निवारणीयेषु चित्तदोषेषु प्रथमं मानं नाम प्रमुखं दोषमुपक्षिपति–मानो नामेति। आत्मनीन आत्मना प्रथमं सम्बद्धो, मानो नाम दोषः, तनुभृतां देहिनाम्, अन्येषां सर्वेषां दोषाणाम् एकः प्रधानभूतो हेतुः कारणम् भवति। तेन प्रथमम् अयमेव वारणीय इति भावः। कोऽयम्मान इत्यत्राह–प्रागिति, प्राग्भिः पूर्वजन्मसम्पादितैः फलावसानावसानैः कर्मभिराप्तानि उपक्षिप्तानि यानि आभिजात्यं वंशगुणाः, अभिजनाः सम्बन्धिनः, गतयो लौकिकज्ञानानि, बलं शारीरम्, एभिरेकैकैर्मिलितैश्च जन्तुः शरीरी स्वम् आत्मनो महत्त्वम् मन्यते, तेन जगति सद्भिरपि पूज्यानां वर्गेषु तेषां सत्कारहेतून् सामान्येन सम्माननिमित्तभूतान् अभिजनो वंशगुणाः जना अनुयायिनो, धीर्व्यहारज्ञानम्, शक्तिश्चित्तवाक्काय– बलम्, सत्कर्माणि यशोमूलानि शुभहितकृत्यानि, तत्फलानि कीर्त्तीर्लोक– प्रसिद्धीश्च, अजानन् ज्ञानहेतुषु, सत्स्वपि वैमुख्येन स्थिरेण तज्ज्ञानरहितोऽज्ञा– नम्प्रथयन् वा अवमानं वहति उपेक्षते, तिरस्करोति, मानभंगोपायांश्चानुतिष्ठति। एवं श्रेयःप्रेयःफलकसेवायोग्यानामवमानैर्न केवलं श्रेयआदिभिर्हीयतेऽपि तु तद्विरुद्धावस्थाभिर्युज्यमानः क्रमेण लोके निलीयते।



भावार्थ – मान आदि बीस दोषों पर नियन्त्रण और उनका निवारण न केवल मोक्षार्थियों के लिये, बल्कि लौकिक अभ्युदय और प्रतिष्ठा के लिये भी आवश्यक होता है। इससे अन्य दोषों को भी बढ़ाने वाले मान नामक दोष का परिचय प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मान वह दोष है जो पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप मिले कुल मित्र बन्धु बुद्धि बल आदि से प्राणी अपना महत्त्व मान लेता है, वह यह भूल ही जाता है कि यह सब आज हैं कल न थे न होंगे, इससे वह दूसरे उन लोगों का भी अनादर और अपमान करने लगता है जो उससे हर बात मे अच्छे होते हैं और अच्छे लोगों से भी सम्मान पा रहे हैं। इससे मानी व्यक्ति का शीघ्र ही पतन शुरू हो जाता है।

अन्यस्तत्तारतम्यं यतति तुलयितुं तर्हि दम्भं दधाति,  
स्वोत्कर्षख्यापनार्था वितथगुणकथा सद्भिरुक्तो हि दम्भः।  
मिथ्यात्वं तद्गुणानाम्प्रथयति तनुते तद्विनाशाय पापो,  
घोरम्मिथ्यापवादं धनविभवतनुध्वंसयत्नातिरेकम्।।२३१।।

मानफलभूतं दम्भं वर्णयति–अन्य इति। अन्यो मानिभिन्नोजनः कोऽपि यदि तस्य मानवतस्तारतम्यम् उच्चावचभावं तुलयितुम् उन्मानयितुं यतति चेष्टमानो दृश्यते तर्हि दम्भं नाम नवं दोषं दधात्यङ्गीकरोति। को नाम दम्भ इत्यत्राह स्वोत्कर्षेति, स्वस्यात्मन उत्कर्षस्य वाञ्छितोच्चैस्त्वस्य ख्यापनम् अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा तथोक्ता वितथा मिथ्यार्था, गुणकथा गुणवर्णनं ख्यापनञ्च सद्भि र्विद्वद्भिर्दम्भ इत्युक्तो हीति प्रसिद्धिः। अथ स्वदम्भसाफल्याय तस्य वस्तुभूतगुणवतो गुणानाम् मिथ्यात्वम् प्रथयति, किञ्च पापो दम्भाश्रयी, तस्य गुणानां विनाशाय घोरं कल्पनयाऽपि भयावहम्, मिथ्याभूतम् अपवादं लाञ्छनं तनुते प्रथयति, किञ्च तस्य धनस्य विभवस्याधिकारस्य तनोः शरीरस्य च ध्वंसेऽपाये यत्नानाम् अतिरेकम् उत्तरोत्तरां वृद्धिञ्च तनुते, तेन स्वोत्कर्षकल्पनां सफलां दिदृक्षते च।

भावार्थ – मान का फल दम्भ होता है, उसका निरूपण करते हैं। जब मानी व्यक्ति अपने तुल्य या बड़ों से भी बड़ा बनना चाहता है तब तटस्थ व्यक्ति दोनों की तुलना करने लगता है, उस समय मानी दम्भ का सहारा लेता है। अपने उत्कर्ष की प्रसिद्धि के लिये जो अपनी झूठी बड़ाई कही और कहलवायी जाती है उसे ही विद्वान् लोग दम्भ कहते हैं। दूसरे शब्दों में सच्चाई को दबाने या छिपाने के उपाय दम्भ कहे जाते हैं। जिन सच्चाइयों को छिपाना नीतिसंगत है उन्हें छिपाना दम्भ नहीं है। वास्तव में किसी के

अनिष्ट के लिये या अपने गलत स्वार्थ के लिये अपनाया गया उपाय या गुप्त प्रकट साधन जब अपनाया जाता है तब दम्भ कहा जाता है। मानी व्यक्ति दूसरे से अपने को अच्छा ठहराने के लिये अपने में उससे अच्छे गुण बखानने लगता है, वह इतने मात्र से सन्तुष्ट न होकर उसके गुणों को दबाने के लिये उस पर झूठा भयानक लाञ्छन लगाता है फिर उसके धन, उसके अधिकार, और उसके शरीर तक के नाश में अपना प्रयत्न तेज करने लगता है। इस तरह मान दम्भ के मार्ग से घोर हिंसा का रूप ले लेता है।

**एवम्मानः पुमांसं नयति निरयमेवातिवेगेन चित्ते,**
**तिष्ठन्यन्तेव यत्नात्सुखमयसरणौ स्यन्दनं शत्रुराज्यम्।**
**का तत्रोत्कर्षवार्ता भवति हतधियो जीवनस्यैव चान्तो,**
**हन्ताज्ञानाद्धि चिन्तां सुरपतिविभवोत्तारिणीं ना न धत्ते।।२३२।।**

एवं क्रमेण मानस्य परमपराभवहेतुत्वमाह—एवमिति। एवम् पूर्वोक्तेन क्रमेण चित्ते तिष्ठन् मानः रथे तिष्ठन् यन्ता सारथिरिव सुखमये सरणौ चालयन् स्यन्दनं रथं शत्रूणां राज्यमिव पुमांसम् परमपुरुषार्थोपयुक्तं चेतनम् अतिवेगेन दम्भहिंसादिपरिणामपरम्परया निरयमेव नयति। तत्र पतनक्रमे हतधियो नष्टप्रज्ञस्य जनस्य उत्कर्षस्य वार्ता का स्यात्, तदा तु जीवनस्य एव अन्तो भवति म्रियते। हन्त ! महान् अयं खेदो यत् ना पुमान् अज्ञानाद् हि स्वस्वरूपोपेक्षया सुरपति विभवोत्तारिणीम् सुरनायकवैभवादप्युत्कृष्टपदयोग्यताऽऽपादिनी चिन्तां भगवदेक—शेषत्वभोग्यत्वनियाम्यत्वविषयिणीं न धत्ते। उत्कर्षपथे चलनार्होऽपिजन्तुर्दुर्वासनया विनाशपथमेवानुसरतीत्यर्थः।

**भावार्थ — मान दूसरे दोष बढ़ाता हुआ अन्तिम पराभव तक पहुँचा देता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि इसप्रकार ह्रदय में रहता हुआ मान रथ चलाते हुए आराम के रास्ते से उसे शत्रुओं के राज्य में पहुँचाने वाले सारथि की तरह पुरुष को जोकि परमपद तक पहुँचने के योग्य होता है, सीधे शीघ्रता से नरक ही पहुँचा देता है। ऐसी स्थिति में जब कि वह मृत्यु को प्राप्त होने जा रहा हो, तब उसके उत्कर्ष की क्या बात होगी। बहुत खेद है कि जिसे देवलोक के महान् वैभव को भी ठुकराकर परमपद तक पहुँचाने वाली बुद्धि प्राप्त हो सकती है वह अपनी रक्षा भी नहीं कर पाता और मृत्यु के रास्ते विनाश की अन्तिम सीमा पर पहुँच जाता है।**



**देहम्प्राप्यापि देहं न विदुरथ विदुर्व्योमगानां विशेषान्,**
**शब्दोत्तंसाश्च शब्दं सुबहु च जगृहुः पाशवं कर्मजातम्।**
**किन्ते प्रत्यक् चरन्तं स्वमसमविभवं हन्त ! नित्यं सखायं,**
**स्वाह्वानापेक्षयेवानुगतमरिदराद्यायुधं सद्गुणाब्धिम्।।२३३।।**

क्षेत्रज्ञस्येदं देहाख्यं क्षेत्रं हितसाधनेषु अन्तरङ्गतया स्वस्वरूपबोधे सहायकतया सर्वोत्कृष्टफलज्ञानसम्पादकतया च सर्वप्रथमं वेदनीयमित्याह— देहमिति। विद्वन्मानिनोऽधिक्षिप्यन्ते, देहं सकलसुखमयपुरुषार्थसाधनभूतं कलेवरम् प्राप्यापि, देहं न विदुरेतद्धटकतत्त्वतत्प्रभावतत्परिणामान् न ज्ञातवन्तः, अथ व्योमगानां ग्रहोपग्रहराशिनक्षत्रसुरलोकतद्विमानानाम् अप्राप्तानामप्राप्यानां वशयितुमशक्यानां विशेषान् तत्तच्छास्त्रद्वारा विदुर्जानन्ति। एवं शब्दोत्तंसाश्च सादरं शब्दानुपयुञ्जाना अपि शब्दशक्तिग्रहहेतुं व्याकरणञ्च न विदुः, किञ्च अनियतेन्द्रियतया पाशवम् पशूनामपि सुलभम् आहारनिद्रास्वरक्षाव्यवायरूपं कर्मजातम् पशुवदेव कुर्वाणाः कर्मविद्यारहिततया सुबहु सादरं जगृहुश्च, प्रयोजकप्रयोज्यकर्तृकर्मफल—विवेकशून्यतया अज्ञानदशया अनुज्झितकर्मबन्धाः सन्तीति भावः। ते पूर्वोक्ताः प्रत्यक् चरन्तं स्वस्मै सदा स्वयम् भासमानम्, असमविभवं देवादिविभवोत्तीर्ण—महाविभवार्हं, स्वम् आत्मानं किं विद्युः, पुनश्च किन्नु नित्यं सखायं सुहृद्भूतं, स्वाह्वानापेक्षया इव मां कदाचिद् आकारयेद् अयमिति कल्पनया इव अनुगतम् पृष्ठ एव चरन्तम् अरिदराद्यायुधं विलम्बवारणाय रक्षाहेतुसर्वास्त्रसज्जं, सताम् महाफलानां गुणानाम् अब्धिं समुद्रम् भगवन्तं किं नु जानीयुरिति शेषः। ''स्थूलं सन्निहितं देहं स्वनेयं न विदुर्जडाः। आत्मा तेषां सुसूक्ष्मस्तु किं ज्ञेयो भगवद्वशः।।''

**भावार्थ — यह देह जो क्षेत्र कहा जाता है वह आत्मा का सबसे निकट और स्थूल उपकरण है। यह आत्मा और परमात्मा की तरह अति सूक्ष्म तत्त्व नहीं है। यह आत्मा को चार पुरूषार्थ प्राप्त करने में प्रथम सहायक है। इसे जान लेने से अपने स्वरूप के ज्ञान में और उससे परमात्मा के ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति में सुविधा होती है। फिर भी इसे वे लोग भी जानने का प्रयत्न नहीं करते जो दूरस्थ और सूक्ष्म अर्थ समझते और समझने में सक्षम भी होते हैं। बहुत लोग आकाशचारी तत्त्वों और देवताओं को जानते हैं जो अतिदूर हैं और अपने वश में नहीं हैं किन्तु अपने शरीर की उस बनावट को नहीं समझते जिससे अपने चैतन्यमय स्वरूप की ओर ध्यान जा सके। बहुत लोग तो शब्दों का महत्त्व जानकर भी व्याकरण ही नहीं जानते जो शब्दों की**

शक्ति का ज्ञान कराता है और अन्य शास्त्रों का अर्थ समझने में सहायक होता है। किसी सत्पुरुष का सुझाव मानकर स्वाभाविक कर्मों को समझते हुए क्रम से वे कर्म योग भी नहीं पाये हैं, जिससे उनकी प्रवृत्तियाँ शास्त्रसंस्कार युक्त न होने से पशुतुल्य ही रह गयी हैं वे भला स्वंयम्प्रकाश, त्रैलोक्य से अधिक वैभव पाने योग्य अपने चिन्मयस्वरूप को कैसे समझ पायें, और उस परमात्मा को कैसे समझ पायेंगे जो शायद इस लिये चेतन के पीछे पीछे चलते हैं कि कहीं यह मुझे पुकार सकता है, वे सदा शंखचक्र आदि आयुध सम्भवतः इस लिये धारण किये रहते हैं कि कहीं रक्षा में विलम्ब न हो जाये। ऐसे महान् फलवाले स्थायी गुणों के समुद्र परमात्मा तक को समझने की तैयारी विरला ही कोई महापुरुष करता है।

आत्मा ब्रह्मेव नित्यस्तदखिलगुणवांस्तद्विभूतिर्वरिष्ठा,
बन्धे मोक्षे च शश्वत्तदतिशयकरस्तद्गुणाहारलिप्सुः।
शक्तः स्वेन ग्रहीतुं करणविरहितोऽपीन्द्रियार्थानशेषान्,
देहादीनां नियन्ता न च भवति मनाक्तद्विशेषैर्विलिप्तः।।२३४।।

अवश्यवेद्यतयोपक्षिप्तमात्मानं निरूपयति—आत्मा ब्रह्मेवेति। आत्मा प्रस्तुतः शरीरी, ब्रह्म इव नित्यः श्रुतिषु नित्यत्वेनोपवर्णितेन ब्रह्मणा नित्यत्वेन तुल्यः, तदखिलगुणवान् श्रुतिषु अपहतपाप्मत्वादयः सत्यसंकल्पान्ता येऽष्टौ गुणा ब्रह्मणः प्रथितास्ते निसर्गतो जीवेऽपि सन्ति, तथाऽपि वरिष्ठा तस्य ब्रह्मणो विभूतिरेष मन्यते "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः" इति। बन्धे मोक्षे च सर्वावस्थासु शश्वत् सदैव तदतिशयकरः शेषभूतोऽस्ति, तस्य ब्रह्मणो ये गुणास्त एवाहारस्तस्य लिप्सुः सदैव लाभं वाञ्छन् अस्ति, तद्भक्त्येकनिरूपणीय इति यावत्। करणविरहितोऽपि योगसिद्धिदशायाम् मोक्षदशायाञ्च अशेषान् इन्द्रियार्थान् शब्दादीन् स्वेन स्वयमेव ग्रहीतुं शक्तः, देहेन्द्रियमनसाम् पूर्वकर्मणाम् भोगानाञ्च, संसरन् योगसिद्धौ मोक्षे च नियन्ता नियमनप्रवणोऽयं तद्विशेषैर्मनाक् चापि विलिप्तो न भवति, असंगस्वभावो ह्ययम्।

**भावार्थ – आत्मा को समझना अति आवश्यक कहा गया। अब उसका निरूपण करते हैं। आत्मा परमात्मा से बहुत मिलता है इससे बहुतों ने दोनों को एक ही मान लिया है। एक मानने से पुरुषार्थों में बाधा पड़ती है, प्रमाणों से भी विरोध आता है। तुल्य मानना उचित है। परमात्मा के समान आत्मा भी नित्य है, इसमें परमात्मा के सारे गुण मुक्तावस्था में मिलते हैं। संसार अवस्था**



में वे दबे रहते हैं। दोनों में प्रकृति के गुणों का प्रभाव नहीं पड़ता। संसार अवस्था में आत्मा के अन्तःकरण में सत्त्वरजतम गुण घटते बढ़ते रहते हैं, इससे स्वभाव इच्छा प्रयत्न आदि में भेद पाया जाता है। यही आत्मा का माया का बन्धन है। भूख प्यास आदि शरीर के धर्म चित्त को प्रभावित करते हैं, चित्त प्रकृति का ही परिणाम है, चित्त से चेतन तत्त्व अपने को एक सा मानता है। कर्मों से ज्ञान का संकोच होने से ऐसा भ्रम हुआ करता है। परमात्मा जो चाहते हैं वह हो जाता है। उन्होंने ने एक बार चाहा कि संसार हो जाये तब यह हो गया। जिस दिन चाह लेंगे कि यह अब न रहे तब नहीं रहेगा। आत्मा स्वभाव से परमात्मा के विरुद्ध नहीं सोचता, संसार अवस्था में प्रकृति संसर्गवश उलटा सोच सोच कर कष्ट पाता रहता है। आत्मा परमात्मा का सबसे बड़ा धन है। गीता में भगवान् ने "अहमात्मा०" कहा है। यह जैसे संसार अवस्था में भगवान् की लीलाओं का उपकरण है वैसे मुक्त अवस्था में उनकी सन्तुष्टि का साधन कौस्तुभ आदि रत्नों की तरह बना रहता है। उनकी भक्ति इसका सहज स्वभाव है। पापों से यह स्वभाव दबा रहता है। संसार अवस्था में यह इन्द्रियों के माध्यम से ही विषयों का ग्रहण कर पाता है जैसे वृद्ध लोग चश्मा से ही देख पाते हैं। योगसिद्धियों के बल पर बिना इन्द्रियों के भी विषयों का ग्रहण कर लेता है। मुक्तावस्था में इसकी शक्ति पूर्ण विकसित हो जाती है तब इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती। यह यद्यपि शरीर इन्द्रिय मन आदि का नियन्त्रण करता है किन्तु उनके गुणों या विशेषताओं से तनिक भी प्रभावित नहीं होता।

यद्यप्यात्मा प्रकृत्या मिलति चरति तत्सङ्गजान्दुर्विकारान्,
दुःखप्रायान्सुखाभान्स्मरति न च मनाक्स्वम्पृथक्त्वं सुखेप्सुः।
आत्मानं किन्त्वसङ्गं सहचरितदशायां च शास्त्रैर्विजानन्,
युक्त्या सद्भिर्विमोहैः सुचरितनिरतैः स्याद् विदुःखः सुखात्मा।।२३५।।

प्रकृतिसङ्गदशायामपि कल्याणेप्सुना स्वकीयम् असङ्गत्वं स्वयम्प्रकाश–त्वञ्चानुसन्धेयमित्याह—यद्यपीति। यद्यपि आत्मा देही चेतनः प्रकृत्या महदहङ्कारादिपरिणामवत्या, मिलति कमलदलगतं सलिलमिव सङ्तोऽनुभूयते, किञ्च तत्सङ्गजान् प्रकृतिसङ्गप्रयुक्तान् दुर्विकारान् दुःखरूपान् शोकमोहादीन्, चरति ताम्बूलचर्वणादिवत्पुनः पुनरनुभवति, किञ्च, तत्सङ्गजान् प्रकृतिसङ्गप्रयुक्तान् दुर्विकारान् दुःखरूपान् सुखाभासान् अपि सुखम् एव मन्वानोऽनुभवति, न च मनाक् किञ्चिदपि स्वम् आत्मनः पृथक्त्वम् अन्तःकरणाद् भेदं स्मरति,

कथमित्यत्राह—सुखेप्सुरिति, परिष्वङ्गफलसुखलिप्सया दम्पती इव पृथक्त्वं जानन्नपि दूरीभावमनिच्छन् तद् अपलपत इवेति भावः। किन्तु एवम्प्रकृतिसंसर्गदशायामपि सुचरितनिरतैः सदाचारपरायणैः, निर्मोहैर्देहतदनुबन्धिषु मोहरहितैः, सद्भिर्लब्धात्मभिर्महात्मभिः, शास्त्रैस्तदनुकूलयुक्त्या च आत्मानम्, असङ्गं विजानन् अनुध्यायन्, विदुःखो दुःखहेतुष्वपि दुःखरहितो दुःखेषु सत्स्वपि तत्प्रभावरहितश्च सुखात्मा सहजानन्दानुभवैकचेताः, स्यात्सदा सम्भवेदिति भावः।

**भावार्थ — संसार अवस्था में ही पुरुष को चाहिये कि सत्पुरुषों के सम्पर्क से शास्त्रीय तर्कों और युक्तियों से अपने अप्राकृतिक असङ्ग स्वयम्प्रकाश स्वरूप को समझ कर और धारण कर प्रकृति के दोषों और दुःखों, से बचता हुआ निःश्रेयस के मार्ग में आगे बढ़ता रहे, यह समझाते हुए कहते हैं कि चेतन यद्यपि प्रकृति से मिलकर उसके संग से होने वाले दुःख शोक मोह आदि विकारों का अनुभव करता और कुछ ऐसे भावों का भी अनुभव करता है जो सुख जैसे लगते हैं किन्तु वे ज्यादा दुःखमय होते हैं, ऐसी स्थिति में भी चेतन अपने को अन्तःकरण के गुणदोषों से अलग साक्षी के रूप में शास्त्रों और गुरुओं के वचन से भी मानने को तैयार नहीं होता, क्यों कि इससे ऐसे वे दुःख नहीं मिल पायेंगे जिन्हें वह सुख मानता हुआ छोड़ना नहीं चाहता। फिर भी कल्याणकामी को चाहिये कि उन सत्पुरुषों की संगति करे या उनके वचनों का पालन करे जो सदा शुभ कर्मों में रुचि रखते रहे हैं और सांसारिक मोह से ऊपर उठ चुके हों। उनका अनुसरण करके वह इसी जन्म में दुःखों से छूट कर सुखी हो सकता है।**

**पुण्यम्पापं द्विधाऽन्तर्भवति तनुभृतां तत्र मध्यश्चिदात्मा,**
**तस्मादेकत्र पापाः सहजरिपुगणा आन्तरा बाह्यदृश्याः।**
**पुण्यं चान्यत्र तस्मिन्विशदबहुगुणंसत्सुहृद्बन्धुपुत्रै—**
**र्भ्राजज्जैत्रं सुरौकःप्रभृतिहरिपदान्तस्य मार्गस्य शान्तम्।।२३६।।**

अथ सतां सङ्गेन शुभान् संस्कारान् वर्धयित्वा निःश्रेयसम्प्राप्नुयात् कोऽपि जन्तुरिति त्रिभिः श्लोकैः प्रतिपादयन् प्रथमम्पुण्यपापविभागमन्तःकरणस्थं निर्दिशति—पुण्यम्पापमिति। तनुभृतां शरीरिणाम् पुण्यम् पापमिति द्विधा अन्तःकरणम् भवति। तत्र द्वयोः पक्षयोर्मध्यस्थत्वं निर्वहन् चिदात्मा चेतनः स्वयम् भवति। तस्मात् कल्पितमध्यस्थात् चेतनात् एकत्र पक्षे पापा अशुभफलाः सहजाः स्वाभाविका, रिपुगणाः कामक्रोधादय, आन्तराश्चित्तगता, बाह्या अपि दृश्याः



शत्रवोऽर्थकामानुबद्धिविद्वेषपरा नरादयो भवन्ति। अन्यत्र च तस्मिन् चित्तस्य पक्षे, बाह्यैः प्रत्यक्षार्हैर्मित्रैः स्नेहिभिः, सुहृद्भिः शुभचिन्तकैर्भ्राजत् आन्तरमपि प्रकाशप्रतिनिधिभिः प्रकाशमानं, सुरौकः स्वर्गस्तत्प्रभृति तदारभ्य हरिपदान्तस्य मार्गस्य, जैत्रम् अतिक्रामणक्षमं, विशदा दयाक्षमाशीलसौहार्दादयो बाहुल्येनोपलभ्यमाना गुणा यस्य तत्तथोक्तं, शान्तं कामादितरङ्गरहितम् पुण्यं बहुलशुभकर्मफलहेतुर्भवति। अल्पपुण्यानामपि चेतसि अल्पाः सुसंस्कारा भवन्त्येव, तेऽपि यत्नैर्वर्द्धयितुं शक्या इति ध्येयं श्रेयोऽर्थिभिः। आवृत्तयोः पुण्यपापपदयोराद्य—माश्रयपरमपरञ्चाश्रयिपरमिति भेदो ध्येयः।

**भावार्थ — सभी संसारी चेतनों के हृदय में पुण्य और पाप ये दो पक्ष होते हैं। उन दोनों के बीच में बुद्धि के साथ चेतन रहा करता है। पाप पक्ष में राग द्वेष मोह मात्सर्य आदि भीतरी दोष होते हैं और बाहरी शत्रु भी दिखाई पड़ते हैं। ऐसे ही पुण्य पक्ष में वह पुण्य होता है जिसके होने से बहुत से प्रेमी और शुभचिन्तक होते हैं जो स्वर्ग से लेकर वैकुण्ठ तक का मार्ग तय करा सकता है जो क्षमा दया धैर्य शौर्य, वीर्य पराक्रम आदि उत्तम गुण लिये रहता है और जो काम क्रोध आदि बुरे भावों की तरंगों को उठने नहीं देता जिससे जीवन शान्त बना रहता है।**

**मध्यात्प्राक्क्वापि पश्चात्सरति कृतवशा धीर्जगत्या जनानां,**
**तस्मात्केचित्कुकृत्येष्वभिरुचिमनिशं धारयन्तश्चरन्ति।**
**संसारं वर्धयन्ति स्वसहचरनृणाञ्चैव दूरातिदूराद्,**
**अन्ये श्रीशानुयाताः सुखमयचरिता भान्ति शान्त्यै समेषाम्।।२३७।।**

जगत्याः सर्वेषां जनानां कृतवशा पूर्वजन्मकृतप्रारब्धाख्यकर्मानुरूपविषया, धीः बुद्धिः, मध्यात्पूर्वपद्योक्तात्, प्राक् पुण्यपक्षेऽवस्थिताऽपि क्वापि पापप्राबल्ये, पश्चात् पापपक्षे, सरति प्रवर्तते, सत्त्वगुणप्रधाना हि सर्वेषाम्प्राणिनां धीः प्रथमम् पुण्यमेव वृणीते, पापप्राबल्यात्तु तमोऽभिभूता पुण्यमत्यजन्ती सती पापानुसारिणी दृश्यते, तस्माद् हेतोः, केचित् परिबृद्धरजस्तमसः, कुकृत्येषु वर्जनीयेषु हिंसामयेषु, अभिरुचिम् अनिशं धारयन्तश्चरन्ति जीवन्ति, एवं ते स्वकीयं संसारं वर्धयन्ति, न स्वमेव अपि तु स्वसहचराणां नृणाञ्चैव दूरादप्यतिदूरात् स्वपापकृत्यश्रवणमात्रेणापि कुमतीनां संसारं वर्धयन्ति, एवं दृश्यते, अन्ये श्रीशानुयाता भगवदादेशभूत—धर्ममार्गाश्रयिणः, अतएव सुखमयचरिताः पत्रपुष्पफलमूलादिभिरेव स्वधर्मं चरन्तो

जीवनञ्च यापयन्तः, समेषां शान्त्यै दर्शनश्रवणदिभिरपि सर्वजनशान्तिहेतवो भान्ति शोभावन्तो दृश्यन्ते।

**भावार्थ – मनुष्य की बुद्धि प्राचीन कर्मों के अनुसार चलती है। यद्यपि बुद्धि सत्त्वगुण का कार्य होने से सदा पुण्यपथ का ही अनुसरण करती है फिर भी पूर्वपापों की अधिकता से वह पुण्य पथ छोड़ती हुई सी पापमार्ग पकड़कर आजीवन भी चलती रहती है, इसी से ऐसे लोग दिखाई पड़ते हैं, वे इतने बुरे होते हैं कि जिसने उन्हें देखा तक नहीं वह भी उनके अपराधकर्मों को पसन्द करते हुए स्वयम् अपराधों की दीक्षा सी लेकर जीवन बिगाड़ लेता है, अपना क्लेशमय संसार उनके समान ही बढ़ाता जाता है। किन्तु जो लोग पापों की कमी से पापपथ नहीं पकड़ पाते वे भगवान् की आज्ञा के अनुसार शास्त्रीय पद्धति से ही चलते और पत्र पुष्प फल मूल मात्र अहिंसामय उपकरणों से स्वधर्म का पालन और जीवन निर्वाह करते हुए समाज के लिये आदर्श बने रहते हैं जिससे दूर के लोग भी उनके जीवन से स्वयं लाभ उठाते रहते हैं।**

**ईशो युङ्क्ते प्रकृत्या सहजकरुणया सत्पुमर्थाय जन्तूं–,**
**स्तेषां केचित्सुसङ्गैर्जहति कृतधियो मानमोहादिदोषान्।**
**युज्यन्तेऽग्रे च सद्भिस्तदनुसरणतः श्रीशमार्गे ब्रजन्तो,**
**भक्त्या शुद्धाः प्रपत्त्या अनितरशरणाः श्रीशमेवाप्नुवन्ति।।२३८।।**

ईशः सहजकरुणया जन्तून् सत्पुमर्थाय मोक्षपर्यन्तोत्तमपुरूषार्थलाभाय, युङ्क्ते योजयति, तेषां जन्तूनाम्मध्ये, केचित् पुण्यं वहन्तः, सुसंगैः सत्पुरुषसेवाभिः, कृतधियो लब्धसत्कर्माणः, मानमोहादीन् कुसंस्कारैर्मनःस्थितान् सत्कर्मविरुद्धान् दोषान् जहति त्यजन्ति। अग्रे त्यक्तदोषाश्च सद्भिः सज्जनैर्युज्यन्ते तदनुसरणतः तेषां गतिभाषितचेष्टाः स्वहितधियाऽनुकुर्वाणाः श्रीशमार्गे ब्रजन्तः, क्रमेण भगवत्प्राप्त्युपायाननुतिष्ठन्त, स्ततो लब्धया भक्त्या शुद्धा विमत्सराः, प्रपत्त्या भक्तेः परिणामभूतया, अनितरशरणा मोक्षातिरिक्तोपेयत्यागेन भगवदतिरिक्तान् मोक्षोपायानपि त्यजन्त आकिञ्चन्यैकशरणतया रमया लब्धभगवत्परमानुग्रहाः श्रीशं श्रियासहितं नित्यविश्रम्भातिशयभूमिम् भगवन्तमेव आप्नुवन्ति लभन्ते। उच्छिन्नसकलसंसारबन्धाः परमाम्मुक्तिम्प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

**भावार्थ – प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में भगवान् जीवों को अपनी सहज दया से प्रकृति से जोड़ दिया करते हैं कि वे मोक्षपर्यन्त उत्तम पुरूषार्थ के**



**उपाय कर सकें। उनमें कुछ पुण्यशील जीव सत्पुरुषों की संगति से कल्याणकारी कर्तव्य समझ कर और चिरकाल अनुष्ठान करके चित्तके प्राचीन मान मोह आदि दोषों से छूट जाते हैं, तब आगे वे उन महापुरुषों से मिल पाते हैं जो अपना स्वरूप समझ कर उसके अनुरूप आचरण अपनाये होते हैं। उनका अनुसरण करते हुए वे भगवान् को प्राप्त कराने वाले मार्ग पर चलने लगते हैं, उन्हें भगवान् की वास्तव भक्ति प्राप्त होती है जिससे उनके सारे चित्तदोष दूर हो जाते हैं तब उनकी भक्ति प्रपत्ति के रूप में बदल जाती है, वह प्रपत्ति भी भगवत्कृपा से वह अनन्य भाव उत्पन्न कर देती है जिससे मोक्ष के सिवा दूसरा कोई पुरुषार्थ, उद्देश्य या प्राप्य नहीं रह जाता, यानी वे यह मान चुके होते हैं कि भगवान् स्वयं ही चेतनों का उद्धार अपनी सहज कृपा से करते हैं। मेरा भी उद्धार वे ही अपनी सहज कृपा से करेगें। उस अवस्था में उनकी भक्ति शरणागति की अवस्था में रहती है किन्तु उस शरणागति को उपाय नहीं मानते। उसे उपाय मानने से भगवान् की उपायता बाधित होती है, फिर भी शरणागति का त्याग नहीं होता, क्यों कि वह मुक्त अवस्था मे भी रहती है, वह जीव का सहज धर्म या स्वभाव है।**

**व्योम्न्येकत्रैव भानुर्भवति स सकलं हन्ति घोरान्धकारम्,**
**आत्मैकत्रैव सूक्ष्मोऽखिलवपुषि बहिश्चाप्यविश्रान्तभानः।**
**एवम्भानुर्जगत्या गुरुरपि चरितैर्भाभिरन्तश्च सर्वम्,**
**मोहादिध्वान्तजातं हरति हरिदयाविन्दुना पुण्यलेशात्।।२३६।।**

रविदृष्टान्तेन आत्मनोऽतिसूक्ष्मस्यापि सर्वदेहतद्वहिर्व्यापित्वं दर्शयन् सदाचार्यस्यापि एकदेशस्थस्यापि भगवद्रामानुजस्येवातीतानागतसर्वजन्तूनां कृत्स्नसंसारतापहारित्वं निर्दिशति–व्योम्न्येकत्रेति। व्योम्नि गगने, एकत्रैव प्रदेशे, भानुर्भवति स सकलमपि, घोरम् भयङ्करम्, अन्धकारं हरति वारयति (एवं) सूक्ष्म आत्मा एकत्रैव, सन् अखिलवपुषि समस्तशरीरे, बहिरपिइन्द्रियद्वारा अविश्रान्तभानः सततावबोधो भवति। एवमेव जगत्या भूमण्डलीयो, भानुः सूर्य इव, गुरुः सदाचार्योऽपि चरितैर्ज्ञानानुरूपैरनुष्ठानैर्निदर्शनीभूतै, र्बाह्यैरपि अन्तश्च जनमनोगतमपि, मोहमानादिध्वान्तजातम् अन्धकारसमूहम्, पुण्यलेशात्, अल्पेनैव पूर्वसुकृतेन, हरिदयाविन्दुना अल्पेनैव भगवदनुग्रहेण, हरति वारयति।

भानुरात्मा गुरुश्चैव दूरगोऽल्पोऽपि पापहृत्।।''
अमूर्तो भगवांस्तिस्रो मूर्तीर्वहति शान्तये।।''

भावार्थ – जैसे सूर्य आकाश के किसी एक प्रदेश में रहते हुए सारे संसार का अन्धकार अपनी किरणों से दूर करते हैं, आत्मा अतिसूक्ष्म होने से शरीर के किसी एक भाग में रहता हुआ भी पूरे शरीर की खबर रखता हुआ अपने नियन्त्रण में चलाता रहता है साथ ही इन्द्रियों के सहारे अपना ज्ञान बाहरी दुनियाँ में भी फैलाये रखता है, ऐसे ही पृथिवी के एक सूर्य होते हैं उत्तम आचार्य जो सारे वेद और सम्बन्धित शास्त्रों में बिना विरोध के सामञ्जस्य देखते हुए दूसरों को भी, अपने वचनों और आचरणों के द्वारा अविरोध प्रदर्शन पूर्वक कल्याण मार्ग दिखलाते और चलाते हैं जिससे समाज के हृदय के सारे मान मोह आदि दोष दूर होते है और कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता हैं।

**भक्तिं कल्याणयुक्तिं क्षपयति कृतिनामप्यनात्मप्रसङ्गः,**
**सोऽयम्भोगाय जागर्त्यपरिमितकृतैरागतानाम्फलानाम्।**
**भुञ्जंश्च स्वामसक्तिं स्मरति नृप इवारण्यकाधीनवृत्ति–**
**र्योगी हृत्स्थोहरंस्तं हरिरुपदिशति क्षेत्रिणां शुद्धिमाद्याम्।।२४०।।**

अध्यायमुख्यफलम्भक्तिप्रतिबन्धवारणमुपपादयति–भक्तिं कल्याणेति। कृतिनां श्रुतितात्पर्यावधारणक्षमाणां विदुषामपि, अनात्मप्रसङ्गो जडाथेषु स्नेहकामलोभ–स्पृहामोहक्रोधादयो मनोविकाराः, कल्याणस्य परमपुरुषार्थभूतस्य मोक्षस्य, युक्तिम् उपायभूताम् भगवद्भक्तिं, क्षपयति निरुन्धे प्रतिबध्नाति च, सोऽयम्प्रसङ्गोऽपरिमितैः सीमातीतैर्गणनाऽनर्हैः, कृतैः पूर्वकर्मभिरागतानामुपन– तानाम्फलानां शुभाशुभानुभवानाम्, भोगाय साक्षात्काराय, जागर्ति अबाधमवतिष्ठते, उपायैरपि न नश्यतीति भावः। भक्तिम्प्रतिबध्नन्नेवानात्मप्रसङ्गो भोगानुपलम्भयति। पूर्वकर्माणि अनात्मप्रसङ्गायाज्ञानमपि अनुवर्तयन्ति, ततो भक्तिर्दुर्लभैव। तथाऽप्यज्ञानावस्थायामेव भुञ्जन् भोगाननुभवंश्च, योगी भक्तिहेतु–श्रवणादिसकलोपायावलम्बी मुमुक्षुः, आरण्यकजनानां संयमिनाम्मुनीनां किरातानां वा, अधीना वृत्तिर्भोजनशयन– सञ्चारव्यापारा यस्य स तथोक्तो, नृपो राजधानीवैभवमविस्मरन् राजेव, आरण्यकाधीनवृत्तिरुपनिषत्सहस्र–प्रतिपन्नात्मस्वरूपानुरूपमनोवृत्तिः सन्, स्वाम् आत्मस्वरूपमात्रनिबन्धनीम्, असक्तिं क्षुद्रविषयश्लेषवैमुख्यं, स्मरति प्रारब्धोपनतान् क्षुद्रार्थान् भुञ्जानोऽपि स्वरूपविरूद्धांस्तांश्चेतसा जुगुप्सते। तथोक्तं योगिनं हरन् उज्जिहीर्षुः, हृत्स्थः सर्वचेतनान्तर्यामी, हरिः आश्रितोद्धरणप्रवणो भगवान्, क्षेत्रिणां संसारावस्थायां



क्षेत्रज्ञभूतानां चेतनानाम्, आद्याम् प्रकृतिसंसर्ग– रहितावस्थामयीं, शुद्धिं संगकामादिदोषाभावम्, उपदिशति सख्यसारथ्यादिप्रयुक्तस्नेहसामीप्यातिशयेन सफलेन सौहार्देनावबोधयति। अज्ञानावस्थायामपि ज्ञानाय, भोगावस्थायामपि असंगत्वाय योगिनश्चित्तम् उद्धारहेतुभक्त्यवस्थालाभायोत्तम्भयतीति भावः।

भावार्थ – तेरहवें अध्याय में जो क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग वर्णित है उसका फल आत्मा की असङ्गता और प्रकृतिसंसर्गनिरपेक्षता का ध्यान जारी रखते हुए अज्ञानमय कर्मफलभोग की अवस्था में भी, भक्ति की दुर्लभता की स्थिति में भी भक्ति का फल भगवत्कृपा प्राप्त कराना है। इसी आशय से कहते हैं कि शास्त्रतात्पर्यबोध में निपुण विद्वानों को भी अनात्म पदार्थों में आसक्ति और उससे बनने वाले दूसरे अनेक मनोविकार रहते हैं, वे सब भगवान् के प्रति भक्ति नहीं होने देते और ये सारे विकार तब तक बने रहते हैं जब तक प्रारब्ध कर्म शुभाशुभ फल देते रहते हैं। उन फलों का भोग अज्ञान और आसक्ति के बिना नहीं होता इससे प्रारब्ध कर्म अज्ञान भी जारी रखते हैं। ऐसी स्थिति में भक्ति बहुत दूर की बात हो जाती है। इन तथ्यों को जानता हुआ, कर्मफलभोगों में फंसा हुआ भी योगी शास्त्रवचनों से विदित अपनी असंगता का ध्यान वैसे ही रखता है जैसे कोई राजा परिस्थितिवश वनवासियों के बीच रहने लगा हो और उनके समान ही रहन सहन अपनाये हो। अपना राजवैभव छूटा न होने से वनवासियों की प्रवृत्तियाँ अपनाये होने पर भी उन प्रवृत्तियों में वह आसक्ति नहीं रखता, अनासक्ति का भाव ही उसमें ज्यादा रहता है। योगी की भी मानसिक स्थिति ऐसी ही होती है, संसार का कोई भी व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगता, सबसे दूर होने की ही तरकीब वह सोचता रहता है। इस तरह के योगी की मनःस्थितियाँ अन्तर्यामी परमात्मा को प्रत्यक्ष रहती हैं। उसकी इस उदासीनतामात्र से वे उसका निर्लेपता असंगता आदि स्वाभाविक गुणों का उद्बोध करा देते हैं जिससे प्रकृति के विकारों में आसक्ति की वासना भी नहीं रह जाती और भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न होकर बढ़ने लगती है जिससे आगे चलकर उसका उद्धार हो जाता है। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को उसी आत्मीयता एवं सौहार्द से क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग का उपदेश दिया है।

**क्षेत्रज्ञः क्षेत्रमाप्तन्त्यजति वहति चान्यं सदेद्धाभिलाष–**
**स्तेष्वेकस्मिन्सहायैः सुकृतहरिगुरूक्त्यादिभिर्मेघवार्भिः।**
**स्विन्नां संजीवनीं चेद्वपति भगवति प्रीतिमन्तः प्रलीनाम्,**
**अग्रे सैवैधमानाऽपहरति विसरच्छायया कृत्स्नतापान्।।२४१।।**

उक्तमेवार्थम्प्रकारान्तरेणाह–क्षेत्रज्ञइति। क्षेत्रज्ञः कर्मबद्धो जीवो विषयेषु, सदा इद्धो वर्धमानोऽभिलाषो यस्य स तथोक्तः सन् आप्तं क्षेत्रं शरीरं त्यजति, अन्यं नवं वहति धारयते, तत्र कर्मकृतो विषयाभिलाष एव हेतुः, तेषु नवनवेषु गृह्यमाणेषु क्षेत्रेषु, एकस्मिन् सुकृतविशेषप्रयुक्ते, सुकृतेन सत्प्रज्ञाहेतुसत्कर्मविशेषेण हरेर्भगवतः श्रुत्यादिरूपया गुरूणां तदर्थसारावबोधप्रथितानां सदाचार्याणाम् तद्व्याख्यानरूपया उक्त्या तेषामनुग्रहविशेषेण च मेघवार्भिस्तुल्यैः सहायैः सहकारिभिः, स्विन्नाम् उच्छूनाम्, अन्तःप्रलीनां संजीवनीम् संसारविषजनित–मूर्च्छानिवारिणीम् भगवति परमात्मनि प्रीतिं, वपति बीजाकरोति, चेत्, एधमाना क्रमेण वर्धमाना सा एव, विसरत्या प्रवर्धमानशाखापत्रानुपातिप्रसारवत्या च्छायया निर्दुःखप्रायानुभवविभूत्या, कृत्स्नान् देहदेवभूतजान्, तापान् क्लेशान्, अपहरति दुःखहेतुदुर्वासनाऽपनयनेन समूलं निवारयति, तेन मुक्तिःसन्निधीयते।

**भावार्थ – पूर्वोक्त अर्थ को ही दूसरे प्रकार से कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ आत्मा नया नया शरीर रूपी क्षेत्र पाता और छोड़ता रहता है। सारे क्षेत्र प्राचीन पुण्य पाप के सहारे मिलते और कर्मभोग पूरा होने पर छूट जाते हैं। उनमें कोई एक ऐसा भी क्षेत्र मिलता है जो किसी विशेष पुण्य से जुड़ा होता है जिसमें भगवान् के प्रति बीजरूप से छिपा हुआ प्रेम पूर्व पुण्य शास्त्रवचन और गुरुवचन एवम् उनके आचरण आदि सहायक मेघ से मिले हुए जल की तरह उस प्रेमबीज को अंकुर देते हैं, वह अंकुर आगे धीरे–धीरे बढ़ता हुआ भक्ति रूपी वृक्ष बन जाता है, उसकी छाया बहुत दूर तक फैलती है जिससे अज्ञानजनित सारे ताप शान्त हो जाते हैं। भक्ति से ज्ञान विकसित होता है, उससे अज्ञान का निवारण होता है, कर्मजाल कटते हैं और क्रम से मुक्ति मिल जाती है।**

**१३–क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेदज्ञः स्वम्पश्यन्निरुपाधिकम्।**
**व्योमवद्भानुवद्व्याप्तं सर्वतो मुच्यतेऽशुभात्।।२४२।।**

अध्यायमुपसंहरति–क्षेत्रक्षेत्रज्ञेति। त्रयोदशे क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेदो वर्णितस्तज्जानाति स तज्ज्ञः सन्, स्वम् आत्मानं क्षेत्राद्युपाधिरहितमकर्मवश्यमकर्तारमभोक्तारञ्च व्योमवन्निर्लेपम् भानुवज्ज्ञानज्योतिषा कृत्स्नशरीरब्रह्माण्डव्यापिनञ्च, पश्यन् ज्ञानध्यानदृशा गृह्णन् मुमुक्षुः सर्वतोऽशुभान्मुच्यते निष्कल्मषो मोक्षभाग्भवतीति भावः।

*इति त्रयोदशोऽध्यायः*



**भावार्थ – दूसरे अध्याय में देह और देही का जो भेद शास्त्रारम्भ के रूप में प्रस्तुत हुआ था उसी का विस्तार इस तेरहवें अध्याय में है। देही चेतन देह के सारे विकारों को देह में ही मानता हुआ अपने को आकाश के समान निर्लेप और सूर्य के समान ज्ञानज्योति द्वारा सर्वशरीरव्यापी, सारी उपाधियों से परे मानता हुआ स्वरूप का ध्यान करता हुआ संसार के सारे बन्धनों और दोषों से मुक्त हो जाता है।**

*तेरहवाँ अध्याय समाप्त*

# अथ चतुर्दशोऽध्यायः

**सत्त्वादीनां गुणानां क्षयचयजमिदम्भोगमोक्षाय विश्वं,**
**नृणां सत्त्वोत्तराणां तनुतदनुगतार्थेष्वलं निःस्पृहाणाम्।**
**मुक्ताविच्छा स्वतः स्याद्गुणमयसुचिराभ्यस्तपाशात्तदानीम्,**
**भेदं स्वस्मिन्गुणेभ्यः सततपरिणमद्भ्यो ध्रुवे वेत्त्यजस्रम्।।२४३।।**

पूर्वनिरूपितेषु चेतनेषु सूचितं गुणसम्बन्धमवतारयति—सत्त्वादीति। इदं विश्वं जडा प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां गुणानां, क्षयोऽल्पीभावश्चयो वृद्धिस्तज्जन्तत्फलैक— निरूप्यम् भोगमोक्षाय भोगेभ्यो निवृत्तये, वास्तवभोगभूताय मोक्षाय च सृज्यते सत्त्वोत्तराणाम्प्रवृद्धसत्त्वगुणानां फलतया तनौ शरीरे तदनुगतेषु तदेकोपकारफलेषु, अशनवसनवासबन्धुप्रभृतिषु, अलम् पूर्णतया निःस्पृहाणाम् इच्छारहितानां नृणां पुरुषाणां चेतनानां, गुणमयात्सत्त्वरजस्तमःपरिणामभूतात् पूर्वकर्मफलभूत— सकलक्लेशमूलात्, सुचिरम् अभ्यस्तात् अनुभूतात् पाशाद् दृढबन्धहेतोरन्तःकरणात्, मुक्तौ पृथग्भावे, इच्छाऽभिलाषः, स्वतः परोदेशं विनैव, स्याद् भवति। तदानीम्, मुक्तीच्छासत्त्वे, मुमुक्षुः सततपरिणमद्भ्यः अस्थिरेभ्यः गुणेभ्यः सत्त्वादिभ्यः सकाशात् ध्रुवे सदैकाकारे निष्परिणामे, स्वस्मिन् आत्मनि स्थितम् भेदं विवेकम्, अजस्रम् अविच्छेदं वेत्ति अनुभवति।

**भावार्थ — तेरहवें अध्याय में आत्मा का निरूपण हुआ है, वहाँ गुणों से इसका सम्बन्ध थोड़ा सा सूचित हुआ है, उसी का चौदहवें अध्याय में विस्तार से निरूपण है, वहाँ के उल्लेखनीय अर्थों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। यह जड़ चेतनात्मक सारा संसार तीन गुणों की सदा हो रही कमीवेशी का एक बदलता हुआ रूप है। यद्यपि चेतनतत्त्व स्वभाव से एकाकार है, उसमें गुणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता फिर भी वह संसार अवस्था में गुणमय अन्तःकरण से अलग नहीं हो पाता, इससे वह भी जड़ अर्थों के तुल्य ही परिणामी बना सा है। किसी पुण्य के प्रभाव से किसी चेतन के चित्त में सत्त्वगुण बढ़ जाता है तब उसे शरीर और शरीर सम्बन्धी जनों और अर्थों से वैराग्य होने लगता है, उस अवस्था में उसे चित्तरूपी माया के गुणमय फन्दे का पुराना कष्टमय**



**अभ्यास ध्यान में आता है और उससे अपने को अलग करने की इच्छा विना किसी के उपदेश के स्वयं होने लगती है। अलगाव के कारण वह क्या समझता है ? यह कि यह चित्तगत गुणमय प्रवाह तो चलता ही रहता है जबकि नित्य ज्ञानानन्दमय मैं सदा एकरूप हूँ, इस चित्तरूपी बन्धन से मेरा केवल स्वरूपनाश हो रहा है। इससे इस बन्धन से छूटने के लिये इस चित्त की और भी धुलाई होनी चाहिये। वह धुलाई भगवद्भक्ति ही है। भक्ति से अहंकार गलित होता है तब चित्त स्वयं नहीं रह जाता। तब स्वरूपाविर्भाव शेष रह जाता है जिससे वास्तव मोक्ष प्राप्त होता है। वह प्रक्रिया भगवान् के संकल्प से ही होती है और बन्धन से छूटे हुए चेतन के लिये वे स्वयं कर देते हैं। पूर्व की सारी प्रगतियाँ वे ही दिलाये होते हैं अतः आगे की भी वे स्वयं करते हैं।**

**कर्ताऽऽत्मानं यथावद् व्यवकलयति चेच्छुद्धवाञ्छाप्रयत्नः,**
**स्वारम्भान् सत्फलान्ताँश्चरति सुखमयान् लोकतो दृष्टमेतत्।**
**आसृष्टेः कर्म कुर्वन् यदि चरति चिरम्मोक्षमार्गे मनस्वी,**
**सत्कृत्यज्ञानशक्त्या स्वपरिचयजया मुच्यतेऽद्धा तथैव।।२४४।।**

लौकिककर्तृदृष्टान्तेन मोक्षोपायसाफल्यमाह—कर्ताऽऽत्मानमिति। कर्ता अर्थे, कामे नीतौ वार्तायां वा यतन् पुरुषः, आत्मानं स्वं, यथावत् स्वबलवीर्य— कालफलानुरूपं, चेद् यदि, व्यवकलयति सर्वमपि विशेषजातं विशकलय्य अवगच्छति, तदा शुद्धा निर्भ्रमा वाञ्छा इच्छा प्रयत्नो व्यापाराश्च यस्य स तथोक्तः सन् सुखमयान् अक्लेशान्, सत्फलान्तान्, स्वारम्भान् निर्विध्नान् व्यापारांश्चरति करोतीति लोकत एतद् दृष्टं सर्वैर्ज्ञायते। तथा एव आसृष्टेः सर्वजन्मसु, कर्म कुर्वन्, चिराभ्यस्तकर्मा, तेन सुखसाध्यक्रियायोगः कोऽपि मनस्वी कर्मफलयोर्दृढसङ्कल्पः सन्, यदि मोक्षमार्गे, चिरं चित्तशुद्धिपर्यन्तं, चरति तदा स्वपरिचयजया आत्मज्ञानफलभूतया, सत्कृत्यं च ज्ञानं च स्वस्वरूपविषयं तद् एव शक्तिः सामर्थ्यं, तया तथैव लौकिककर्तृवत्, अद्धा अनायासम्, मुच्यते मोक्षरूपम्फलं लभत इत्यर्थः।

**भावार्थ — लौकिक कर्ता किसी भी अर्थ काम नीति या लेन देन के व्यापार के लिये पहले अपने को ठीक से समझ लेता है, वह अपनी शक्ति पूंजी, मित्र, सहायक समय अवस्था फल एवम् उसके विनियोग आदि बातों को यदि ठीक से समझ चुका होता है तो उसका प्रयत्न बिना विघ्न और विना**

क्लेश के तब तक चलता रहता है जब तक फल न मिल जाये। इसके विपरीत उसके कर्मफल उलटे होते रहते हैं। ऐसे ही संसारी चेतन अनादि काल से अपने को बिना समझे कर्म करता आ रहा है। जिससे कर्म का उत्तम फल मोक्ष उसे नहीं मिल रहा, अब यदि अपने को समझ कर कुछ देर तक यानी चित्तशुद्धि तक वही चेतन कर्म करता रहे तो ज्ञानकी शक्ति से उसे मोक्षरूपी महान् फल लौकिक कर्ता की ही तरह मिल जायेगा। अपने को समझकर किये कर्म चित्त को शुद्ध करते हैं, इसके बाद वही आत्मज्ञान मोक्ष का कारण बनता है।

**कर्ताऽज्ञानात्स्वतन्त्रः प्रकृतियुतिवशो लब्धबोधः प्रयोज्यः,**
**नित्यं नैमित्तिकं चाऽऽचरति शुभमतिः शास्त्रवश्यत्वयोगात्।**
**कर्म प्राणप्रयोज्यम्प्रकृतिगतमतस्तत्फलाप्तिर्न कर्तु–**
**स्तत्त्वज्ञो निष्फलेच्छश्चरति यदि धिया तत्परस्यैव तुष्ट्यै।।२४५।।**

स्वरूपाज्ञानात्कर्मबन्धो ज्ञातस्वरूपस्य तु बन्धहेतुः कर्मैव मोक्षहेतुरित्याह– कर्तेति। प्रकृतियुतिवशः प्रकृतिसंसर्गाधीनसकलशुभाशुभचेष्टोऽपि अज्ञानात् स्वरूपोपायफलज्ञानाभावादेव, स्वतन्त्रो भवति, आत्मानं स्वतन्त्रम् मन्यते। लब्धस्वरूपादिबोधस्तु प्रयोज्यो भवति, आत्मानं यथार्थतया भगवत्सङ्कल्पाधीन– सकलप्रवृत्तिनिवृत्तिकम् मन्यते। ततो विदितस्वप्रयोज्यताकः, फलतया भगवत्सङ्कल्पप्रतिनिधित्वयोगात्, आत्मनि शास्त्रवश्यत्वम्मन्वानः, नित्यं कर्म नैमित्तिकं च शुभमतिर्निष्कामः सन् आचरति। कर्म प्राणप्रयोज्यम् प्राणाधीनानि सर्वाणि कर्माणि शरीरवाङ्मनःप्रयोज्यानि, मनःशरीरादीनाम्प्रकृतिरूपतया प्रकृतिगतानि नासङ्गस्य कर्तुः फलोदयाय स्युः। कर्मफलयोः सामानाधिकरण्यनियमात्। तस्मात् तत्त्वज्ञः स्वस्वरूपनिष्ठः, निष्फलेच्छो ज्ञानद्वारेण निर्गतनिखिलफलाभिलाषः कर्ता यदि धिया अविस्मृतस्वस्वरूपः सन् यत् किमपि चरति चेष्टते तत् सकलम् परस्यैवेश्वरस्य तुष्टये भवति, नात्मनः। सर्वाणि चराचरकर्माणि भगवत्सङ्कल्पैकप्रयोज्यतया भगवत्सन्तोषहेतवो भवन्ति, तेषु अज्ञानी कर्ता यदि युज्यते तदा सोऽपि तुष्यति, फलञ्च शुभाशुभं लभते। अज्ञानाभावे केवलस्य परमात्मन एव सन्तोषो भवति। ज्ञानिनः फलनिरपेक्षत्वादिति भावः।

भावार्थ – अपने स्वरूप के अज्ञान से कर्मों के फल मिलते हैं, यही संसार कहा जाता है। यद्यपि कोई भी व्यक्ति अपने संकल्प से ही कोई शुभ अशुभ कर्म करता है और संकल्प बनते हैं मानसिक बनावट से, जैसे कुछ



पक्षी केवल दाने चुगते हैं, कुछ मांस भी खा लेते हैं और कुछ तो केवल मांस खाते हैं, हैं तो सभी पक्षी किन्तु मानसिक बनावट के भेद से उन में कोई हिंसा बिल्कुल नहीं चाहता, कोई आंशिक हिंसा भी चाहता है और कोई केवल हिंसा चाहता है। अपने मन की बनावट के अनुसार इच्छायें होती हैं और कर्म भी होते हैं। मानसिक बनावट मनुष्यों की बदलती भी है। उस बदलाव के अनुसार इच्छा और क्रिया बदलती है, तब चेतन किसी भी क्रिया के प्रति स्वतन्त्र कैसे है? वह तो जब जैसा मन बनता है तब वैसा सोचने चाहने और करने लगता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि कोई अपराधी यह कहकर दण्ड से नहीं बच सकता कि कुसंग वश मैं अपराध करता हूँ। कुसंग नहीं होता तो अपराध नहीं होता। और यदि कोई कर्मचारी वाञ्छित से ज्यादा सेवा देता है तो वह पुरस्कार पाता है, उसे यह कहकर पुरस्कार से वञ्चित नहीं किया जाता कि यह तो सत्संग का फल है, कर्मचारी की निजी खूबी नहीं है। वास्तव में शुद्ध चेतन का अपना कुछ नहीं होता, वह तो संगति से ही गुण दोष अर्जित करता है एवम् पुरस्कार या दण्ड पाता है। यहाँ थोड़ा और आगे समझना है कि वास्तव में पुरस्कार गुण को मिलता है न कि गुणी को। कैसे? क्यों कि पुरस्कार का अर्थ होता है आगे बढ़ाना, आगे गुण बढ़ता है, न कि गुणी। इसी प्रकार दण्ड का माने होता है रोकना। रोका जाता है दोष न कि दोषी। गुण दोष अन्तःकरणरूप प्रकृति की अवस्थायें हैं, कर्मों का फल उन्हें ही मिलता है। यदि कहें कि गुणदोषों के द्वारा चेतन ही फल पाता है, गुण दोषों में चेतना नहीं हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं होता। अनुभव तो कर्ता चेतन को होता है तो उत्तर है कि देखा जाता है कि हत्यारा दण्ड से बचने के लिये हथियार फेंक देता है, गवाह बनने नहीं देता और दाढ़ी जटा चीमटा कमण्डलु, लेकर सन्तों के बीच रहता हुआ सन्त बन जाता है, वह दण्ड से भी बच जाता है। ऐसे ही प्रतिभावान् छात्र जो पुरस्कार के योग्य रहता है वह कुसंग में पड़कर शिक्षा से वञ्चित रह जाता है, पुरस्कार की बात क्या होगी। इससे यह मानना पड़ता है कि दण्ड या पुरस्कार के समय भी दण्ड या पुरस्कार की योग्यता होने से ही पूर्व कर्मों के शुभाशुभ फल मिलते हैं, अन्यथा नहीं। इससे यही आया कि जड़ गुण दोषों से ही पुरस्कार और दण्ड जुड़ते हैं। साक्षी चेतन जो कर्ता माना जाता है वह संसार अवस्था में पुरस्कार और दण्ड के फल सुखदुःखों का अनुभव जड़ अन्तःकरण से अपने को एक मानता हुआ करता है किन्तु योगसिद्धि की अवस्था में तटस्थ भाव से करता है। यह तटस्थ भाव मुक्तिमहासौध की पहली सीढ़ी

है। यह भाव आने पर साधक तत्त्वज्ञ या तत्त्वदर्शी या तत्त्वनिष्ठ या स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। उसे फलों की इच्छा नहीं होती फिर भी प्रकृति का संग होने से वह अपनी असंगता जानता हुआ ही कर्म करता है। उस कर्म से केवल भगवान् को सन्तुष्टि होती है। कर्ता असंग निर्लेप रह जाता है।

**अज्ञानादेव वाञ्छाः प्रकृतिपरिणतौ लब्धबोधस्य न स्युः,**
**को निर्वाञ्छस्य यत्नः फलमपि च कथं कश्च संसारबन्धः।**
**बोधे कर्तुः प्रदीप्ते तरणिकिरणवद् वासना का फलानां,**
**सा चेदस्ति प्रकृत्या हरिपदशरणस्तत्त्वसिद्ध्यै प्रयस्येत्।।२४६।।**

अज्ञानमेव सर्वानर्थमूलमतः स्वस्वरूपज्ञानाय प्रयतनीयमित्याह— अज्ञानादिति। सच्चिदानन्दमयस्याविक्रियस्य नित्यैकाकारस्य भूतपरिणामनिरपेक्षस्य स्वयम्प्रकाशस्यात्मनो विषये अज्ञानाद् एव प्रकृतेर्महदादेः परिणतौ देहतदनुबन्धिषु वाञ्छा अपेक्षा भवन्ति, लब्धबोधस्य स्थितप्रज्ञस्य न स्युः। अथ निर्वाञ्छस्येच्छारहितस्य को यत्न उपायावलम्बः, न कोऽपि, तदा उपायफलमपि च कथं स्यान्नैव स्यात्तदा संसारबन्धश्च कः न कोऽपि स्यात्। क्षीणाऽपि फलेच्छा प्रकृतिसंसर्गतो वासनारूपा भवत्येव, तेन यत्नः फलञ्च स्यादिति चेत्, कर्तुरात्मनः स्वरूपबोधे तरणिकिरणवत् चण्डांशुचण्डांशुवत् प्रकर्षेण दीप्यमाने सति, फलानाम्प्रकृतिपरिणामानां बिषये का वासना स्यात् नहि बोधे जाग्रति वासना प्रगल्भते, तेन मुक्तिः सिद्धा एव। यदि च कोऽपि स्वस्मिन् बोधेन सहैव प्रकृतिसंसर्गबलाद् वासनामनुभवति तदा स हरिपदशरणो विधिवद् भगवच्छरणागतिं कृत्वा तत्त्वसिद्धये स्वस्वरूपबोधदाढर्याय प्रयस्येद् यतेत।

**भावार्थ — अपने आपको शुद्ध रूप से न जान पाना सांसारिक सारे अनर्थों का मूल है इससे स्वस्वरूपज्ञान के लिये प्रयत्न करने चाहिये यह सूचित करते हुए कहते हैं कि संसारी मनुष्य जो भी कुछ चाहता है वह प्रकृति का परिणाम होता है जो कि आत्मा के उपयोग की वस्तु नहीं होता, वह तो शरीर और शरीर—सम्बन्धी तक ही रह जाता है जो कि नित्य आत्मा के नाशवान् उपकरणमात्र हैं। आत्मा अपने आप को भूलकर शरीर मन इन्द्रिय प्राणों से अपना अभेद मानकर उनके उपकरण जुटाता रहता है। अपने को समझ लेने के बाद इच्छायें शान्त हो जाती हैं वैसे ही जैसे सपने के हाथी के लिये कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने से कोई उद्यम नहीं होता, उद्यम के अभाव में फल की बात नहीं होती और फल न होगा तो उसका आत्मा से**



**सम्बन्ध ही क्या होगा और फल सम्बन्ध न होने पर संसार स्वतः छूट जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि ज्ञान होने पर भी पहले के अज्ञान की वासना रहती है, फल की कुछ इच्छायें होती है और कर्म भी होते हैं एवं संसार ठीक से छूट नहीं पाता। सो ठीक है, ऐसी अवस्था में ज्ञानरूपी प्रकाश को तेज करना चाहिये जिससे अज्ञान का अन्धकार न आ सके। निष्ठापूर्वक भगवान् की शरणागति करने से अज्ञान दूर हो जाता है और यदि रहे भी तो शरणागति को ही दृढ़ करने से वह जाता है। इसके लिये मार्ग के महान् आचार्यों की संगति सेवा शुश्रूषा करते रहने से लाभ होता है।**

**अज्ञानस्वापशीला जगति तनुभृतो बिभ्यति ज्ञानयत्नात्,**
**केचिन्नोज्झन्ति तल्पं श्रमशतगलिता भाति भानौ च खस्थे।**
**तेषाम्मोक्षाभिलाषो न भवति न ततो दुष्करा मोक्षयत्नाः,**
**प्रत्नाः सद्यत्नशुभ्रास्त्रिभुवनगुरवो मोक्षभाजां जयन्ति।।२४७।।**

एवंविधम्महाफलं सरलोपायं सर्वे कथं नानुतिष्ठन्तीत्यत्राह— अज्ञानस्वापेति। जगति संसारिणस्तनुभृतो देहिनोऽज्ञानमेव स्वापो निद्रा स एव शीलम् अभ्यासो येषान्ते तथोक्ताः सन्तो ज्ञानाय यत्नाद् बिभ्यति, ज्ञानयत्नस्थाने तेषां ज्ञानकल्पनयाऽपि भयम् भवति। तत्र दृष्टान्तमाह— केचिदिति, श्रमशतैर्दिवाकृतैः शरीरक्लेशैः गलिताः शीर्णप्रायदेहास्तल्पं शयनस्थानम् भानौ भाति दीप्यमाने, खस्थे मध्याह्नसमयेऽपि केचित् न उज्झन्ति त्यजन्ति, एवमेव तेषाम् अज्ञाननिद्राबद्धादराणाम्पूर्वोक्तानां संसारिणाम् मोक्षाभिलाषो न भवति ततो मोक्षयत्नास्तेषां दुष्करा भवन्ति। यथा शीर्णपटधारणसन्तुष्टानां जनानां शोभने नूतने समर्घेऽपि वसने द्वारि विक्रयसज्जेऽपि कटिनिविष्टमुद्रानिष्कासनमपि दुष्करम्भवति तथैव। तथाऽपि किन्तेन, मोक्षभाजाम् मोक्षाभिलाषवतां सताम्, प्रत्नाः प्राचीना महर्षय आचार्याश्च सता विज्ञातसाफल्येन यत्नेन शुभ्रा यशस्विनस्त्रिभुवनगुरवो जयन्ति सर्वोत्कर्षेण प्रथन्ते।

मुमुक्षवः सत्पथभागिनः सदा ये दुष्पथस्था न तु ते मुमुक्षवः।
काकाश्चिरान्निम्बफलाभिलाषिणः पिका रसालाङ्कुरभोगभागिनः।।

**भावार्थ — यदि अपने को ठीक से जान लेना मात्र महान् पुरूषार्थ मोक्ष का उपाय है तो इस सरल उपाय को सभी क्यों नहीं अपनाते, इस प्रश्न पर कहते हैं कि संसारी चेतन अज्ञान की नींद ज्यादा पसन्द करते हैं, जैसे थके हुए बहुत से लोग सूर्य उगने के बाद और दोपहर तक भी सोते रहते हैं।**

उनके लिये विस्तर छोड़ना बड़ा ही कठिन होता है ऐसे ही जो लोग पूर्व पापों के फल भोगने के लिये अभी अज्ञान की निद्रा पसन्द कर रहे हैं वे ज्ञानके लिये नाममात्र भी श्रम करना नहीं चाहते। अनचाही वस्तु के लिये कोई अपनी कमर से दो पैसे भी निकालना नहीं चाहता। जब मोक्ष की इच्छा ही न हो तो उसके लिये प्रयत्न कैसे होगा, वे तो मोक्ष को दुर्लभ कहेंगे ही किन्तु जो वास्तव मोक्षाभिलाषी हैं वे तो प्राचीन ऋषि–मुनि सदाचार्य सन्तों का अनुसरण करते हुए अनायास सफल होते ही हैं।

**बुद्ध्वा श्रीशे विशेषान् भवरचनमुखान् मुक्तिहेतून् महान्तो,**
**नैष्कर्म्यन्तत्समत्वं सुनिभृतमनसः प्राप्य तं निर्विशन्तः।**
**निर्धूतानादिबन्धाः प्रकृतिपरिधितोऽत्यूर्ध्वलोके वसन्तो,**
**निर्वाणम्प्रापुरेतद्वदति भगवती कृष्णवक्त्रेण गीता।।२४८।।**

मोक्षभाजाम्प्रवृत्तीर्दर्शयति–बुद्ध्वेति। महान्तः सर्वातिशायिनि पुरुषार्थे नित्ये भगवत्सान्निध्य एव दत्तचेतसः श्रीशे भगवति मुक्तिहेतून् मुमुक्षोत्तम्भकान् भवरचनमुखान् सर्वान्तर्यामित्वसर्वफलनियामकत्वभक्तिवृद्धिकारित्वादीननन्तान्, विशेषान् तदेकनिष्ठान् धर्मान्, बुद्ध्वा शास्त्रसत्तर्कव्याख्यानविवरणादिभिः सन्मुखेभ्यो निर्धार्य, सुनिभृतानि स्वस्वरूपे नैर्गुण्ये तत्फले नैष्कर्म्ये च संशयरहितानि मनांसि येषान्ते तथोक्ता, नैष्कर्म्यरूपन्तत्समत्वम् परमसाम्योपक्रमभूतम्, प्राप्य लब्ध्वा, तम् परमात्मानं श्रीशं निर्विशन्तो भक्त्याऽनुभवन्तः सन्तो, निर्धूतः फलोपधान शून्योऽनादिर्बन्धः कर्मणां येषान्ते तथोक्ताः प्रकृतेर्मायायाः परिधितो मण्डलात् अत्यूर्ध्वे लोकेऽप्राकृते वसन्तः सन्तो निर्वाणम्मोक्षम्प्रापुः, एतदुक्तमर्थं वदति भगवती गीता अनादि शास्त्रम्, केन मुखेन ? कृष्णस्य पार्थसारथेर्वक्त्रेण स्नेहस्मितसरसया गिरा। अत्र विश्रम्भणीयताऽतिशयो व्यङ्ग्यः।

**भावार्थ – जिन्हें मोक्ष मिलना होता है उनकी प्रवृत्तियाँ असामान्य होती हैं। उन प्रवृत्तियों का निर्देश करते हुए कहते हैं कि वे महान् होते हैं उनकी सांसारिक कामनायें समाप्त हो चुकी होती हैं। वे केवल आत्मा की स्वरूपानुरूप स्थिति नित्य भगवत्सान्निध्य जो मुक्ति भी कही जाती है उसी के प्रति आस्थावान् और प्रयत्नशील होते हैं। वे भगवान् की उन सारी विशेषताओं को ठीक से समझ चुके होते हैं जिनसे मुक्ति के प्रति आस्था बढ़ती हैं। वे जानते हैं कि भगवान् मुमुक्षुओं को पाकर उन्हें संसारसागर के तल से ऊपर उठाकर अपनाने के लिये ही विश्वसृष्टि करते हैं। वे यह भी जानते है कि**



**नाना शास्त्रवचनों के अनुसार परमात्मा जीवों के साथ या पीछे पीछे जो चलते हैं या सबके हृदय में बसते हुए उन्हें उनके कर्मफलों की ओर अग्रसर करते रहते हैं यह उनकी जो गोपाल बाल प्रवृत्ति है वह केवल जीवों को निःश्रेयस मार्ग उपलब्ध कराने के दयापूर्ण उद्देश्य के लिये है, भगवान् के निष्पक्षपात इस असाधारण स्वभाव का ध्यान रहने से उनकी दयालुता पर और उद्धार के सुनिश्चित भरोसे से उनके कल्याणमय गुणों पर आस्था बढ़ती है। यह आस्था ही धनीभूत होकर भक्ति का रूप ले लेती है, तब अपने स्वरूप और नैष्कर्म्य का स्पष्ट अनुभव होने लगता है और भगवान् का ही अतिप्रिय अनुभव होने लगता है, तब अनजाने ही संसारबंन्धन कट जाते हैं और साधक कभी अपने को प्रकृतिमण्डल से बहुत ऊपर त्रिपादविभूति में भगवान् के समीप पाते हैं, प्रायः यही रहस्य भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से स्नेह और आत्मीयता पूर्ण भाषा में कहा गया है।**

**कर्माण्याद्यानि जीवाँस्त्रिगुणरशनया सन्निबध्नन्त्यबुद्धान्,**
**बन्धोच्छेदाय नित्यं गुणफलकलनन्तन्वते तत्त्वभाजः।**
**कार्यं सर्वं गुणात्तन्न मम, नरहरेर्भव्यसङ्कल्पयोगात्,**
**त्रैगुण्यत्यागतस्स्याद्भवविरतिरिति ध्यातुमिच्छन्ति धन्याः।।२४९।।**

मुमुक्षूणां चिन्तनपद्धतिमाह–कर्माणीति। आद्यानि अनादिधारारूपाणि, कर्माणि, प्रारब्धरूपाणि, वर्तमान शरीरे फलदानि, अबुद्धान् स्वरूपबोधरहितान्, जीवान् देहिनः, त्रिगुणरशनया सत्त्वादिगुणत्रयरूपया त्रिगुणयेव रशनया काञ्चीसंज्ञया, सम्यक् निरन्तरम् बध्नन्ति नियच्छन्ति। (तत्र) तत्त्वभाजस्तत्त्वचिन्तापरा मुमुक्षवो, बन्धोच्छेदाय बन्धस्य पूर्वोक्तस्य निवृत्तये, नित्यम् अविरामम् गुणफलकलनं तन्वते सत्त्वादिगुणानाम् प्रकाशप्रवृत्तिमोहादिरूपाणाम्फलानां कलनं विमर्शरूपं ज्ञानं तन्वते स्वचेतसिविस्तारयन्ति। सर्वं कार्यं गुणात्तं त्रिगुणप्रयोज्यं त्रिगुणेष्वेवावस्थितञ्च हरेर्भगवतो नारायणस्य भव्यस्य कल्याणफलकस्य संकल्पस्य योगात् सम्बन्धतो भवन्ति, न तु मम शुद्धस्यात्मनः, तर्हि कथं स्वीयत्वेनानुभूयन्ते कार्याणीत्यत्राह–त्रैगुण्यत्यागतो गुणत्रयसम्बन्धानङ्गीकाराद् भवविरतिः संसारतो वैराग्यं स्याद् इति धन्या मुमुक्षवो ध्यातुम् इच्छन्ति वाञ्छन्ति।

**भावार्थ – मुमुक्षु लोग यह ध्यान रखते हैं कि हमें अज्ञान अवस्था में होने से प्रारब्ध कर्म तीन गुणरूपी तिगुनी रस्सी से कमर में बान्धने जैसा**

बान्धते रहते हैं। हमें बन्धन को समाप्त करने के लिये गुणों के परिणामों को हृदय में सदा पहचानते रहना चाहिये। सोचना चाहिये कि भगवान् के कल्याणमय संकल्प से गुणों के सारे कार्य गुणों में ही होते हैं। वे मेरे नहीं हो सकते। हृदय के विकार भी गुणों के हैं, मेरे नहीं, गुणों को उनके कार्यों को भी अपने में कभी स्वीकार न करने से ही संसार से वैराग्य होता है, ऐसा चिन्तन जारी रहना चाहिये।

**यद्यप्यात्माऽतिभिन्नो गुणमयप्रकृतेर्वेत्ति तत्त्वञ्च योगी,**
**प्राचीना मोहधारा त्यजति न तु तथाऽपीशभक्तिं विना तम्।**
**भक्तिश्चैकान्तिकी स्यादितररुचिहरी निर्गुणत्वानुषक्ता,**
**सेयं साह्यम्प्रकृष्टं दिशति वरयतिं स्वाप्तिहेतुः स्वयं सा।।२५०।।**

तामेव चिन्तनपद्धतिम्पूरयति—यद्यपीति। यद्यपि आत्मा देही गुणमय्याः प्रकृतेरतिभिन्नोऽस्ति, इद तत्त्वं योगी ध्यानज्ञानसिद्धो मुमुक्षर्वेत्ति च, तथाऽपि ईशभक्तिं विना तु तं योगिनमपि, प्राचीनाऽनादिर्मोहधारा नवनवेषु गुणविकारेषु स्पृहाऽतिशयो, न त्यजति न मुञ्चति, ईशे भक्तिश्च ऐकान्तिकी भगवदेकोपायोपेयभाववती सती एव साऽपि निर्गुणत्वेन गुणकार्येष्वर्थेषु कृत्स्नस्पृहात्यागेन, अनुषक्ता सहकृता एव इतरेषु स्वस्वरूपभिन्नेष्वर्थेषु रुचिं हरति। न भगवद्भक्तिरप्येकला, मोक्षदायिनी अपि तु स्वस्वरूपज्ञाननिष्ठया गुणकार्यार्थसामान्ये स्पृहावारिण्या सहकृतैव साऽपि कार्यं चित्तदोषनाशं करोति। एवं विधा सा इयम् ईशभक्तिः वरयतिं मोक्षैकाभिलाषिणमधिकारिणम् प्रकृष्टं साह्यं दिशति चित्तदोषाणां विषयवासनानाम् मूलोच्छेदं करोति। उत्कृष्टां स्वावस्थाञ्च सम्पादयति। तेन सा ईशभक्तिः स्वयमेव स्वस्या आप्तेर्लाभस्य हेतुर्भवति। पूर्वावस्था उत्तरावस्थायाः कारणम्भवति।

भावार्थ — उसी चिन्तनपद्धति की पूर्ति करते हुए कहते हैं कि यद्यपि आत्मा प्रकृति और उसके सारे विकारों से अत्यन्त भिन्न हैं, उनसे उसका न कोई वास्तव संसर्ग हो पाता है न कोई उपकार। इस तथ्य को ज्ञानी ध्यानी भक्त साधक जानते हैं किन्तु भगवान् के प्रति अविचल भक्ति के बिना गुणकार्यों के प्रति प्राचीन मोह की परम्परा साधक को नहीं छोड़ती, लगी ही रहती है। शास्त्रज्ञान को मोह दबाता रहता है। भक्ति भी ऐकान्तिकी होनी चाहिये, भगवान् से भगवान् के सिवा और कुछ न चाहा जाये एवम् भगवान् की प्राप्ति के लिये भगवान् से भिन्न किसी व्यक्ति क्रिया चिन्तन आदि उपायों



का सहारा न लिया जाये तब वह मोहनाश कर पाती है, उस भक्ति का सहायक स्वस्वरूपनिष्ठा यानी स्थितप्रज्ञता भी होनी चाहिये। ऐसी भक्ति ही वह भक्ति उत्पन्न कर देती हैं जो मुक्ति का निकटतम कारण होती है। भक्ति शुरु होने पर स्वयं ही उत्तरोत्तर पुष्ट होती हुई परम पुरुषार्थ मोक्ष का रूप ले लेती है।

**युक्तः कालादनादेर्गुणमयप्रकृतेर्मूलतः प्रत्यगात्मा,**
**विश्वध्वंसेऽपि सृष्टौ क्षणमपि विगमो न द्वयोः कर्मबन्धात्।**
**ईशेनैवानुकालम्पशुरिव गुणतो बध्यते प्रेक्ष्यमाण—**
**स्तत्कृष्णो योनिबीजोपमितमकथयन्मुक्तये भक्तपार्थम्।।२५१।।**

तामेव चिन्तनधारामानयति—युक्तइति। प्रत्यगात्मा जीवः त्रिगुणमय्याः प्रकृतेर्मूलतोऽपि मायाऽऽख्यया अनादेः कालाद् युक्त एव भवति, तेन विश्वस्य जगतः सर्वस्यापि ध्वंसे विनाशे, सृष्टौ उत्पत्तौ च विगमः दूरीभावो नास्ति। परिणामवत्या प्रकृत्या स्थिरो बन्धः कथमित्यत्राह—ईशेनैवेति। ईशेन भगवतैव अनुकालं सर्वेषु परिणामेषु, गुणतः सत्त्वादिभिः पशुरिव रज्ज्वा प्रेक्ष्यमाणो बन्धनविशेषयोग्यतया— सङ्कल्प्यमानो जीवः बध्यते परिणमद्भिर्गुणैर्योज्यते, तदेव रहस्यं, कृष्णो भगवान् योनिबीजोपमितं यथास्यात्तथा "सर्वभूतेषु कौन्तेय मूर्तय" इत्यादिना भक्तं नित्यानुरक्तं कृपया, मुक्तये मुक्तिप्रयोजकतया अकथयत् उक्तवान्।

भावार्थ — उक्त चिन्तनधारा को ही चलाते हुए कहते हैं कि चेतन आत्मा अनादि काल से उस माया से बन्धा है जो त्रिगुणात्मक प्रकृति का भी मूल है। प्रलय में भी इसका माया से अलगाव नहीं हो पाता और न सृष्टि के समय ही यह शुद्ध रह पाता है, कर्म चेतन को माया से जोडे ही रहते हैं। इस बन्धन को कायम रखने के लिये ईश्वर ही सदा निगरानी रखते हैं। इसी तथ्य को भगवान् कृष्ण ने भक्त अर्जुन को उसे मुक्ति के उपाय के रूप में दयापूर्वक समझाने के लिये "सर्वभूतेषु कौन्तेय मूर्तयः०" इत्यादि वचन कहे हैं।

**शुद्धाहारैः सुकृत्यैर्गुणपुरुषभिदाध्यानयत्नेन भक्त्या,**
**ऐकान्तिक्या परात्मन्यतिविशदतया निर्गुणं स्वम्प्रपश्यन्।**
**प्रक्षीणाशेषकर्मा विगतभवभयोऽत्यन्तमुक्तो गुणेभ्यः,**
**सत्सङ्कल्पान्तधर्मोदयमयमयतेऽन्त्यम्महान्तम्पुमर्थम्।।२५२।।**

उक्तानर्थानुपसंहरति–शुद्धाहारैरिति। शुद्धैः सत्त्वगुणमयैराहारैरन्न–पानस्थानमित्रैः, शोभनैर्निष्कामैर्भगवत्प्रीत्येकोद्देश्यकैः, कृत्यैः कर्मभिः, गुणपुरुषयोः प्रकृतिचेतनयोर्या भिदा तत्र ध्यानार्थयत्नैरुपायैः, परात्मनि श्रीमति नारायणे, ऐकान्तिक्या भगवदेकोपायोपेयभावया, भक्त्या सर्वातिशायिप्रीतिरूपया, निर्गुणं सत्त्वादिगुणकार्यश्लेषशून्यं, स्वमात्मानम् प्रकर्षेण लौकिकचाक्षुषप्रत्यक्षमिव, पश्यन् (पुरुषः) प्रक्षीणाशेषकर्मा अनुत्पन्नकर्मफलानुभवो, विगतभवभयः संसार–बन्ध शंकारहितः सन्, गुणेभ्योऽत्यन्तं यथा स्यात्तथा मुक्तस्तत्प्रभावरहितः सत्सङ्कल्पान्तानाम्'' एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजि–घत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्प'' इति श्रुतिविदितानामष्टब्राह्मगुणानां, धर्माणाम् उदय आविर्भावः प्रधानो यत्र तथाभूतम् अन्त्यं सर्वोत्कृष्टम् महान्तम् पुमर्थम् मोक्षरूपम् अयते लभतेऽधिकारीतिशेषः।

**भावार्थ – पिछले अर्थों का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि सात्त्विक आहार वातावरण, निष्काम भगवत्कर्म, प्रकृतिपुरुषभेदचिन्तन में लगन और परमात्मा में एकान्त भक्तियोग के प्रभाव से अपने गुणातीत स्वरूप का आँखों देखने जैसा साक्षात्कार करता हुआ योगी सारे कर्मों का नाश हो चुकने पर सांसारिक भय के न रहजाने से गुणों से बिलकुल ही छूट जाता है, तब उस में ब्रह्म के सत्यसङ्कल्पपर्यन्त सारे आत्मगुणों का आविर्भाव होता है और सब से उत्तम सायुज्य मोक्ष पा जाता है।**

**यद्यज्जानाति यद्वा किमपि च कुरुते यच्च नो वेत्ति किञ्चिद्,**
**विद्वेषं क्वापि तस्मिन्वहति न च रतिम् प्राकृते स्वैकनिष्ठः।**
**सर्वा गौणीर्विजानन् सहजसुखमये चिन्मये स्वे निरर्था,**
**वृत्तीस्तुल्यारिमित्रो हरिपदसततासक्त आसन्नमुक्तिः।।२५३।।**

चित्तविकाराः शुभाशुभाः सर्वे गुणविकारा इति मन्वाना हरिभक्ता आसन्नमुक्तय इत्याह–यद्यदिति। कोऽपि चेतनो लोके यद्यत् किमपि हेयमुपादेयं कार्यमकार्यं जानाति तज्ज्ञानं, वा यत् किमपि कुरूते सा चेष्टा, यच्च नो वेत्ति तदज्ञानं, तस्मिन् क्वापि प्राकृते प्रकृतिविकारे विद्वेषं वहति स द्वेषः, न च रतिं वहति सा अरतिः, इमाः सर्वा वृत्तीर्गौणीर्विजानन् गुणप्रयुक्ता न स्वस्वरूपप्रयुक्ता गुणैकनिष्ठाश्च सर्वा इमा इति विविच्यानुभवन्, सहजसुखमये चिन्मये ज्ञानानन्दैकस्वरूपे, स्वे आत्मनि, ता निरर्था निष्प्रभावा विजानन्, तुल्यारिमित्रः सर्वत्रात्मैकदृष्टिः, अन्तश्च बाह्यार्थवृत्तीर्विहाय स्वस्मिन्नेकत्रैव निष्ठा यस्य स तथोक्तो हरिपदसततासक्तो भगवद्भक्त्येकनिरूपणीयो योगी आसन्नमुक्तिर्भवति।



**भावार्थ – चित्त के सारे विकार गुणों के परिणाम हैं आत्मा के नहीं, ऐसा जानता हुआ योगी शीघ्र मुक्ति पाता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति जगत् में जो भी कुछ जानता, करता, न जानता, थोड़ा जानता, थोड़ा द्वेष रखता, या स्नेह न रखता है यह सब केवल गुणमय चित्त के विकार हैं। इन विकारों से आत्मा वास्तव में सदा अछूता रहता है, ऐसा जानता हुआ योगी कहीं भी न राग रखता है न द्वेष, इससे उसके सारे शत्रु मित्र तुल्य होते हैं, वह तो केवल भगवान् के चरणों के प्रति ही मन लगाये रहता हैं, शुद्ध आत्मा को या परमात्मा को सदा एकरूप में ही देखा करता है, इससे गुणसम्बन्ध न रह जाने से उसकी मुक्ति अति शीघ्र हुआ करती है।**

**यद्ब्रह्माद्यैरचिन्त्यं समयविभवतस्तादृगैश्वर्यजातं,**
**नित्या कैवल्यमुक्तिस्तदतिशयवती या च सायुज्यरूपा।**
**सर्वन्तच्छ्रीशनिष्ठन्तदनुमतिमनादृत्य नो किञ्चिदाप्य–**
**न्तस्मान्मुक्तौ सुसेव्ये हरिचरणयुगे श्लेषमिच्छन्ति सन्तः।।२५४।।**

आत्मनिक्षेपपरिणामा भगवद्भक्तिरेव सकलपुरुषार्थहेतुरिति सैवा–श्रयणीयेत्याह–यदिति। ब्रह्माद्यैः कल्पान्तस्थायिभिर्ब्रह्माण्डाधिपतिभिः, समयविभवतोऽपि कल्पान्तकालप्रयत्नेनापि, अचिन्त्यं चिन्तयितुमप्यशक्यम् प्राप्तेस्तु का कथा, तादृगैश्वर्यजातम् ब्रह्माण्डीयैश्वर्योत्तीर्णमनन्तमैश्वर्यं, नित्या अकालकाल्या कैवल्याख्या मुक्तिः, तदतिशयवती या च सायुज्यरूपा भगवत्सम्बन्धविशेषकृता–नन्दातिशयवती मुक्तिः। सर्वन्तदुक्तन्त्रितयमन्यच्च श्रीशे परमात्मनि निष्ठमधीनन्त–त्सङ्कल्पाधीनसत्ताकम्भवति, तदनुमतिम् भवत्सङ्कल्पम् अनादृत्य किञ्चिदपि नो आप्यम्, तस्मात् मुक्तावपि सुखं सेव्ये श्रयणीये हरिचरणयुगे सन्तः, साधवः, श्लेषं सम्बन्धविशेषं, स्वाभाविकदास्यरूपम् इच्छन्ति तदर्थं यतमाना भवन्ति।

**भावार्थ – आत्मनिवेदनपर्यन्त भक्ति ही सारे पुरूषार्थों का कारण है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि ऐश्वर्य चाहने वालों को भगवान् वह ऐश्वर्य देते हैं जो प्रकृति मण्डल से परे है, जिसे ब्रह्मा आदि अपने कल्पान्त जीवन तक सोच भी नहीं सकते। कैवल्य मुक्ति जिसे बहुत लोग परम पुरुषार्थ मानते हैं वह भी भगवान् की कृपा से ही मिलती है और सायुज्य मुक्ति जिसमें**

भगवान् के तुल्य भोग उपलब्ध रहता है वह तो उनकी कृपा के अधीन है ही यह समझ में भी आता है, इसके अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पुरूषार्थ भी जो स्वयं के उद्यम से या दूसरे लोगों की इच्छा से मिलने वाले होते हैं वे भी अन्तर्यामी भगवान् की प्रेरणा से प्राप्त होते हैं ऐसी स्थिति में अपने पुरूषार्थ को ठीक से समझने और पाने के लिये भगवान् के चरणों का स्थायी अवलम्ब ही उचित है ऐसा सन्तजन मानते हैं।

**१४—गुणा गुणेषु वर्तन्ते न गुणा आत्मबन्धवः।**
**सत्कर्मोदीर्णसत्त्वात्मा परमात्मा बुभूषति।।२५५।।**

अध्यायमुपंसंहरति—गुणा गुणेष्विति। गुणाः सत्त्वादयो गुणेष्वेव सत्त्वादिषु वर्तन्ते, सर्वे व्यवहारा गुणकर्तृकास्तद्भोग्यफलाश्च न शुद्धचेतनतत्त्वं स्प्रष्टुमर्हन्ति, तदेवाह, न गुणा आत्मबन्धवो नात्मसम्बन्धयोग्या भवन्ति, ऋते गुणकृतादज्ञानात्। इदं तत्त्वं जानन् सत्कर्मभिरुदीर्णं सत्त्वं नाम गुणो यस्य स तथोक्त आत्मा अन्तःकरणं यस्य स तथोक्तश्चेतन आत्मा गुणैरुदीर्णैः परमात्मा बुभूषति भवितुमिच्छति सदैव। तेन गुणगुणिभेदोऽपि क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेद इव ध्यातव्यस्ततः सत्त्वोच्चयस्त—तस्तत्त्वज्ञानोदयस्ततः, स्वरूपाविर्भावो मुक्तिश्च भवतीति भावः।

*इति चतुर्दशोऽध्यायः*

**भावार्थ — यह संसार सत्त्व, रज, तम गुणों से बना है, यहाँ के सारे व्यवहार गुणों से गुणों में गुणों के लिये होते हैं। उन गुणों से आत्मा प्रभावित नहीं होता। चेतन के जो भी हर्षविषाद देखे जाते हैं वे सब गुणमय अन्तःकरण के माध्यम से होते हैं। अन्तकरणः आत्मा का स्थायी सहकारी नहीं है, वह तो कर्मकृतअज्ञानमय संसार तक ही काम आता है। साधनामार्ग में वह आगे चलकर धीरे—धीरे छूट जाता है। तब आत्मा स्वयम् प्रकाशमान ज्ञानानन्दमय रह जाता है। आज भी वह वैसा ही है किन्तु मिट्टी में गड़े मणि की भाँति उसका ज्ञान और आनन्द ढका हुआ है। १४**

*चौदहवाँ अध्याय समाप्त*



# *अथ पञ्चदशोऽध्यायः*

**नित्यादृष्टेऽन्तहीने भगवति परमैश्वर्यशीले स्वभावाद्,**
**विश्वोत्पत्त्यादिहेतौ सकलतनुभृतां कर्मणाम्पाकसेतौ।**
**मूलं विश्वस्य कः स्यात्प्रभुरनुभवितुं का कथा तद्विनाशे,**
**तद्बन्धन्तु स्वकीयं हरतु हरिदयासङ्गतासङ्गशस्त्रः।।२५६।।**

अनन्ताश्चर्यमयभगवदाश्रितस्य जगतो जन्मादिनिरूपणम्मानवस्याशक्यमेव, स्वस्यतत्सम्बन्धवारणन्तु यत्नैः शक्यमित्याह—नित्यादृष्ट इति। नित्यमेव दर्शनानर्हेऽनन्ते, स्वभावादेव परमैश्वर्यस्वभावे विश्वस्य दृश्यादृश्यस्य जगत उत्पत्तिरक्षालयहेतौ, सकलतनुभृतां नृणां कर्मणाम् पाकस्य फलस्य सेतौ विधारकेऽवस्थितं मायाऽविद्यामूलप्रकृतिसंवृत्यादिपदोपस्थाप्यं विश्वस्य जगतो मूलम् इदमित्थन्तयाऽनुभवितुम्प्रत्यक्षवदवधारयितुं कः प्रभुः समर्थः स्यान्न कोऽपि, अज्ञातमूलस्य तस्य जगतो विनाशविषये का कथा। तर्हि मुमुक्षुणाकिमनुष्ठे—यमित्यत्राह—तद्बन्धन्तु, तेन जगता स्वकीयम् बन्धं सम्बन्धमात्रन्तु हरिदयासङ्गतम् असङ्गाख्यं शस्त्रं यस्य स तथाविधोऽधिकारी, हरतु उपसंहरतु निवारयतु, एतावदेव शक्यं नाधिकमिति भावः।

**भावार्थ — इस संसार का मूल कारण ऐसी जगह है जहाँ मानव की बुद्धि कभी नहीं पहुँच सकती। इससे इसे या इसका मूल या इसके विनाश का उपाय सोच पाना असम्भव हैं। वह जगह साक्षात् परमात्मा हैं जो आजतक देखे नहीं गये न उनका आदि अन्त हैं, महान् अनन्त ऐश्वर्यों से जुड़ा रहना उनका स्वभाव है इस जगत् को वे ही कहीं से निकालते हैं, अपनी अचिन्त्य शक्ति से बनाये बचाये रखते है, उसीसे कभी छिपा भी लेते हैं, ऐसा केवल सुना जाता है, उनकी विश्वसृष्टि रक्षा संहारलीलाओं का कोई साक्षी नहीं है, जो प्राणियों के सारे कर्मों के फल सदा नापतौल कर देते रहते हैं, इससे किसी नयी बात जानना या पाना किसी के भी लिये सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में हम चाहें तो भगवान् की कृपा प्राप्त करने के उपाय करें और उनके सुझाव से संसार से अपना सम्बन्ध तोड़ लें जिससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो सके, इतना ही सम्भव है।**

**तस्मादश्वत्थरूपात्क्षणपरिणमनैकस्वभावादपेता,**
**निःसंगाः श्रीशभक्तास्तदनुभवपरास्तत्कथैकान्नपानाः ।।**
**तच्चिन्ताशीलचित्तास्तदवगतिधनास्तेन च ध्यायमाना—**
**स्तं नित्यानन्दसिन्धुम्प्रभुभशुभतनोर्निर्गताः प्राप्नुवन्ति ।।२५७।।**

उक्तं जगद् अश्वत्थपत्रवत्सततपरिवर्तनस्वभावं ज्ञानेन असंगतया च समुपेक्ष्य कल्याणपथेऽग्रे सरितव्यमित्याह—तस्मादिति। क्षणपरिणमनैक स्वभावादत्यन्तास्थिरात्, अश्वत्थरूपात् तस्माज्जगतोऽपेता दूरीभूता, विषयसङ्गरहिता दयामूर्तेः, श्रियः स्वामिनो नारायणस्य भक्ता अत एव तदनुभवपरा भगवदितरानुभवविमुखास्तस्य भगवतः कथा एव एका अन्नम् पानञ्च धारकं येषान्ते तथोक्ताः, तस्य चिन्ता एव शीलं स्वभावो यस्य तत्तादृशं चित्तं येषान्ते तथोक्तास्तस्य भगवतोऽवगतिः सर्वविधमपि ज्ञानं धनं येषान्ते तथोक्ता अत एव तेन भगवताऽपि, ध्यायमाना निध्येयोपायरक्षावृद्धयोऽत एव अशुभायास्तनोः समपापपुण्यमयात् क्लेशैकफलाच्छरीत्, निर्गताः प्रक्षीणप्रारब्धास्तं शास्त्रप्रसिद्धं ध्यानारूढं, नित्यस्याविनाशिन, आनन्दस्य सिन्धुं समुद्रवदनन्तपारम्, प्रभुम् भगवन्तम् प्राप्नुवन्ति। लब्धसान्निध्या नित्यानन्दमयतदनुभवैकमग्ना मुक्तास्तिष्ठन्तीति भावः।

**भावार्थ — उक्त जगत् सदा परिवर्तित होता रहता है, इसका परिवर्तन पहले से किसी को ज्ञात नहीं रहता, ज्यादा परिवर्तन दुःखद होते हैं इससे इसकी उपेक्षा करके कल्याणमार्ग में आगे बढ़ना चाहिये। कल्याण चाहने वालों को दयालु भगवान् सदा सहयोग देते हैं, अच्छा मार्ग बना देते हैं। बस उनका चिन्तन स्मरण ध्यान करने की आवश्यकता है। नियम है कि जो चाहा जाता है वही ध्यान में रहता है, वही मिलता है, कल्याण चाहा जाता है, कल्याणमय भगवान् ही ध्यान में रहते हैं, वे ही मिलते हैं, पहले आवरणों में मिलते हैं बाद में भक्ति श्रद्धा बढ़ने पर खुले भी मिलने लगते हैं। तब संसार धीरे—धीरे छूटता हुआ पूरा छूट जाता है, संसार अमंगलमय है इसका छूटना ही कल्याण है, इससे भगवान् को छोड़ दूसरी किसी वस्तु की स्पृहा नहीं रखते महापुरुष। वे भगवान् की चर्चा को ही अपना भोजन पानी मानते हैं, उनका चिन्तन उनका सहज स्वभाव बन जाता है, भगवान का अनुभव ही उनका धन होता है, ऐसे लोगों का ध्यान भगवान् स्वयं रखते हैं कि कहीं ये भटक न जायें, पिछड़ न जायें, कष्ट में न रहें, फलस्वरूप उनका प्रारब्ध शीघ्र पूरा होकर उन आनन्द के महान् समुद्र भगवान को प्राप्त करके पूर्ण कृतार्थ हो जाते हैं।**



**किं स्वं जनाति जन्तुर्बहुतनुजनुषामाश्रयं कर्मबद्धं,**
**किम्बन्धस्यादिमन्तं गुणमयविषयासंगमेतस्य चान्तम्।**
**किं वा देहात्ममोहम्भवविटपिशिफां ताम्परिज्ञाय तस्या,**
**ध्वंसेनात्मप्रकाशम्पुनरशुभलयाद्दुःखनाशं सुखाप्तिम्।।२५८।।**

संसारिणामज्ञान एव सन्तुष्टिं वर्णयति—किं स्वमिति। जन्तुः शरीरी, अनादिकर्मजालबद्धम् अत एव पुरुषार्थेषु नियन्त्रितसामर्थ्यं स्वमात्मानम् बहूनां तनूनां जनुषामुत्पत्तीनाम् आश्रयम् अनादिसंसारिणं, जानाति ? न जानाति, किं संसारबन्धस्य आदिं हेतुमज्ञानं, अन्तं तत्त्वज्ञानञ्चजानाति ? न जानाति, गुणमयेषु सत्त्वादिगुणपरिणामभूतेषु, विषयेषु शब्दादिषु, आसङ्गम् आसक्तिं तत्कारणञ्च, एतस्यासङ्गस्य अन्तं निवारणञ्च किं जानाति ? न जानाति, किं वा देहात्मनोर्मिथस्तादात्म्यभ्रमनिमित्तम्मोहं सविवेकं जानाति ? भवस्य संसारस्य विटपिरूपस्य वृक्षवद्दृढस्य क्षणपरिणामिनः, शिफाम् मध्यमूलं जानाति ? तां शिफाम् अनाद्यविद्यारूपाम्, परिज्ञाय कारणकार्यसहकारिपरिणामफलादिविवेकेन विदित्वा, तस्या अविद्यारूपायाः शिफाया ध्वंसेन विनाशेन आत्मप्रकाशम् आत्मस्वरूपनिष्ठाम्, पुनरनन्तरम् अशुभानाम्बन्धहेतुकर्मणां लयान्निःसत्त्वापादनात्, दुःखानान्त्रिविधानां नाशम् अनन्तरञ्च सुखाप्तिम् आनन्दमयस्वरूपाविर्भावं जानाति ? न किमपि जानाति। ज्ञानार्हतनुमनःप्राणवानपि प्रमादातिशयवशो न तदर्थं यतत इति भावः।

**भावार्थ — संसारी चेतन अज्ञान में ही सन्तुष्ट रहता हुआ अपना दुखड़ा गाता रहता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि क्या कोई व्यक्ति अपने को प्राचीन कर्मों से बन्धा और नानाशरीर धारण करता हुआ जानता है ? क्या संसार बन्धन के कारण और वारण समझता है ? क्या वह समझ पाता है कि विषयों में मेरा लगाव क्यों बना रहता है और यह कैसे छूटेगा ? क्या वह शरीर और आत्मा में विवेक न रहने का कारण और शरीर में ज्यादा मोह का कारण जानता है ? संसार महावृक्ष का मध्यमूल क्या है यह वह समझता है ? उस मूल के नष्ट होने से आत्मज्ञान होना और उसके पापों का नाश और उससे दुःखों का नाश और आनन्दमय आत्मस्वरूप का आविर्भाव वह समझता है ? कुछ नहीं समझता, वह तो अपनी सारी मानवीय विशेषताओं को ताक पर रखकर पशुओं के साथ तिनकों के लोभ में आगे बढ़ रहा है।**

यावत्सत्त्वोत्तरत्वं न भवति जननादेव सत्कर्मयोगा–
न्निःसंगत्वारुणाभा स्फुरति न हृदये खे सुसंगार्कमूला।
यावन्मायामयेषु त्रिगुणपरिणमच्छब्दमुख्येषु रागम्,
बिभ्रद् देहात्मभावं हतनिजधिषणो वेत्ति नात्मानमन्यम्।।२५६।।
यावन्नाध्यात्मविद्यानिरतमतितयोच्छिद्यते काम्यचिन्ता,
यावद्दुःखं सुखं वा किमपि गुणमयाज्जायते सङ्गशेषात्।
तावत्का तत्त्वदृष्टिर्भवविभवहरी का च विष्णौ प्रपत्तिः,
को मोक्षोपायविद्याधिगम उत कथम्मुक्तिधामाभिलाषः।।युग्मकम्।।२६०।।

संसरणपराणां सर्वेषामेव तत्त्वदृष्टिर्दुरापेति प्रतिपादयन् संसरण–विशेषानाह–यावदित्यादियुग्मकेन। यावज्जननादेव सत्त्वोत्तरत्वं न भवति, अग्रे तावत्केत्यादिनाऽन्वयः, सत्कर्मयोगाद् भगवत्प्रीत्यर्थकर्मसातत्याद् हृदये निःसङ्गत्वरूपा अरुणाभा या सुसङ्गार्कमूला सत्सङ्गभानूद्भवा भवति सा यावद् हृदये खे गगन इव न स्फुरति, यावच्च मायामयेषु अज्ञानवर्धकेषु, त्रिभिः सत्त्वादिगुणैः परिणमत्सु शब्दादिविषयेषु, रागम् आसङ्गम्, तद्धेतुभूतं देह आत्मभावम्, बिभ्रद् हतनिजधिषणो जन आत्मानं देहादितोऽन्यम्भिन्नं न वेत्ति, यावच्च अध्यात्मविद्यानिरतबुद्धितया काम्येषु शब्दादिविषयेषु चिन्ता न उच्छिद्यते, यावच्च सङ्गशेषात् आसक्तिलेशात् गुणमयात् सत्त्वादिपरिणामरूपात् कस्मादप्यर्थाद् दुःखं सुखं वा किमपि जायत उत्पद्यते, तावद् भवस्य संसारस्य विभवो व्यापकता तां हरति सा तथोक्ता का तत्त्वदृष्टिः स्यात्, तदधीना विष्णौ भगवति, प्रपत्तिश्च भगवत्येवोपेयोपायभावरूपा का स्यात्? न कोऽपि, किञ्च मोक्षोपायविद्याधिगमः क, उत मुक्तिधाम्नो वैकुण्ठादिनाम्नोऽभिलाषः स्पृहा च का स्यान्न काऽपीति भावः। संसारपतितस्य तत्त्वज्ञानवैराग्योदयोऽसम्भव एव।

**भावार्थ – संसार में बहता हुआ चाहे कोई भी हो उसे तत्त्वदृष्टि नहीं मिल सकती यह बतलाने के लिये वहावों का संकेत देते हुए उनसे बचने की आवश्यकता बतलाते हैं कि जब तक जन्म से ही, हृदय में सत्त्वगुण की प्रधानता न हो, सततनिष्काम कर्मयोग से आसक्तियाँ दूर न हुई हों, सत्संगरूपी सूर्य से हृदय आकाश में अनासक्ति का अरुणोदय न हुआ हो, जबतक अज्ञानवर्धक त्रिगुणपरिणाम शब्दादि विषयों में राग बना हो, देहात्मबुद्धि सुदृढ़ हो, अपने ज्ञानानन्दमय स्वरूप का भान कभी भी न हो रहा हो, व्यक्ति अपने**



**को देहादि से भिन्न न मान रहा हो, जब तक अध्यात्मविद्या में अनुराग न बना हो, उससे शब्दादि विषय जो सदा चाहे जाते हैं, उनके प्रति लगाव नष्ट न हो पाया हो, सत्त्वादिगुणों के परिणामभूत वस्तुएँ जो आत्मा के लिये सदा विफल हैं, उनसे यदि कुछ भी बची आसक्ति के फलस्वरूप सुख–दुःख होते जा रहे हों तब तक तत्त्वदृष्टि क्या बनेगी, जिससे संसार का जाल नष्ट हो सके, तत्त्वदर्शन का फल जो भगवान् के प्रति शरणागति का भाव होता है वह भी कैसे बनेगा, और मोक्षविद्या की प्राप्ति कैसे हो पायेगी, और मुक्तों को मिलने वाले दिव्यलोक के प्रति स्पृहा भी कैसे उत्पन्न हो पायेगी, इससे मुमुक्षु जन उक्त त्रुटियों के वारण में सदा प्रयत्न शील रहते हैं।**

आत्मा विष्णोर्विभूतिर्गुणमयरजसा च्छन्नभानं सुरत्नं,
वह्नीन्द्वर्कप्रभा यं स्पृशति न, सकलं यस्य भासोपलब्धम्।
तद्रत्नं नीरजस्कं कलयितुममलं स्वं जगज्जन्मरक्षा–
ध्वंसव्यापारसक्तः स भवति भगवाञ्छ्रीविनोदाय नित्यम्।।२६१।।

जगज्जन्मरक्षालयव्यापारो भगवतो जीवोद्धारायैवेत्याह–आत्मेति। आत्मा चेतनो विष्णोर्भगवतो नारायणस्य विभूतिर्महाधनम् अस्ति "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित०" इति भगवतैवोक्तत्वात्। कथं विभूतित्वमित्याह–सुरत्नमिति, महार्घं रत्नमिदम्भगवतः, संसारदशायां सत्त्वादिगुणमयचित्तदोषैः कामकोपादिमिश्छन्नम्भानम्प्रकाशो यस्य तत्तथोक्तम्। तस्य भानं वर्णयति–बह्वीन्द्वर्कप्रभा यं न स्पृशति, सूर्यं दीप इवात्मानं सूर्यचन्द्राग्नयो न स्पृशन्ति न प्रकाशयितुम्पारयन्ति, इदमेव तु सर्वम्प्रकाशयति, तदेवाह–सकलं यस्य भासा प्रकाशेनोपलब्धम्प्रकाश्यमानमस्तीति, तत्तु रत्नं चेतनाख्यं स्वं धनमात्मीयं स श्रुतिप्रसिद्धो भगवान् नीरजस्कं त्रिगुणधूलिविगमेन, अमलं कर्माख्यदोषरहितत्वेन कलयितुमुपलभ्य धारयितुं जगतो जन्मरक्षाध्वंसरूपव्यापारेषु नित्यमनवरतं यथा स्यात्तथा सक्तः सत्येन संकल्पेन व्याप्रियमाणो भवति। तद्रत्नं कथं धारयतीत्यत्राह–श्रीविनोदायेति, पत्न्या नवतमाय सन्तोषायेत्यर्थः।

**भावार्थ – विश्व की रचना पालन और संहार की क्रिया भगवान् बार–बार इसलिये करते हैं कि उससे जीवों के कर्मों की अवस्थायें बदलती रहती हैं और कभी कोई जीव उद्धार के योग्य अवस्था में भी मिलता है, तब उसे संसार के कर्दम रूप त्रिगुणों से निकाल कर कर्म–जनित कामादि दोषों से छुड़ा कर धारण करते हैं तब उस नये रत्न की तरह प्रकाशमान चेतन को**

भगवान् के द्वारा धारण किया देखकर लक्ष्मी जी को एक नया सन्तोष प्राप्त होता है, उनकी सन्तुष्टि से भगवान् को भी एक नया सन्तोष होता है जीवात्मा तो उन दोनों के आनन्दमय सन्निधान से प्रसन्न रहता ही है। इस तरह आनन्दमय भगवान् आनन्दमय जीवों को अतिरिक्त आनन्द बाँटते रहते हैं। यही अर्थ सूचित करते हुए कहते हैं, उस रत्न के प्रकाश के सामने सूर्य आदि प्रकाश वैसे ही फीके रहते हैं जैसे सूर्य के आगे दीपक। दीपक को सूर्य प्रकाशित करता है, न कि सूर्य को दीपक। इसी तरह सूर्य आदि को आत्मा प्रकाशित करता है न कि आत्मा को सूर्य आदि। उस रत्न की संसार अवस्था में दो अशुद्धियाँ होती हैं। एक कर्मबन्धन और दूसरा गुणबन्धन, कर्म ही उसे गुणों से जोड़े रहते हैं। इन दोनो अशुद्धियों को कभी भी दूर कर लेना सम्भव नहीं है, बल्कि उसके उपयुक्त कोई अवस्था होती है, उस अवस्था को भगवान् पहचानते हैं, उस अवस्था के आने पर जीव का उद्धार करके धारण करने से लक्ष्मी जी को एक नयी सन्तुष्टि होती है, उन्हें नयी नयी सन्तुष्टि देना पति के नाते भगवान् चाहते हैं, इसी से विश्वसृष्टि रक्षा लय करते रहते हैं।

**भूतिम्भ्रष्टां चिरस्याऽऽकलयितुमखिलां जीवसंज्ञाम्परात्मा,**
**तद्विज्ञानम्प्रकृत्याम्मतिरुचियतनान्यप्यवादीत्प्रकामम्।**
**नेतृत्वं खेषु शश्वन्मनसि च विषयेष्वेष्यहेयेष्वथेच्छा–**
**द्वेषादिस्तम्भवृद्ध्यादिकमखिलमलं दीप्यतेऽसौ वितन्वन्।।२६२।।**

उक्तमेवार्थं विशदयति–भूतिमिति। चिरस्यानादेः कालाद्, भ्रष्टां नष्टस्वरूपां, जीवसंज्ञाम् प्राणधारणाद् जीवत्वेन ज्ञायमानाम्, अखिलामपि भूतिम्महाधनम्, आकलयितुं लब्धुम् परात्मा श्रीशः, तद्विज्ञानम् अन्वेषणायोपलम्भायेव च लक्षणं, शेषत्वधार्यत्वरक्षणीयत्वविशिष्टं नित्यज्ञानानन्दमयत्वम्, प्रकृत्याम्मायापरिणामभूते चित्ते मतिरुचियतनानि अपि ज्ञानेच्छाप्रयत्नान्यपि, धर्मभूतज्ञानपरिणामत्वे–नात्मधर्मत्वेऽपि तदधीनवृत्तिरूपसर्वपरिणामतया तद्गतान्येव प्रकामं शङ्कानर्ह–विशेषैरवादीद् भणितवान् "सर्वस्य चाहं हृदी" त्यादिना। अथोक्तस्य परात्मनो ध्यानार्हान् गीतोक्तान् विशेषानाह–असौ परात्मा, उक्तस्य जीवस्य खेषु बहिरिन्द्रियेषु,मनसि अन्तरिन्द्रिये, एष्येषु काम्येषु, हेयेषु वर्जनार्हेषु, विषयेषु शब्दादिषु, नेतृत्वं स्वरूपस्वभाववृत्तिसामर्थ्यनियमनम्, अथ च जीवप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतूनाम् इच्छाद्वेषादीनां चित्तधर्माणां स्तम्भो नियमनं, वृद्धिः प्रवर्धनं विषयान्तरयोगं च अखिलं सर्वमपि नेतृत्वोचितव्यापारकलापम् अलम् अवधानेन वितन्वन्, दीप्यते कथितैः कार्यैरपि कर्तृतया सर्वैरेव कल्पयितुं शक्यते।



**भावार्थ – पूर्वोक्त अर्थ का विस्तार करते हुए कहते हैं कि अनादि काल से बिछुड़े हुए अपने महान् वैभवरूप सारे चेतनों को पाने के लिये भगवान् ने उनकी शेषत्व धार्यत्वरक्षणीयत्व और नित्य ज्ञानानन्दमयत्वरूप पहचान बतलायी है, साथ ही जो उसके ज्ञान इच्छा प्रयत्न आदि धर्म न्यायवैशेषिकदर्शनों में माने गये हैं उन्हें भगवान् ने प्रकृति के परिणाम मन में बतलाया है, क्या भगवान् वैशेषिक दर्शन नहीं मानते ? मानते हैं किन्तु मनके बिना संसारावस्था में ज्ञान आदि उत्पन्न नहीं हो पाते इससे उन्हें भी मनके ही धर्म के रूप में स्वीकार किया है। वे परमात्मा चेतनों की इन्द्रियों मन और ब्राह्य शब्दादि विषयों का भी नियन्त्रण करते हैं एवम् इच्छाओं अनिच्छाओं और द्वेषों को भी उत्पन्न होने देना, रोकना और बढ़ाना भी उनके ही द्वारा हो रहा है, इसप्रकार उनके इन सारे सूक्ष्म व्यापारों को अन्दर की वृत्तियों पर ध्यान देकर कोई भी समझ सकता है और उनकी परिपूर्ण अधीनतारूप शरणागति स्वीकार करके संसार से ऊपर उठ सकता है।**

**यद्यप्येतत्स्वयं स्वम्प्रति सततमलं दीप्यमानं सुरत्नं,**
**दुर्दैवादेव साऽऽभा मनसि च फलिता क्षुद्रसंगेन नष्टा।**
**ईशं विश्वस्य विन्दन् श्रुतिमृजितमनास्तम्प्रपन्नः स्वयोगात्,**
**स्वं स्वस्मै भासमानं कलयति विमलं तत्प्रसंगात्प्रदीप्तम्।।२६३।।**

उक्तार्थमननस्य महाफलमाह–यद्यपीति। यद्यपि एतद् आत्मतत्त्वं स्वम् आत्मानम्प्रति सततं निरन्तरं दीप्यमानम्भासमानं सुरत्नम् अस्ति (तथाऽपि) दुर्दैवाद् एव मनसि चित्ते चापि फलिता प्रतिबिम्बिता सा आत्मन आभा प्रकाशोऽन्य–निरपेक्षस्वानुभवरूपो दुर्दैवाद् एव पूर्वदुष्कृतहेतुकाज्ज्ञानावरणफलात् पापात्, क्षुद्रसंगेन क्षणिकशब्दादिविषयलिप्सारूपावरणेन, नष्टा प्रकाशमानाऽपि नेक्ष्यमाणेव भवति। एतदनर्थवारणोपायमाह–श्रुतिमृजितमनाः श्रुतिवचनशतपरिशील न शुद्धचेता, विश्वस्य जगत ईशं नियामकं विन्दन् प्रत्यक्षमिव कलयन्, तम्प्रपन्नस्तदेकाधीनं सकलोपायोपेयजातं जानानः, तस्मिन् सर्वयन्तरि प्रकृष्टात्सङ्गाद् गुणानुभवकृताद् रागविशेषात्, प्रदीप्तम् आनन्दवृद्ध्या ज्ञानवृद्ध्या चाधिकमेव प्रकाशमानं, स्वमात्मानं, स्वयोगादात्मध्यानाभ्यासात्, स्वस्मै भासमानं विमलं सुस्पष्टं, कलयति चेतसा गृह्णाति।

**भावार्थ – पिछले अर्थों के मनन का महान् फल बतलाते हुए कहते हैं कि यह जीवात्मा नामक महान् रत्न अपने को स्वयम् आप सदा स्पष्ट**

प्रकाशित हो रहा है किन्तु इसका ऐसा कुछ दुर्भाग्य है कि इसका प्रकाश जो चित्त में भी पड़ता है वह लौकिक क्षुद्र नाशवान् विफल अर्थों के प्रति स्पृहा के कारण दबा या ढका सा हो रहा है इससे संसारियों को पता नहीं चलता कि मैं अपने को जानता हूँ या नहीं, फिर भी इतना भान तो सबको रहता ही है कि मैं हूँ। मैं नहीं हूँ, ऐसा कोई नहीं मानता, अपनी इस सत्ता का भान अपने ज्ञान और आनन्द को निखार कर बढ़ाया जा सकता है। वेदादि ग्रन्थों के परिशीलन से चित्त शुद्ध होता है, उससे ईश्वर का ज्ञान बढ़ता है, भक्ति होती है, शरणागति भी हो जाती है, तब आत्मप्रकाश बढ़ जाता है, तब अपने स्वरूप का मनन चिन्तन बढ़ाने से अपने आपको यह आत्मा बहुत साफ देखने लग जाता है, तब अपने बारे सारे संशय मिट जाते हैं।

**हेयोपादेयभेदान् जनयति जननी तोकचित्ते यथावत्,**
**तद्वत्सर्वस्य चित्ते स्मृतिमतिसुहृतीर्वर्जनं वा नियच्छन्।**
**ईशानः कर्मभोगानशुभशुभमयान् लम्भयन्दुःखमोक्षम्,**
**प्रेप्सद्भ्यो बुद्धिशुद्धिन्तदनुगुणगतिं चाशु दत्ते दयाब्धिः।।२६४।।**

तितिक्षून् मुमुक्षून् सुमार्गे दयाब्धिर्नयन् साधुबुद्धिम्प्रयच्छन्नियच्छन्।
कुबुद्धीर्हरन्नात्मभासैव भव्यम्महान्तम्पुमर्थं स्वयं लम्भयेत।।

इत्याह—हेयोपादेयेति। जननी तोकस्य शिशोश्चित्ते हेयोपादेयभेदान् त्याज्यग्राह्यविवेकान् यथावत् व्यवहारौपयिकं जनयति क्रमेणोत्पादयति, तद्वत् दयाब्धिरनवधिकदयाशेवधिरीशानः सर्वान्तर्यामी परमात्मा सर्वस्य जनस्य चित्तेऽन्तःकरणे स्मृतिम् अनुभूतार्थाविस्मरणम्, मतिं स्मृत्यधीनं हेयोपादेयविवेकं, सुहृतीर्वर्जनं वा उक्तविवेकफलभूते भाविभोगौपयिके हानोपादाने, नियच्छन् रक्षन् विशोधयन्पूरयन्, अशुभमयान् उत्तरपापफलान् शुभमयान् सुकृतोत्तरान् कर्मफलभोगान् लम्भयन् पशूनाम् बुसादिवद् उपस्थापयन्। (अथ च स्वार्जितेभ्यो वाञ्छितेभ्यश्च) दुःखेभ्यो मोक्षं सन्त्यागम् प्रेप्सद्भ्योऽपेक्षमाणेभ्यो बुद्धेः फलभोगहेतुभूतायाः, प्रज्ञायाः, शुद्धिं दुःखवारणमात्मानात्मविवेकं, तदनुगुणाम् उक्तविवेकानुकूलां, गतिं देशकालसंगावस्थाञ्च आशु वृथाविलम्बवर्जनेन दत्ते सम्पादयति, तेन मुमुक्षुः परमपुरुषार्थमविलम्बेन स्वयमिवाप्नोति।

**भावार्थ – संसारियों को उनके कर्मफल यथोचित प्रदान करते हुए अन्तर्यामी दयावान भगवान उन्हें विवेक भी देते हैं जो अपने पापफलों से बचना यानी मुक्त होना चाहते हैं, उस आत्मा अनात्मा के विवेक से वे**



परमपुरूषार्थ मोक्ष भी पा जाते हैं यह सूचित करते हुए कहते हैं कि जैसे माता अपने बच्चे को सिखलाया करती है कि क्या लेना चाहिये और क्या नहीं लेना चाहिये वैसे ही अन्तर्यामी भगवान सभी चेतनों के चित्त में कुछ बातों की याद बनाये रखते हैं, उन्हें कुछ ऐसा ज्ञान दिये होते हैं जिससे लेने और छोड़ने योग्य अर्थों का विवेक रहता है और वे कुछ कुछ लेते और छोड़ा करते हैं। दयापूर्वक ही भगवान सब के कर्मफल उपलब्ध कराते हैं। यद्यपि भगवान् की दृष्टि से सारे भोग दुःख रूप ही हैं फिर भी चेतनों को उनमें गहरी ममता होती है इससे उनके मनके अनुसार देते रहते हैं, किन्तु जिन्हें भोगों से वैराग्य होने लगता है उन्हें दयापूर्वक क्रम से आत्मा अनात्मा का विवेक भी देते हैं जिससे वे अपने को सही रूप में समझकर कल्याणपथ पर अग्रसर हों, साथ ही सत्कर्मानुष्ठान के उपयुक्त परिस्थितियाँ भी देते हैं जिससे वे अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं।

**स्वाम्यं धत्ते पशूनाम्पतिरथ च स तान् बन्धभूम्यन्नपानै—**
**र्युङ्क्ते तेनैव लोके तदिव स भगवान् जीवजातन्तदर्थान्।**
**बिभ्रच्छश्वन्नियच्छंस्त्रिजगति परतश्चानवच्छिन्नशक्तिः,**
**स्वामित्वेनैव मुक्तिं निरवधि च सुखं सन्नमद्भ्यः प्रदत्ते।।२६५।।**

स्वामित्वेन महागुणेनैव भगवान् सकलफलप्रदो भवतीति तत्सदा सद्भिर्ध्येयमित्याह—स्वाम्यमिति। लोके दर्शनार्हे जगति, पशूनां गवादीनाम्, पतिर्गोपालादिः स्वाम्यम् पशूनां यथेच्छविनियोगाधिकारं, धत्ते धारयति, अथ च स स्वामी तेन स्वामित्वेनैव हेतुना, तान् पशून् बन्धेन रज्जुश्रृङ्खलादिना, बन्धभूम्या स्थानेन, अन्नैःपानैश्च (सदा) युङ्क्ते योजयन्नास्ते। तदिव तथैव, त्रिजगति पादोऽस्य विश्वा भूतानी०'' त्युक्ते त्रैलोक्ये, परत ''स्त्रिपादस्यामृतन्दिवी'' त्युक्तेऽप्राकृते दिव्येऽनन्ते लोके चानवच्छिन्नशक्तिरसीमितस्वामित्वशेषित्वः, स भगवान् जीवजातं चेतनसमुदायं, तदर्थान् शरीरेन्द्रियप्राणाहारविषयतयाऽपेक्षितान् मायागुणपरिणामान्, बिभ्रद् धारयमाणः, शश्वत् सदैव नियच्छन् फलपरिमाण— कालावस्थानां कर्मानुरूप्यं निर्वर्हन्, स्वामित्वेनैव गुणेन मुक्तिं तत्फलं निरवधि अनन्तं सुखं स्वरूपानन्दम्भगवदनुभवानन्दं च सम्यग् अष्टभिर्मनोबुद्ध्यहङ्कार— युक्तैरङ्गैर्नमद्भ्यः प्रणतिपरेभ्यः प्रकर्षेणौदार्येण दत्ते उपलम्भयति।

**भावार्थ – भगवान् जीवों के प्रति जो भी करते हैं वह जीवों के प्रति स्वामित्व नामक महान् गुण के कारण करते हैं, यह सूचित करते हुए कहते**

**हैं कि जैसे कोई व्यक्ति पशु रखता है तो उसके चारा भूसा पानी और बान्धने की जगह आदि का भी जोगाड़ किये रहता है। पशुओं के समान उनके उपकरणों का भी वह स्वामी होता है। ऐसे ही भगवान भी चेतनों के स्वामी होते हैं और उनके उपकरणभूत माया के सारे विकारों के भी स्वामी होते हैं। इसीसे लीला विभूति की तरह त्रिपाद विभूति के भी स्वामी होने से एवं जीवों के भी स्वामी और सुहृद् होने से लीलाविभूति में स्वर्ग आदि और त्रिपाद्विभूति में मोक्ष पर्यन्त सारे पुरुषार्थों की प्राप्ति तब करा देते हैं जब चेतन विधिवत् शरणागत होते हैं।**

**साम्यं श्रुत्या विमुक्तौ परममवगतम्ब्रह्मणा जीवजाते,**
**विश्वेशः श्रीपतिर्वा न भवति न समस्तद्गुणैः कोऽपि मुक्तः।**
**मुक्त्या विष्णोर्गुणौघाननिशमसदृशान्निर्निमेषन्निरीर्ष्यम्,**
**पायम्पायं सहायैर्भवति सुखमहाम्भोनिधौ नित्यमग्नः।।२६६।।**

मुक्तिं ददातीत्युक्त्या मुक्तावपि भगवता मुक्तानां स्वरूपस्वभावानुभव–फलानाम् भेद उन्नीयते, स एवात्रोच्यते–साम्यं श्रुत्येति। श्रुत्या "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति०" इत्यनया, विमुक्तौ कर्मबन्धावसाने, जीवजाते सर्वेष्वेव मुक्तेषु, ब्रह्मणा परमात्मना, परमं यद्यत्सम्भाव्यन्तत्सर्वं साम्यं सादृश्यम् अवगतं श्रुतम्प्रामाणिकैः, (तथापि) कोऽपि, मुक्तः पुरुषो विश्वेशो न भवति, यत्र संसारे बद्धा अपरेऽपि मोचनीया यस्माच्चायमधुना मुक्तस्तस्य स्वामी पूर्वं नासीन्मुक्तावपि न भवति, श्रीपतिर्वा न भवति, यस्याःश्रिया दयया मुक्तस्तस्याः स्वामी पूर्वमिव मुक्तावपि न भवति। अथ भगवदीयाः सर्वेगुणाः मुक्ते स्युरित्यत्रोच्यते–न समस्तद्गुणैरिति, कोऽपि मुक्तो येन स्वाम्येन भगवतो महागुणेनौदार्यादिभिश्च मुक्तो भवति तैरसौ न युज्यते, नहि मोचको मुक्तश्च दयावाँल्लब्धदयश्च समौ स्याताम्, अतो भगवद्गुणैरपि मुक्तस्य न पूर्णं साम्यम्भवति। तर्हि श्रुतिः किन्निबन्धनम् परमं साम्यमाहेत्यत्रोच्यते–"एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽवि–जिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्प" इति श्रुत्यैव परिगणितानाम् भगवद्गुणानाम् मुक्तेष्वप्याविर्भावात् तन्निबन्धनं साम्यं श्रुतिराहेत्यवधारणीयम्, मुक्तावानन्दस्तु सुमहानपरिच्छिन्नो भवति, स च भगवद्गुणानुभव– जन्मेत्याह–मुक्त्येत्यादि, मुक्त्या कर्मबन्धापगमेन ज्ञानसंकोचनिवृत्तौ विष्णोर्भगवतोऽसदृशान् अन्यात्रासतो गुणौघान् श्रीसम्बन्धनिरूपणीयान् भक्तचेतनसम्बन्धनिरूपणीयान्, चेतनसामान्यसम्बन्ध–निरूपणीयान्, लीलाविभूत्यौपयिकान्, दिव्यलोकौपयिकान्,



अस्त्रभूषणवासः परिच्छदपरिचेयान्, विग्रहगतान्, स्वरूपगतान्, नैसर्गिक–स्याप्यानन्दस्य महाम्बुधेरिवावस्थान्त– रसम्पादकतया पुराणस्यापि नवत्वा–पादकतया निरतिशयभोग्यान् अनन्तान् गुणान्, अनिशमजस्रं, निर्निमेषं देवानामपि देवत्वेन दृग्वारकनिमेषराहित्येन, निरीर्ष्यमल्पसाम्यापत्त्या लौकिकेष्विव भगवद्गुणेषु लेशेनाप्यसहनराहित्येन, सहायैर्नित्यैर्मुक्तैश्च प्राक्तनैः सह, पायम्पायम् पौनः पुन्येन पिबन्, सुखमहाम्भोनिधौ स्वस्वरूपगत एवानन्दे भगवद्गुणानुभवजनितातिशये, नित्यमजस्रम् मग्न इव भवति, तेन दुःखकल्पनाया अपि स्थानं न भवति।

**भावार्थ – यदि भगवान् दया से मुक्ति देते हैं तो मुक्त अवस्था में भी भगवान् से कुछ भेद रह जायेगा, छुड़ाने और छूटने वाले में, दयावान् और दयापात्र में भेद रहता हैं, इसी विषय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति"० इस श्रुतिवचन से मुक्त पुरुष में परमात्मा से परम समता मानी जाती है किन्तु ऐसी समता नहीं आती कि वह जगत्पति या लक्ष्मीपति हो जाये, उन परमात्मा के सारे गुण भी मुक्त को नहीं मिलते कि वह गुणों से भी तुल्य हो जाये। तो फिर मुक्ति अवस्था में होने वाली कौन सी समता श्रुति बतलाती है, इस प्रश्न पर समझना चाहिये कि अज्ञान से होने वाले सारे दोषों का अभाव ही जीव की मुक्ति अवस्था में ईश्वर से समता होती है। उसे ही श्रुति "एष आत्मा.......सत्यसंकल्पः०" इन आठ गुणों के रूप में, वर्णित करती है। इतने के लिये ही महान् लोग मोक्ष चाहते हैं, फिर भी मुक्ति में महान् अनन्त आनन्द बना रहता है और वह होता है भगवान् के अपरिमेय अनन्त महान् गुणों के सतत दर्शन से उनगुणों का अनुभव सदा बना रहता है, अनुभव मग्न लोग अनन्त होते हैं, संसारवासना न रहने से उन गुणों के प्रति कोई ईर्ष्या नहीं होती, इससे मुक्त पुरुष का आनन्द सदा असीम होता है।**

**एतस्मादेव हेतोर्भवतरणरतास्त्यक्तदभ्राभिलाषा,**
**निष्कामा भूतले क्वाप्यनुभवविभवादीश्वरान्नाद्रियन्ते।**
**भूमेः स्वर्गस्य सत्यस्य च कमलभुवो दीप्तलोकस्य काले,**
**काल्यान् कालस्य कालम्महितगुणनिधिं श्रीधरं संश्रयन्तः।।२६७।।**

उक्तम्मुक्तानन्दं सशरीरा भूमावपि क्वाप्यनुभवन्तस्त्रिलोकैश्वर्यं नाद्रियन्त इत्युक्त्वाऽध्यायमुपसंहरति–एतस्मादेवेति। एतस्माद् मुक्तानन्दविभवानुभवाद् एव हेतोः कारणाद् भवस्य संसरणक्रमस्य तरणे कामादिदोषापहरणे तत्त्वावधारण–प्रयत्नानुसरणे, रता अभिनिवेशशीला, त्यक्ताश्चेतसोऽपाकृता दभ्रेषु विनाशिषु

लोकवित्तपुत्रादिष्वर्थेष्वभिलाष इच्छा यैस्ते तथोक्ता अत एव निष्कामाः काममूलविषयसङ्कल्पसंस्कारेणापि रहितास्तेन योग्यत्वेन कालस्यापि कालम् सकलपरिणामविरोधिनम्, महितानामनवधिशुभफलानां, गुणानां दयादीनां, निधिं शेवधिं, श्रीधरं श्रीमन्तं नारायणं संश्रयन्तः सकलोपेयोपायभावेन सेवमाना महान्तो, भूतले क्वापि जायमानस्य भगवदनुभवस्य विभवाद् गौरवात् कारणाद् ईश्वरान् क्षुद्रस्वामिनो नाद्रियन्ते न तानुपासते। कस्येश्वरान् ? भूमेः स्वर्गस्य दीप्तलोकस्य कमलभुवो ब्रह्मणोऽपि सत्यस्य लोकस्य च स्वामिनो लोके महतोऽपि नाद्रियन्त इति भावः।

**भावार्थ – चेतन को मुक्ति के बाद भगवान की सतत सन्निधि और उनके महान् गुणों का अनान्दमय अनुभव प्राप्त होता रहता है, वह अनुभव इतना महान् होता है कि उसके सामने स्वर्ग या ब्रह्मलोक भी फीका होता है, इससे पृथिवी का स्वर्ग का या ब्रह्मलोक का ऐश्वर्य रखने या प्रदान करने वाले महान् लोगों का भी आदर वे लोग नहीं करते जो भगवान् की सन्निधि और उनके गुणानुभव की महिमा समझकर लौकिक सारे अर्थों से नाता तोड़कर उन भगवान् की शरणागति कर चुके होते हैं, जो काल के भी काल हैं, यानी जहाँ कोई अवाञ्छित परिणाम नहीं होता। शास्त्रों और सत्पुरूषों के वचनों के परिशीलन से जीवित अवस्था में ही भगवान् के महान् गुणों का प्रत्यक्ष सा अनुभव होने लगता है, तब वे अनुभवशील लोग अपने को वैकुण्ठ में ही स्थित मानने लगते हैं, तब त्रिगुणात्मक लोकों का कोई वैभव उन्हें आकृष्ट नहीं कर पाता।**

**१५–क्षराक्षरोत्तीर्णमहागुणात्मा विश्वस्य मूलम्पुरुषोत्तमाख्यः।**
**विज्ञाय सेव्यस्तदनुव्रतानां सर्वैश्च भावैः स हि मुक्तभोग्यः।।२६८।।**

अध्यायार्थं संक्षिपन्नुपसंहरति–क्षराक्षरेति। क्षराः संसारिणः क्षरज्ज्ञानाश्चेतना, अक्षरास्त्रिपाद्विभूतिस्था असंसारिणः सूरय, स्तान् उत्तीर्णा अतिक्रान्ता–स्तद्गुणातिशायिनो महान्तोऽनन्तफला गुणा यस्य स तथोक्त आत्मा परमात्मा नाम, विश्वस्य जगतो मूलम् आदि कारणम्, पुरूषोत्तम एतदाख्यया प्रथितः, तदनुव्रतानान्तद्भक्तानां, नः अस्माकं, विज्ञाय यथाशास्त्रं सर्वैश्च भावैर्मातृपितृ–मित्रभ्रातृसुहृत्सम्बन्धानुसन्धानेव, सेव्यो भजनीयः, हि यतः स एव मुक्तैर्लब्धमोक्षै, र्भोग्योऽतिप्रियतया सर्वकालमनुभाव्यः।

*इति पञ्चदशोऽध्यायः*



**भावार्थ – भगवान् अनन्त महान् गुणों के सागर हैं, वे गुण संसारी चेतनों में तो नहीं हैं, उन दिव्य सूरियों में भी नहीं हैं जो वैकुण्ठलोक में भगवान् के तुल्य मिलते हैं उक्त दोनों प्रकार के पुरूषों में श्रेष्ठ होने से भगवान् पुरूषोत्तम कहलाते हैं। वे ही संसार के आदि कारण हैं, उन्हें ही शास्त्रों के द्वारा ठीक से समझ कर हम भक्तों को भजना चाहिये, क्यों कि मुक्ति में वे ही अतिप्रिय रूप से मिलते हैं।**

*पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त*

# अथ षोडशोऽध्यायः

प्राक्कर्मक्षिप्तबोधो वपुरशुभकृतं रोगदुःखाभिभूतम्,
मन्वानः स्वं विरुद्धाचरणशतकृतादृष्टबन्धम्प्रपुष्णन्।
सन्धिं सद्भिर्न वाञ्छत्यथ कुमतिजनैर्दीव्यति द्यूतमुख्यै–
र्नाना संसारबन्धप्रचयपरशतावद्यवद्भिर्विनोदैः।।२६६।।

दुष्कृतप्रधानं जीवनं दुष्कृतोत्तरमपि भवतीत्याह–प्राक्कर्मेति। प्राग्जन्मानुष्ठितैः शरीरारम्भकैः प्रारब्धाख्यैः कर्मभिः स्वरूपानुरूपकर्तव्यबोधवारकैः क्षिप्तस्तिरोहितो बोधः स्वरूपकर्तव्यज्ञानं यस्य स तथोक्तो जनः अशुभैः पापैर्दुःखफलैः कर्मभिः कृतम् उत्पन्नं रोगैस्त्रिविधैरन्यैश्च दुःखैरभिभूतं बाधितसत्कर्मयोग्यताकं वपुः क्षयचयमयं स्थूलं शरीरं, स्वम् आत्मानम्, मन्वानः, सततं जानन्, अत एव विरुद्धैरुत्तरशुभावस्थावारकैः, आचरणानां कामकोपाधीनकर्मणां शतैः समूहैः, कृतम् उत्पादितं यद् अदृष्टम् अधर्मरूपं स एव बन्धो जनानन्तरेऽपि सत्पथप्रतिबन्धस्तम् प्रकर्षेण पुष्णन् दृढीकुर्वन्, सद्भिरसत्कर्मवारकैर्महापुरुषैः सह सन्धिम् औन्मुख्यं न वाञ्छति चेतसा द्वेष्टि, अथ च नानाविधा ये संसारबन्धा वृथाकामकोपहेतवः कुसंस्कारास्तेषाम् प्रचयपराणि वर्धकानि शतान्यगणितानि अवद्यानि पापानि तद्वद्भिः कुमतिभिर्जनैः सार्धं द्यूतमुख्यैर्विनोदैर्दीव्यति क्रीडति। न कदाऽप्यवधानेन कल्याणपथम् परामृशतीति भावः।

भावार्थ – पूर्वजन्म के पापपुण्य कर्मों से शरीर और मन की रचना होती है, उसके अनुरूप ही जीवन की सारी गतिविधियाँ होती हैं। पापों की प्रधानता वाले लोग पाप मार्ग पर ही चलना पसन्द करते हैं, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि पूर्वजन्म के पापकर्मों से जिनकी बुद्धि मारी जा चुकी होती है वे पापमय अपने शरीर को ही जो कि नाना रोग दुःखों से जकड़ा रहता है आत्मा मानते है यानी उनका देहाभिमान कुछ ज्यादा ही बढ़ा रहता है। वे कभी भी शान्त भाव से अपने को शरीर से भिन्न सोचने की स्थिति में नहीं होते। इससे इस जन्म में भी पूर्व जन्मों की तरह अपने स्वरूपानुरूप कर्तव्यों के विपरीत ही सोचते और कर्म करते हैं। इससे आगे भी उनका पाप प्रारब्ध



पुष्ट होता रहता है। इससे वे सत्पुरुषों से तालमेल नहीं बनाते, उनकी न सुनते न मानते हैं, और उन लोगों से मिले रहते हैं जो केवल अनेक प्रकार के संसार बढ़ाने वाले पाप कर्मों में ही लिप्त रहते हैं, उनके साथ वे चोरी जुवा आखेट जैसे अनर्थकारी कर्म करते हुए अपना मनोरंजन करते रहते हैं।

कामाद् भ्रश्यद्विवेकः प्रचरति कुपथे कोपमित्रश्चिरेण,
दुश्चिन्तस्यास्य लोभो धृतहठलकुटो वर्धयन् कामकोपौ।
अन्तर्वृद्धश्चिरायासुररुचिकुहनाजालमालास्वथैनं,
रुन्धन् रुन्धन्नजस्रं शतनिरयवलत्क्लेशबद्धं विधत्ते।।२७०।।

अणीयांसोऽपि कामकोपलोभाः सङ्गेन वर्धमानाः क्लेशमयं संसारं वर्धयन्तीत्याह–कामादिति। कामाद् विषयगताद् भ्रश्यद्विवेकः क्रमेण क्षीयमाणतत्त्वधीर्जनः, कोपमित्रः कोपरूपपरिणतकामसहायश्चिरेण चिरकालं काम्यान्वेषणपरः कुपथे कल्पितकाम्यार्थमार्गे प्रचरति भ्राम्यति। दुश्चिन्तस्य काम्यविषयकवितथकल्पनावतोऽस्य लोभः काम एव धनीभूतो लोभभावम्प्राप्तो घृतहठलकुटः कामकौपौ वर्धयन्, लकुटहस्तः पशुपालो यथा तर्जनैः पशून् अग्रे सारयति तथा लोभो हठधरः कामकौपौ सुदूरविषयेषु चारयति। अथायं लोभोन्तश्चेतसि वृद्धो रूढः सन् असुराणां हिंसामयीं रूचिं वर्धयन् कुहनाजालमालासु आसुरीषु कपटावरणशतपरम्परासु चिराय अनियतकालम् अजस्रं निरन्तरं रुन्धन् रुन्धन् परवञ्चनोपायेषु स्वेच्छयैवैनम् बध्नन् शतानि ये निरय एव लभ्या वलन्त उपरिष्टादिव निपतन्तः क्लेशास्तैर्बद्धं विधत्ते। नरकैकलभ्यैः क्लैशैरिहैव भूयोभूयो योजयन् अयं लोभश्चिराय जनम्पीडयति। स विचेयः परिचेयो वर्जनीयश्च श्रेयोऽर्थिभिः।

भावार्थ – छोटा सा प्यारा काम क्रोध और लोभ भी बन जाता है तब अनर्थ बहुत दूर बढ़ जाता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि काम से धीरे–धीरे विवेक नष्ट होता जाता है, तब व्यक्ति क्रोध का रूप लिये काम को मित्र की भांति साथ लेकर लम्बे समय तक कुमार्ग में भ्रमण करता रहता है। इससे इसकी बुद्धि पहले से ज्यादा गलत सोचने लगती है तब वही काम सघन होकर लोभ का रूप ले लेता है। लोभ पशुपाल की भांति हठरूपी डण्डा लेकर चलता है, इससे काम और क्रोध आगे आगे बढ़ते जाते हैं यानी उनका अधिकार क्षेत्र फैलता जाता है। यह लोभ जब चित्त में अपना कब्जा कर लेता है तब असुरों की सी हिंसा प्रधान रूचि होती और बढ़ती जाती है,

तब नये नये छलकपट का जाल फैलता जाता है जो दूसरों को फंसाने के लिये माना जाता है किन्तु छली व्यक्ति पहले स्वयम् फंसता हैं। फंसने के बाद वह न तो निकलना चाहता है न निकल पाता है, तब नाना प्रकार के नारकीय क्लेश उसके ऊपर गिरते रहते हैं, उन क्लेशों के घेरे से वह छूट नहीं पाता। इस दुर्दशा से बचने के लिये काम को पहचान कर शुरु में ही हटा देना चाहिये जिससे वह क्रोध लोभ बनकर जीवन को अधिक बर्बाद न कर सके।

**देहात्मैक्यभ्रमान्धा वितथकतिपयार्थेषु संगेन पापा–**
**स्तेषिच्छाम्भोगलुब्धा दधति हतरतिक्रोधवह्नौ ज्वलन्ति।**
**को धर्मः कश्च कामः कथमथ विरतिः कश्च पन्था विमुक्ते–**
**र्यावत्कामान्ध्यदोषो न गलति भविनोऽनादिसंसारमार्गे।।२७१।।**

अनाद्यविद्यासंसर्गजनिताज्ञानकर्मापादितशरीरात्मभावप्रयुक्तैः कामकोपलो–भाख्यैः संगप्रसूतैः संगत एव पुष्टैः संगदोषैः सकलानर्थमयसंसारवृद्धि रिति संग एव विविच्य सेव्यो वारणीयश्चेत्याह– देहात्मैक्येति। देहात्मैक्यभ्रमेणान्धा अपरामृष्टस्वस्वरूपकर्तव्या भोगेषु शब्दादिषु लुब्धा मोहग्रस्ताः पापाः संसारिणो वितथेषु अयथादृष्टेषु शब्दाद्यर्थेषु संगेन तेषु संगभूमिषु इच्छां दधति हृदि धारयन्ति, अथ कदाऽपि निमित्तविशेषप्रतिहतरतिप्रयुक्ते क्रोधाख्ये वह्नौ ज्वलन्ति सन्तप्तलोहवदन्यथा भावेन, वर्तन्ते। कामकृतमज्ञानं सर्वानर्थबीजमिति तद्वारणीयमित्याह–को धर्म इति, भविनः संसारिणोऽनादौ संसारमार्गे कामान्ध्यरूपो दोषो यावत् न गलति नश्यति तावत् कः धर्मः ? नहि कामान्धो धर्मे प्रवर्तते, अथ कामश्च कः ? कामान्धः कामानपि यथोचितं संग्रहीतुं सेवितुमपि न पारयति। कामायापीन्द्रियजयोऽपेक्षणीयो भवति, अथ कथं विरतिः ? दोषदर्शनजन्या हि सा सञ्चीयते, विमुक्तेः संसारबन्धध्वंसस्य, पन्था उपायो ज्ञानकर्मभक्तिप्रपत्तिषु कस्तस्य स्यान् न कोऽपि, कामो नृणां सर्वपथ प्रलोपी। तस्मात् सङ्गजः कामः सङ्गभङ्गेन जेय इति भावः।

**भावार्थ –अज्ञान से शरीर मिलता है, उससे और अज्ञान होता है, तब शब्दादि विषयों में लगाव होता और उन्हें पाने की इच्छा होती है साथ ही शब्दादि विषयों के प्रति ऐसा अन्यथा ज्ञान होता है कि उससे समुचित रूप से वे शब्दादि भी नहीं मिलते, तब क्रोध की चिनगारी उठती और ज्वाला का रूप लेकर अपने आश्रय को जलाने लगती है। तब ज्ञान नष्ट हो जाता है।**



तब न तो धर्म समझ में आता है, न धर्मकार्य हो पाता है। उस अवस्था में तो कामसुख भी नहीं मिल पाता, काम सुखके लिये भी कुछ संयम और विवेक अपेक्षित होता है। काम दोष दर्शन को ढकता है जिससे वैराग्य नहीं होता, तब मुक्ति समझ में नहीं आती और न चाही जाती है, तब मुक्ति के उपायों का विवेचन विश्लेषण स्वीकार अनुष्ठान और दृढ़ता आदि की बातें कल्पना में भी नहीं आती। तब कल्याणपथ अज्ञान के अन्धकार में ढका ही रहता है और जीवन वृथा बीत जाता है। इससे काम पर अंकुश लगाना चाहिये।

**कामेष्वर्थेषु सक्तिः शुभमतिहरणी धर्मदृष्टिम्पिधत्ते,**
**दुःखेष्वेवान्यथार्थागमसुखसजनात्सौख्यबुद्धिञ्च सूते।**
**सेयं वार्या शुभाप्त्यै सुजनसुकृतधीशुद्धभक्त्या प्रपत्त्या,**
**श्रीशे सर्वाश्रये स्वाखिलमतिसुकृतीर्न्यस्य सद्भिर्नमद्भिः।।२७२।।**

''अर्थकामप्रसंगेन क्षीणा सुमतिसन्ततिः। पुमर्थमखिलं रून्धे ततः सङ्गं विवर्जयेद्'' ''इत्याह–कामेष्वर्थेष्विति। कामेषु भोगेषु अर्थेषु कामोपायेषु सक्तिः अनुरागः, शुभमतिहरणी शुभामात्मकल्याणविषयिणीम् मतिं हरतीति, तथोक्ता, तदेव विवृणोति–धर्मदृष्टिमिति, धर्मदृष्टिं धर्मेषु विश्वासं श्रद्धां च पिधत्त आवृणोति, अन्यथा अधर्ममयोपायैरर्थागमसुखेषु सजनाद् आसक्तिजननाद् दुःखेषु दुःखहेतुषु एव सौख्यबुद्धिं विपरीतज्ञानञ्च सूते जनयति। सा इयमुक्ता सक्तिः शुभाप्त्यै मोक्षकल्याणलाभाय, सुजनैः सत्पुरुषोपदेशैः, सुकृतैः भगवत्प्रीत्युद्देश्यकनिष्काम–कर्मानुष्ठानैः धियाऽर्थपञ्चकज्ञानरूपया, एभिस्त्रिभिरुपायैः शुद्धया निष्काम–याऽविच्छिन्नया, भक्त्या, भगवति श्रीमन्नारायणेऽनुरागविशेषेण, तत्परिणामभूतया प्रपत्त्या शरणागत्या च सर्वाश्रये सकलोपायफलभोगभोक्त्राधारभूते श्रीशे भगवति स्वस्य अखिला निःशेषा मतीः चिन्तनानि उपायादिविषयाणि सुकृतीः सत्कर्माणि च न्यस्य तदेकाधीनतयाऽवधार्य, नमद्भिः सकलत्यागफलभूतप्रणिपातपरैः सद्भिर्लब्धस्वरूपकर्तव्यप्राप्तव्यबोधैः वार्या निवारणीया। तत एव परमकल्याणसम्भव इति भावः।

**भावार्थ – अर्थ कामों में लगाव बढ़ने से कल्याण पथ की बुद्धि मारी जाती है, तब बुरे उपायों से धन कमाने की इच्छा और प्रवृत्ति होती है और वह गलत धन ही सुखरूप और सुखों का साधन समझ में आने लगता है, तब कल्याणमार्ग सदा के लिये बन्द हो जाता है। इससे कल्याण के इच्छुक सज्जन सत्संग सत्कर्म सद्बुद्धि और इन उपायों से बनने वाली शुद्ध भक्ति**

और शरणागति से अर्थकामों के प्रति उस लगाव को रोकते हैं। शरणागति के फलस्वरूप वे सदा भगवान् के प्रति साष्टांग प्रणिपात प्रस्तुत करते रहते हैं। बुद्धि शुद्धि का एकमात्र यही उपाय हैं। शुद्ध बुद्धि से ही कल्याण सम्भव है।

कामः कामार्थधर्मानपहरति नृणां दुर्विवेकानुषङ्गात्,
मार्गान्मुक्तेर्निरुन्धे यमनियमहरः स्वात्मबोधप्रहाणात्।
उद्यन् प्रेयान् मृदुत्वान्मधुमयरचनो विश्वचारुत्वचोरः,
सोऽयं दूरादुपेक्ष्यः क्षणविकृतिवशाद् दुःसहज्वालघोरः।।२७३।।

कामस्यानियन्त्रितस्य सकलपुरुषार्थहरत्वात्सदैव वशनीयतामाह— कामइति। कामो विषयस्पृहातिरेकः, नृणां कामम् अर्थं धर्मं चापहरति, कामसुखायापि काम्येषु किञ्चित्कालं संयमोऽपेक्षणीय इति तदभावात् काम एव कामं हरति, प्रमादवर्धकतयाऽनियतव्ययकारितया च उद्यमं धनागमञ्च रुन्धन् अर्थमपि हरति, क्रियासु समुचितप्रवृत्तिवारकतया धर्ममप्यपहरति, दुर्विवेकानुषङ्गात् विषयैर्योजयित्वैवात्मनोऽनुसन्धानस्वभावापादनात्, स्वात्मनो यथार्थबोधस्य प्रहाणाच्चिराय त्यागात्, यमनियमहरः कामो मुक्तेर्मार्गान् ज्ञानकर्मभक्तिप्रपत्तीः निरुन्धेऽवरोधयति। अस्य दुर्वर्जनीयतामाह—उद्यन् इति। उद्यन् हृदि जायमानो मधुमयरचनोऽयं कामो मृदुत्वाच्छिशूनामिव विश्वचारुत्वचोरः जगति दृष्टानां कल्पितानाञ्च सकलसौन्दर्याणामेक एवाश्रय इव प्रतिभासमानः, प्रेयान् निरतिशयप्रियो भवति कामिनां, तेन कस्तत्त्यागप्रसंगः, सोऽयं कामो दूरादेव उपेक्ष्योऽनादरार्हः, सर्वदोषाधिवासोऽपि, दुःसहज्वालोऽग्निरिव क्रोधात्मा अत एव घोरो भयावहो भवति श्रेयः प्रेयोऽर्थिनां, तेन न कदाऽप्यस्य स्थानं हृदये देयमिति भावः।

**भावार्थ — अनियन्त्रित काम सदा ही सारे पुरूषार्थों में बाधक होता है इससे इसे सदा वश में रखना चाहिये, इस आशय से कहते हैं कि यह काम हमारे काम की भी पूर्ति में बाधक है क्यों कि काम के लिये भी कुछ संयम अपेक्षित होता है, उद्यम का विरोधी होने और अधिक व्यय कराने से यह अर्थ का भी विरोधी है, संयम नियमों के बिना कोई धर्म नहीं होता, काम संयम नियम रोककर धर्म को भी रोकता है। कामी अपने आपको विषयों से जोड़कर ही सदा देखता है, इससे अपने वास्तव असंग स्वरूप का भान न हो पाने से मोक्ष की कल्पना नहीं हो पाती, तब मोक्ष के उपाय ज्ञानकर्म संन्यास भक्ति प्रपत्ति आदि उपायों पर दृष्टि नहीं ठहरती, इस प्रकार यह चारों पुरूषार्थों का**



**विरोधी है। यह अपने जन्म के समय फूलों की कोमलता और किञ्जल्क की मधुरता लिये रहता है, यह पुष्पधन्वा कहा भी जाता है, इससे यह शुरू में सबको बहुत प्यारा लगता है इससे इसे छोड़ने की कल्पना नहीं हो पाती, इसमें वह सुन्दरता दीखती है जो संसार में कहीं भी नहीं होती किन्तु थोड़ी सी ठोकर लगते ही यह एकदम बदलकर आग की लपटों की तरह भयानक क्रोध बन जाता है, यह रहस्य कम ही लोग जान पाते हैं। वे नहीं समझ पाते कि मेरा बहुत प्यारा काम ही यह भीषण क्रोध बन गया है, किन्तु कल्याणकामी को यह रहस्य ध्यान में रखना चाहिये और इस काम को दूर से ही नमस्कार करते रहना चाहिये, न यह निकट होगा, न प्यारा होगा, न क्रोध बन पायेगा। जिससे विवेक की हानि हो और कर्तव्य भूल जाये।**

स्वप्रत्यक्षानुभूत्या कलयति सतनुश्चेतनः कर्तृभावं
कर्तृत्वञ्चात्मनिष्ठं न च भवति कुतश्चित्प्रबाधोऽनुभूतेः।
सर्वं श्रीशप्रयोज्यन्त्रिजगति भविनां कर्तृभोक्तृत्वभावा—
वप्येवं शास्त्रतस्तत्तु न विदुरसुरा नान्यमीशं सहन्तः।।२७४।।

स्वस्मिन् कर्तृत्वभोक्तृत्वभावारोपो मोक्षपथे महान् प्रतिबन्धः काम इव वर्जनीय इत्याह—स्वप्रत्यक्षेति। सतनुश्चेतनः प्राणी शरीरं वहन्तमेवात्मानं लभते, शारीरान्व्यापारांश्च प्रत्यक्षयति, देहादात्मनस्तदन्तर्यामिणश्च विवेकं नाकलयति, तेन स्वीयया प्रत्यक्षानुभूत्या कर्तृभावम् भोक्तृत्वञ्च आत्मनिष्ठं कलयति। अस्या अनुभूतेः कुतश्चिदपि प्रबाधोऽशास्त्रविदो न भवति। वेदान्तादेः शास्त्रतः त्रिजगति भविनां संसारिणां शुभमशुभं हितमहितं सदसच्च भोग्यजातं सर्वमपि श्रीशेन परमात्मना सङ्कल्पेन प्रयोज्यम् भवति एवं कर्तृभोक्तृत्वभावावपि भवतः। तत्तु तत्त्वम् अन्यम् ईशं न सहन्तोऽसुरा न विदुः नैव मन्यन्ते। परासहनं तत्त्वासहनञ्चासुराणां स्वभावः श्रेयोऽर्थिभिर्वर्जनीय इति भावः।

**भावार्थ — चेतन अपने को कर्ता और भोक्ता मानता है, यानी पुरूषार्थों के अर्जन और उपभोग में अपने को स्वतन्त्र मानता है। बीच में कहीं ईश्वर का हाथ नहीं समझ पाता, यह अज्ञान मोक्षमार्ग का प्रबल विरोधी है इससे इसका त्याग करना चाहिये, इस आशय से कहते हैं कि शरीर से अपने को अलग न मानता हुआ, शरीर व्यापारों को प्रत्यक्ष देख कर उन्हें अपना ही मानकर चेतन अपने को कर्ता और भोक्ता मानता है। शास्त्रज्ञान के अभाव में उक्त मान्यता कहीं से बाधित भी नहीं होती, किन्तु वेदान्तादिशास्त्रों के**

**अनुसार संसारी चेतनों को प्राप्त होने वाले सारे शुभ अशुभ भोग केवल परमात्मा के संकल्प से प्राप्त होते हैं, ऐसे ही कर्ताभोक्तापन भी उनके संकल्प के अधीन हैं। वास्तव कर्ता और भोक्ता, परमात्मा ही हैं, संसारी चेतन तो उनके संकल्प से कुछ कुछ करते और भोगते हुए अपने को पाते हैं। इस तथ्य को वे असुर लोग स्वीकार नहीं कर सकते जो अपने अलावा दूसरा कोई ईश्वर नहीं मानते। कल्याण के इच्छुक सत्पुरुष अपने मनसे आसुरी भावना का त्याग करते हैं।**

**तिर्यञ्चः कीर्णभावा निजनिजरुचिताहारलाभे यतन्तो–**
**ऽथान्येष्टेभ्यो द्विषन्तः प्रकृतिपरवशाः सन्ति तद्वन्नृदेवाः।**
**एके मोक्षानुकूलाः कतिचन च परे दुःखबन्धे सयत्ना–**
**स्ते देवाः श्रीशभक्ता अथ हरिविमुखाः पूर्वदेवाश्च दृष्टाः।।२७५।।**

दैवासुरसम्पद्विभागम्प्राणिषु सर्वत्र निर्दिशति–तिर्यञ्च इति। कीर्णा मिथो नानाभेदभाजो भावा मनःसंस्कारा येषान्ते तथोक्तास्तिर्यञ्चः पशुमृगपक्षिसरी–सृपप्रभृतयो जन्तवः प्रकृतिपरवशाः शास्त्राधिकाराभावात्प्रकृत्यैव स्वया नेया, निजनिजरुचितानां गृहीतास्वादानामाहाराणाम्भोज्यादीनां लाभे सयत्नाः श्राम्यतः अथ चान्येषां सजातीयविजातीयानां जन्तूनाम् इष्टेभ्यो द्विषन्तोऽज्ञाना–धिक्यादीर्ष्यावशतया परापेक्षितानर्थान्नाशयन्तः सन्ति। तद्वदेव नृदेवा नराधिपपर्यन्ता मनुष्या अपि सन्ति। (अथ सत्त्वप्रधाना) एके मोक्षानुकूलाः सन्ति, परे च कतिचन दुःखबन्धे दुःखरूपम्बन्धं लब्धुं सयत्ना अज्ञानात् स्वानिष्टार्थ एव यतन्तः सन्ति। ते मोक्षानुकूलाः श्रीशभक्ता भगवद्भक्ता देवप्रकृतयो देवा अथ हरिविमुखा भगवद्भक्तिविरोधिनः, पूर्वदेवाः सुरद्विषस्तच्छीलास्तदाख्या दृष्टा आसृष्टेर्दृश्यते। दैवी सम्पद् विमोक्षायार्जनीया आसुरी च बन्धहेतुर्वर्जनीया।

**भावार्थ – दैवी और आसुरी सम्पत्ति का भेद सभी प्राणियों में सामान्य रूप से बतलाते हुए कहते हैं कि मानव से नीचे के पशु मृग पक्षी कीट आदि जीवों का स्वभाव एक दूसरे से बहुत भिन्न देखा जाता है। उन्हें शास्त्रों में अधिकार न होने से केवल अपनी प्रकृति से ही सञ्चालित रहते हैं। वे अपने अपने पसन्द के आहार तलाशने में लगे रहते हैं। पराये आहार और सुविधा का उन्हें ध्यान नहीं रहता। उसे वे अज्ञान से या ईर्ष्या से बर्बाद करते रहते हैं। राजा महाराजा तक की मानव जातियाँ भी प्रायः ऐसी ही देखी जाती हैं। कहीं कहीं धर्मबुद्धि मानव प्रकृति का अपवाद बनती है। कुछ सात्त्विक मानव**



**मोक्ष मार्ग पर चलते हुए भगवान् के भक्त होते हैं वे देवों जैसी रक्षात्मक प्रकृति होने से देव हैं किन्तु दूसरे लोग ईश्वर का अस्तित्व सह नहीं पाते, उनमें भक्ति के लक्षण, नहीं होते। उनमें असुरों का स्वभाव देखा जाता है, इससे वे असुर कहे जाते हैं। देवों से पहले उत्पन्न होने से असुर पूर्व देव कहे जाते हैं।**

**शास्त्रैरेवानुकूल्यम्भगवति भविनाम्भाव्यतेऽन्यो न पन्थाः,**
**कल्याणस्येत्यजानन् सुरऋषिमुनयः क्षिप्तदेहानुबन्धाः।**
**निर्देहत्वं सदैष्यम्भवति मतिमतां कर्तृता भोक्तृता का,**
**को बन्धः कर्मभिन्नः स च गलति फलैरीशजाग्रद्दयातः।।२७६।।**

"शास्त्रसरण्यां यान्तो यन्ति क्रमेण सन्तो हरिशरणम्। शास्त्रैरेव सुमेधाश्चलति न तु तथा शक्यते दुर्मेधाः" इति भगवतोऽध्यायार्थोपसंहारमनुकुर्वन्नाह–शास्त्रैरिति। शास्त्रैर्योगिनामपि प्रत्यक्षानर्हविषयैर्वेदादिभिरेवअपूर्वज्ञानजननैर्न प्रमाणान्तरा–धीनोपायेन भविनां संसारमार्गचारिणां जन्तूनां विषये, भगवति सर्वान्तर्यामिणि, आनुकूल्यं संसारगर्तादुद्धरणसङ्कल्पः, भाव्यते जन्यते। कल्याणस्य स्वरूपानुरूपा–वस्थालाभरूपविमुक्तेरन्यः पन्था उपायो नास्तीत्यजानन् सुराः संसारनियमनिर्वाहका देवा, ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः, मुनयः श्रुतार्थसारमननव्रतिनः पराशरपाराशर्यशुकादयः। ते हि क्षिप्तोऽनादृतो देहः शरीरन्तदनुबन्धाश्च वित्तबन्धुमित्रकलत्रादयो यैस्ते तथोक्ता अभूवन्, निवृत्ताज्ञाननिमित्तदेहादितया यथार्थज्ञानवन्तस्त इति भावः। देहं विना जीवनव्यापारासम्भवप्रश्न आह– निर्देहत्वं सदैव एष्यं वाञ्छनीयम् भवति मतिमतां ध्यानालम्बनीकृतासंगात्मतत्वानामुत्तीर्णलोकाभिलाषगर्तानाम्मुमुक्षूणां, तेषां कर्तृता का ? भोक्तृता च का ? न काऽपीति भावः। कर्मभिन्नो बन्धस्तेषाम्मते को ? न कोऽपीत्यर्थः। स च कर्मबन्धो गलति निपतति फलैर्भुक्तैः, ईशस्य भगवतो जाग्रत्या दयातश्च स गलति। "दयापथोऽनुसर्तव्यः श्रेयसे शुद्धबुद्धिभिः। श्रीशो मिलति भक्तेभ्यो यत्र नित्यम्पदेपदे।।"

सन्त्यक्तलोकविषयं कृतिनम्मुमुक्षुन्तत्त्वावबोधपथलब्धपदाब्जबन्धम्।।
श्रीशः समुद्धरति चेतनमात्मनैव दीप्तञ्चिरेण भवसिन्धुमहार्थरत्नम्।।

**भावार्थ – शास्त्रपथ पर चलकर ही कल्याण प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं, दैवी सम्पत्ति वाले शास्त्रपथ पर चलते, भगवान की भक्ति करते और परमकल्याण मोक्ष पद प्राप्त करते हैं किन्तु आसुरी सम्पत्ति वाले असत्य**

का सहारा लेते, ईश्वरीय सत्ता को सदा झुठलाते रहते, दुःखों में ही बन्धे रहने के उपाय हिंसात्मक व्यापार करते रहते हैं। देवता ऋषि–मुनियों ने शुरू से ही यह जाना है कि शरीर सम्बन्ध को मानकर अपनी, पहचान बनाना धोखा है, वे शुद्ध आत्मस्वरूप पर ही निष्ठा रखते हैं, लोक व्यवहारों को महत्त्व नहीं देते। कर्मों को जो कि काम क्रोध मूलक होते हैं, उन्हें सदा के लिये बन्द कर देते हैं, कुछ सीमिति कर्म जो करते हैं उन्हें भी ईश्वरीय प्रेरणा से उनकी ही सन्तुष्टि के लिये होता हुआ मानते और अपने को कर्ता और भोक्ता नहीं मानते। वे शरीर सम्बन्ध को न मानने के कारण अपने को कर्ता और भोक्ता नहीं मानते, वे प्राचीन कर्मों के सिवा दूसरा कोई संसार बन्धन भी नहीं मानते, वे जानते हैं कि बन्धन के बने हुए कारण प्राचीन कर्म अपने फल देकर स्वयं छूट जायेंगे और जो बचे होंगे वे भी शरणागति के फलस्वरूप भगवान् अपने नियम के अनुसार समाप्त करके मुझे वैसे ही अपना लेंगे जैसे पहले औरों को अपना चुके हैं।

**धर्मेष्वास्था तदीशेऽपि च दिशति बहून् धैर्यमुख्यान्गुणौघा–**
**न्देवत्वं तेन जन्तुर्भजति चलति चाध्यात्ममार्गे मनस्वी।**
**कामं क्रोधं च मोहं वहति हतमतिः पापचित्तो निरास्थो,**
**दोषान् संसारहेतून्सृजति मतिमुषस्तेन नाप्नोति शान्तिम्।।२७७।।**

धर्मश्रद्धातदभावाभ्यां दैवासुरसम्पद्विभागो ज्ञेय इति सूचयन्नाह–धर्मेष्विति। धर्मेषु परमकल्याणानुकूलेषु भगवद्ध्यानस्मृतिस्तोत्रपाठार्चनप्रणामादिषु सदाचार्यश्रेणीसन्दिष्टेषु, तदीशे धर्मप्रतिपादकफलप्रदनिर्वाहकभूते परमात्मनि तस्यान्तर्यामित्वमुखे चेतनसम्बन्धशतेऽपि च आस्था सत्त्वफलप्रदत्वनिर्णयः, बहून् अगणितान्, धैर्यमुख्यान् क्षमादयासमभावसात्त्विकश्रद्धासदाचार्यनुगमनादीन्, गुणौघान् गुणसमूहान्, दिशति लम्भयति, तेन जन्तुर्देवत्वम्भजति सत्त्वबृद्ध्या उत्कृष्टानेवार्थान् ध्यायति, मनस्वी सदुद्देश्यनिष्ठः सोऽध्यात्ममार्गे चलति च। अथ निरास्थ उक्तास्थारहितः, तेन पापचित्तः स्वम् एव सर्ववाञ्छितार्थाहरण–परम् मन्वानो हिंसास्तेयादीन् अपराधान् अप्यालम्बमानः, हतमतिः सद्बुद्धिशून्यः, कामम् असद्विषयाभिलाषं, क्रोधं विपक्षजिघांसामूलम्, मोहं क्षुद्रार्थत्यागाशक्तिं च वहति धारयति, संसारहेतून् क्षुद्रजनसङ्गक्षुद्रार्थलिप्साप्रमुखान्, दोषान् दुष्टा वृत्तीः, सृजति, तेन तेषु दोषेषु एव पतति, तदतिरिक्तं शुभं किमपि नालम्बते, ततः शान्तिं कामादिदोषाभावसुखं न आप्नोति, दुःखमेव भुङ्क्ते। तेन नास्तिक्यं वर्जयित्वा भगवदनुरागमार्गेण गन्तव्यमिति भावः।



भावार्थ – धर्म के प्रति आस्था और अनास्था से भी दैवी और आसुरी सम्पदा का भेद होता है यह सूचित करते हुए कहते हैं कि भगवद्धर्मों के प्रति और उनके स्वामी भगवान् के प्रति आस्था यानी उनके द्वारा कल्याण का भरोसा होने से मनुष्य में धैर्य दया क्षमा सेवाभाव आदि बहुत से गुणसमूह होते हैं, वे गुण मानव को देवत्व देते हैं और वह अध्यात्मपथ पर स्वयं चला करता है, वह दृढ निष्ठा का धनी होता है। किन्तु जिसे वह आस्था नहीं है, वह पापमय भावना रखता हैं, उसकी बुद्धि मारी जाती है, वह काम क्रोध और मोह पालता है इससे संसार बढ़ाने वाले दोषों की सृष्टि करता रहता है, आगे चलकर उन्हीं संसारवर्धक दोषों के वातावरण में पड़ता है और कभी शान्ति नहीं पाता। उक्त दोनों परिणामों पर विचार करके यथासम्भव धर्ममार्ग का चयन करना चाहिये।

**धर्मे श्रद्धालवस्तत्प्रमितय उदितं श्रीशतो वेदजात–**
**म्बोद्धुन्तर्कादिभिस्तन्निपुणसुचरितान्सात्त्विकान् संश्रयन्ते।**
**मन्दश्रद्धाः सदम्भाः किमपि किमपि संगृह्य वेदार्थवाचा,**
**वाचाटा मन्दभाग्यान् सुमतिविरहितान् विश्वतो मोहयन्ति।।२७८।।**

उक्तमर्थं विशदयति–धर्मे श्रद्धालवो धर्मश्रद्धास्वभावास्तत्प्रमिति–करणन्तद्यथार्थज्ञानहेतुमीशोद्गतं निर्दोषप्रमाणभूतं, वेदजातं श्रुतिवचनसमूहं तर्कादिभिः सह बोद्धुं यथार्थतयाऽवगन्तुं तन्निपुणान् शब्दवाक्यतर्क–शास्त्रत्रयप्रवीणान्, सुचरितान् अधीतशास्त्रानुगुणानुष्ठानरतान्, सदाऽचार्यान्, संश्रयन्ते गुरुभावेन श्रद्धया सेवन्ते। तेन ते तत्त्वज्ञाननिधयो भवन्ति। अथेतरान् आह–मन्दश्रद्धा वेदार्थे धर्म एव खण्डितश्रद्धाः, स्वेच्छाविरुद्धेषु वेदार्थेषु निःश्रद्धा अत एव स्वमनीषितार्थेषु अधर्मेष्वपि धर्मरूपावरणैर्धर्मत्वं ख्यापयन्तो दम्भपराः सदम्भा, स्तेन स्वमनीषितं किमपि किमपि निष्प्रमाणमधर्म्यमर्थजातं, वेदार्थवाचा वेदवाचा वेदार्थस्मृतीतिहासपुराणवाचा चाप्रतिपाद्यमपि प्रतिपादितत्वेन संगृह्य समुच्चीय, वाचाटाः प्रमाणासहवाग्विन्यासपराः, सुमतिविरहितान् तमोमयान् दुष्प्रज्ञान्, विश्वतः सर्वत्र सुलभान् मोहयन्ति मोहग्रस्तानेव शास्त्रवचनव्याजेन नितराम्मोहगर्ते पातयन्ति।

**भावार्थ – धर्म के प्रति श्रद्धा के तारतम्य से वेदादि शास्त्रों के अर्थ लेने में अन्तर हुआ करता है। जिन्हें पूरी श्रद्धा होती है वे धर्म का समुचित बोध कराने वाले वेदादि शास्त्रों और उनके सहायक तर्कों में प्रवीण, शुभकर्म–परायण**

सात्त्विक आचार्यों की गुरुभाव से पूरी श्रद्धा से सेवा करते हुए यथार्थ की प्राप्ति करके कृतार्थ होते हैं किन्तु जिन्हें श्रद्धा कम होती है वे वेदादि ग्रन्थों से मनमाना अर्थ ढूंढते हैं और कुछ अपने मतलब की बात पाकर दम्भ के सहारे उन अज्ञानियों का मोह बढाया करते हैं जो पहले से ही मोहग्रस्त रहते हैं। ऐसी प्रवृत्तियों से भी दैवी आसुरी सम्पदा का अन्तर जाना जाता है।

**नास्तिक्यैकान्तसक्ताः श्रवणभजनसत्कर्मविद्वेषशीला,**
**वेदान्सेव्यांस्तदर्थान्प्रति कुमतिवचोराशिमेवोद्गिरन्ति।**
**स्वं स्वम्मार्गं श्रयन्तो विधृतमिव फलम्प्रेप्सवः प्रद्रवन्तो,**
**बुद्ध्यारूढं लभन्ते स्वकृतिकृतमलं श्रीशसंकल्पसिद्धम्।।२७६।।**

भगवद्द्वेषशीलानामपि पुरूषार्थलाभो भगवत्सङ्कल्पादेव भवति, तेन तैरपि भगवानेव भजनीय इत्याह–नास्तिक्यैकान्तेति। नास्तिक्यम् प्रारब्धकर्मानङ्गींकारः, तत्रैव एकान्तेन प्राधान्येन सक्तास्तद्विरुद्धचिन्ताद्वेषिणः अत एव भगवत्प्रीतिफलेषु श्रवणे सत्कथादीनाम् भजने भगवन्नामकीर्तनार्चनादौ, सत्कर्मणि भगवत्प्रीतिमुद्दिश्य निष्कामं क्रियमाणे कर्मणि च विद्वेषोऽत्यसहनं शीलम् अभ्यासो येषान्ते तथोक्ता जनाः सेव्याननुशीलनीयान् वेदान् प्रति तदर्थांश्च प्रति कुमतिर्हानिकरत्व–धीस्तत्प्रयुक्तं वचोराशिम् एव उद्गिरन्ति सर्वत्र भाषन्ते। बहुप्रकारास्ते विधृतं कुत्राप्यवलम्बितमिव, बुद्ध्यारूढं कल्पनामात्रे स्थितम् फलं वाञ्छितार्थम्, प्रेप्सवः प्राप्तुमिच्छन्त, प्रद्रवन्तः प्रकर्षेण धावन्त इव भृशयत्नाः, स्वकृतिकृतं स्वोद्योगसम्पादितम् अलं वस्तुतस्तु प्राधान्येन श्रीशस्य विष्णोर्भगवतः सङ्कल्पेन सिद्धम् अतिचिरपूर्वत एव भगवतः संकल्पे दर्पणे दृश्यमिवावस्थितं, तत्फलं लभन्ते। तत्रैवार्थे ते सदुद्योगा भवन्ति यो भगवता चिरपूर्वमेव संकल्पितो भवति। तेनासुरैरिव सर्वैरपि भगवानेव मनोमन्दिरसंलक्ष्यकर्माऽऽराधनीय इति भावः।।

भावार्थ – भगवान् को जो लोग नहीं मानते बल्कि द्वेष रखते हैं उनके उद्यम भी भगवान् के कल्याणमय संकल्प से वैसे ही सफल होते हैं जैसे मानने वालों के। क्यों कि नास्तिकता चित्त की एक अवस्था है जो अन्य भावों की भाँति भगवान् के चाहने से ही बनती है। इससे भगवान् वास्तव में सब के लिये समान रूप से सेवनीय हैं। यही कहते हैं कि जो लोग नास्तिकवाद से ही मजबूती से जुड़े होते हैं इससे भगवानृ की सन्तुष्टि के हेतुभूत श्रवणभजन और निष्काम कर्मों से चिढ़ते रहते हैं, वे वेदों को भी एक हानिकारक साहित्य मानते हुए उनके अर्थों के प्रति श्रद्धा के बदले विद्वेष ही



प्रकट करते रहते हैं। वे लोग भी जो कुछ चाहकर कुछ उद्यम करते हैं और उद्यम के फल के रूप में पाते हैं वह सब भगवान् के प्राचीन संकल्प में किसी विशाल चित्र के अन्दर एक बिन्दु की तरह बने रहते हैं। उद्यम से भी ऐसा किसी को कुछ नहीं मिलता जो भगवान् के संकल्प से बाहर हो। ऐसी स्थिति में जैसे असुरलोग कभी भगवान् का महान् पराक्रम देखकर झुकते और स्तुति करने लगते हैं वैसे ही अपने चित्त के अन्दर भगवान् के अनेक महत्त्वपूर्ण कर्म, किसी भावना का अचानक उभर कर सफल होना और किसी पुरानी का सदा दबे ही रहना आदि देखकर सभी जनों को भगवान् के प्रति निष्ठावान् बनकर कृतार्थ होना चाहिये।

**सा बुद्धिर्वाञ्छनीया नृहरिकरुणयाऽऽसादनीया तपोभि–**
**स्तस्यै दानार्चनाद्यैर्भवविभवनमत्सौख्यकृत्तोषणीयः।**
**या मायाजालमालां हरति दिशति चालं स्थिरन्तम्पुमर्थं,**
**यस्मिंल्लब्धे न शिष्टम्भवति किमपि नुर्वस्तुतत्त्वं विशिष्टम्।।२८०।।**

कल्याणमयी प्रज्ञा सर्वोपायैरर्जनीयेत्युक्त्याऽध्यायमुपसंहरति–सा बुद्धिरिति। नृहरेर्भक्तक्लेशनिवारकात्, नराकारात् सदाचार्यरूपाच्च, हरेर्भगवतः, करुणया जन्मदया दयया, सा बुद्धिः प्रज्ञा वाञ्छनीया अपेक्षणीया, तपोभिर्यमनियमैरासादनीया लभ्या, भवविभवं लोकैश्वर्यं, नमत्सौख्यं शरणागतानाम् मोक्षसुखञ्च करोतीति तथा भगवान् दानार्चनाद्यैः तस्यै लक्ष्यभूतायै प्रज्ञायै उद्दिशता, तोषणीयः प्रसादयितव्यः, या प्रज्ञा, मायाया जगन्मूलभूताया देहेन्द्रियादिपरिणामाया, जालम् आत्मावरणं, हरति कर्मबन्धध्वंसेन निवारयति, स्थिरम् अनाशिनम् तम् पुमर्थञ्च अलम्, अशङ्कं दिशति प्रस्तौति, यस्मिन् लब्धे प्राप्ते सति, नुः पुरुषस्य विशिष्टम् असामान्यम् महत्, किमपि, वस्तु तत्त्वं वाञ्छनीयं, शिष्टम् अप्राप्तं न भवति।

भावार्थ – विश्व में बुद्धियाँ तो अनन्त प्रकार की हैं किन्तु उनमें सबसे अच्छी वह होती है जो संसार बन्धन से छुड़ाकर परम शान्ति प्राप्त कराये। उसी बुद्धि के लिये भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये, शम दम तप तितिक्षा उपरति आदि तपरूप उपायों से उसे ही प्राप्त करना चाहिये। लौकिक वैभव और मोक्षसुख देने वाले भगवान् को दान व्रत पूजा आदि से उसी बुद्धि के लिये सन्तुष्ट करना चाहिये जो कर्मबन्धनों को काटकर शरीर इन्द्रिय मन आदि अपने परिणामों से ज्ञान को दबाने वाली अपने आत्मस्वरूप को ढकने वाली माया के बन्धनों को दूरकर वह परम पुरुषार्थ प्रदान करे जो मिलने के

बाद पाने योग्य कोई महान् पुरुषार्थ या वस्तुतत्त्व पुरुष के लिये बाकी न रह जाये।

दैवासुरविशेषज्ञो वर्धयन् दैवसम्पदम्।
तत्त्वस्थसत्त्वः सत्कृत्यैराशु सत्तत्त्वमश्नुते।।२८१।।

अध्यायमुपसंहरति–दैवासुरेति। षोडशेऽध्याये दैवीनाम् आसुरीणाञ्च मनोभावविशेषरूपाणां सम्पदां विभागो वर्णितोऽस्ति । विभागानुसारं दैवपक्षीयाणां कल्याणम् आसुरपक्षीयाणाम् अशुभञ्च कथयन् भगवान् अर्जुनं दैवपक्षीयेषु गणयन् कल्याणाय सान्त्वयामास। तदनुसारमध्यायार्थनिष्कर्षमाह–दैवेति। दैवानामासुराणाञ्च विशेषाणां ज्ञोऽनुभवी, तारतम्यपरीक्षाप्रवण इति भावः। तेन आहारसङ्गकर्मभिर्दैवसम्पदं वर्धयन्, तत्त्वस्थं तत्त्वावधारणप्रवणं सत्त्वमन्तःकरणं यस्य स तथोक्तो मुमुक्षुः, सद्भिर्भगवदेकोद्देश्यकैः कृत्यैःशास्त्रोक्तैः, कर्मभिश्चित्तशुद्धावाशु शीघ्रं सत्तत्त्वं जगन्मूलभूतम्परमात्मानम् अश्नुते ध्यानेन साक्षात्करोति।

इति षोडशोऽध्याय

**भावार्थ – सोलहवें अध्याय में भगवान् ने स्वयं २६ दैवी सम्पदाओं का वर्णन करके अर्जुन को समझाया कि तुम दैवी सम्पत्ति से जुड़े हो, तुम्हारा कल्याण होगा। उसके अनुसार अध्याय का निष्कर्ष यह हुआ कि दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा की सूक्ष्म परख करता हुआ व्यक्ति सङ्गति आहार सत्कर्म आदि उपायों से दैवी सम्पदा की वृद्धि करता हुआ एवं तत्त्वबोध में श्रद्धा रखता हुआ यदि निष्काम कर्म करता रहे तो चित्तशुद्धि होने पर शीघ्र ही विश्व के मूलभूत परमात्मा का ध्यान में साक्षात्कार हो जाता है।**

*सौलहवाँ अध्याय समाप्त*



# *अथ सप्तदशोऽध्यायः*

**प्राक्प्रत्यङ्मार्गयानाः क्वचन च मिलिताः स्वां दिशं न त्यजेयु–**
**र्भेदस्तेषान्तु वक्त्रैः प्रचरणभिदया चेक्षितव्यस्तटस्थैः।**
**आहाराचारशीलैर्यजनमुखधियाम्भिन्नताभिर्जनानाम्,**
**भेदं विज्ञाय सन्तो हितधृतमनसस्त्यक्तसङ्गाश्चरन्ति।।२८२।।**

प्रवृद्धसत्त्वाः प्रविहाय सखं संसारिणां शुद्धधियश्चरन्ति।।''
न रक्तवक्त्रान् अतिरक्तचित्तान् गोपुच्छकीशा निकषा चलन्ति।।''

तदेवाह–प्राक्प्रत्यङ्मार्गेति। प्राक्प्रत्यङ्मार्गयानाः पूर्वपश्चिमपथानुसारिणो जनाः, क्वचन च कुत्रापि मिलिताः स्वाम् अंगीकृतां, दिशं न त्यजैयुर्दिगन्तरं न श्रयेयुः, तेषां विपरीतगामिनां भेदस्तु विपरीतमुखदर्शनेन विपरीतगति दर्शनेन च तटस्थैर्न गच्छद्भिरीक्षितव्योऽवधारयितुं शक्य, एवमेव आहारैराचरणैः शीलैः क्रियाद्यभ्यासैर्यजनमुखानां यज्ञदानतपसाम् प्रयोजिकानां धियाञ्च भिन्नता–भिर्जनानां लोकानां दैवासुरविभागभेदं विज्ञाय ज्ञात्वा सन्तः सत्पुरुषाः हितरूपे कर्तव्ये एव धृतम् अवस्थापितम् मनोयेषान्ते तथोक्ताः स्वहितैकनिविष्टमनसो लोके त्यक्तसङ्गा अनासक्ता रागद्वेषप्रसङ्गेष्वपि निर्विकाराश्चरन्ति जीवनं यापयन्ति।

**भावार्थ – सात्त्विक पुरूष सर्वधारण से थोड़ा दूर ही रहते हैं। उनका लक्ष्य असामान्य होता है, उस पर ही उनका ध्यान रहा करता है, कुसंग से लक्ष्य के छूटने का भय रहता है। वे लोगों की गतिविधियों से आहार व्यवहार और क्रियाविशेष के अभ्यास और यज्ञदानतप आदि कर्मों को कराने वाले उनके ज्ञान के स्तर से जान लेते हैं कि इनकी गति किस दिशा की है। विपरीत दिशा वालों से ज्यादा दूर रहते एवम् अनुकूल दिशा वालों के प्रति थोड़ी सहानुभूति रखते हुए भी असंग ही रहते हैं। कभी किसी से लगाव नहीं बढ़ाते। लंगूर कभी बन्दरों का साथ नहीं करते।**

सङ्कल्पो धातुरेकोऽखिलभवविषयः कर्मबद्धास्तु जीवा,
दृग्भेदाद्भिन्नभावा विषमरुचिवशाः संगतिः का न्वमीषाम्।

**सत्सङ्कल्पानुरूप्यं यदि वहति जनस्तद्दयातः कदाचित्,**
**त्रैलोक्ये सर्वसौख्यम्भजति भवपथान्तञ्च मुक्तिम्प्रशस्ताम्।।२८३।।**

कल्याणीम् अद्वैतदृष्टिम्प्रस्तौति–संकल्प इति। धातुर्विश्वस्रष्टुरीश्वरस्य, अखिलभवविषयो देहेन्द्रियमनःपरिणाममूलस्य महदादिपृथिव्यन्तप्रकृति–परिणामक्रमस्य विषये, एक एव भोक्तृत्वभोगभोग्यभोगोपकरणभोगस्थान–त्वादिसामान्यधर्मावच्छिन्नविषयताको न तु देवदत्तत्वादिभूलोकत्वादिविशेषधर्मा–वच्छिन्नविषयताकः सृष्टिमूलभूतः सङ्कल्पो भवति। अथ लौकिकचेतनानाम् बन्धहेतुसङ्कल्पमाह–कर्मबद्धा जीवाः प्राणवन्तस्तु दृग्भेदाद् भिन्नभावा इदम्मम नेदम्मम, प्रियमप्रियमित्यादयो रागद्वेषोदयहेतुभावनायुक्ता भवन्ति। कर्मभेदाद् रुचिभेदस्तेन परिग्रहभेदस्ततो रागद्वेषास्तदधीनानि कर्माणि च भवन्ति। तेन अमीषां कर्मवशसकलरुचिरागद्वेषप्रवृत्तिजुषाम्मिथोभिन्नपरिग्रहाणां संगतिः का नु स्यात् न संसारिणाम्पितृपुत्रगुरुशिष्याणाञ्च सामञ्जस्यं सम्भवीत्यर्थः। सङ्गत्यसम्भवध्यानमूला विरतिस्ततः परमार्थधीप्रवृत्तयस्ततः परमं कल्याणं स्यादिति भावः। अथ धातुः संकल्पस्यैकत्वं जानताम् उत्कर्षमाह–तत्सङ्कल्पेति, अनादौ भवे संसरन् कोऽपि जनो यदि कदाचित् क्वापि जन्मनि, तस्य विधातुरीशस्य, असामान्यदयातः तत्सङ्कल्पस्य आनुरूप्यं कर्माधीनतत्तद्विशेषानवगाहितया साम्यं वहति धारयति (तदा) दुःखहेतुमिथ्याप्रियाप्रियचिन्तारहिततया त्रैलोक्ये लभ्यं सर्वमपि सौख्यं यथावसरम् भजति, भवपथस्य अनाद्यनन्तस्य संसारमार्गस्य अन्तं संसरणसमाप्तिम्भजति। रागद्वेषाणां तदधीनदुःसङ्कल्पानां तद्धीनानाम् बन्धहेतुकर्मणाञ्च समाप्तेः संसारयात्रा समाप्यते, तेन योगी प्रशस्तां सायुज्यमुक्तिञ्च भजति। अतः श्रेयस्कामा, यतयः क्षुद्रसङ्कल्पधारात्यागेन भगवदीयसंकल्पतुल्यम् उदारं स्वसङ्कल्पं साधयितुं यतन्ते।

**भावार्थ – छोटी बाते सोच सोचकर हम छोटे बने हैं। भगवान् महान हैं वे छोटी बात नहीं सोचते, हम भी उनके समान बड़ी ही बातों पर ध्यान रखें तो सारे पुरूषार्थ प्राप्त कर सकते हैं, संसार यात्रा समाप्त हो सकती है, सायुज्य मुक्ति भी मिल सकती है। हम किसी एक समय में किसी एक वस्तु के सारे पहलुओं को नहीं देख पाते, जब कि देख पाना आसान है। हमें कुछ करने या पाने की त्वरा होती है, इससे थोड़ी दृष्टि से आगे बढ़ना चाहते हैं इससे दृष्टि अधूरी रह जाती है, संकल्प क्षुद्र रह जाता है, तब कर्म भी छोटे होते हैं और फल भी छोटा होता है। उदार चिन्तन से छोटे कर्म महान् फल दे देते हैं और क्षुद्र चिन्तन से महान् कर्म छोटे रह जाते हैं। उदार चिन्तन से महान् संकल्प बनायें और महान् से भी महान् फलों के मार्ग पर आगे बढ़ें तो अच्छा हो।**



**कामादिक्षोभहेतावपि सुमतिबलान्निस्तरङ्गान्तरङ्गं,**
**शत्रूणाञ्चैव नित्यं शुभकरणमतिः संयमो वाक्प्रयोगे।**
**अध्यातव्यार्थसङ्गप्रतिहतिरथ च ध्येयमात्रार्थनिष्ठा,**
**सन्तः पञ्चप्रकारन्तप इह मनसो मोक्षकामाः श्रयन्ते।।२८४।।**

''मनः प्रसादः सौम्यत्वम्०'' १६।।०७।। इति गीतोक्तम्मानसन्तपो विवृणोति–कामादिति। काम आदिर्येषान्ते क्रोधलोभमोहमदमत्सराश्चित्तविकाराः क्षोभास्तेषां हेतौ तत्तद्विषयसन्निधानेऽपि सुमतिरूपान्मनोबलसत्त्वात् निस्तरङ्गम् उक्तविकारशून्यम् अन्तरङ्गं चित्तम्, अयमेव मनःप्रसादः, शत्रूणामन्येषाञ्च नित्यं स्वभावादेव शुभकरणे हितसम्पादने मतिर्धीः, इदमेव सौम्यत्वम्, वाक्प्रयोगे संयमो वाञ्छितप्रियहितमात्रभाषणम् अतिरिक्तवाग्वर्जनम्, इदम्मौनम्, अध्यातव्यानां चिन्ताऽनर्हाणाम् अर्थानां विषये सङ्गप्रतिहतिर्मनसा रुचिवारणम्, अयमात्मविनिग्रहः, ध्येयमात्रे शास्त्रोक्तध्यानयोग्यानतिरिक्ते अर्थे स्वस्वरूपपरस्वरूपोपायस्वरूपफल–स्वरूपविरोधिस्वरूपेत्यर्थपञ्चकमध्ये यस्यार्थस्य यो ध्यानकालस्तदा तदभिन्ने विषये निष्ठा सत्त्वानुसन्धानम्, इदंनाम भावसंशुद्धिः, इति पञ्चप्रकारम् मनसः सम्बन्धि तपो मोक्षकामा मुक्तिम् एव वाञ्छन्तः सन्तः सुनिर्णीतात्मस्वरूप–स्वभावकर्तव्या महात्मानः श्रयन्त उपायतया अवलम्बन्ते।

**भावार्थ – आत्मकल्याण के लिये शरीर मन और वाणी की तपस्यायें भगवद्गीता में वर्णित हैं, उनमें मानसिक तप प्रधान हैं, उसी का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। गीता में मनः प्रसाद, सौम्यत्व, मौन, आत्मविनिग्रह और भावसंशुद्धि ये पाँच प्रकार के मानसिक तप कहे गये हैं, भाष्य के अनुसार उनका विवरण यहाँ प्रस्तुत है। विषयों के निकट होने पर उन्हें पाने की लालसा इतनी बढ़ती है कि मनुष्य किसी भी अनिष्ट का ध्यान न रखकर उन्हें पाने के लिये दौड़ पड़ता है। जिन्हें अनिष्ट का ध्यान अधिक रहता है वे देर तक बचे रहते हैं। जो विषयों को निःसार समझते हैं उन में लालसा होती ही नहीं। विषयों के सन्निधान में भी ज्ञान की दृढता से, कोई विकार उत्पन्न न हो पाना मानसिक एक तपस्या है, क्यों कि खतरे के समय में भी ज्ञान की सुरक्षा एक कष्टमय प्रयत्न होता है। प्राणिमात्र में समभाव होने से सबका हित चाहा जाता है,**

सबमें शत्रु भी आ जाते हैं। उनका भी यथासम्भव हित चाहा और किया जाता है। शत्रुता भूलना भी एक मानस तप है। समदृष्टि के बल से ही शत्रुता भूलती है। मनुष्य वाणी से बहुत से अपराध करता रहता है, उसके सारे रागद्वेष ईर्ष्या मोह मद मत्सर समय समय पर वाणी से झड़ते रहते हैं जो दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं। इससे योगी जन बहुत सीमित बोलते हैं। वक्तव्य विषयों का संक्षेप मन से ही होता है इससे यह भी एक तीसरा मानस तप है। चंचल मन व्यर्थ बातों में उलझ कर जीवन बर्बाद करता रहता है। योगी जन कम उपयोगी विषयों में भी मन नहीं देते, वाणी से इस चौथे तप का पता चलता है। यह चौथा तप ध्येय अर्थ के लिये चित्तफलक पर विपुल स्थान छोड़ देता है जिससे ध्येय अर्थ बाहरी स्थूल अर्थों की भाँति हृदय में टिका रहता है। ध्येय में चित्त लगाये रहना पाँचवा तप है। मुमुक्षु जन इन पाँच मानस तपस्याओं को सदा अपनाये रहते हैं।

**यावन्मोक्षाभिलाषो न भवति सुमतेः प्राकृतार्थानपेक्षा,**
**न्यासस्त्यागस्तपो वा सुकृतमथ गुणा दोषहीना न तावत्।**
**तस्मात्सद्भिर्विवेको मनसि सदसतोर्यत्नतः साधनीयः,**
**सिद्ध्यै शश्वद् दयाब्धिः परिहृतकपटैर्विष्णुराराधनीयः।।२८५।।**

"मुमुक्षुत्वं विना सर्वे गुणाश्चित्रतुरङ्गवत्। विफलाः स्युर्विवेकेन तदर्जयति सन्मतिः" इत्याह—यावदिति। यावत्कालपर्यन्तं, सुमतेः सच्छास्त्रशुद्धमनसो जनस्य, मोक्षे भवबन्धध्वंसे, अभिलाषो दृढेच्छा न भवति, प्राकृतार्थेषु प्रकृतिपरिणामभूत देहेन्द्रियमनोविषयेषु अनपेक्षा उदासीनता च न भवति, तावत् न्यासः शरणागतिः, त्यागः कर्मफलानपेक्षा, तपः शरीरवाङ्मनःक्लेशानां धर्मार्थे सहनम् अन्यच्च यज्ञदानतपोरूपं सुकृतम् पुण्यं कर्म अथ च दयाक्षमातितिक्षादयो गुणाश्च कामादिदोषश्लेषरहिता न भवेयुः। तस्माद् हेतोः सद्भिर्विवेकयोग्यैः पुरुषैः, मनसि स्वचित्ते यत्नतः शास्त्रतर्कसत्संगैः सदसतोर्नित्यानित्ययोरर्थयोर्विवेको भेदज्ञानं, साधनीयो जनयितव्यः। विवेकस्य दुर्लभत्वानुभवे सिद्ध्यै तल्लाभाय दयाब्धिश्चेतसोद्धरणप्रवणो भगवान् विष्णुः परिहृतकपटैरार्जवयुतैश्छलदम्भ—पाखण्डाचारवर्जितैः सद्भिः आराधनीयः श्रवणादिनवधाभक्त्या शश्वत् अनारतं सेवनीयश्चित्तेऽवस्थापनीयः। 'तदा विवेकस्त्वरया समिद्धो, दन्दग्धि सद्योऽखिलमोहजालम्। सङ्घर्षजन्या वनवह्निहेतिर्यथाऽचिराच्छुष्कपलाशराशिम्।।"

**भावार्थ — मोक्ष की इच्छा के विना न तो भक्ति न शरणागति न त्याग**



न तप और न कोई पुण्य कर्म उचित रूप से हो पाता है न कोई अच्छा गुण ही हृदय में ठहर पाता है क्यों कि अज्ञान अवस्था में रहने वाले रागद्वेष आदि दोष उक्त सारे साधनों को बिगाड़ते रहते हैं। इससे सत्य असत्य या नित्य अनित्य या आत्मा अनात्मा का भेद प्रयत्न पूर्वक हृदय में उत्पन्न करके धारण किये रहना चाहिये। तभी नाशवान् अर्थों से मोह हटता है और मुक्ति की इच्छा ठहरती है, तब उक्त सारे उपाय उत्तम गुणों के योग से सफल होने की स्थिति में हो जाते हैं। यदि विवेक अर्जित करने में मन सक्षम न लगे तो निष्कपट भाव से भगवान् की आराधना करनी चाहिये। वे दया के समुद्र हैं। चित्त को बल देते हैं। विवेक हो जाता है। विवेक के बाद उनकी भक्ति होती है।

**श्रद्धा सत्त्वानुरूपा भवति कृतवशा देहिनां सत्त्वसृष्टिः,**
**श्रद्धाहीना न विद्या फलति न सुलभास्तेन मुक्तेरुपायाः।**
**यं श्रद्धासत्त्वशीलं सृजति स भगवान्, दीर्घकारुण्यनिघ्नो,**
**निःशेषं कर्मजालं स हरति सुकृतैः कैश्चिदेवाल्पयत्नैः।।२८६।।**

सर्वत्र कर्मसु श्रद्धायाः प्राधान्यम्भवति, तदनुरूपैव कर्मफलनिष्पत्तिः, ततस्तस्यै यतितव्यमिति सूचयन्नाह—श्रद्धा सत्त्वेति। महनीयताप्रकारकज्ञानजन्या प्रीतिः श्रद्धा। सा सत्त्वानुरूपा भवति, सत्त्वं नाम पूर्वकर्मफलभोगहेतु—संस्कारोद्बोधौपयि—करजस्तमोऽनुविद्धमन्तःकरणम्, देहिनामुक्तस्य सत्त्वस्य सृष्टिश्च कृतवशा पूर्वकर्मानुरूपैव भवति, भोगप्रधानत्वाद् देहेन्द्रियमनसाम्, तेन भोगविरुद्धसंस्कारोद्बोधो दुर्लभः, श्रद्धा च भोगविरुद्धार्थदिशं न क्रामति, तत एव मोक्षौपयिकेषु शास्त्रार्थेषु श्रद्धा नोत्पद्यते, श्रद्धां विना च गृहीता विद्या न फलति, तेन शास्त्राभ्यासमात्रसम्पाद्याः कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्त्याद्या मुक्तेरुपायाः सदैव विफला भवन्ति। तर्हि मोक्षः कस्यापि कथं स्यादित्यत्राह—यमित्यादि। दीर्घस्यानन्त—जन्मानुवर्तिनः कारुण्यस्य चेतनविशेषम्प्रति दयाविशेषस्य निघ्नोऽनुपालकः स भगवान् नारायणः यं चेतनं श्रद्धासत्त्वशीलं सृजति मोक्षार्थेषु श्रद्दधानं सदाचार्यद्वाराऽऽत्मलाभौपयिकसत्त्वगुणानुबद्धस्वभावं जनयति स एव कैश्चिदेव पत्रपुष्पाद्यर्पणप्रमुखैरल्पयत्नैरनायाससाध्यैः, सुकृतैः पुण्यकर्मभिर्निःशेषं कर्मजालम् मत्स्यजालवद् दुर्मोचं कर्मकलापं, हरति भगवत्कृपाबलः स्वयमेवोपसंहरति।

**भावार्थ— मानव जीवन में श्रद्धा की प्रधानता होती है, कर्मों के फल श्रद्धा के अनुरूप बनते हैं, इससे उत्तम श्रद्धा प्राप्त करने का प्रयत्न करने चाहिये, इस आशय से कहते हैं कि मानसिक बनावट के अनुरूप श्रद्धा होती**

है, मन की बनावट प्राचीन कर्मों के अनुरूप होती है, मोक्षदायिनी विद्या तो कहीं से मिल सकती है किन्तु श्रद्धा के बिना वह सफल नहीं होती। शास्त्रज्ञान का फल, सत्कर्म, तत्त्वनिष्ठा, भक्ति प्रपत्ति, आदि कुछ भी नहीं हो पाता, मोक्ष के उक्त उपाय सदा दुर्लभ ही होते हैं। मोक्ष तो वह पाता है जिसे भगवान् ही मोक्षोपाय प्राप्त करने के योग्य श्रद्धा और उत्तम शील से जोड़कर जन्म देते हैं। वह अल्पश्रम से होने वाले कुछ पुण्य कर्मों से ही प्रभुकृपा के बल से सारे संसार–बन्धन रूप कर्मों को समाप्त कर लेता है।

दृष्टेऽप्यर्थे प्रकाशप्रचयवशलसत्तद्विशेषेषु दृष्टि–
भूयस्तत्रानुरागं जनयति कुरुते प्रेक्षकं सद्विवेकम्।
श्रद्धा शास्त्रार्थलग्ना शमयति दुरितं शीलिनां ये विशीला–
स्तेषामाकाशगङ्गासदृशपरिचयं सर्वशास्त्रार्थवृन्दम्।।२८७।।

श्रद्धायाः फलं लोकदृष्टान्तेन विशदयति–दृष्टेऽपीति। दृष्टे सामान्यप्रकाशेन साक्षात्कृतेऽपि, अर्थे द्रष्टव्ये वस्तुनि, प्रकाशस्य रवेर्विद्युदादेर्वा प्रचयस्याधिक्यस्य वशा अधीना, लसन्तोऽतिरिक्तद्युतिभाजो ये तत्तद्विशेषा नतोन्नतादयस्तेषु दृष्टिः पुनः साक्षात्कारः तत्र भूयोऽनुरागं जनयति प्रीतिं वर्धयति, कथम्? प्रेक्षकं दर्शकं सद्विवेकम् अनुपेक्षणीयभेदज्ञानयुतं, कुरुते निर्वर्तयति, एवमेव शीलिनाम् अनुष्ठानपर्यवसायितत्त्वबोधवतां, श्रद्धा शास्त्रार्थेषु लग्ना सती दुरितं तत्त्वबोधवारकम् पापं, शमयति निवारयति, तेन ज्ञानं वर्धते अगृहीता विशेषा गृह्यन्तेऽनुरागो वर्धत्ते, किन्तु ये विशीलाः शुष्काधीतिनः स्वेच्छाचारिणोऽसंस्कृतचेतसः स्यु, स्तेषां सर्वमपि शास्त्रार्थानां वृन्दम् आकाशगङ्गासदृशपरिचयं ज्योतींषि वा तारा वा तुषारा वा घना वा अघना इतिवत् नानासन्देहमात्रस्थानानि भवन्ति न तु हितकृत्यप्रयोजकज्ञानविषयाः स्युरिति भावः।।

**भावार्थ – दृष्टान्त से श्रद्धा की उपयोगिता बतलाते हैं। किसी भी वस्तु का दर्शन पहले सामान्य रूप से होता है, राग या आशंका से उस पर दृष्टि जमने पर उसके विशेष रूपों का दर्शन होता है, तब उसपर स्नेह या उदासीनता बढ़ती है। यही नियम शास्त्रीय सारे अर्थों पर लागू होता है। किसी वाक्य का कोई सामान्य अर्थ पहले मालूम पड़ता है किन्तु किन्हीं कारणों से उस पर मन लगने पर कुछ और भी अर्थ समझ में आने लगते हैं। दूर आकाश में घूमने वाले ग्रहों और तारों पर एवं राशियों पर श्रद्धा होने से ही आज ज्योतिर्विज्ञान अद्भुत फलादेश का माध्यम बना हुआ है। श्रद्धा से ही**



**मानव हजारों जड़ी बूटियों का गहरा परिचय पा सका है। विभिन्न दर्शनों और विज्ञान में प्रगति श्रद्धा से ही हुई है। आत्मतत्त्व के विषय में तर्क और अनुमान से बहुत दूर तक ज्ञान हो जाता है किन्तु आगे की प्रगति उत्तरोत्तर श्रद्धा से ही होती है। श्रद्धा के बिना अर्जित शास्त्रज्ञान अनन्त आकाश में दिखाई पड़ने वाली कोई सफेदी कोई गंगा है या कोई बादल है या कुहरा है या घने तारे हैं यह निर्णय न हो पाने जैसा विफल रह जाता है। इससे सत्पुरुषों की सेवा पूजा करते हुए उनसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हुए उत्तरोत्तर श्रद्धा बढ़ने के मार्ग पर चलना श्रेयस्कर है।**

ज्ञानं सामान्यरूपं कलयति पुरतोऽभ्यासतस्तद्विशेषान्,
श्रद्धाऽभ्यस्तार्थपुष्टिं जनयति कुरुते तत्र भूयः प्रकाशम्।
तेन ज्ञानी विदित्वा परमपुरुषगं ज्ञानमप्यात्मबुद्ध्या,
मुक्त्यै विष्णोः प्रपत्त्यै नयति शुभपथं शीलवान् सर्वलोकम्।।२८८।।

श्रद्धाशबलितज्ञानस्य स्वतःप्रसरस्वभावमाह–ज्ञानं सामान्येति। ज्ञानम्प्रत्यक्षानुमानागमजा प्रमा पुरतः प्रथमं सामान्यरूपं ज्ञानान्तरस्यापि विषयभूतं जात्यादि कलयति विषयीकरोति, अभ्यासतः तस्यैव ज्ञानस्यावृत्त्या तद्गतान् तत्रैवार्थे वर्तमानान् विशेषान् अनुध्येयार्थान् विषयीकरोति। द्वितीयादिवारं गृहीतोऽर्थोऽभ्यस्त उच्यते, श्रद्धा तस्याभ्यस्तार्थस्य पुष्टिं विश्वासातिशयं जनयति, तत्रार्थे भूयोऽधिकमपि प्रकाशं कुरूते, अगृहीतमप्यर्थं गृह्णाति, तेनैव नियमेव ज्ञानी भगवद्विषयकविशेषज्ञाननिष्ठः, परमपुरुषगं ज्ञानमपि चेतनविषयकम् भगवत्सङ्कल्पमपि आत्मबुद्ध्या स्वश्रमार्जिततर्कानुमानागमज्ञानद्वारा, गृहीत्वा भूयोभूयोऽनुभूय, शीलवान् अनुभवविभवसन्तृप्तचेताः, सर्वलोकम् पात्रतापरीक्षां विनैव जनसामान्यम् मुक्त्यै सर्वेषाम्मुक्तिलाभाय विष्णोः प्रपत्त्यै सविधिशरणवरणाय भगवद्भाष्यकारादिवत् शुभपथं नयति तेभ्यः सततं सन्मार्गम्प्रदर्शयति।

''श्रद्धाऽभ्यस्तार्थबोधस्य महिम्ना भगवज्जनाः।।''
''भगवत्पथनेतृत्वं स्वभावादेव तन्वते।।''

**भावार्थ – श्रद्धा से बढ़ा हुआ ज्ञान स्वभाव से ही फैलता है, इस आशय से कहते हैं कि कोई भी ज्ञान पहले अपने अर्थ को सामान्य रूप से पकड़ता है किन्तु वही ज्ञान जब किन्हीं कारणों से दुहराया जाता है तो विशेषरूप भी मिलने लगते हैं। श्रद्धा होने से नये विशेषों पर आस्था बढ़ती है और उन विशेषों के भी कई विशेष मिलने लगते हैं। इसी नियम से कुछ ज्ञानी**

महापुरुष सामान्य शास्त्रज्ञान अर्जित करके अधिक जानकारी के लिये उसी ज्ञान को जब दुहराते हैं तो नये नये अर्थ मिलने लगते हैं। श्रद्धा रहने से उन नये अर्थों पर आस्था होती और बढ़ती है तब ज्ञानी की वह अवस्था हो जाती है कि जिस किसी को ज्ञान दे दे कर मुक्ति मार्ग पकड़ाने के लिये भगवान् की शरणागति कराने के उपाय वे स्वयं ही करने लगते हैं। विधिवत् अर्जित श्रद्धा ज्ञान बढ़ाती हुई भगवान् तक पहुँचा देती है। भगवान् के लोकों के पथिक दूसरों को भी अपने साथ चलने की प्रेरणा देते रहते हैं।

**शङ्का शेते पुमर्थेऽबलवति हृदये यत्नसाध्ये नराणां,**
**विद्या श्रद्धाप्रवृद्धा विगमयति सती ताम्प्रसूते बलं च।**
**तस्माच्छ्रद्धाऽर्जनीया सुजनचरणतः सत्त्ववृद्ध्याऽथ विद्या–**
**वृद्धानां शीलभाजाम्भगवदनुभवाम्भोधिगानां सकाशात्।।२८६।।**

पुनरपि श्रद्धाया महाफलमाह–शङ्केति। नराणाम् अबलवति हृदये यत्नसाध्ये पुमर्थे विद्यातत्फलादौ शङ्का शेते विश्रामसुखमिवानुभवन्ती हृदयान्नापैति। श्रद्धया प्रवृद्धा लब्धप्रकर्षा, सती तत्त्वविषया, विद्या शास्त्रज्ञानं, तां शङ्कां, विगमयति दूरीकरोति, दृढविश्वासरूपम्बलञ्च प्रसूते जनयति, तेन महानपि पुरुषार्थो लभ्यते। तस्मान्महाफलार्थिना सुजनचरणतः सात्त्विकजन सेवालब्ध–प्रसादेन, सत्त्वस्यान्तःकरणस्य विश्वासातिशयरूपया सत्त्वगुणप्रचयाधीनया वृद्ध्या अथ च विकासेन च भगवदनुभवाम्भोधिगानाम् भक्तिरसामृतसिन्धुनिमग्न– चेतसां, शीलभाजाम् भक्त्यनुगुणवृत्तीनां विद्यावृद्धानाम्महाज्ञानिनां सकाशात् सन्निधानाभ्यासात् लब्धया विद्यया उक्ता श्रद्धा अर्जनीया वर्धनीया शोधनीया च मुमुक्षुभिरिति भावः।

**भावार्थ –श्रद्धा की और भी उपयोगिता बतला रहे हैं। दुर्बल हृदय कठिन पुरूषार्थ से भागता है, तब खट्टे अंगूर की तरह वह उस पुरुषार्थ के प्रति शङ्का पालने लगता है। श्रद्धा पूर्वक अर्जित सत्यविद्या उस शङ्का को हृदय से खदेड़ती है और आत्मबल उत्पन्न कर देती है। इससे विद्या को बल देने वाली श्रद्धा अर्जित करनी चाहिये। वह मिलती है सत्पुरुषों की सेवा से, सत्त्वगुण की वृद्धि से, उत्साह की वृद्धि से और भगवान् के गुणों के अनुभव रूपी महान् समुद्र में गोते लगाने वाले, सदाचारपरायण, अध्यात्मविद्या में निष्णात महापुरुषों की सन्निधि से, उनसे प्राप्त विद्या से।**



**यागादौ शास्त्रगम्ये रतिरथ विरतिः शास्त्रवाक्ये विरुद्धा,**
**कर्तॄणां सा तु दम्भादिभिरधमगुणैः कर्मनैष्फल्यहेतुः।**
**सन्तः सत्त्वप्रधानाः श्रुतिसरणिविदः श्रद्धया शुद्धयैव,**
**यागादीनामनूनम्फलमुचितकृतः प्राप्नुयुर्नास्तबोधाः।।२९०।।**

सच्छ्रद्धाबोधान्वयव्यतिरेकव्याप्ते फलाफले आह–यागादाविति। शास्त्रगम्ये लोकदृष्टफलोपाये यागादौ कर्मणि श्रद्धा रजस्तमोमयी, अथ तत्प्रतिपादक–शास्त्रवाक्येषु विरतिः अश्रद्धा कर्मश्रद्धाविरुद्धा भवति तेन कर्मारम्भ एव न स्यात्तथाऽपि निःश्रद्धा अपि कर्म कुर्वाणा दृश्यन्ते तेषां कर्तॄणां सा श्रद्धा तु अधर्मैः कुफलैर्दम्भादिभिः सहकृता सती यागादिकर्मणां नैष्फल्ये हेतुर्भवति। सतीं श्रद्धां विना कृतं कर्म न स्वफलं सूते। सत्त्वगुणप्रधानचित्ताः, श्रुतिविहित–प्रक्रियाऽवबोधयुक्ता अत एव उचितकृतः सविधि कर्मानुष्ठानिनः, सन्तः स्वरूपबोधप्रथिता महात्मानो यागादीनां श्रुतिविहितशुभकर्मणाम्, अनूनम् फलम् प्राप्नुयुः, अस्तबोधा रजस्तमोमग्नश्रद्धाकर्मप्रक्रियाबोधा अन्येतु न फलम् प्राप्नुयुरिति भावः।

**भावार्थ – शुभ कर्मों का फल सात्त्विक श्रद्धा से ही मिलता है। इस आशय से कहते हैं कि लोक में देखा जाता है कि लोग देखा देखी यज्ञ याागादि शास्त्रीय कर्म करते हैं। कर्मों के फल भावना पर निर्भर करते हैं। भावना के बिना दी हुई आहुतियाँ देवता स्वीकार नहीं करते। सभी कर्मफलों के नियामक परमात्मा सब की भावनायें जानते हैं। उनकी भावनाओं से मिलान करके ही कर्मों के फल वे तैयार करते हैं। श्रद्धा के विना भावना अच्छी नहीं होती। श्रद्धा भी सात्त्विक होनी चाहिये। सात्त्विक श्रद्धा देवता के स्वरूप, कर्म और फल का समुचित ज्ञान कराती है। श्रद्धा न होने से कर्मों के विधायक वेदादि वाक्यों पर आस्था नहीं होती, कर्म की प्रक्रिया नहीं निबहती, अनास्था के साथ दम्भ पाखण्ड काम करते हैं, तब कर्म विफल रह जाते हैं। सात्त्विक महापुरुष जो वैदिक विधि विधान समझते हैं, इससे उचित रूप से ही कर्म का आरम्भ और समाप्ति करते हैं, उन्हें कर्मों का पूरा फल प्राप्त होता है, क्यों कि उनकी श्रद्धा पूरी होती है। दूसरे जो कि कर्म का ज्ञान नहीं रखते वे फल से वञ्चित रहते हैं। शुभफल का लाभ सात्त्विक श्रद्धा से ही होता है।**

**आहारे यज्ञकृत्ये तपसि च सुमतिः सम्प्रदानेऽपि दृष्ट–**
**न्त्रैगुण्यं साधु विद्यादसुखविहतये सत्त्वरूपं वृणीयात्।**

**सत्त्वं सत्त्वप्रधानाहरणचरणतः, स्फीतमात्मानमन्त–**
**र्भान्तंश्रीशाङ्घ्रिसक्तं स्पृशति गतघने व्योमनीवार्कबिम्बम्।।२६१।।**

सच्छ्रद्धायै सत्त्वगुणाहरणोपायानाहआहार इति। सुमतिः शास्त्रानुसारी श्रेयोऽर्थी, असुखानां त्रिविधदुःखानां विहतये वारणाय, आहारे भोजने, यज्ञकृत्ये शास्त्रोक्तहोमार्चनादौ, तपसि श्रेयसे वाङ्मनःकायक्लेशकर्मणि, सम्प्रदाने स्वद्रव्यस्य परस्मै प्रतिपादनेऽपि कर्मणि, दृष्टं लोकविदितं, त्रैगुण्यं गुणत्रयविभागं, साधु सावधानो विद्यात् जानीयात्, सत्त्वरूपञ्चोक्तेषु कृत्येषु, वृणीयात् स्वीकुर्यात्। सत्त्वप्रधानानाम् आहाराणां ग्रहणतः, यज्ञदानतपसाञ्च सात्त्विकानामेवानुष्ठानतश्च स्फीतं विकसितं सत्त्वमन्तःकरणं श्रीशाङ्घ्रिसक्तम् भगवच्छेषभूतम् अन्तः स्वयमेवात्मने भान्तम् प्रकाशमानम् आत्मानं गतघने निर्मेघे व्योमनि गगने अर्कबिम्बम् आदित्यमण्डलम् इव स्पृशति दर्पण इव बिम्बमङ्गीकरोति। शुद्धे चेतसि स्वयम्प्रकाश आत्मा स्वयमेव भासत इति भावः।

**भावार्थ – सात्त्विक श्रद्धा के लिये सत्त्वगुण बढ़ाने के उपाय बतलाते हैं। आहार, यज्ञ तप और दान ये चारो सात्त्विक राजस तामस भेद से तीन तीन प्रकार के होते हैं। दुःखों से बचाव के लिये केवल सात्त्विक आहारादि अपनाने चाहिये। सात्त्विक आहारादि से विकसित शुद्ध चित्त स्वयम्प्रकाश आत्मा को जो कि सदा भगवान् का शेषभूत है, ऐसा पकड़ता है जैसे कोई मेघ आदि आवरण न रहने पर आकाश में सूर्य मण्डल को देखता है।**

**ओंतत्सद्विष्णुनामत्रितयमिदमलम् भक्तहृद्गांस्त्रिलोकान्,**
**सद्यो जेतुम्प्रवृत्तम्भवति शुभविधौ सर्वतः श्रुत्यधीते।**
**तन्मूर्तीस्तिस्र एताः पदपरिचयवान् वेत्ति तत्त्वेन योऽसौ,**
**सद्यश्छिन्द्यात्स्वकीयं स्वमतिसहकृतैः कर्मभिः कर्मबन्धम्।।२६२।।**

चित्तशुद्धये भगवन्नामत्रयं सार्थम् अवलम्बमाह यतिचेतसः–ओमित्यादि। ओम्, तत्, सत्, इति विष्णोर्भगवतो नामत्रयं सर्वत्र वैदिककृत्ये संकल्पादौ प्रयुज्यते। तदिदं नामत्रयम् भगवद्भक्तस्य हृदि सङ्कल्पे वर्तमानान् त्रीन् लोकान् तदन्तर्भागांश्च सद्योऽनायासं जेतुं कर्तुर्वशी कर्तुम् प्रभवति। कर्मसङ्कल्प एव प्रयुक्तानीमानि नामानि कर्मफललाभनियामकानि भवन्ति। इदमेषां सामन्यफलम्, विशेषमाह–यः पदपरिचयवान् एतास्तिस्रो भगवतस्तस्य मूर्तीस्तत्त्वेन यथार्थतया, वेत्ति जानाति, असौ स्वमतिसहकृतैः कर्मभिः स्वस्वरूपबोधपूर्वकमनुष्ठितै



र्भगवदर्थकर्मभिः स्वकीयम् आत्मनः कर्मरूपम् पशूनां रज्ज्वादिवद् बन्धं सद्यश्छिन्द्यात्। उक्तनामत्रयार्थबोधपुरस्सरं कृतैः कर्मभिः सद्यः सकलकर्म–सम्बन्धनाशो भवेदिति भावः।

**भावार्थ – योगीजन चित्तकी विशेष शुद्धि के लिये भगवान् के प्रस्तुत तीन नामों का आश्रय लेते हैं, यह सूचित करते हुए कहते हैं कि ओम, तत् सत् ये तीन भगवान् के असाधारण नाम हैं। इनके महत्त्वपूर्ण व्यापक अर्थ हैं। वेदोक्त सभी कर्मों के आरम्भ में इनका प्रयोग होता है। इस प्रयोग के प्रभाव से कर्म पूरे होते हैं और वाञ्छित फल भी मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनका विशेष फल यह है कि व्याकरण शास्त्र में निपुण व्यक्ति इन तीनों के महत्त्वपूर्ण परमकल्याणमय अर्थ किसी सदाचार्य से समझ कर यदि अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों में प्रयोग करे तो इनके माध्यम से मिला तत्त्वज्ञान कर्मों का फल सुधार देगा और उसके किये कर्म ही उसके प्राचीन कर्मों के बन्धन को शीघ्र काट डालेंगे। इससे सभी निःश्रेयस के इच्छुक महापुरुष इन नामों पर विशेष निष्ठा रखते हैं।**

**सच्छ्रद्धा सत्त्वसाध्या श्रुतिधृतसुकृतारम्भनिर्वाहपूर्ति–**
**व्याप्ता सा तत्फलाप्तावपि भवति सतां हेतुरीशाश्रितानाम्।**
**तद्धीनानान्तु दम्भाद्यशुभगुणयुजां कर्मणां ये विपाका–**
**स्तेस्युर्दुःखप्रधानास्तदुचितविषयास्तामसा नैकदोषाः।।२६३।।**

सात्त्विकी श्रद्धैव सकलशुभाप्तिहेतुः, साऽर्जनीया मुमुक्षुभिरपि यतिभिः," इत्याह–सच्छ्रद्धेति। श्रुतिविधिवाक्यधृतानां सुकृतानाम् आरम्भो निर्वाहः पूर्तिरित्येतत्त्रितयव्याप्ता सत्कर्मारम्भपूर्वकसन्निर्वाहपूर्वकतत्पूरणकुशल–चेतोऽधिष्ठाना सात्त्विकी श्रद्धा सत्त्वगुणप्रकर्षाधीनावस्थाना भवति, सा च ईशाश्रितानां सताम्पुरुषाणां तेषां शुभकर्मणाम् फलाप्तौ फललाभेऽपि हेतुः कारणम्भवति। सा फललाभपर्यन्तं साह्यं करोति सताम्। तया सच्छ्रद्धया हीनानान्तु जनानां दम्भपाखण्डप्रभृति–दुर्गुणयुक्तानां कर्तॄणां कर्मणां विहिताविहितानां ये विपाकाः परिणामाः ते दुःखप्रधानाः प्राधान्येन दुःखमयाः, तामसाः तमोगुणातिरेकेणैव भोग्या, नैकदोषाः पुनरपि पापकर्मपरम्पराहेतवः, तदुचितविषयास्तादृशफलभोगौ–पयिकनरकादिदेशवन्तो भवेयुः।" जीवतैव शुभा श्रद्धा लब्धुमेष्या प्रयत्नतः। तदभावे भवो दुःखोद्भवो नैव निवर्तते।"

भावार्थ – लौकिक अलौकिक सभी शुभफलों के लिये सात्त्विक श्रद्धा अर्जित करनी चाहिये, उसके विना दुःखों से छूटना असम्भव है, इस आशय से कहते हैं कि सत्त्वगुण की वृद्धि से उत्पन्न होने वाली श्रद्धा शुभकर्मों का आरम्भ निर्वाह और पूर्ति भी करा देती है। इतना ही नहीं, वह शुभकर्मों के शुभफल उत्पन्न करने और उनके मिलने में भी सहायक होती है। यह सहायता उन्हें अधिक मिलती है जो भगवान् के शरणागत सत्पुरुष होते हैं। क्यों कि उनकी श्रद्धा कुछ अधिक ही शुद्ध और स्थिर होती है। किन्तु जो लोग उत्तम श्रद्धा अर्जित नहीं कर पाते उनका हृदय पवित्र नहीं होता उनके किये शुभ कर्मों के फल भी कुछ न कुछ अशुभ ही होते हैं। उनका जीवन दम्भ पाखण्ड आदि दोषों से भरा होता है, इससे अपने अशुभ कर्मों के फलों के लिये उन्हें नरक आदि अशुभ लोक प्राप्त होते हैं।

**सात्त्विकीं वर्धयन् श्रद्धां कर्मविज्ञानभक्तिमान्।**
**सम्प्रीतश्रीशकारुण्यान्मुच्यते गुणबन्धनात्।।२६४।।**

अध्यायमुपसंहरति–सात्त्विकीमिति। कर्म भगवदर्थं, विज्ञानमर्थपञ्चकविषयम्, भक्ति र्भगवति निष्कामा एतत्त्रितयवान् मुमुक्षुः एतैरेवोपायैः सात्त्विकीं श्रद्धां बर्धयन् क्रमेण सम्प्रीतस्य श्रीशस्य भगवतः, कारुण्याद् हेतो, र्गुणमयात् संसारबन्धनात् मुच्यते परमपदञ्चाप्नोति।

*इति सप्तदशोऽध्यायः*

**भावार्थ – सत्त्वगुण की वृद्धि से सात्त्विक कर्मों में श्रद्धा होती है, उन कर्मों से चित्तशुद्धि और भगवत्कृपा प्राप्त होती है तब त्रिगुण बन्धन स्वयं छूट जाता और संसार से मुक्ति हो जाती है। यही इस अध्याय का निष्कर्ष है।**

*सत्रहवाँ अध्याय समाप्त*



# *अथ अष्टादशोऽध्यायः*

**ज्ञानं सत्कर्महेतुर्भवति सुकृतिनाम्मुक्तिमार्गानुकूलम्,**
**मन्दानामर्थकामावहमथ कुधियां क्लेशसाहस्रयोग्यम्।**
**तावन्मोक्षाभिलाषो न भवति सुधियामप्यकृत्यान्धकार–,**
**क्षिप्तानन्दाध्वनान्तन्न मिलति सुपथः प्रायशो मध्यमानाम्।।२६५।।**

प्रारब्धत्रैविध्येन ज्ञानत्रैविध्यम्फलत्रैविध्यञ्चाह–ज्ञानं सत्कर्मेति। सुकृतिनाम् पूर्वचीर्णशुभकर्मराशिमतां जनानां, ज्ञानं सत्कर्मणाम् पुण्यकृत्यानां हेतुः कारणम् भवति। पुण्यवन्तो निसर्गात् पुण्यमेवार्जयन्ति। तेषां ज्ञानम् मुक्तिमार्गस्य अनुकूलम् अपि भवति। मुक्तिमार्गाः सत्कर्मसज्ज्ञानसुभक्तिसत्प्रपत्तयः,तान् लब्धुं च योग्यम् भवति। मन्दानाम् अनुत्कृष्टपुण्यवताम् अर्थकामावहम् लौकिकसुखहेतु–धनार्जनप्रवणम् भवति। अथ दुष्कृतिप्रधानजीवनानाम् अत एव पूर्वसुकृताभावात् पशुवन्मन्दप्रज्ञानां ज्ञानं क्लेशानां दुःखानां साहस्रस्य योग्यं हेतुर्भवति। ते तदेव कुर्वन्ति येन दुःखपरम्परा प्रवर्तते। तस्माद् व्यवस्थात्रैविध्यात् सुधियाम् एकादिशास्त्राव– बोधप्रथितानाम् अपि पूर्वाकृत्यरूपे पापान्धकारे क्षिप्तस्तिरोहित आनन्दस्य स्वरूपसुखस्य मोक्षस्य अध्वा पन्था येषान्ते तथोक्तास्तेषाम् मोक्षाभिलाषो मुक्तये इच्छा न भवति तत एव एष्टव्याभावाद् इष्टपन्था अपि न दृश्यते, तदेवाह न मिलतीति, तस्मादनभिलाषादेव सन्मार्गो न दृश्यते मध्यमपुण्यवतामपि। उत्कृष्ट सुकृतानामेव सत्पथावाप्तिर्भवति। इह जन्मनि सन्तस्तदर्जयन्ति।

**भावार्थ – प्रवृत्तियों से समाज तीन भागों में बँटा है। कुछ लोगों का ज्ञान केवल शुभ कर्म कराता है मोक्ष के मार्ग पर भी चलाता है, कुछ का लौकिक सुख साधन जुटाता है और कुछ का नानाक्लेश तथा संकट लाता रहता है, पुराने कर्म ऐसे तीन प्रकार के ज्ञान उत्पन्न करते हैं। मध्यम दर्जे में संख्या अधिक है, इसे मोक्ष की इच्छा नहीं होती, क्यों कि ये लोग पहले इतने अपराध कर चुके होते हैं कि उनके फल के रूप में इनका ज्ञान मोक्ष को पकड़ नहीं पाता न इच्छा ही होती है और जब इच्छा नहीं तो उपाय भी नहीं, जहाँ चाह तहाँ राह। ऐसे लोग निष्काम कर्म योग, तत्त्वज्ञान, भक्ति या**

प्रपत्ति की चर्चा सुनना भी नहीं चाहते। उत्तम पुण्यवालों को ही उत्तम मार्ग और उत्तम फल मिलते हैं। इस जन्म में सज्जन उत्तम निष्काम पुण्य अर्जित करते हैं।

**चेतः सत्त्वोत्तरत्वम्भजति शुभतमैः कर्मभिः साधु चीर्णै–,**
**मेधा सच्छास्त्रशुभ्रा भवति मतिमतस्तेन शङ्काऽपहन्त्री।**
**मुख्यः कर्ता परात्माऽखिलप्रकृतिहरो नैव जीवस्तु विद्वान्,**
**विद्वान्, जानन्निःशंकमित्थं क्वचिदपि न कृती लिप्यते पुण्यपापैः।।२६६।।**

सत्कर्मानुष्ठानफलतया सत्त्वप्रधानं चेतः शास्त्रार्थतत्त्वावगाहि स्वस्वरूप–निष्ठञ्च भवति, तेन च निःश्रेयसं सन्निहितम्भवतीत्याह–चेतइति। साधुचीर्णैः शुभतमै र्भगवत्प्रीत्येकलभ्यैः कर्मभिः चेतः सत्त्वोत्तरत्वम् भजति, तस्मिन् सत्त्वगुण उपचीयते, तेन मतिमतः सद्बुद्धिशालिनो जनस्य सच्छास्त्रशुभ्रा तत्त्वप्रधान शास्त्रावगाहनेन निर्मला एवं सर्वशङ्काऽपहन्त्री सर्वसंशयनिवारिणी मेधा धारणागुणा धीः उत्पद्यते। तस्या धियो महाफलमाह–मुख्य इति, अखिलप्रकृतिहरः सर्वदेहेन्द्रियप्राणमनोनियामकः, परात्मा ईश्वर एव मुख्यः कर्ता भवति सर्वकर्मसु, जीवस्तु नैव, इत्थं निःशङ्कं जानन् विद्वान् कृती कर्मयोगनिष्ठः क्वचिदपि कृत्ये पुण्यपापैः कर्मफलभूतैर्न लिप्यते तेनाचिरान्मुच्यत इति भावः।

भावार्थ – निष्कामकर्मानुष्ठान से चित्त में सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, तब शास्त्रज्ञान स्पष्ट होता है जिससे सभी संशय दूर होते हैं। इस मनःस्थिति से, मुमुक्षु यह निर्णय प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है कि मैं जो भी कुछ करता हूँ वह अन्तर्यामी की प्रेरणा से होता है, इससे यह निश्चित हुआ कि कर्मानुसार भोगलाभ के लिये अन्तर्यामी की प्रेरणा होती है, उस प्रेरणा से होने वाले कर्मों को मैं अपना मानता हूँ, वास्तव में वे कर्म परमेश्वर के होते हैं। हल खींचने वाला बैल मान सकता है कि में खेत जोतता हूँ, किन्तु देखने वाले समझते हैं कि किसान खेत जोत रहा है। इसी ज्ञान को दृढ़ करने से धीरे–धीरे अपना कर्तापन भूल जाता है और जैसे बैल अपनी सारी गतिविधियों में किसान का इशारा देखता है वैसे भक्त भी अपने सारे क्रिया कलाप में ईश्वर की प्रेरणा समझने लगता है, तब कर्मों के फल शुभ या अशुभ उसे नहीं मिलते और भवबन्धन धीरे–धीरे कटने लगते हैं।

**गावोऽश्वाः स्कन्धलग्नम्मृजितपथि चिरं यद्विकर्षन्ति यानं,**
**यन्तुः संकल्पयोगात्सरणिसमययोर्नापि भारे स्वतन्त्राः।**



**कर्माण्येवम्मनुष्या अपि समयसहायादिसापेक्षयत्ना,**
**वाञ्छास्वप्यस्वतन्त्रा हरिहृतमनसस्तन्वतेऽदृष्टनद्धाः।।२६७।।**

उक्तान्तत्त्वदृष्टिं विशदयति–गावोऽश्वा इति। गावो वा अश्वा वा मृजितपथि सुविदितमार्गे यत् स्कन्धलग्नं स्वामिना स्कन्ध आरोपितं यानं चिरं विकर्षन्ति तद् यन्तुर्यानचाल– कस्य समयविषये भारविषयेऽपि न स्वतन्त्रा भवन्ति। एवम् एव मनुष्या अपि समयसहायादिसापेक्षयत्नाः समयेऽनुकूले सहाये च संगते यत्नानि कृत्यानि कुर्वाणा, हरिहृतमनसो भगवत्सङ्कल्पाधीनसङ्कल्पा अतएव वाञ्छासु अपि इच्छाविषयेऽपि न स्वतन्त्रा, भगवत्सङ्कल्पेन ध्यानारूढमेव अर्थं वाञ्छन्तोऽदृष्टेन पूर्वकर्मकलापेन भगवत्सङ्कल्पेन च नद्धा भवन्ति, तेन ते स्वतन्त्रमात्मानम् मन्वाना अपि रथवाहिगवाश्वादिवद् अस्वतन्त्रा एव कर्माणि तन्वते, तेन कर्मफलक्रमोऽनु– वर्तते। इदम्पारतन्त्र्यं धिया सम्यग् धारयमाणा न संसारबन्धम्प्राप्नुयुरिति भावः।

भावार्थ – उक्त तत्त्वदृष्टि का दृष्टान्त द्वारा विस्तार करते हुए कहते हैं कि जैसे गाड़ी के बैल या घोडे उँट आदि पशु स्वामी के द्वारा कन्धे पर लगायी गयी गाड़ी को देरतक खींचते रहते हैं, वे यह निर्णय नहीं कर सकते कि कब चलना है, कितनी देर तक चलना है, कहाँ कहाँ रूकना है, क्या और कितना सामान लादना है, यह सब निर्णय स्वामी करता है, ऐसे ही मनुष्य भी जो अपने जानते अपने अपने काम में स्वतंत्र होते हैं, वास्तव में वे पूर्णरूप से ईश्वर के अधीन होते हैं। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है, यह वचन प्रसिद्ध है, परिस्थितियाँ मानवीय प्रयत्नों के बिना ही बनती रहती हैं उनके अनुरूप मानव को चलना पड़ता हैं। प्रत्येक क्रिया की एक पूर्वभूमिका होती है जो कर्ता की इच्छा के बिना होती है, उसके अनुरूप ही मानव चलता हैं, तब मानव कहाँ स्वतन्त्र हुआ, किन्तु अपनी इस ईश्वराधीनता को ध्यान में न रखकर मानव माना करता है कि कर्म मैं करता हूँ, फल मैं चाहता हूँ, परिस्थितियों से मैं जूझता हूँ, ईश्वर मेरी कोई मदद नहीं करता, बल्कि वह तो विपरीत परिस्थितियाँ बना बना कर मेरी परेशानियाँ बढ़ाया करता है, इत्यादि। इससे उसके कर्म कुछ अधिक ही जटिल बन्धन बनते रहते हैं और उनसे छूटने की स्थिति बन नहीं पाती है। तथ्य के विपरीत सोचना ही मिथ्या संसार बन्धन का मूल है।

**न्याससत्यागौ समौ द्वौ पुनरपि कवयो न्यासमाहुः क्रियाणां,**
**त्यागं तत्तत्फलानां यदनुभवकृते देहबन्धव्यपेक्षा।**
**यज्ञो दानं तपश्चेश्वरनिहितधिया कार्यमेवात्मशुद्ध्यै,**
**देहान्तैष्याऽऽत्मशुद्धिर्विरमति न ततो न्यस्तदण्डोऽपि कृत्यात्।।२९८।।**

अर्जुनप्रश्नमुत्तरयति—न्यासत्यागाविति। संन्यासस्त्यागश्च फलत उभौ समौ स्तः किन्तु कवयो विद्वांसः शब्दार्थनिर्णयनिपुणाः किञ्चिद् भेदं कुर्वन्ति, किन्तदित्यत्राह—क्रियाणां, रागद्वेषप्रयोज्यानां कर्मणां सम्यग् विवेकपूर्वकं न्यासं संन्यासमाहुः, त्यागन्तु तत्तत्कर्मणाम् अनुषङ्गप्रसङ्गाज्ञानप्रयुक्तानां विहितानां निषिद्धानां श्रद्धया च विधिवत् कृतानां यानि सम्भावितानि फलानि स्युस्तेषां विषये सङ्कल्पेन त्यागम्फलवैमुख्यरूपं त्यागमाहुः। कथं त्याग इत्यत्राह—यदनुभवेति येषाम्फलानामनुभवकृते भोगाय देहबन्धस्य शरीरसम्बन्धस्य व्यपेक्षा अपेक्षा भवति, स हि नेष्यते तत्त्वदर्शिना। तर्हि कर्माणि सर्वथा वर्जनीयान्येवेत्यत्राह—यज्ञो दानं तपश्च ईश्वरनिहितधिया कर्मणां सर्वेषामेव भगवदेकसङ्कल्पायत्तताबुद्ध्या, आत्मनश्चित्तस्य शुद्ध्यै विषयसंस्कारनिवृत्तये कार्यम् एव संन्यासिनाऽपि न वर्जनीयं, यतो हि आत्मशुद्धि र्देहान्ता एष्या देहान्तसमयमवधीकृत्यापेक्षणीया, ततो न्यस्तदण्डोऽपि ज्ञाननिवर्तितसकलरागद्वेषोऽपि कृत्यात् नित्यनैमित्तिकरूपात् न विरमति। शरीरयात्रार्थं कुर्वतो हरिप्रीत्यर्थं करणे कः प्रत्यवायः? नहि सर्वथाऽऽत्मनश्चित्तशुद्धिः केनापि प्रतिज्ञातुं शक्या आजीवनम्भेददृष्टेरनुवर्तमानत्वात् "मुमुक्षुणा ज्ञानिनाऽपि त्यक्तङ्गेन साधुना। चित्तशुद्ध्यै हरिप्रीत्यै कर्मैष्यं देहधारिणा।"

**भावार्थ —अर्जुन ने भगवान् से संन्यास और त्याग का अलग अलग परिचय पूछा। तब भगवान् ने कहा कि संन्यास और त्याग में थोड़ा ही अन्तर है। दोनों कर्मबन्धन से छुड़ाते हैं फिर भी विद्वानों ने शब्दार्थ में कुछ अन्तर माना है। वह यह है कि तत्त्वबोधपूर्वक रागद्वेषप्रयुक्त सभी कर्मों का ह्रदय से त्याग संन्यास कहलाता है और किये हुए सारे कर्मों के फलों का ह्रदय से त्याग यानी फलों के प्रति तनिक भी स्पृहा का न रह जाना त्याग कहलाता है। फलेच्छा ही अगला शरीर धारण कराती है। उसके न होने से मुक्ति निकट हो जाती है। तब प्रश्न होता है कि तब तो सभी कर्मों का त्याग कर दिया जाये यही उचित है, क्यों कि फलेच्छा के अभाव में कर्मों की उपयोगिता नहीं रह जाती। इस पर भगवान् ने कहा है कि यज्ञ दान और तप करते ही रहना चाहिये। इनसे चित्त के दोष दूर होते हैं। संन्यासी को भी आगे और**



**भी चित्तशुद्धि की अपेक्षा होती है इससे वह भी नित्य नैमित्तिक कर्म करता ही रहता है। कर्मों से छुटकारा सम्भव नहीं है न ही उचित है।**

**एष्टव्यैवात्मशुद्धिर्यतिभिरपि हरिध्यानकाठिन्यबोधा—**
**च्चित्तास्वास्थ्यादधर्मादुपचिततमसो हानये सत्क्रियाभिः।**
**यस्यानन्दाब्धितत्त्वस्थिरमथ न मनागिङ्गते जातु चेतो,**
**लब्धार्थोऽसौ क्रियास्तं स्वत उपरतधीवृत्तिमुज्झन्ति शान्तम्।।२९९।।**

निष्कामकर्मयोगस्य सर्वैरपि करणीयत्वमाह—एष्टव्यैवेति। यतिभिश्चतुर्थाश्रमै—रपि हरिध्यानस्य काठिन्यबोधात् नित्यबहिर्मुखस्य चेतसोऽन्तर्मुखताऽऽपादनं हि नितरां कठिनमनुभूयते, किञ्च चित्तम् प्रायो बहिर्मुखवृत्त्या अस्वस्थं ध्यानानर्हम् भवति, अपि च पूर्वदुष्कृतोदयवशाद् अन्तः करणे हितविरोधि तमोगुणस्य प्राचुर्यम् आपद्यते। तेन कारणत्रयेण न्यासिनोऽपि ध्यानस्य दुःशकत्वमनुभूतिविषयः स्यात्। त्रिषु एकम् अपि प्रतिबन्धकं कदाऽपि स्यादेव। तेन चित्तदोषवारणं यतिनाऽपि वाञ्छितं स्यात्। तच्च सत्कर्मभिरेव भगवत्प्रीतिलक्ष्यकैः सम्भाव्यते। कस्य कर्मापेक्षा न स्याद् इत्यत्राह—यस्य तु चेत आनन्दाब्धितत्त्वे निरवधिगुणविभूतिशीलैश्वर्यभासुरे परमात्मनि स्थिरम् अथ न जातु मनाग् अपि इङ्गते विषयेषु वलते असौ चेतनो लब्धार्थः सम्प्राप्तसकलकर्मफलः। उपरतधीवृत्तिं शान्तं शान्तमनस्कतया धियोऽपि निर्व्यापारत्वे क्रियाऽसम्भवेन तं क्रिया एव उज्झन्ति न त्वसौ क्रियास्त्यजति। निक्रियत्वदोषश्च न तं स्पृशति।

**भावार्थ — निष्कामकर्मयोग सारे निःश्रेयसकामियों के लिये कल्याणप्रद है। संन्यासी को भी सदा ध्यान सुलभ नहीं होता, बहिर्मुख चित्त को अन्तर्मुख रखना बड़ा ही कठिन होता है, विषयों के संस्कारों से चित्त की चंचलता ही ध्यान में बाधक होती है। हर समय चित्त ध्यान के योग्य नहीं रहता, वह भी शरीर की भाँति कभी अस्वस्थ होता है। पूर्व पापों से चित्त में तमोगुण का जमाब होने से भी ध्यान नहीं हो पाता। उस समय बर्हिर्मुखता की स्थिति में निष्काम कर्म ही सुलभ और चित्तशुद्धि के लिये सफल भी होता है। निष्काम कर्म शुरू होने पर ही फल देने लगता है, वह पूरा भी हो जाता है। उसमें विघ्न भरसक नहीं होते। कर्मों से तो वही बच सकता है जिसे कर्म ही स्वतः छोड़ दें। यानी जो कर्म के योग्य मनः स्थिति में न रह गया हो। वह होगा भगवान् के स्वरूपरूपगुणविभूति ऐश्वर्य शील आदि के चिन्तन से उनमें ही जुड़े चित्तवाला, उसका वह चित्त बाहर नहीं आता तब वह क्रिया कैसे कर सकता है।**

**जातं जातं युनक्ति प्रकृतिरनुगतैः कर्मभिः सर्वकालं,**
**जीवंस्तस्माद्विनिद्रो न भवति विरतो लाभहानिप्रयत्नात्।**
**निद्रायां चापि चित्तम्प्रयतनपरमं जायते द्वन्द्वशान्त्यै,**
**स्वप्नस्तस्यैव लिङ्गं ज्वलदनुभवसत्काष्ठधूमोपमानः।।३००।।**

"जीवतः कर्मसन्त्यागो वदतो मूकतोपमः। तस्मात्कर्मपथेन स्यान्मोक्षोपायो न चान्यथा" इत्याह–जातं जातमिति। प्रकृतिः शरीरारम्भकतत्त्वानि, जातं जातं प्राणिमात्रम्, अनुगतैः चेतनं न कदापि त्यजद्भिः, कर्मभिः तत्तज्जात्यनुकूलैरशनपाना–द्याहरणादिरूपैः, युनक्ति स्तनपानादि प्रथमव्यापाररूपैरारम्भयति, तस्माद् हेतोः जीवन् जन्तुः विनिद्रः निद्राऽभावे, लाभहानिप्रयत्नाद् विरतो न भवति, किञ्चित्कर्म कुर्वन्नेवोपलभ्यते। किञ्च निद्रावस्थायामपि बाह्यव्यापाराभावेऽपि, चित्तं शरीरिणामन्तःकरणम्, प्रयतनपरमं जायते। निद्रा चित्तव्यापारायैव निर्मिताऽस्ति धात्रा, किमर्थोऽसौ व्यापार इति प्रश्न आह, द्वन्द्वशान्त्यै इति, कोपक्लेश–सन्तापप्रशमायेत्यर्थः। निद्रायां चित्तव्यापारे लिङ्गमाह स्वप्नस्तत्रैव चित्तव्यापार एव लिङ्गम् अनुमानहेतुर्भवति। तत्रदृष्टान्तमाहज्वलदनल– सत्काष्ठधूमोपमान इति। कुत्रापि दूरे यदि तत्त्वभूतं काष्ठं ज्वलति तदा दूरादेव तस्मान्निर्गच्छन् धूमो दृश्यते। धूमेन दृश्यमानेन सतो ज्वलतः काष्ठस्यानुमिति र्भवति, तथैव निद्रायाम् मध्ये स्वप्नदर्शनात् चित्तव्यापारोऽनुमीयते। निद्रायामपि सक्रियस्य जाग्रतो निष्क्रियता, दूरापेता भवति, तेन कर्मत्यागकल्पना त्याज्या।

**भावार्थ – जीवित कोई भी व्यक्ति कर्म का त्याग नहीं कर सकता, वैसे ही जैसे बोलता हुआ कोई मौन नहीं रह सकता, इस आशय से कहते हैं कि कोई भी प्राणी जब जन्म लेता है तब उसकी प्रकृति उसे उसके कर्म से जोड़ती रहती है, वास्तव में वह कर्म लिये ही जन्मा होता है, प्रकृति उसका कर्म शुरू करा देती है, जैसे मानवशिशु दूध पीने लगता है और पक्षी का शिशु चारा के लिये चौड़ा मुँह खोलता है। सांप के बच्चे छोटे छोटे कीड़े पकड़ने लगते हैं। शराबी शराब की ओर बढ़ता है, जुवाड़ी जुवा की ओर, चोर गुप्त धन की ओर और कवि उत्तम वर्णन की ओर बढ़ता है। कोई किसी से नहीं पूछता कि किधर जाऊँ, क्या करूँ। इससे यह मानना पड़ता है कि जीवित व्यक्ति कभी निष्क्रिय नहीं हो सकता, वह कुछ पाना और कुछ छोड़ना चाहता हुआ कुछ कुछ करता हुआ ही मिलता है। माना जाता है कि नींद में क्रिया नहीं होती, किन्तु नींद में मन बड़ी तत्परता से काम करता है, जगते**



**में जो सम्भव नहीं होता उसे करने के लिये ही मन नींद लाता है। मन की क्रिया का पता स्वप्न से चलता है। जो भावना आत्मा में पच नहीं पाती उसे मन चित्तफलक पर लाकर आंशिक सफल करके आत्मा में सुला देता है। जैसे युवक कामवेग को सम्हाल नहीं पाता तब स्वप्न में उसे स्त्री मिल जाती है। बाद में वह काम आत्मा में लीन हो जाता है। स्वप्न से निद्रावस्था में मन की सक्रियता का पता ऐसे चलता है जैसे घड़ी की घंटी सुनने से उसके चल रहे होने का पता चलता है, या दूर में दीखने वाले धुएँ से वहाँ जल रही लकड़ी का पता चलता है। इससे जीवित काल में निक्रियता की कल्पना अव्यावहारिक है।**

**शास्त्रम्भेदांस्तु कर्मस्वशुभशुभपवित्रोत्तमश्रेष्ठरूपान्,**
**हीनानाम्मध्यमानां शुभगतिमनसां सद्धियां योगिनां च।**
**युञ्जल्लोकम्पुमर्थैर्विशदयति, समं स्वेन गृह्णाति जन्तुः,**
**कर्माहारेषु नाना रुचितमिवयतिर्ध्यानमुख्यं वृणीते।।३०१।।**

प्रकृत्यैव कर्मचयनसम्भवे शास्त्रारम्भो विफल इति प्रश्ने, आपणिका इव वस्तूनि शास्त्राणि कर्माणि लोकेभ्यो हिताय प्रथयन्ति न तु कमपि जनं केनापि कर्मणा बलाद् योजयन्तीत्याह–शास्त्रमिति। शास्त्रन्तु लोकम् पुमर्थैर्युञ्जत् तत्तदुचितान् पुरुषार्थान् प्रदर्शयत् कर्मसु शास्त्रैकवेद्यविशेषेषु भेदान् विशदयति विशकलितं ज्ञानं जनयति, तेन तत्तदधिकारिणस्तत्तत्कर्माणि वृणते। तद्यथा हीनानाम् कामक्रोधवशानां शास्त्रविमुखानाम् अशुभं रूपं नरकादिनानाक्लेशमयम्, मध्यमानां शुभं रूपं तत्त्वज्ञानं विनाऽपि लोके सुखमयकिञ्चिदुत्कर्षावहं सामान्यं यज्ञं, दानं, तप आदि, शुभगतिमनसाम् उत्तमसंकल्पवताम् पवित्रं रूपम् प्रारब्धसञ्चितसर्वपापप्रशमनं कृच्छचान्द्रायणादि तिथिमासव्रतादि सविधिस्नानादि च, सद्धियाम् तत्त्वनिष्ठागरिष्ठानां तत्त्वोचितहितपुरुषार्थोपलम्भकदेव–व्रतयज्ञदानार्चनध्यानादिरूपम् एवं योगिनाम् अवधारितशास्त्रतत्त्वानां हितपुरूषार्थविशेषविचक्षणानां श्रेष्ठरूपन्तत्त्वध्यानादिमयं सर्वोत्कृष्टं कर्म प्रतिपादयति शास्त्रम्। शास्त्रैरैवं विशदय्य प्रस्तुतेषु कर्मसु जन्तुश्चेतनोऽधिकारी स्वेनात्मना समम् अनुरूपं कर्म गृह्णाति अनुष्ठानाय वृणीते, तत्रदृष्टान्तमाह, नाना आहारेषु रुचितम् आहारमिव, प्रस्तुतेषु कर्मसु यतिः ध्यानाभ्यासोचितधीवृत्तिः साधको ध्यानमुख्यं ध्यानप्रधानं कर्म वृणीतेऽनुष्ठानाय स्वीकरोति।

भावार्थ – यदि सभी प्राणी अपनी रूचि से ही कर्तव्यों का चुनाव करते हैं तो शास्त्र क्यों बने हैं, इस प्रश्न पर कहते हैं कि शास्त्र तो लोगों को अपने अपने हित के कर्मों के चुनाव के लिये कर्मों का सामान्य परिचय मात्र देता है न कि किसी को किसी भी कर्म से जोड़ता है। जैसे निम्नस्तर के लोग जो शुभ कर्मों में मन नहीं लगा पाते वे सहज ही अपराधों में लिप्त रहते हैं जिनका बुरा परिणाम मिलता रहता है और जो मध्यम स्तर के होते हैं वे सामान्य शुभ कर्म करते हैं जिनमें शास्त्रज्ञान की विशेष अपेक्षा नहीं होती, जो लोग अपनी उत्तमगति के लिये दृढ संकल्प लिये होते हैं उनके लिये पापनाश के कृच्छ,चान्द्रायण, मासव्रत तिथिव्रत सामान्य देवाराधन आदि का विधान है वे वही कर्म चुनते हैं, जो तत्त्वदर्शी होते हैं उनके लिये तत्त्वप्रधान एवं देवता विशेष से सम्बन्धित कर्मों का विधान है, उनमें अध्ययन की प्रधानता होती है, जो साधना में आगे हैं, तत्त्वज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, ध्यान का अभ्यास रखते हैं उनके लिये वे ही कर्म कहे गये हैं जिनमें ध्यान की प्रधानता होती है। नाना कर्मों में योगी ध्यानवाला कर्म ही चुनता है, जैसे नाना प्रकार के आहारों में कोई पसन्द का ही आहार चुनता है। इसी प्रकार शास्त्रों की उपयोगिता समझनी चाहिये।

**चेतो धात्रा प्रदत्तम्बहुगुणकरणम्भोगमोक्षैकहेतुः,**
**सत्त्वात्सत्त्वाख्यमेतत्कतिपययतनैर्वर्द्धते वृद्धसत्त्वम्।**
**यत्प्राक्पाताललीनम्पुनरपि धरणीपृष्ठनिष्ठन्तदेतद्,**
**वृद्धं स्वर्गातिलङ्घि स्फुटहरिनिलयम्ब्रह्मसायुज्यहेतुः।।३०२।।**

चेतो नाम बहुगुणं नानोपयोगयोग्यम्, अन्तःकरणम् भोगे मोक्षे च हेतुर्धात्रा चेतनेभ्यः सामान्यतः प्रदत्तम् अस्ति, अस्य सत्त्वम् इत्यपि अभिधानम् प्रथते, सत्त्वगुणेन खलुजायत इदं, कतिपयैरेव यतनैरुपायैर्वृद्धसत्त्वं वर्धते। वर्धनमाह– यत्प्रागिति, यत् चेतः प्राक् पाताल इव निम्नस्थानेषु लीनं तिरोहितमासीत् तदेव पुनर्धरणीपृष्ठनिष्ठं जातम् अप्रथस्य प्रथातिशयो नाम धरणीपृष्ठनिष्ठा, तदेवैतत् चित्तं वृद्धं सत् स्वर्गातिलङ्घि, स्वर्गीयार्थेषु वैतथ्यधीहेतुः सत् स्फुटहरिनिलयं वैकुण्ठादिदिव्यलोकान् स्फुटमिव पश्यद् भवति तेन ब्रह्मणः परमात्मनः सायुज्ये हेतुः कारणम् अपि भवति। पूर्वं यत् कीटादिसायुज्यहेतुरासीत्तदेव ब्रह्मसायुज्यहेतुरपि भवतीति स्वचेतसो गौरवं सदा ध्येयम् अस्य सदुपयोगश्च चिन्तनीयः।

भावार्थ – विधाता ने हमें चित्त नामकी एक ऐसी उत्तम भीतरी आंख दी है जो लौकिक सारे भोग और मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। यह



सत्त्वगुणप्रधान अहंकार से बनता है इससे इसे सत्त्व भी कहते हैं, वास्तव में यह सत्त्वगुण से बना एक ऐसा दर्पण है जो अधिक से अधिक साफ और अधिक विस्तृत भी हो जाता है, थोड़े ही उपायों से यह कभी पाताल के नीचे जैसा अज्ञात रहता है किन्तु परिस्थितियों के बदलते ही सारे भूमण्डल में प्रसिद्ध हो जाता है, फिर यह स्वर्ग तक जाता है और बढ़ता बढ़ता स्वर्ग को भी लांघकर परमात्मा के लोक का भी दर्शन करने लगता है और सायुज्य मोक्ष भी पा लेता है। चेतन का यह सर्वोत्तम उपकरण है, इससे इसकी हिफाजत का ध्यान रखा जाये और सत्कर्मों से इसे स्वच्छ और विकसित करते रहा जाये तो एक दिन यह सबसे महान् पुरुषार्थ की प्राप्ति करा देता है।

**ज्ञानं कर्माणि कर्ता त्रिगुणकृतभिदाऽसङ्ख्यभेदास्त्रिलोक्यां,**
**दृश्यन्ते सत्त्वशुद्धिस्थिरनिहितधिया सद्धियाऽऽत्मावधेयः।**
**सङ्गो भोगः सुखं या धृतिरथ च कृतिः सात्त्विकं स्तात्समस्तम्,**
**माभूद् वृद्धन्तमो मे परिमितरजसैशी सपर्याऽस्त्वितीच्छेत्।।३०३।।**

ज्ञानंकर्म च कर्ता चेत्यादि त्रिगुणभेदान् प्रस्तौति–ज्ञानमिति। ज्ञानं कर्माणि कर्ता च त्रिगुणकृतया भिदया असंख्या भेदास्त्रिलोक्यां दृश्यन्ते। किन्तु मुमुक्षुणा सद्धिया तत्त्वनिष्ठमतिशालिना सत्त्वस्यान्तः करणस्य शुद्धौ स्थिरं यथा स्थात्तथा निहितया धिया सदा आत्मा एव अवधेयो ध्यातव्यः। मुमुक्षुः किमिच्छेदित्यत्राह– सङ्गो जनानां, भोगो वसनाशनशयनादिरूपः सुखं षडिन्द्रियाधीनं, या धृतिश्चेतसोऽवस्थानं, या च कृतिर्व्यापाराः समस्तमिदं सात्त्विकं सत्त्वगुणप्रधानं स्ताद् अस्तु, तमो मे वृद्धम् माभूत्, परिमितेन क्रियासम्पादनौपयिकेन रजसा गुणेन ऐशी भगवदीया सपर्या सेवाऽस्तु इत्येतन्मात्रम् इच्छेन्मुमुक्षुरिति शेषः।

भावार्थ – भगवान् ने ज्ञान कर्म और कर्ता के तीन तीन भेद बतलाये हैं, उनमें सात्त्विक ज्ञान आदि से कल्याण होने की बात कही है, वही अर्थ यहाँ बतलाते हुए कहते हैं, कि यद्यपि ज्ञान कर्म और कर्ता सत्त्व, रज, तम गुणों के तारतम्य से असंख्य प्रकार के हैं किन्तु तत्त्वनिष्ठ महापुरुष चित्तशुद्धि का ध्यान रखता हुआ केवल आत्मस्वरूप के दर्शन का अभ्यास करता है, वह चाहता है कि संगति मेरी सात्त्विक हो, भोग जो भी प्राप्त हों वे सब सात्त्विक हों, सुख सात्त्विक हो, धृति अपने मन की सात्त्विक हो, मेरे कर्म भी सात्त्विक हों, जिससे चित्त उत्तरोत्तर शुद्ध होता जाये और आत्मतत्त्व का विशद साक्षात्कार हो, तमोगुण न बढ़ने पाये, रजोगुण उतना ही हो जिससे भगवान् की सेवा पूजा होती रहे।

**ब्रह्मादि स्थावरान्तन्त्रिगुणकृतभिदाऽनन्तभेदन्त्रिलोक्यां,**
**सम्पश्यन्भूतजातं क्वचिदपि न रतिं नापि रोषं च धत्ते।**
**निध्यायन्नात्मतत्त्वम्भगवदभिमतेर्मुख्यपात्रं समन्ताद्,**
**बिभ्रत्तस्यैव साम्यं शिवमशिववपुर्वृद्धसत्त्वो मनीषी।।३०४।।**

सर्वत्राद्वैतात्मतत्त्वदर्शी मुमुक्षुर्गुणकृतभेददर्शनाधीनरागद्वेषवशो न स्यात् तेन दुःखी च न स्यादित्याह—ब्रह्मादीति। भगवतो ब्रह्मणः श्रीमन्नारायण—स्याऽहमित्यभिमतेर्मुख्यम् प्रधानभूतम् पात्रं विषयस्तम्, अभिमतिहेतुम् आह तस्यैव भगवत एव अपहतपाप्र्मत्वादिगुणैः साम्यन्तुल्यत्वम् बिभ्रद् धारयमाणः, साम्यातिशयोऽहम्बुद्धिहेतुः, अशिवम् अज्ञानमयं जडं वपुः शरीरं यस्य तत् तथाभूतमपि शिवं स्वयं ज्ञानानन्दमयन्तद् आत्मतत्त्वम् अनुगतैकाकारम् अजडम् अर्थ, समन्तात्सर्वशरीरेषु, निरन्तरमभेदेन ध्यायन्नविस्मरन्, वृद्धसत्त्वः सत्कर्मध्यानभक्तिज्ञानाद्युपायैरुपचितसत्त्वगुणतया विकसितचेता, मनीषी तत्त्वैकनिष्ठमतिर्मुमुक्षुः, त्रिलोक्यां जगति, ब्रह्मादि स्थावरान्तं, कमलासनादारभ्य, तृणपर्यन्तम् भूतजातम् प्राणिसमुदायं, त्रिगुणकृतया सत्त्वादिगुणपरिणामविशेषेण, भिदया भेदेन अनन्तभेदं अनवधारणीयासंख्यभेदविशिष्टं, सम्पश्यन् निरन्तरम—वधारयन् क्वचिदपि देहिनि न रतिं धत्ते नापि च रोषं धत्ते। त्रिगुणानां सततपरिणामितयाऽनास्थाऽऽस्पदत्वाद् रागद्वेषयोग्यताऽभावः, चेतनस्य च नित्यैकाकारस्य नित्यप्राप्तस्य नित्यभोग्यस्यानुकूलतैकवेषस्यापरिणामिनश्च रागद्वेषविषयत्वाभावः। तेनाज्ञानं विना रागद्वेषस्थानं न किमपि वस्तु विद्यत इति भावः।

**भावार्थ – इस संसार में वास्तव रागद्वेषों का कोई कारण नहीं है फिर भी अज्ञान वश हम रागद्वेषों में पड़कर क्लेश झेलते रहते हैं। उस अज्ञान के निवारण के लिये कहते हैं कि सत्कर्म ज्ञान और भक्ति आदि उपायों से सत्त्वगुण के बढ़ने से जिसका अन्तःकरण विकसित हो चुका है वह विद्वान् सारे शरीरों में केवल उस ज्ञानानन्दमय शुद्ध आत्मतत्त्व को देखता है जो भगवान् का अतिशय प्रिय हैं जिसे वे उसे अपना ही रूप मानते हैं और जो स्वभाव से परमात्मा के अपहतपाप्मत्व आदि महान् गुणों से युक्त है जो जड़ शरीर धारण करता हुआ भी चैतन्यमय और उस शरीर से अत्यन्त विलक्षण है। वह सारे विश्व में ब्रह्मा से लेकर तृण तक सभी शरीरों में जो भी भेद लक्षित होते हैं उन्हें त्रिगुणों के कमीवेशी के कारण हुआ मानता हुआ**



**आत्माओं में कोई भेद नहीं करता, इससे न वह कहीं प्रेम करता है न वैर। इस प्रकार रागद्वेष का विषय न मिलने से वह दुःखी भी नहीं होता और अपने सहज ज्ञानानन्दमय स्वरूप में सन्तुष्ट रहता हैं।**

**लोके जन्तुः स्वकृत्यैर्निरयमथ भुवं स्वर्गतिं तत्परां वा,**
**प्राप्नोत्येतन्न गूढम्परमिदमपरं नैव जानन्ति सर्वे।**
**सत्सङ्कल्पात्तु कृत्यम्भवति शुभफलं हन्त ! सङ्कल्पशुद्धिः,**
**सत्त्वोत्कर्षात्सुसखागतसुमतिसदाचारनिष्ठैकनिष्ठात्।।३०५।।**

"उपचितसत्त्वगुणानां विशदधियां विहतचित्तदोषाणाम्।
"संकल्पशुद्धियोगात् कर्माशु मोक्षम्मधुफलं सूते" इत्याह—लोक इति।

लोके जगति, कोऽपि जन्तुः प्राणी स्वैरात्मीयैः कृत्यैः कर्मभिः, अशुभै र्निरयं नरकम्, अथाल्पपापैर्भुवम्पृथिवीलोकम्, पुण्यैः स्वर्गतिं देवलोकम्, तस्मात् स्वर्गादपि पराम् उत्कृष्टां वैकुण्ठादिगतिम् प्राप्नोति एतत् न गूढम् अविदितम्, अस्ति, सर्वे जानन्ति, परं किन्तु इदम् अपरम् अधिकं रहस्यं सर्वे जना नैव जानन्ति। किन्तदित्यत्राहसत्सङ्कल्पात् कर्तृकर्मोद्देश्यदेवताफलविषय— कयथार्थज्ञानात्, कृत्यं कर्म, शुभफलं सुखमयफलदायि भवति, हन्त! हर्षस्यायं विषयः खेदस्य च, संकल्पशुद्धिमात्रेण सर्वाणि कर्माणि शुभम्फलन्तीति हर्षः, सङ्कल्पशुद्धिदौर्लभ्याच्च खेदः दौर्लभ्यं सूचयति, सुसङ्गाद् आगता या सुमतिः शास्त्रनिष्ठा तया यः सदाचारः सतां शास्त्रनिष्ठानामाचारः शास्त्राधीनक्रिया— कलापः तत्र निष्ठा दृढ़विश्वासो यस्य स तथोक्तः तस्मिन् तथोक्ते पुरुषे स्थितिर्यस्य स तथोक्तः सत्त्वोत्कर्षः सत्त्वगुणस्योपचयः तस्माद् भवति हि सङ्कल्पशुद्धिः। सज्जना दुर्लभास्तावत् संगस्तेषाञ्च दुर्लभः। सुमतिर्दुर्लभा तत्र सत्क्रिया तत्र दुर्लभा। ततः सत्त्वगुणोत्कर्षस्तेन संकल्पशुद्धता। तया सकृन्नमन् श्रीशम् परमानन्दमाप्नुयात्।।

**भावार्थ – सत्त्वगुण के बढ़ने से चित्त विशद और शुद्ध होता है। तब सत्पुरुषों के वाक्य समझ में आते हैं और कर्मों के फल मुक्तिमार्ग के अनुकूल होते हैं। इससे सत्त्वगुण के विकास के प्रति यत्नशील रहने का सुझाव देते हुए कहते हैं कि एक ही छोटा सा कर्म नरक से लेकर वैकुण्ठ तक दे सकता है। किसी ने गुलाब का एक फूल पीपल की जड़पर रखकर प्रणाम किया और चला गया। चला गया वह उसी से नरक को, क्यों कि उसने अपने भाई को दुश्मन मानकर उसको मारने के लिये उस पेड़ पर रहने वाले पिशाच को वह**

फूल सौंपा था। चला गया होगा वह उसी से वैकुण्ठ धाम को, सम्भव है उसने अत्यन्त निष्काम भाव से जगत् के नियन्ता को वह फूल उनका ही मानकर, अपने को भी उनका मानता हुआ, यह भी मानता हुआ कि यह फूल उनकी कृपा से उनके लिये उनके हाथों से उनकी ही इच्छा से उनको समर्पित हो रहा है, इस छोटे से समर्पण में उनके सिवा अपना कुछ नहीं है। नरक से वैकुण्ठ तक करोडों स्थान हैं जो संकल्प में बसने वाले भावों के माध्यम से मिलते हैं। संकल्प की शुद्धि सत्त्वगुण के बढ़ने से होती है। सत्त्वगुण बढ़ता है सत्कर्मों की पूर्ति से, वह होती है सद्बुद्धि से और सद्बुद्धि मिलती है सज्जन संगति से, सज्जनों की सृष्टि भगवान् ही करते हैं इससे अन्त में भगवान् की ही शरणागति महान् उपाय है।

**एको यज्ञोऽश्वमेधो दिशति निजफलं कर्तृभेदादसङ्ख्यं,**
**दुःखाढयं लेशदुःखं सुखमतिशयितं तत् पदं श्रीपतेर्वा।**
**साद्गुण्यन्तेन कर्ता श्रुतितदनुगताधीत्यनुष्ठानधारा–**
**धारित्वेनात्मनीष्टं कलयति, न फलं शुष्ककाष्ठम्प्रसूते।।३०६।।**

उक्तमेवार्थं कर्तृगुणवृद्ध्या विशदयति–एको यज्ञ इति। एकोऽश्वमेधो नाम यज्ञः कर्तृभेदात् कर्तृगतसंकल्पशुद्धितारतम्यात्, असंख्यं गणयितुमशक्यं निजम्फलं दिशति सम्पादयति। हिंसाभावमय्या शत्रुजयेच्छया कृतोऽसौ जननान्तरे कृच्छसाध्यशत्रुवर्गमध्यगतं दुःखाढयं लोकन्ददाति। स एव स्वर्गकामनया कृत उत्कृष्टनानादेवविमानमध्ये ईर्ष्यालेशदुःखयुतं स्वर्गं सूते। स एव संकल्पशुद्धेः स्वर्गादपि रमणीयमदुःखं तप आदिलोकं ददाति। पूर्णशुद्ध्यातु संकल्पस्य सच्छास्त्रसदाचारनिघ्नजीवनस्य महापुरुषस्य स परमं श्रीपतेर्भगवतो वैकुण्ठं नाम लोकन्ददाति तेन कर्ता श्रुतिर्वेदादिशास्त्रन्तदनुगता अविरुद्धा अधीति– स्तत्त्वनिर्णयस्तेन प्रयुक्तम् अनुष्ठानं निष्कामकर्म तस्य धारा चित्तशुद्धिपर्यन्तः क्रमः तदाधारित्वेन तथाविधसत्कर्माश्रितत्वेन रूपेण आत्मनि स्वस्मिन् इष्टं चिरवाञ्छितं, साद्गुण्यम् भगवत्प्रीत्यौपयिकोत्तमगुणराशिं, कलयति लब्धुं यतते। नहि शुष्कं काष्ठम् फलम् प्रसूते जनयति। "शुष्ककाष्ठोपमः कर्ता न शुभस्यापि कर्मणः। सत्फलं लभते तेन साधु साद्गुण्यमाहरेत्।।"

**भावार्थ – कर्ता के संकल्प से ही कर्मफल मन्द मध्य उत्तम बनते हैं, इससे संकल्प की शुद्धि के प्रयत्न करने चाहिये इस आशय से कहते हैं कि एक ही अश्वमेध यज्ञ भिन्न भिन्न कर्ताओं को उनके संकल्पों के अनुसार**



**असंख्य प्रकार के फल प्रस्तुत करता है। हिंसामय संकल्प से शुभकर्म का फल भी कुछ दुःखलिये होता है, लोभयुक्त संकल्प से कुछ कम क्लेशवाला फल मिलता है, परोपकारमय संकल्प से जो फल होता है उसमें कष्ट होता ही नहीं बल्कि आनन्दमय उत्तम लोकों में मिलने वाला फल होता है। भगवान् के प्रति निष्काम एवं तत्त्वबोध पूर्ण भक्ति से उत्पन्न संकल्प से वही शुभ कर्म वैकुण्ठ भी पहुँचा देता है। इससे कर्ता अपने में वे उत्तम गुण अर्जित करने का प्रयत्न करता है जो वेदादिशास्त्रों के अध्ययन मनन और उनके अनुरूप सतत अनुष्ठान के फलस्वरूप होता है जिसे उत्तम लोग ही चाहते हैं। सूखी लकड़ी में अंकुर नहीं लगता। फल तो कैसे हो पायेगा।**

**मुख्यं कर्तृत्वमैशं हृदि दधदमलं निर्विशेषं स्वरूपं,**
**ध्यायन्कान्तेव पत्यौ धृतसरसमतिर्मुच्यते मंक्षु बन्धात्।**
**विद्यैषा श्रौतहार्दाऽधिगमशुभकुलाल्लभ्यते तत्परेण,**
**सत्कन्येवाप्तविद्याविकलुषमनसा वाग्मिना सद्वरेण।।३०७।।**

मुक्त्युपायरहस्यमाह–मुख्यमिति। मुख्यम्प्रधानभूतं कर्तृत्वं क्रियाश्रयत्वम्, ऐशम् ईश्वरनिष्ठम्, तत् स्वस्य हृदि मनसि दधत् अविस्मृत्या धारयमाणः, अमलम् अरागद्वेषं, निर्विशेषं निरूपणहेतुस्वधर्मरहितम् स्वं आत्मीयं रूपं ध्यायन् देहादिभिन्नत्वेनाविस्मृत्या अनुसन्दधत्, कान्ता इव पत्यौ जगताम् अनन्तरमणीयगुणाकरे वल्लभे परमात्मनि, धृता अस्खलिता सरसा अनुरागमयी मतिस्तत्त्वज्ञानं यस्य स तथोक्तश्चेतनो बन्धात् संसारसम्बन्धात् मंक्षु शीघ्रम् मुच्यते निर्गच्छति। एषा मोक्षविद्या श्रौतस्य वेदादिग्रन्थगतस्य हार्दस्य तात्पर्यविशेषस्य अधिगमेनावधारणेन शुभात् मंगलहेतोः कुलाद् वंशविशेषात् सत्सम्प्रदायतत्त्वावधारणनिपुणाचार्यपरम्परासम्बद्धाच्छास्त्रपारदृश्वनो महात्मनः सकाशात् तत्परेण विद्याधिगमोद्यमनिरतेन लभ्यते फलकारिरूपेण प्राप्यते। तत्र दृष्टान्तमाहसत्कन्येव रूपशीलगुणवती कुमारीव एषा विद्या आप्ताभिर्विद्याभिः सामान्यशास्त्रैः परिशीलितै र्विकलुषमनसा तात्पर्यावधारणविरोधिकुतर्कापगम– विशुद्धचेतसा, वाग्मिना सच्छास्त्रव्याख्याननिपुणेन सता अदूरगेण वरेणेव जिज्ञासुना लभ्यत इति पूर्वेण योजनीयम्।

**भावार्थ – ग्रन्थ के अन्त के पास अब उपनिषदों के रहस्यभूत गीताशास्त्र के निष्कर्ष के रूप में कहते हैं कि मुमुक्षु पुरुष में तीन बातें होती हैं, पहली यह कि वह एक पतिव्रता स्त्री की भाँति यह सदा ध्यान रखता है कि मेरे**

सारे कर्म प्रभु की सन्तुष्टि के लिये, उनकी ही इच्छा और आदेश से होते हैं, प्रयत्न भी उनके ही होते हैं, वास्तव में वे ही सारे कर्म करते हैं। दूसरी बात भी पतिव्रता की ही तरह यह है कि वह अपनी कोई अलग पहचान नहीं बनाना चाहता, यही निर्विशेषता है, पतिव्रता मातृकुल या पति की कोई विशेषता अपने लिये अलग से स्वीकार नहीं करती। सारी विशेषतायें वह पति की सन्तुष्टि के लिये पति की इच्छा के अनुरूप मानकर धारण करती है, किसी भी कुल का कोई दोष भी अपने में न धारण करती है, न मानती है, यदि दूसरों को कुछ दिखाई पड़ता हो तो वह भी वह उन कुलों का ही मानती है। यही आत्मा की असंगता निर्गुणता और निर्विशेषता है जिसका ध्यान मुमुक्षु को नहीं भूलता। ये सारी बातें उसमें पति के प्रति दृढ़ अनुराग से होती हैं, वह अनुराग के नेत्रों से ही पति को सदा देखती हैं। पति के प्रति अनुराग भगवान् के प्रति भक्ति कहा जाता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं होता भक्ति से ही सारे दोष कटते हैं, गुण आते हैं और संसार बन्धन से मुक्ति मिलती है। सरलवाक्यों की यह मोक्षविद्या वेदवेदान्तनिष्णात महापुरुषों की उत्तमप्रज्ञा का निष्कर्ष है। कोई मुमुक्षु तत्परता पूर्वक ऐसे महापुरुषों की संगति से उनकी कृपा से वैसे ही पा लेता है जैसे कोई गुणरूपशीलवती कन्या उत्तमविद्या से निर्दोष चित्त वाले शास्त्रव्याख्यान निपुण उत्तम वर को मिलती है।

देवो भक्त्यैव लभ्यो भवति परमया ज्ञानिना सा च लभ्या,
तज्ज्ञानं कां च भक्तिं खलु निजजननेऽपेक्षते साऽपि बोधम्।
बोधोऽसौ कर्मलभ्यो भवति सुमनसा कर्म तावद्विधेयं,
यावच्चेतो विरक्तं हरिचरणयुगे जायते नानुरक्तम्।।३०८।।

भगवदर्थकर्मण एवाजीवनमनुष्ठितस्य परमपुरुषार्थमूलत्वमित्याह—देव इति। देवः श्रीमन्नारायणः परमया भक्त्या एव लभ्य इति सकलशास्त्रसिद्धान्तः। सा च परमा भक्तिर्ज्ञानिना तत्त्वज्ञानवतैव पुरुषेण लभ्या, नहि अविज्ञाते कुत्रापि भक्तिर्दृश्यते। तज्ज्ञानं निजजनने कां चापि सामान्यानुरागरूपाम् भक्तिम् अपेक्षते खलु, नहि जिज्ञासाप्रयोजकं कुतूहलं बिना ज्ञानप्रयत्नो मनसोऽपि कस्यापि दृश्यते, सा सामान्यानुरागरूपाऽपि भक्तिर्बोधम् अपेक्षते, सामान्यतोऽवगत एवार्थे किञ्चिन्मात्रानुरागो जनस्य जायते। असौ बोधोऽपि कर्मणैव प्राचीनेन केनापि लभ्यते, नहि गवादेरिव तृणादौ व्याघ्रादेः परिचयो दृश्यते, स्वाहारपरिचयाय



गोत्वादिप्रयोजकप्राचीनकर्मणामपेक्षितत्वात्। तेन सुमनसा सत्सङ्गसच्छास्त्र–सुधौतचेतसा मुमुक्षुणा तावत्कालं कर्म विधेयं विधातुमेषणीयं यावद् विषयेषु विरक्तं चेतो हरिचरणयुगे भगवच्चरणारविन्दद्वन्द्वे अनुरक्तम् अविच्छेद्यानुरागमयं न जायते, न सम्पद्यते। स्वगतायाम् भगवत्प्रीतावसन्तुष्यन्तः सन्त आजीवनं सत्कर्मानुतिष्ठन्तो दृश्यन्ते। कर्मत्यागे भक्तिज्ञानोदय–हेतुत्वजल्पनस्य–पाखण्डैकमूलत्वात्।

भावार्थ – निष्काम कर्मयोग ही जो आजीवन किया जाता है वह परमपुरुषार्थ मोक्ष का कारण होता है, तत्त्वबोध या भक्ति जो भी प्राप्त हो गया हो उसे सत्कर्मों के द्वारा बढ़ाते रहने की इच्छा सत्पुरुषों को होती है, जब सोना चाँदी जैसे जड़ पदार्थों की इयत्ता से सन्तुष्टि नहीं होती तो भवबन्धध्वंसरूप परमपुरुषार्थ के प्रयोजक महान् रत्न तत्त्वज्ञान और भक्ति से किस भाग्यशाली को सन्तुष्टि होगी और उसे उत्तरोत्तर निखारना नहीं चाहेगा। इसी आशय से कहते हैं कि भगवान् परम भक्ति से ही प्राप्त होते हैं यह शास्त्र सिद्धान्त है वह भक्ति किसी ज्ञान से होती है किन्तु वह ज्ञान भी सामान्य भक्ति से होता है और उस भक्ति के लिये सामान्य परिचय रूपी किसी ज्ञान की अपेक्षा होती है। वह सामान्य परिचय भी प्राचीन किसी कर्म से होता है। देखा जाता है कि घास से सामान्य परिचय जैसे तृणचारी पशुओं को होता है वैसा मांसभक्षियों को नहीं होता। तृणचारी योनि किसी कर्म से ही मिलती है तब तिनकों से परिचय होता है। इस दृष्टान्त से भगवद्भक्ति का प्रथम और चरम मूल सत्कर्म ही है। इससे सत्पुरुष तब तक कर्म करते हैं जब तक सांसारिक विषयों से मन हट कर भगवान् के चरणों से दृढ़ता से जुट न जाये। अपने ज्ञान या भक्ति को दृढ़ मानकर कर्मत्याग की इच्छा किसी शीलवान् को नहीं होती, इससे सत्कर्म आजीवन ही किये जाते हैं। जिन्होंने सत्कर्म शुरु ही नहीं किया उनकी बात अलग है, उन्हें सत्संग नहीं मिल पाया है।

कर्ता वास्यादिहस्तो भवति, न सफलस्तद्वियुक्तः कदाचिद्,
वास्यादेः कालिकत्वे भवति करणिनः कर्तृता कालबद्धा।
एवं देहेन्द्रियाद्यैः कतिपयसमयस्थायिभिः कर्म जन्तुः,
श्रीशानुज्ञातमात्रं विदधदशुभधीर्मन्यते स्वं समर्थम्।।३०९।।

कर्मानुष्ठानिनोऽपि स्वं कर्तृत्वं नानुसन्दधते, भगवत एव सकलकर्म–कर्तृत्वस्य शास्त्रार्थत्वेन स्वव्यापाराणामपि भगवता एव वस्तुतः सम्पाद्य–मानत्वादित्याह–कर्ता वास्यादीति। जीवस्याकर्तृत्वं दृष्टान्तेनोपपादयति, वास्यादिहस्तः कर्ता तक्षाऽऽदिः, कदाचित् समयविशेषे, तद्वियुक्तः करणभूत–वास्यादिरहितः स्वकर्मणि सफलो न भवति, नैव तेन वास्यादिफलं कर्म सम्पद्यते, तथा च वास्यादेः कालिकत्वे करणिनः वास्यादिरूपकरणधारिणः कर्तुः कर्तृता व्यापारकारी यत्नविशेषः कालबद्धो भवति। करणसंयोगे कर्तृत्वं तदभावे नेति व्यवस्था दृश्यते। एवम् एव कतिपयसमयस्थायिभिर्नित्येनात्मना नित्यमसंयुक्तैर्देहेन्द्रियाद्यैः संकल्पेच्छायत्नपर्यन्तै, जन्तुः शरीरी चेतनः, श्रीशानुज्ञातमात्रम् भगवता निसृष्टमात्रं तृणादौ गवादेरिव, गवादौ व्याघ्रादेरिव, व्याघ्रादावाखेटकादेरिव कर्म व्यापारं विदधत् कुर्वाणो न नित्यव्यापारो भवति, करणादिविशिष्ट एव तु स्वम् आत्मानं समर्थम् भगवन्निरपेक्षसामार्थ्यवन्तम् मन्यते जानाति। अयमेवाज्ञानिनस्तस्य संसारः।

**भावार्थ – कर्म योगी जो भी कर्म करता है वह विश्व के सारे छोटे बड़े कर्मों की तरह केवल परमात्मा के संकल्प से होता है, उन सारे कर्मों को परमात्मा ही कराते हैं, इस तथ्य पर ध्यान रहने से कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी कर्म फल का भागी नहीं होता, वैसे ही जैसे दिनभर हल खींचने वाला बैल फसल का या भूसा का भी मालिक नहीं बना पाता। इसी आशय से कहते हैं कि बढ़इ या लोहार अपने हाथ में बसूला आदि औजार जब लिये रहता है तब तो अपना काम कर लेता है किन्तु जब किन्हीं कारणों से औजार छोड़ देता है तब वह बढ़इ भी नहीं माना जाता, इस तरह उसकी बढ़इगिरी स्थायी नहीं होती। इसी तरह कोई भी प्राणी जब भी कोई काम करता है तो शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त अहंकार के सहारे ही कर पाता है। शरीर आदि भी बसूला जैसे औजार के तुल्य ही मिलने और छूटने वाले साधन होते हैं, इससे कोई भी चेतन न तो किसी खास काम का न सारे कामों का नित्य कर्ता हो सकता है। वह अपने समय में जो भी कर पाता है वह कर्म भी ईश्वर की ओर से छूट मिली होने से करता है, वास्तव में वह तो करता ही नहीं बल्कि ईश्वर उससे कर्म कराते हैं, बैल से हल खींचवाने की तरह। इस रहस्य को न जानने वाले अहंकारी जीव कर्मों के प्रति अपने को ईश्वर की ही तरह स्वतन्त्र मानते हैं इससे कर्मफल भी अपने अज्ञानमय संकल्पों के अनुसार पाते रहते हैं।**



**ब्रह्म क्षत्रं विशो वा ऽप्यथ चरणभवाः स्वस्वभावानुरूपां,**
**चेतोवृत्तिं कृतिं वा दधति यदवशास्तत्र कर्ता परात्मा।**
**सङ्गत्यागेन सत्त्वप्रचयकृतधिया शुद्धया श्रीशसेवाम्,**
**मन्वानाः सर्वचेष्टा भगवदनुभवाहारिणोऽभ्यर्णमोक्षाः।।३१०।।**

उक्तमेवार्थं विशिष्याह–ब्रह्म क्षत्रमिति। ब्रह्म आद्यो वर्णः, क्षत्रम् अपरो वर्णः, विशो वित्तनिरूपणीयस्तृतीयो वर्णः, अथापि चरणभवा भगवदीयचरणकमल–निष्यन्दभूता रसमयसेवाव्रतिनश्चतुर्थाः शूद्रा, एतदुपलक्षिता अन्येऽपि प्राणिनः, तेषां स्वे स्वे ये भावाः सङ्कल्पास्तदनुरूपां चेतोवृत्तिम् इष्टसाधनताज्ञानमिच्छां कृतिम्प्रयत्नञ्च, अवशा दृश्यानुकूलदृष्टिमन्तो न तु परमात्मवत्स्वसत्सङ्कल्पा–नुविधायिदृश्यराशयः, यद् दधति धारयन्ति तत्रानौपाधिकज्ञानेच्छाप्रयत्नवान् कर्ता पर आत्मा भगवान् भवति। चेतनास्तु भगवत्सङ्कल्पाधीनज्ञानादिमत्त्वात्प्रयोज्यभूताः कर्तारः। एतेन किमायातमित्यत्राह–सङ्गत्यागेन, परकीयवित्तेषु सङ्गाद् अपराधा भवन्ति तस्माद् भगवदीयेषु सकलार्थेषु प्रीतिविशेषरूपस्य सङ्गस्य त्यागेन ज्ञानद्वारा अपनयनेन, शुद्धया अरागद्वेषया सत्त्वप्रचयकृतया धिया प्रज्ञया, सर्वाः स्वीयाश्चेष्टाः श्रीशस्य परमात्मनः, सेवां तदीयसन्तुष्टिहेतुव्यापारम्, मन्वाना असंशयमविस्मरणं जानाना, भगवदनुभवाहारिणोऽनुभवम् एवान्नपानादिवन्मुख्याहारत्वेन स्वीकुर्वन्तः सन्तोऽभ्यर्णः सन्निहितो मोक्षो येषान्ते तथोक्ता भवन्ति। सर्वत्यागेन सर्वस्मान्मोक्षस्त्यागबलाऽनुकूल्येन सन्निहितो भवतीति भावः।

**भावार्थ – पिछले अर्थों को उदाहरणों से स्पष्ट करते हुए कहते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और सेवा प्रधान जीवन वाले शूद्र ये और ऐसे ही अन्य प्राणी भी अपने अपने संकल्प आदि के द्वारा जो भी नानाप्रकार की परिस्थितियों के अधीन कर्म करते हैं उन कर्मों में उनकी स्वतन्त्रता बहुत सीमित होती है, उन सभी कर्मों के प्रयोजक और मुख्यफलभागी परमात्मा होते हैं। संसारी चेतन तो सर्वथा पराधीन होने से पशुओं की तरह प्रयोज्य कर्ता होते हैं। इस तथ्य को समझने वाले महापुरुष सारे विश्व को भगवदीय वस्तु मानते हुए उसमें कहीं भी आसक्ति नहीं रखते। वे भगवान् के सहारे रहते हुए उनका ही भरोसा रखते हुए अज्ञाननिवृत्ति के लिये चित्त में सत्त्वगुण बढ़ाने के उपाय करते रहते हैं। प्रकृतिसंसर्गवश जो भी कर्म उनसे बनते हैं उन्हें भगवान् की प्रेरणा से हुए और उनकी ही सन्तुष्टि के लिये उनकी सेवापूजा के रूप में मानते हुए केवल भगवद् अनुभवों में लीन रहते हैं। मुक्ति उनके निकट होती है।**

**द्रव्यैः सर्वैर्विशिष्टः स भवति भगवांस्तद्गुणैः सर्वकृत्यै–**
**स्तत्तद्रूपः स वेद्यो न तदितरदिहास्तीति जानन्ति सन्तः।**
**देहेऽहंधीर्जडानाम्भवति मतिमतान्तद्विशिष्टे तदाप्ते–**
**मार्गाः सर्वे स नान्ये स हि भवति सतां कर्मधीभक्तिरूपः।।३११।।**

"सकलमुपेयं श्रीशः सकलोपायाः स एव नास्त्यन्यत्। इत्यर्थमाह मुक्त्यै नैवाद्वैतं विना हि सा लभ्या"। द्रव्यैरिति। स श्रुतिसिद्धो भगवान् सर्वैर्द्रव्यैर्विशिष्टो भवति, तेषान्द्रव्याणां गुणैर्विशिष्टो भवति, सर्वैः कृत्यैर्विशिष्टो भवति, सर्वशरीरकतया तत्तद्द्रव्यगुणकर्मादिरूपः स भगवानेव वेद्यः, इह जगति तदितरत् नास्तीति सन्तो जानन्ति। अचेतनानां द्रव्यगुणकर्मणाञ्चेतन–भगवत्तादात्म्यम्भगवदभिमत–शरीरात्मभावनिबन्धनमित्यभिप्रयन् आह देहेऽहं धीरिति, जडानामज्ञानिनामनात्मविदां देहमात्रेऽहंधीर्भवति, मतिमताम् असङ्कुचितज्ञानानान्तु तेनदेहेन विशिष्टेऽहंधीर्भवति, भगवांस्तु नित्यासङ्कुचितज्ञानः स्वदेहभूतद्रव्यादिविशिष्टमेवात्मानम्मन्यते तेन तद्दृशा तस्य परमात्मन आप्तेर्मार्गाः कर्मज्ञानभक्त्पादयः स परमात्मैव, ते मार्गा भगवतोऽन्ये न भवन्ति। तदेवोपपादयति स हीति, स हि भगवान् सताम्मतेन कर्मरूपो धीरूपो भक्तिरूपश्च भवति। कर्मधीभक्तिरूपोपायवेषेण भगवता भगवान् लभ्यते। तेन तदेकोपायोपेयतोपपन्ना भवति।

**भावार्थ – अद्वैतदृष्टि के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है, वह अद्वैतदृष्टि या भक्ति या सत्कर्म सब कुछ भगवान् ही हैं, ऐसा मानने पर ही अद्वैतदृष्टि बन पाती है। इस तथ्य को समझना आवश्यक है मुक्ति के लिये, यह मानकर कहते हैं कि सारे द्रव्यों से, उनके सारे गुणों से और कर्मों से भगवान् वैसे ही विशिष्ट हैं जैसे देह से आत्मा विशिष्ट होता है, इससे सारा संसार भगवान् का शरीर माना गया है, जो कुछ दिखाई पड़े या समझ में आये वह सब माया है किन्तु सारी माया भगवान् का शरीर है इससे सब कुछ भगवान् ही हैं ऐसा मानना उचित है। शरीर से ही आत्मा की पहचान होती है। इसी तरह जगत् से परमात्मा की पहचान होती है। कर्मज्ञानभक्ति आदि उपाय भी परमात्मा के शरीर ही हैं। जब परमात्मा से बाहर या दूसरा कुछ है ही नहीं तो परमात्मा को पाने के उपाय अलग कहाँ से आयेंगे। कोई उपाय भगवान् से अतिरिक्त न होने से यह मानना उचित ही होगा कि सारे उपाय और सारे पुरुषार्थ परमात्मा की ही मूर्तियाँ हैं। जब सब कुछ परमात्मा ही समझ में आने लगे तब मुक्ति निकट होती है। सत्संगमण्डल में या सद्ग्रन्थ पढ़ते समय तो अद्वैत–दृष्टि बन जाती है किन्तु लोक–व्यवहार में भेद दीखता है। सत्संग**



**की तब तक आवश्यकता होती है जब व्यावहारिक सारे भेद धीरे–धीरे घटते घटते मिट जायें। तब मुक्ति बहुत निकट हो जाती है।**

**धर्मान् सर्वान् स्वतन्त्रांस्त्यज भज सकलोपेतमन्तः स्थितम्माम्,**
**मा भिन्द्या मत्क्वचित्तान्भवति हि सुधियाम्भेदधीर्बन्धहेतुः।**
**धर्मक्षेत्रे सुगीतन्तदिदमतिदयम्पार्थमुद्दिश्य शास्त्रं,**
**श्रीकृष्णब्रह्मणाऽऽद्यं सकलसुगतये सद्दयासागरेण।।३१२।।**

सर्वे भगवद्धर्मा यदि भगवत एव मूर्तयस्तदा सर्वधर्मपरित्यागोपदेशो भगवतः स्वसमाश्रयणोक्तिविरुद्ध इत्याशङ्कायामाह–धर्मान् सर्वानिति। स्वतन्त्रान् भगवदनात्मकान् सर्वान् धर्मान् त्यज तेषूपायभावं वर्जय, सर्वस्यार्थस्य भगवदात्म–कत्वात्तदनात्मकानां धर्माणां शशेबिषाणवदलीकत्वेन तैः कल्पनामात्रशरीरैः सदर्थलाभासम्भवेन तत्त्यागोपदेशो युक्त एव। सकलोपायोपेयोपेतम् अशेषचिदचिद्विशिष्टम्, अन्तःस्थितमन्तर्यामिणम्माम्, भज प्रियोपायोपेयभावेन प्रीतिमयेन भावेन सेवस्व, क्वचिदपि देशे काले तान् धर्मान् मत् मत्तःसकाशात् मा भिन्द्या मदतिरिक्ततया माऽवधारय, हि यतः, सुधियां सच्छास्त्रशुद्धमतीनां सज्जनानामपि, भेदधीर्भगवद्भिन्नबुद्धिरभगवद्विषयिणी बुद्धिरितिभावः, संसार–बन्धहेतुर्भवति। तदिदम् आद्यं शास्त्रम् आत्मस्वरूपस्वभावपुरूषार्थोपाय–प्रतिबन्धकवर्जनपरम्, अतिदयं दयाऽनर्हेषु दयां कुर्वाणम् उपेक्षितप्रमुखकर्माणम्, पार्थम् अर्जुनम् उद्दिश्य, सत्या विश्वकल्याणहेतुभूताया दयायाः सागरेण असीमकरुणेन, श्रीकृष्णेन ब्रह्मणा परमात्मना स्वेनैव सकलानामधिकारिणां सुगतये सद्बोधाय सत्फलाय च धर्मक्षेत्रे सत्तत्त्वबोधौपयिके स्थले सुगमं यथा स्यात्तथा गीतम् प्रियहितवचोभिरुपदिष्टम्। सर्वहितमिदं शास्त्रं सर्वैरपि सर्वदोपादेयमिति भावः।

**भावार्थ – जब भक्ति ज्ञान कर्म आदि सारे उपाय भगवान् के ही शरीर की तरह उनसे अलग न होने वाले अर्थ हैं तो भगवान् ने उन सारे धर्मों को छोड़ने और अपनी शरणागति करने को कैसे कहा, धर्मों के त्याग से तो भगवान् का ही त्याग हो जायेगा तब फिर उनकी शरणागति कैसे होगी, इस प्रश्न पर कहते हैं कि मनुष्य की अज्ञान–जनित अनादि भेद दृष्टि को ध्यान में रखकर वैसा कहा गया है। जो सारे धर्मों को भगवान् के रूप समझेगा वह त्याग नहीं करेगा, त्याग वह करेगा जो धर्मों को स्वतन्त्र उपाय मानता है। स्वतन्त्र उपाय मिथ्या हैं, उनसे सत्य फल मोक्ष नहीं मिल सकता, इससे**

उनका त्याग कहा गया है। भगवान् कहते हैं कि केवल मुझे मुक्ति का उपाय समझो, मेरे सिवा दूसरा कुछ न देखो। पापों से मैं ही छुड़ाऊँगा, बाद की उत्तम अवस्था मैं ही दूँगा, मेरे सिवा कोई न दूसरा साधन है न साध्य है। अन्तर्यामी मैं ही कर्मज्ञान भक्ति आदि उपायों के साथ हृदय में रहता हूँ। मेरे उस अन्तर्यामी रूप पर निष्ठा रखो। उपायो को मुझसे अलग कभी न मानो। अलग मानने से भेद दृष्टि होगी और मुक्ति दूर हो जायेगी। यह अनादि मोक्षशास्त्र भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा ने अनुचित दया के चक्कर में पड़े अर्जुन को लक्ष्य करके वास्तव दया के सागर होने के नाते सभी जनों के कल्याण के लिये तत्त्वज्ञान के उपयुक्त धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्र में प्रेमपूर्वक सरल भाषा में समझाया है। भगवान् की इस उदार दया का लाभ हम सबको उठाना चाहिये।

**श्रीमन्नारायणेनार्जुननरमभितः कल्पयित्वा स्वशक्त्या,**
**शुश्रूषुं युद्धशङ्खध्वनिहतमनसाम्पश्यतां कौरवाणाम्।**
**यद्गीतं देवगङ्गाविशदमनिमिषासेव्यमध्यात्मशास्त्र–**
**न्तस्याम्भोधेर्गुरूक्तिश्रुतिपवनमिलद्विप्रुषोऽत्रानुसेव्याः।।३१३।।**

नरनारायणसम्प्रदायागतश्रुतिरहस्याष्टाक्षरमन्त्रविशदार्थत्वेनैतद्गीताशास्त्रस्योपादेयतातिशयं सूचयन् नरनारायणनामद्वारोक्तार्थमुपसंहरति– श्रीमदिति। विश्वरक्षौपयिकन्यासिवेषश्रियाविभूषितेन नारायणेन, परेण ब्रह्मणा धृतश्रीकृष्णरूपेण स्वशक्त्या सङ्कल्पविशेषेण अर्जुनावतारं नरम् अभितः स्वसम्मुखं शुश्रूषुं कल्पयित्वा युद्धशङ्खध्वनिहतमनसां हतयुद्धोत्साहानां कौरवाणाम् पश्यताम् अनादृत्य तान्, देवगङ्गाविशदं नित्यनिर्दोषम्, अनिमिषैर्देवैरपि सततं सेवितुं योग्यम्, अध्यात्मशास्त्रं यद् गीतं तस्य अम्भोधेः सागरवदनवगाहस्य गुरूक्तिश्रवणमेव पवनः तत्र मिलन्त्यो या विपुषो जलस्येव कणिकास्ता अत्रानुसन्धेयाः परिशीलयितुं योग्याः स्युः। महासागरतुल्यस्य भगवद्गीताशास्त्रस्य, सदाचार्योपदेशश्रवणावगतेषु केऽप्यंशा इह सन्ति। सर्वन्तु तत्रैव कुशलैः कलयितुं शक्यं स्यादिति भावः।

भावार्थ – अध्यात्मविद्या के द्वारा विश्वकल्याण के लिये नरनारायण अवतार लेकर भगवान् बदरी नारायण क्षेत्र में तपस्या कर रहे हैं। वे अवतार ही कृष्ण अर्जुन भी बने हैं। इस रूप में भी उसी अध्यात्म विद्या का प्रश्नोत्तर है। जो मूल अवतार नरनारायण संवाद में हैं। इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करके विद्या की मौलिकता का संकेत देने के लिये यहाँ नरनारायण



शब्दों का उल्लेख हैं। यहाँ का सारांश है कि श्रीमन्नारायण अवतार के अवतार श्रीकृष्ण ने नरावतार अर्जुन को धर्मक्षेत्र युद्धक्षेत्र में तत्त्वबोध के उपयुक्त स्थान होने से एवं अर्जुन के हृदय में विषाद के रूप में तत्त्वज्ञान का उपक्रम होने से भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने संकल्प से उन्हें युद्धारम्भ काल में भी शंखध्वनि मात्र से हतप्रभ शत्रु कौरवों के देखते देखते में उनकी परवाह न करते हुए जिस अनादि अध्यात्मविद्या रूपी महासागर का उपदेश किया वह तो मूल भगवद्गीता में ही उपलब्ध होगा, यहाँ इस ग्रन्थ में तो अपने आचार्य से उस महासागर के बारे जो भी सुना वह तरंगों पर चलती हवा में आने वाले जलकण के तुल्य अति अल्प ही है फिर भी महान् उपयोगी होने से जो भी कुछ है वह अनुसन्धान योग्य और कल्याणकारी है।

**कर्म ज्ञानञ्च भक्तिः प्रपदनमथ चाचार्यनिष्ठाऽत्र शास्त्रे,**
**सङ्गत्योक्तानि सङ्ख्ये त्रिभुवनगुरुणाऽऽद्येन कृष्णेन मुक्त्यै।**
**अद्धा पञ्चापि बद्धा भवभयहरणज्ञानकाष्ठाद्रढिम्ने,**
**पाठ्यं ध्येयं विचिन्त्यं सकलमपि विदा श्रीशसन्तुष्टिभूम्ने।।३१४।।**

भगवद्गीतायां ज्ञानस्य भक्तेः कर्मयोगस्य वा प्राधान्यमभिप्रेत्य तैस्तैर्व्याख्यातृभिः स्वस्वाभिप्रायो वर्णितः। वस्तुतस्तु इह शास्त्रे कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगः शरणागतियोग आचार्यनिष्ठायोगश्च मिथः सङ्गत्या एकीभावेन प्रतिपादिताः। तदेवाह, आद्येन विश्वसृष्टिमूलभूतेन तत्त्वज्ञानस्य प्रथमेनाचार्येण भगवता संख्ये धर्मयुद्धरूपे महति कर्मयोगे प्रसक्ते तस्य शुद्ध्या मुक्त्यै कर्मादीनि उक्तानि। अद्धा सुविचार्य बद्धा एकीभूता भवभयहरणं यज्ज्ञानं तस्य या काष्ठा निष्कर्षः तस्य द्रढिम्ने स्थिरत्वाय श्रीशस्य परमात्मनः सन्तुष्ट्या मोक्षहेतुदयोत्तम्भक– प्रीतिविशेषस्य भूम्ने वृद्धये च विदा मुमुक्षुणा सकलमपि कर्मादिप्रतिपाद्यार्थवृन्दं श्रद्धया पाठ्यम् पठनीयं, ध्येयम् अनुचिन्तनीयं, विचिन्त्यं नानातर्कैर्मननीयञ्च।

भावार्थ – भगवद्गीताशास्त्र में कर्म ज्ञान भक्ति शरणागति और आचार्यनिष्ठा ये पाँच मुक्ति के साक्षात् उपाय कहे गये हैं। इन्हें उन भगवान् ने कहा है जो विश्वसृष्टि के मूल हैं और जो विश्व के प्रथम आचार्य हैं। वे ही महाभारत काल में कर्म के द्वारा मुक्ति का प्रतिपादन करने के लिये श्रीकृष्ण बने हैं। कर्म आदि पाँचो उपाय एक दूसरे के सहकारी और पूरक हैं। इनका पठन ध्यान मनन करते रहने से मोक्ष हेतु ज्ञान सुदृढ होता है और भगवान की कृपाहेतु सन्तुष्टि बढ़ती है।

**स्वो भूत्वैतां सदर्थप्रतिनियतलसत्स्रग्धरावृत्तधाराम्,**
**भुङ्क्तां कश्चिद् विपश्चिन्न हि परभणितौ स्वीयभावावगाहः।**
**श्रीशो वा श्रीशपादाम्बुजधृततुलसीसङ्गशुद्धान्तरात्मा,**
**सच्छास्त्रार्थाननर्थप्रशमसुखफलान् सद्धिया साधु धत्ते।।३१५।।**

इदानीम्प्रकृतग्रन्थाध्ययनयोग्यतां निर्दिशति—स्वो भूत्वेति। एताम् उपसंहृतां, सद्भिः प्रामाणिकैः, अर्थैः प्रतिनियतानाम् बोध्यत्वेन व्याप्तानां तत्त्वार्थप्रतिपादनपराणां, लसतां दुःश्रवत्वादिदोषाभावेन शोभावहानां क्वचिदलङ्कारवतामपि, स्रग्धराख्य—वृत्तानां, धारां सन्निवेशविशेषरूपं निबन्धम्, कश्चिद् दुर्लभः पदवाक्यप्रमाणविद्यानु—रागी, विपश्चिद् अनेकपक्षोपन्याससमीक्षापोषणनिरसनप्रवीणो जनः, स्वोभूत्वा अर्थविशेषावबोधसन्तुष्टिहेतुसम्बन्धविशेषं सत्तत्त्वानुरागमासाद्य भुङ्क्ताम् आस्वादयतु अनुभवसुखमनुभवतु, स्वत्वाभावे दोषमाह, नहि परभणितौ अन्यदीयवचने, स्वीयानां स्वसमवेतानाम् भावानां विचारहेतुसंस्कारणाम् अवगाहोऽनुभवो, भवेदिति शेषः, ''स्वजनोक्तिगतास्वादो न परोक्तिषु जायते, हेषाभिरन्यनृपतेर्घोटको रासभायते।।'' सच्छास्त्राधिकारं सूचयति, श्रीशः सकलसच्छास्त्रप्रवर्तकः श्रीमन्नारायणः, श्रीशस्य तस्य पादाम्बुजयोश्चरण—कमलयोर्धृता या तुलसी तस्याः सङ्गेन स्पर्शविशेषेण, शुद्धो निर्मलोऽन्त—रात्माऽन्तःकरणं यस्य स तथोक्तो जनो वा अनर्थानाम् मृषाराग—द्वेषकृतासङ्ख्यकर्मफलानां स्वस्वरूपतिरोधानहेतूनाम् प्रशमो विरामस्तेन यत्सुखरूपम्फलन्तदस्तियेषां तान्, सच्छास्त्रार्थान्, सत्या निर्दोषया, धिया प्रज्ञया, साधु अप्रमादेन, धत्ते धारयति। भगवद्भक्तानामेवायं निबन्धो हृद्यो निषेव्यो हितमयश्च स्यादिति भावः।

**भावार्थ — अन्त में इस ग्रन्थ के अध्ययन की योग्यता का संकेत दे रहे हैं कि इस स्रग्धरा वृत्त की श्रृंखला का अध्ययन वह करे जो लेखक से आत्मीयता बना सके। अर्थों के प्रति रुचि से आत्मीयता बनती है। यहाँ प्रत्येक पद्य के पदों में सात्त्विक और तात्त्विक कल्याणमय अर्थ भरे हैं, पढ़ने में भी पद्य अच्छे लगेंगे। आत्मीयता के अभाव में यह निबन्ध पराया लगेगा और अच्छा अर्थ भी उतना नहीं रुचेगा। कल्याणकारी अर्थों को समझना और धारण करना दो के ही वश का काम हैं। एक तो श्रीमन्नारायण जो कि विश्व— कल्याण के लिये उत्तम शास्त्रों का सृजन और प्रवर्तन करते हैं और**



**दूसरे वे जो उनके चरणों पर अर्पित तुलसी के स्पर्श से जिनका चित्त निर्मल और सक्षम हो चुका हो वे सज्जन। संसार बन्धन से छुड़ाने वाले या तो भगवान् हैं या उनके भक्तगण। संसार से छुड़ाने की बातों वाला यह निबन्ध भी उन्हीं दो को अच्छा लगेगा।**

**ख्यातः श्रीसम्प्रदाये शमदमनियमाराद्धनारायणांघ्रि—**
**र्योऽभूद्वेदान्तविद्याऽधिगमकृतमना जन्मना त्यक्तगेहः।**
**श्रद्धाऽऽराद्धैः शुभार्यैर्जितविषयहरिध्याननिघ्नैर्दयाभिः,**
**सम्प्राप्ताध्यात्मविद्यो नवनयमहितो मान्यविद्वत्सदःसु।।३१६।।**
**यस्माद्विद्यैकवित्तादनशननिरतात्त्यक्तलोकानुरागात्,**
**काशीवासप्रसिद्धाच्छ्रुतिपथमविदन् साधवः शुद्धशीलाः।**
**स श्रीरङ्गाभिधानो गुरुभिरपि पुरा योऽभवल्लब्धमान—**
**स्तद्विद्यालेशलाभावमतपरमतस्तत्पदाब्जैकसक्तः।।३१७।।**
**विष्वक्सेनामिधानः पदनयकवितामार्गगः श्रौततत्त्वा—**
**न्वेषन्यस्तायुरेतद्धरिचरणयुगे न्यासहेतोः सगन्धम्।**
**माल्यं शाब्दं व्यतानीत्तदनुभजनिनामस्तु नेयम्प्रदेयं,**
**स्वीयेभ्योऽन्यस्य मैतत्पततु खरकरे मर्कटाभस्य जन्तोः।।३१८।।**

स्वाचार्येण स्वस्य परिचयेन, श्लोकत्रयेण ग्रन्थमुपसंहरति—ख्यात इति। शमदमनियमाराद्धनारायणाङ्घ्रिः शमेन मनोनिग्रहेण, दमेन इन्द्रियनिग्रहेण, नियमैः शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानैः आराद्धावनुकूलितौ नारायणस्याङ्घ्री चरणौ येन स तथोक्तः, वेदान्तविद्याया अधिगमे कृतं धृतम् मनो येन स तथोक्तः, अत एव जन्मना जन्मप्रभृति, त्यक्तगेहः गृहजनबन्धुपरिच्छदनिरपेक्षः, श्रद्धया गुणानुभवजनितप्रीतिविशेषेण, आराद्धैः स्वाभिवाञ्छितविद्यादाने प्रापितानुकूल्यैः, जितविषयैः अलोलुपैः, हरिध्यान निघ्नैः भगवद्ध्यानस्वभावैः, शुभाशयैरार्यैराचार्यैः, दयाभिः तेषामाचार्याणां वयोवैराग्यशीलसदाचारशुश्रूषादिदर्शनजनिताभिरमिताभिः करुणाभिः हेतुभिः, सम्प्राप्ताध्यात्मविद्योऽधीतात्मतत्त्वयाथार्थ्यः, नवे नये नव्यन्यायशास्त्रार्थकौशले, महितः पूजितो यः श्रीसम्प्रदाये शठरिपुनाथयामुन—रामानुजसंसर्गशुभ्रे ख्यातो लब्धप्रतिष्ठोऽभूत् आसीत्, यस्माच्च विद्या एव एकम्प्रधानभूतं वित्तं धनं यस्यासौ तथोक्तस्तस्मात्, अनशनम् उपवासस्तस्मिन् निरतात् सततप्रवृत्तात्, त्यक्तलोकानुरागाल्लोकैषणाविरहितात्, काशीवासेन

तीर्थात्यागेन प्रसिद्धाल्लब्धख्यातेः, शुद्धशीला असङ्कीर्णसदाचाराः साधवो मुमुक्षवः श्रुतिपथम् मुक्तेः श्रौतमुपायम्, अविदन् लब्धवन्तः स सम्प्रदाये विद्वत्सु चान्येषु प्रथितः श्रीरङ्गाचार्य इत्यभिधानो यः पुरा शैशवे, गुरुभिरपि प्रज्ञया लब्धमानोऽभवत् तस्य विद्यानां लेशस्य लाभेन अवमतानि परमतानि येन स तथोक्तः, तस्य पदाब्ज एकस्मिन् प्रधाने ध्येयभूते सक्तोऽनुरक्तः, पदनयकवितामार्गगः व्याकरणन्यायसाहित्यचिन्तनसरणिनिष्णातः, श्रौतस्य जगन्मूलतत्त्वस्यान्वेषे न्यस्तं विनियुक्तम् आयुर्जीवनं येन स तथोक्तः, विष्वक्सेनाभिधानः श्रीवैष्णवेषु एतन्नाम्ना प्रथितः हरेः श्रीमन्नारायणस्य चरणयुगे न्यासहेतोः माल्यस्यास्यात्मनश्च समर्पणाय शाब्दं शब्दपुष्पमयं, सगन्धं ललितपरिमलवद्गम्भीरप्रियहितभावमयम् माल्यम् मालां, व्यतानीत् निर्मितवान्, तदिदम्माल्यम् अनुभजनिनां निरन्तरभगवदनुसन्धानरसिकानां नेयम्, उपादेयम् अस्तु, तैरिदं सेव्यतां, किञ्चेदं स्वीयेभ्यो भगवद्भागवताचार्यसम्बन्धेनात्मीयेभ्यः प्रदेयम् प्रदानार्हम् अस्तु, एतत् मर्कटाभस्य भाषाभावावगमवैदेशिकस्य जन्तोः प्राणिनो नराकारस्यापि खरे रूक्षे हृदये निःस्नेहे करे मा पततु, प्रमादेनापि तद्धस्तस्पर्शो माभूत्, अत्यनादर–प्रसंगापत्तेरिति भावः।

**भावार्थ – अब अपने आचार्य के परिचय से अपना परिचय तीन श्लोकों से प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जिन्होंने शमदम और नियमों से आजीवन भगवान् के चरणों की सेवा की एवं जिन्होंने मुख्य रूप से वेदान्तविद्या की प्राप्ति का ही मन शुरु से बनाकर बाल्य अवस्था में ही घर छोड़ दिया और श्रद्धापूर्वक अपने अनेक उन आचार्यों से जो कि स्वभाव से ही जितेन्द्रिय और भगवद्भक्ति के ध्यान आदि उपायों में लगे रहते थे उनकी पूर्ण कृपा से अध्यात्मविद्या प्राप्त की थी एवं काशी के सम्मानित विद्वानों में नव्यन्यायशास्त्र में शिक्षण और शास्त्रार्थ में जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी, विद्या ही जिनका एकमात्र धन था। एकान्त व्रत उपवास आदि तपस्या में जिनकी अधिक प्रसिद्धि थी, शुद्ध सदाचारी अनेक सन्त जिनसे वैदिक मुक्मिमार्ग का शिक्षण प्राप्त किया था वे स्वामी श्री१००८ रङ्गाचार्य थे जिन्हें बाल्यकाल में भी विद्या विवेकशील सदाचारों से अपने आचार्यों से सम्मान मिलता था। प्रस्तुत निबन्ध का रचयिता विष्वक्सेन नाम से सम्प्रदाय में जाना जाता है, उक्त स्वामी जी के ही श्रीचरणों का आश्रित एवम् अनुरागी है, उनकी विद्याओं में इसे लेशमात्र प्राप्त हो पाया है, उतने से ही मतान्तरों के प्रति आस्था नहीं रह गयी। इसने व्याकरण न्याय और काव्यशास्त्र में विशेष रूचि ली है। उक्त स्वामी जी की कृपा से वैदिक आध्यात्मिक तत्त्व के परिशीलन में अपनी आयु का अधिकांश भाग लगाया है। प्रस्तुत पद्यनिबन्ध रूपी माला भगवान् के चरणों पर इसके सहित अपने और अपने लोगों को न्यौछावर (समर्पित) करने के लिये बनाया है। यह गम्भीर प्रियहित भावरूपी गन्ध से भरपूर है। यह उनके उपयुक्त है जो भगवान् के भजन में लगे रहना पसन्द करते हैं, उन्हें ही इसका उपयोग करना चाहिये। यह उन्हें भी देना चाहिये जो भगवान् और भागवतों के सम्बन्ध से आत्मीय हैं। जो ऐसे नहीं हैं उनके हृदय में भगवान् के प्रति अच्छा भाव नहीं होगा, उनके हाथ में यह नहीं पड़ना चाहिये। बन्दर के हाथ में यदि सुगन्धित फूलों की माला पड़ जाये तो माला की दुर्दशा ही होगी, उससे बन्दर का कोई हित नहीं होगा।**



**न हरेः प्राप्तये विश्वमूर्तेर्हेतुः पृथग् भवेत्।**
**तस्मात्तमेव शरणं सदयं याति सात्त्विकः।।३१६।।**

अध्यायार्थमुपसंहरति–न हरेरिति। विश्वात्मनः सकलोपायोपेयरूपस्य, हरेर्भगवतः, प्राप्तये मुक्तये, पृथग् भगवतोऽन्यो हेतुर्न भवेत्। सकलोपायानां वस्तुतो भगवत एव रूपत्वात्। तस्मात् तमेव हरिं सदयं दययैव मोक्षप्रदं, सात्त्विकः शुद्धधीर्मुमुक्षुः शरणम् मोक्षापायं, याति स्वीकरोति। तदन्यस्य वास्तवमोक्षोपायस्यैवाभावादित्यर्थः।

**भावार्थ – भगवान् विश्वात्मा हैं विश्व के सारे साध्य और साधन उनके ही रूप हैं, ऐसी स्थिति में उन्हें पाने या मुक्ति के लिये जो भी उपाय कोई अपनाता है वह उनका ही रूप होता है, किसी उपाय को केवल उपाय के रूप में देखना अधूरी दृष्टि है, उससे फल पूरा नहीं हो पाता, उस उपाय को परमात्मा मानने से दूसरे सारे उपाय भी अपने पक्ष में हो जाते हैं और परमात्मा चूंकि दयावान् हैं, वे जब मुमुक्षु के संसारक्लेश और उपायक्लेश नहीं देखना चाहते तब उसे मुक्त कर देते हैं, तब उपाय सफल माना जाता है, उपायों की सफलता भगवान् की दया पर ही निर्भर होती है, इससे वास्तव उपाय भगवान् ही हैं ऐसा मानकर सात्त्विक मुमुक्षु उन्हें ही मोक्षोपाय के रूप में स्वीकार करता है, यही शरणागति है, यही सकल शास्त्रसारार्थ है, यही भगवद्गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है जो सात्त्विक मनीषियों को बार–बार के परिशीलन से समझ में आता है।**

श्रावणे कृष्णपक्षस्य त्रीन्दुतुल्ये (१३) तिथौ शनौ।
वैक्रमेऽगेष्वभ्रनेत्रवर्षे (२०५७) पद्यावली कृता।।३२०।।
पञ्चवर्षात्यये व्याख्याद्वयी सुमनमाम्मुदे।
योजिता सेव्यतामेषा श्रीहरौ योजितात्मभिः।।३२१।।

ग्रन्थकालं निर्दिशन्नाह–अगा गिरयः सप्त, इषवो बाणाः पञ्च, अभ्रं गगनं शून्यम्, नेत्रे द्वे, अङ्कानां वामतो गत्या सप्तपञ्चाशदुत्तरद्विसहस्रमिते २०५७ विक्रमवर्षे श्रावणे कृष्णपक्षस्य त्रीन्दु १३ तिथौ शनिवासरेऽस्य ग्रन्थस्य पद्यावली पद्यमालारचना कृता। पञ्चवर्षाणाम् अत्यये समाप्तौ सुमनसां शास्त्रा–सङ्गमङ्गलमनसां विदुषाम् मुदे व्याख्याद्वयी सुरनरभाषामयी पद्यावल्या योजिता। एषा व्याख्याद्वयीसहाया पद्यावली श्री हरौभगवति योजितात्मभिः सेव्यताम् अनुशील्यताम्।

**भावार्थ –ग्रन्थपूर्ति का समय सूचित करते हुए कहते हैं कि विक्रम संवत् २०५७ श्रावणकृष्ण त्रयोदशी शनिवार को इस ग्रन्थ की पद्यरचना पूरी हुई। पाँच साल बाद इसमें संस्कृत हिन्दी भाषाओं में अलग–अलग व्याख्यायें जोड़ी गयीं। विद्वानों को भी व्याख्याओं से लाभ होगा। भगवद्भक्तजन दो व्याख्याओं से युक्त इस ग्रन्थ का परिशीलन करें।**

इति अष्टादशोऽध्यायः।।

इति श्रीमद्भगवद्गीतागङ्गास्रग्धरापद्यावली व्याख्याद्वयीयुता परिपूर्णा।

श्रीरस्तु



## लेखक की प्रकाशित और मुद्रणाधीन अन्य कृतियाँ–

१. **सत्पाथेयं–सत्पथमार्तण्डश्च –** वेदान्त का सूक्ष्म निरूपण संस्कृत पद्यों में विशद हिन्दी भावानुवाद सहित। प्रकाशित।

२. **मानवता की परख –** आजकल मानवता पर अनर्गल–चिन्तन चल रहा है। प्रस्तुत निबन्ध में मानवता का वास्तवरूप प्रदर्शित करते हुए उसे अपनाने का सुझाव दिया गया है। प्रकाशित।

३. **धर्म और अधर्म (हिन्दी निबन्ध) –** विषय नाम से ही स्पष्ट है। प्रकाशित।

४. **राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण –** महत्त्वपूर्ण राजनैतिक मौलिक निबन्ध। प्रकाशित।

५. **गीतागंगा** – भगवद्गीता के भावों पर आधारित यह एक मौलिक रचना है। यह गंगा चार धाराओं में बह रही है। वस्तुतः एक नाम के चार ग्रन्थ हैं।

**पहली धारा –** तीन सौ द्रुतविलम्बित छन्दों में पूरी हुई है। हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित।

**दूसरी धारा –** तीन सौ स्रग्धरा छन्दों में पूरी हुई है। पहली धारा अध्ययन– रत छात्रों के लिये है और दूसरी प्रौढ़ पण्डितों के लिये। दोनों के विषय अत्यन्त भिन्न हैं। दोनों में समग्र गीता पर चिन्तन है। कहीं गीतार्थों का संक्षेप है, कहीं विस्तार है और कहीं प्रवेश में सुविधा के लिये पृथक् चिन्तन है। दूसरी धारा भी भावानुवाद के साथ छपी है जो कर–कमलों में प्रस्तुत है।

**तीसरी धारा –** हिन्दी में प्रश्नोत्तर के रूप में होगी।

**चौथी धारा –** भगवद्गीता के विशद भावानुवाद के रूप में होगी। अन्य ग्रन्थों में अनुपलब्ध और अत्यावश्यक भाव इसमें होंगे।

६. **भावकुसुमाञ्जलिः –** इसमें भक्ति स्नेह राग आदि शुभ भावों और मोह ईर्ष्या–द्वेष आदि अशुभ भावों का श्लोकबद्ध व्याख्यात्मक सरस परिचय है। अनुवाद होने पर छपेगा।

७. **शीलसाहित्यम् –** ७०० आर्या छन्दों में प्रेरक भावों का संग्रह हिन्दी भावानुवाद सहित छपेगा।